ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्तजी

आराधना कथा कोष

(हिन्दी)

श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ चौबीसी

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र हांसी (हरियाणा)

खास दास की आस बस श्वास श्वास पर वास ।
पार्श्व करो मत दास को उदासता का दास ॥
ना तो सुर-सुख चाहता शिव-सुखकी ना चाह ।
तब थुति-सरवर में सदा होवे मम अवगाह ॥
आ: विद्यासागर जी

सत शिरोमणी परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

विद्यासागर विश्व वन्द्यश्रमणं भक्त्या सदा संस्तुवे,
सर्वोच्च यमिनं विनभ्य परमं सर्वार्थसिद्धि प्रदम् ।
ज्ञानध्यान तपोऽभिरक्त मुनिपं विश्वस्य विश्वाश्रयम,
साकारं श्रमण विशाल हृदयं सत्यं शिवं सुन्दर ॥

ब्रह्मचारी श्री नेमिदत्तजी

आराधना कथा कोष

(हिन्दी)

हिन्दी लेखक

श्री उदयलालजी कासलीवाल

प्रकाशक

वीर विद्या संघ

गुजरात

"प्रकाशकीय"

इस परमाणु युग मे मानव के अस्तित्व की ही नहीं अपितु प्राणीमात्र के अस्तित्व की सुरक्षा ही समस्या है, इस समस्या का निराकरण आर्य परम्परा की रक्षा करते हुए आगम पथ पर चलकर ही किया जा सकता है ।

मोक्षमहल की सीढ़ी रूप सम्यग्दर्शन के प्रभावना अग एवं मार्ग प्रभावना भावना के द्वारा ही भौतिकवाद की चकाचौंध एव इन्द्रियों विषयों से ग्रस्त समाज देश राष्ट्र को ज्ञान ही नहीं अपितु सम्यग्ज्ञान की ओर लाया जा सकता है, जिससे अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी का शासन निरतर अषाधगति से चलता रहे ।

उक्त भावना को ही ध्यान में रखकर सत शिरोमणी परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य बा०ब्र० राजेशजी की प्रेरणा से बने श्री दिगम्बर जैन नवयुवक वीर विद्या संघ गुजरात द्वारा जन सामान्य को उपयोगी प्रश्नोत्तर माला के प्रकाशन के साथ ही आराधना कथा कोष का प्रकाशन रूप ये पच्चीसवां पुष्प प्रकाशित है जिसके प्रकाशन में परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य बा०ब्र विनोदजी एव चेतरामजी मॉडल टाऊन दिल्ली का प्रूफ रिडिगं के रूप जो सहयोग मिला और आर्थिक सहयोग श्री पुरुषोत्तमजी जैन मॉडल टाऊन दिल्ली का मिला । इन सभी महानुभावों के प्रति वीर विद्या सघ गुजरात बडा आभारी है । प्रकाशन कार्य में प्रमाद व अज्ञानतावश यदि कहीं कोई त्रुटि रही हो तो ज्ञानीजन हमें अवश्य ही अवगत करें जिससे भविष्य के प्रकाशनों में हम उन्हें सुधार सकें ।

अस्तु

मौलीना बहन बखारिया

सचालक वीर विद्या सघ गुजरात

कार्यालय बी/2 सभवनाथ अपार्टमेन्ट
बखारिया कालोनी
उस्मानपुरा, अहमदाबाद–१३
दूरभाष ४०६८२३

"अनुक्रमणिका"

[प्रथम भाग]

[दूसरा भाग]

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ
५८	सुकौशल मुनि की कथा	309
५९	गजकुमार मुनि की कथा	314
६०	पणिक मुनि की कथा	317
६१	भद्रबाहु मुनिराज की कथा	319
६२	बत्तीस सेठ पुत्रो की कथा	322
	[तीसरा भाग]	
६३	धर्मघोष मुनि की कथा	324
६४	श्रीदत्त मुनि की कथा	326
६५	वृषभसेन की कथा	328
६६	कार्तिकेय मुनि की कथा	331
६७	अभयघोष मुनि की कथा	335
६८	विद्युच्चर मुनि की कथा	337
६९	गुरुदत्त मुनि की कथा	342
७०	चिलात पुत्र की कथा	346
७१	धन्य मुनि की कथा	351
७२	पॉच सौ मुनियो की कथा	353
७३	चाणक्य की कथा	355
७४	वृषभसेन की कथा	360
७५	शालिसिक्थमच्छ के भावो की कथा	362
७६	सुभौम चक्रवर्त्ती की कथा	363
७७	शुभराजा की कथा	365
७८	सुदृष्टि सुनार की कथा	368
७९	धर्मसिह मुनि की कथा	370
८०	वृषभसेन की कथा	372
८१	जयसेन राजा की कथा	374
८२	शकटाल मुनि की कथा	378
८३	श्रद्धायुक्त मनुष्य की कथा	381
८४	आत्म निन्दा करने वाली की कथा	383
८५	आत्मनिन्दा की कथा	386
८६	सोमशर्म मुनि की कथा	388

क्रम नं०	कथा का नाम	पृष्ठ

卐 श्री वीतरागाय नमः 卐

"आराधना कथाकोश"

[हिन्दी]

मंगल और प्रस्तावना

जो भव्य पुरुषरूपी कमलोंके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं और लोक तथा अलोक के प्रकाशक हैं—जिनके द्वारा ससारको वस्तुमात्र का ज्ञान होता है, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर मैं आराधना कथाकोश नामक ग्रन्थ लिखता हूँ ।

उस सरस्वती - जिनवाणी-के लिये नमस्कार है, जो संसारके पदार्थोंका ज्ञान करानेके लिये नेत्र है और जिसके नाम ही से प्राणी ज्ञानरूपी समुद्रके पार पहुँच सकता है, सर्वज्ञ हो सकता है ।

उन मुनिराजोके चरणकमलोको मैं नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूपी रत्नोसे पवित्र हैं, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, ब्रह्मचर्य आदि गुणोसे युक्त हैं और ज्ञानके समुद्र हैं ।

इस प्रकार देव, भारती और गुरु का स्मरण मेरे इस ग्रन्थरूपी महलपर कलशकी शोभा बढ़ावे अर्थात् आरम्भसे अन्तपर्यन्त यह ग्रन्थ निर्विघ्न पूर्ण हो जाय ।

श्रीमूलसघ-भारतीयगच्छ-बलात्कारगण और कुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमें श्रीप्रभाचन्द्र नामके मुनि हुए हैं । वे बड़े तपस्वी थे । उनकी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती-आदि सभी पूजा किया करते थे । उन्होने संसारके उपकारार्थ सरल और सुबोध गद्य सस्कृतभाषा मे एक आराधना कथाकोश बनाया है । उसीके आधारपर मैं यह ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे लिखता हूँ । क्योकि सूर्य के द्वारा प्रकाशित मार्ग मे सभी चलते हैं ।

आराधना शब्द का अर्थ जैन शास्त्रानुसार कल्याण की प्राप्ति के लिये कहा जाता है। उनके सुनने से सत्पुरुषों को भी सन्तोष होगा।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्त्व ये संसारवन्धनके नाश करनेवाले हैं, इनका स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक शक्ति के अनुसार उद्योत, उद्यमन, निर्वाहण, साधन और निस्तरण करनेको आचार्य आराधना कहते हैं। इन पाँचोंका खुलासा अर्थ यों है :—

उद्योत—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप इनका संसारमें प्रकाश करना, लोगोके हृदयपर इनका प्रभाव डालना उद्योत है।

उद्यमन—स्वीकार किये हुए उक्त सम्यग्दर्शनादिका पालन करनेके लिये निरालस होकर बाह्य और अन्तरंग में यत्न करना उद्यमन है।

निर्वाहण—कभी कोई ऐसा बलवान कारण उपस्थित हो जाय, जिससे सम्यग्दर्शनादिके छोड़नेकी नौबत आ जाय तो उस समय अनेक तरहके कष्ट उठाकर भी उन्हें न छोड़ना निर्वाहण है।

साधन—तत्त्वार्थादि महाशास्त्रके पठनके समय जो मुनियोके उक्त दर्शनादिकी राग रहित पूर्णता होना वह साधन है।

निस्तरण—इन दर्शनादिका मरणपर्यन्त निर्विघ्न पालन करना वह निस्तरण है।

इस प्रकार जैनाचार्योंने आराधनाका क्रम पॉच प्रकार बतलाया है। उसे हमने लिख दिया। अब हम उनकी क्रमसे कथा लिखते हैं।

---

१. पात्रकेसरीकी कथा

पात्रकेसरी आचार्य ने सम्यग्दर्शनका उद्योत किया था । उनका चरित मैं लिखता हूँ, वह सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका कारण है ।

भगवान्के पंचकल्याणोसे पवित्र और सब जीवोको सुखके देनेवाले इस भारतवर्षमें एक मगध नामका देश है । वह संसारके श्रेष्ठ वैभवका स्थान है । उसके अन्तर्गत एक अहिछत्र नामका सुन्दर शहर है । उसकी सुन्दरता ससारको चकित करनेवाली है ।

नगरवासियोके पुण्यसे उसका अवनिपाल नामका राजा बड़ा गुणी था, सब राजविद्याओंका पडित था । अपने राज्यका पालन वह अच्छी नीतिके साथ करता था । उसके पास पॉचसौ अच्छे विद्वान् ब्राह्मण थे । वे वेद और वेदांगके जानकार थे । राजकार्यमें वे अवनिपालको अच्छी सहायता देते थे । उनमें एक अवगुण था, वह यह कि उन्हें अपने कुलका बड़ा घमण्ड था । उससे वे सबको नीची दृष्टिसे देखा करते थे । वे प्रातःकाल और सायंकाल नियमपूर्वक अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म करते थे । उनमे एक विशेष बात थी, वह यह कि वे जब राजकार्य करनेको राजसभामें जाते, तब उसके पहले कौतूहलसे पार्श्वनाथ जिनालयमें श्रीपार्श्वनाथकी पवित्र प्रतिमाका दर्शन कर जाया करते थे ।

एक दिनकी बात है कि वे जब अपना सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म करके जिनमन्दिरमें आये तब उन्होने एक चारित्रभूषण् नामके मुनिराजको भगवान्के सम्मुख देवागम नामका स्तोत्रका पाठ करते देखा । उन सबमे प्रधान पात्रकेसरीने मुनिसे पूछा क्या आप इस स्तोत्रका अर्थ भी जानते हैं ? सुनकर मुनि बोले—मैं इसका अर्थ नहीं जानता । पात्रकेसरी फिर बोले—साधुराज, इस स्तोत्रको फिर तो एक बार पढ़ जाइये । मुनिराजने पात्रकेसरीके कहे अनुसार धीरे-धीरे और पदान्तमे विश्रामपूर्वक फिर देवागमको पढ़ा, उसे सुनकर लोगोका चित्त बडा प्रसन्न होता था ।

पात्रकेसरीकी धारणशक्ति बड़ी विलक्षण थी । उन्हें एक बारके सुननेसे ही सबका सब याद हो जाता था । देवागमको भी सुनते ही उन्होने याद कर लिया। जब वे उसका अर्थ विचारने लगे । उस समय दर्शनमोहनीयकर्मके

क्षयोपशमसे उन्हें यह निश्चय हो गया कि जिन भगवान ने जो जीवाजीवादिक पदार्थोंका स्वरूप कहा है, वही सत्य है और सत्य नहीं है। इसके बाद वे घर पर जाकर वस्तुका स्वरूप विचारने लगे। सब दिन उनका उसी तत्त्वविचार में बीता। रातको भी उनका यही हाल रहा। उन्होंने विचार किया—जैनधर्ममें जीवादिक पदार्थोंको प्रमेय-जानने योग्य माना है और तत्वज्ञान-सम्यग्ज्ञानको प्रमाण माना है। पर क्या आश्चर्य है कि अनुमान प्रमाणका लक्षण कहा ही नहीं गया। यह क्यों ? जैनधर्मके पदार्थोंमें उन्हें कुछ सन्देह हुआ, उससे उनका चित्त व्यग्र हो उठा। इतनेहीमें पदमावती देवीका आसन कम्पायमान हुआ। वह उसी समय वहाँ आई और पात्रकेसरीसे उसने कहा—आपको जैनधर्मके पदार्थोंमें कुछ सन्देह हुआ है, पर इसकी आप चिन्ता न करें। आप प्रातःकाल जब जिनभगवानके दर्शन करनेको जायेंगे तव आपका सव सन्देह मिटकर आपको अनुमान प्रमाण का निश्चय हो जायगा। पात्रकेसरीसे इस प्रकार कहकर पदमावती जिनमन्दिर गई और वहाँ पार्श्वजिनकी प्रतिमाके फणपर एक श्लोक लिखकर वह अपने स्थानपर चली गई। वह श्लोक यह था—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अर्थात्—जहाँपर अन्यथानुपपत्ति है, वहाँ हेतुके दूसरे तीन रूप माननेसे क्या प्रयोजन है ? तथा जहाँपर अन्यथानुपपत्ति नहीं है, वहाँ हेतुके तीन रूप मानने से भी क्या फल है ? भावार्थ-साध्यके अभाव में न मिलनेवालेको ही अन्यथानुपपन्न कहते है। इसलिये अन्यथानुपपत्ति हेतुका असाधारण रूप है। किन्तु बौद्ध इसको न मानकर हेतुके १-पक्षेसत्त्व, २-सपक्षेसत्त्व, ३-विपक्षाद्व्यावृत्ति ये तीन रूप मानता है, सो ठीक नहीं है। क्योकि कहीं-कहींपर त्रैरूप्यके न होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके बलसे हेतु सद्धेतु होता है और कहीं-कहींपर त्रैरूप्यके होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके न होनेसे हेतु सद्धेतु नहीं होता। जैसे एक मुहूर्तके अनन्तर शकटका उदय होगा, क्योकि अभी कृत्तिकाका उदय है। यहाँपर पक्षेसत्त्व न होनेपर भी अन्यथानुपपत्तिके बलसे हेतु सद्धेतु है। और 'गर्भस्थ पुत्र श्याम होगा, क्योकि यह मित्रका पुत्र है। यहाँपर त्रैरूप्यके रहने पर भी अन्यथानुपपत्तिके न होनेसे हेतु सद्धेतु नहीं होता।'

पात्रकेसरीने जब पदमावतीको देखा तब ही उनकी श्रद्धा जैनधर्ममे खूब दृढ़ हो गई थी, जो कि सुख देनेवाली और संसारके परिवर्तनका नाश करनेवाली है । पश्चात् जब वे प्रातःकाल जिनमन्दिर गये और श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमापर उन्हे अनुमान प्रमाणका लक्षण लिखा हुआ मिला तब तो उनके आनन्दका कुछ पार नहीं रहा । उसे देखकर उनका सब सन्देह दूर हो गया । जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है ।

इसके बाद ब्राह्मण-प्रधान, पुण्यात्मा और जिनधर्मके परम श्रद्धालु पात्रकेसरीने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने हृदयमे निश्चय कर लिया कि भगवान् ही निर्दोष और संसाररूपी समुद्रसे पार करानेवाले देव हो सकते हैं और जिनधर्म ही दोनों लोकमे सुख देनेवाला धर्म हो सकता है । इस प्रकार दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयोपशमसे उन्हे सम्यक्त्वरूपी परम रत्नकी प्राप्ति हो गई-उससे उनका मन बहुत प्रसन्न रहने लगा ।

अब उन्हें निरन्तर जिनधर्मके तत्त्वोंकी मीमांसाके सिवा कुछ सूझने ही न लगा-वे उनके विचारमे मग्न रहने लगे । उनकी यह हालत देखकर उनसे उन ब्राह्मणोने पूछा—आज कल हम देखते हैं कि आपने मीमांसा, गौतमन्याय, वेदान्त आदिका पठन-पाठन बिलकुल ही छोड़ दिया है और उनकी जगह जिनधर्मके तत्त्वोका ही आप विचार किया करते हैं, यह क्यों ? सुनकर पात्रकेसरीने उत्तर दिया—आप लोगोको अपने वेदोका अभिमान है, उनपर ही आपका विश्वास है, इसलिये आपकी दृष्टि सत्य बातकी ओर नहीं जाती । पर मेरा विश्वास आपसे उल्टा है, मुझे वेदोंपर विश्वास न होकर जैनधर्मपर विश्वास है, वही मुझे संसारमें सर्वोत्तम धर्म दिखता है । मैं आप लोगोसे भी आग्रहपूर्वक कहता हूँ कि आप विद्वान् हैं, सच झूठकी परीक्षा कर सकते हैं, इसलिए जो मिथ्या हो, झूठा हो, उसे छोड़कर सत्यको ग्रहण कीजिये और ऐसा सत्य धर्म एक जिनधर्म ही है, इसलिये वह ग्रहण करने योग्य है ।

पात्रकेसरीके इस उत्तरसे उन ब्राह्मणोको सन्तोष नहीं हुआ । वे इसके विपरीत उनसे शास्त्रार्थ करनेको तैयार हो गये । राजाके पास जाकर उन्होंने

पात्रकेसरीके साथ शास्त्रार्थ करनेकी प्रार्थना की । राजाज्ञा के अनुसार पात्रकेसरी राजसभामे बुलवाये गये। उनका शास्त्रार्थ हुआ । उन्होंने वहाँ सब ब्राह्मणोंको पराजित कर ससारपूज्य और प्राणियोंको सुख देनेवाले जिनधर्मका खूब प्रभाव प्रगट किया और सम्यग्दर्शनकी महिमा प्रकाशित की ।

उन्होंने एक जिनस्तोत्र बनाया, उसमें जिनधर्मके तत्त्वोंका विवेचन और अन्यमतोके तत्त्वो का बड़े पाण्डित्यके साथ खण्डन किया गया है। उसका पठन-पाठन सबके लिये सुखका कारण है । पात्रकेसरी के श्रेष्ठ गुणों और अच्छे विद्वानों द्वारा उनका आदर सम्मान देखकर अवनिपाल राजाने तथा उन ब्राह्मणोंने मिथ्यामतको छोडकर शुभ भावोंके साथ जैनमतको ग्रहण कर लिया ।

इस प्रकार पात्रकेसरीके उपदेशसे संसारसमुद्रसे पार करनेवाले सम्यग्दर्शनको और स्वर्ग तथा मोक्षके देनेवाले पवित्र जिनधर्मको स्वीकार कर अवनिपाल आदिने पात्रकेसरी की बड़ी श्रद्धाके साथ प्रशसा की कि द्विजोत्तम, तुमने जैनधर्मको बडे पाण्डित्यके साथ खोज निकाला है, तुम्हींने जिन भगवान्के उपदेशित तत्वोके मर्मको अच्छी तरह समझा है, तुम ही जिन भगवान्के चरणकमलो की सेवा करनेवाले सच्चे भ्रमर हो, तुम्हारी जितनी स्तुति की जाय थोड़ी है । इस प्रकार पात्रकेसरीके गुणो और पाण्डित्य की हृदयसे प्रशसा करके उन सबने उनका बड़ा आदर सम्मान किया ।

जिस प्रकार पात्रकेसरीने सुखके कारण, परम पवित्र सम्यग्दर्शनका उद्योतकर उसका ससारमे प्रकाशकर राजाओंके द्वारा सम्मान प्राप्त किया, उसी प्रकार और भी जो जिनधर्मका श्रद्धानी होकर भक्तिपूर्वक सम्यग्दर्शन का उद्योत करेगा वह भी यशस्वी बनकर अंतमे स्वर्ग या मोक्षका पात्र होगा ।

कुन्दपुष्प, चन्द्र आदिके समान निर्मल और कीर्तियुक्त श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी आम्नायमे श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए । श्रुतसागर उनके गुरुभाई हैं । उन्हींकी आज्ञासे मैने यह कथा श्रीसिहनन्दी मुनिके पास रहकर बनाई है । वह इसलिये कि इसके द्वारा मुझे सम्यक्त्वरत्नकी प्राप्ति हो ।

---

२. भट्टाकलंकदेवकी कथा

मैं जीवोंको सुखके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कारकर, इस अध्यायमें भट्टाकलकदेवकी कथा लिखता हूँ जो कि सम्यग्ज्ञानका उद्योत करनेवाली है ।

भारतवर्षमे एक मान्यखेट नामका नगर था। उसके राजा थे शुभतुंग और उनके मंत्रीका नाम पुरुषोत्तम था । पुरुषोत्तमकी गृहिणी पद्मावती थी । उसके दो पुत्र हुए । उनके नाम थे अकलक और निकलक । वे दोनों भाई बड़े बुद्धिमान-गुणी थे ।

एक दिनकी बात है कि अष्टाह्निका पर्वकी अष्टमीके दिन पुरुषोत्तम और उसकी गृहिणी बड़ी विभूतिके साथ चित्रगुप्त मुनिराजकी वन्दना करनेको गई । साथमें दोनो भाई भी गये । मुनिराजकी वन्दनाकर इनके माता-पिताने आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य लिया और साथ ही विनोदवश अपने दोनों पुत्रोको भी उन्होने ब्रह्मचर्य दिलवा दिया ।

कुछ दिनोके बाद पुरुषोत्तमने अपने पुत्रोंके ब्याहकी आयोजना की । यह देख दोनो भाईयोने मिलकर पितासे कहा—पिताजी ! इतना भारी आयोजन, इतना परिश्रम आप किसलिये कर रहे हैं ? अपने पुत्रोंकी भोली बात सुनकर पुरुषोत्तमने कहा—यह सब आयोजन तुम्हारे ब्याहके लिये है। पिताका उत्तर सुनकर दोनो भाइयोंने फिर कहा—पिताजी ! अब हमारा ब्याह कैसा ? आपने तो हमे ब्रह्मचर्य दिलवा दिया था न ? पिताने कहा नहीं, वह तो केवल विनोदसे दिया गया था । उन बुद्धिमान् भाइयोने कहा—पिताजी ! धर्म और व्रतमे विनोद कैसा ? यह हमारी समझमें नहीं आया । अच्छा आपने विनोद ही से दिया सही, तो अब उसके पालन करनेमे भी हमे लज्जा कैसी ? पुरुषोत्तमने फिर कहा—अस्तु । जैसा तुम कहते हो वही सही, पर तब तो केवल आठ ही दिनके लिये ब्रह्मचर्य दिलाया था न ? दोनो भाइयोंने कहा—पिताजी, हमे आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य दिया गया था, इसका न तो आपने हमसे खुलासा कहा था और न आचार्य महाराजने ही । तब हम कैसे समझे कि वह व्रत आठ ही दिनके लिये था । इसलिये हम तो अब विवाह नहीं करेंगे । यह कहकर दोनों भाइयोने घरका सब कारोबार छोडकर और

अपना चित्त शास्त्रभ्यासकी ओर लगाया। थोड़े ही दिनोमे ये अच्छे विद्वान् बन गये। इनके समयमे बौद्धधर्मका बहुत जोर था। इसलिये इन्हें उसके तत्त्व जाननेकी इच्छा हुई। उस समय मान्यखेटमें ऐसा कोई बौद्ध विद्वान् नहीं था, जिससे ये बौद्धधर्मका अभ्यास करते। इसलिये ये एक अज्ञ विद्यार्थी का वेश बनाकर महाबोधि नामक स्थानमें बौद्धधर्माचार्य के पास गये। आचार्यने इनकी अच्छी तरह परीक्षा करके कि कहीं ये छली तो नहीं है, और जब उन्हे इनकी ओरसे विश्वास हो गया तब वे और और शिष्योंके साथ-साथ इन्हें भी पढ़ाने लगे। ये भी अन्तरंगमें तो पक्के जिनधर्मी और बाहिर एक महामूर्ख बनकर स्वर व्यजन सीखने लगे। निरन्तर बौद्धधर्म सुनते रहनेसे अकलकदेवकी बुद्धि बड़ी विलक्षण हो गई। उन्हे एक ही बारके सुननेसे कठिनसे कठिन बात भी याद हो जाने लगी और निकलंकको दो बार सुननेसे अर्थात् अकलंक एक संस्थ और निकलंक दो संस्थ हो गये। इस प्रकार वहाँ रहते दोनों भाइयोंका बहुत समय बीत गया।

एक दिनकी बात है बौद्धगुरु अपने शिष्योंको पढ़ा रहे थे। उस समय प्रकरण था जैनधर्मके सप्तभंगी सिद्धान्तका। वहाँ कोई अशुद्धपाठ आ गया जो बौद्धगुरुकी समझमें न आया, तब वे अपने व्याख्यानको वहीं समाप्तकर कुछ समयके लिये बाहर चले आये। अकलंक बुद्धिमान् थे, वे बौद्धगुरु के भाव समझ गये; इसलिये उन्होंने बड़ी बुद्धिमानीके साथ उस पाठको शुद्ध कर दिया और उसकी खबर किसीको न होने दी। इतनेमें पीछे बौद्धगुरु आये। उन्होने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। जो पाठ अशुद्ध था, वह अब देखते ही उनकी समझमे आ गया। यह देख उन्हे सन्देह हुआ कि अवश्य इस जगह कोई जिनधर्मरूप समुद्रका बढानेवाला चन्द्रमा है और वह हमारे धर्मके नष्ट करनेकी इच्छासे बौद्धवेष धारणकर बौद्धशास्त्रका अभ्यास कर रहा है। उसका जल्दी ही पता लगाकर उसे मरवा डालना चाहिये। इस विचारके साथ ही बौद्धगुरुने सब विद्यार्थियोको शपथ, प्रतिज्ञा आदि देकर पूछा, पर जैनधर्मीका पता उन्हें नहीं लगा। इसके बाद उन्होने जिनप्रतिमा मँगवाकर उसे लाँघ जानेके लिये सबको कहा। सब विद्यार्थी तो लाँघ गये, अब अकलंककी बारी आई; उन्होंने अपने कपड़े में से एक सूतका सूक्ष्म

धागा निकालकर उसे प्रतिमापर डाल दिया और उसे परिग्रही समझकर वे झटसे लॉघ गये । यह कार्य इतनी जल्दी किया गया कि किसीकी समझमें न आया । बौद्धगुरु इस युक्तिमें भी जब कृतकार्य नहीं हुए तब उन्होंने एक और नई युक्ति की । उन्होंने बहुतसे कॉसेके बर्तन इकट्ठे करवाये और उन्हें एक बड़ी भारी गौनमें भरकर वह बहुत गुप्त रीतिसे विद्यार्थियोंके सोनेकी जगहके पास रखवा दी और विद्यार्थियों की देख रेखके लिये अपना एक-एक गुप्तचर रख दिया ।

आधी रातका समय था । सब विद्यार्थी निडर होकर निद्रादेवीकी गोदमें सुखका अनुभव कर रहे थे । किसीको कुछ मालूम न था कि हमारे लिये क्या-क्या षड्यन्त्र रचे जा रहे हैं । एकाएक बड़ा विकराल शब्द हुआ । मानो आसमानसे बिजली टूटकर पड़ी । सब विद्यार्थी उस भयकर आवाजसे कॉप उठे । वे अपना जीवन बहुत थोड़े समयके लिये समझकर अपने उपास्य परमात्माका स्मरण कर उठे ।-अकलक और निकलंक भी पंच नमस्कार मंत्रका ध्यान करने लग गये। पास ही बौद्धगुरुका जासूस खड़ा हुआ था । वह उन्हे बुद्ध भगवान्का स्मरण करनेकी जगह जिन भगवान्का स्मरण करते देखकर बौद्धगुरुके पास ले गया और गुरुसे उसने प्रार्थना की । प्रभो ! आज्ञा कीजिये कि इन दोनों धूर्तोका क्या किया जाय ? ये ही जैनी हैं । सुनकर वह दुष्ट बौद्धगुरु बोला—इस समय रात थोड़ी बीती है, इसलिये इन्हें लेजाकर कैदखानेमें बन्द कर दो, जब आधीरात हो जाय तब इन्हे मार डालना । गुप्तचरने दोनों भाइयोंको ले जाकर कैदखानेमें बन्द कर दिया ।

अपनेपर एक महाविपत्ति आई देखकर निकलकने बड़े भाईसे कहा—भैया ! हम लोगोने इतना कष्ट उठाकर तो विद्या प्राप्त की, पर कष्ट है कि उसके द्वारा हम कुछ भी जिनधर्मकी सेवा न कर सके और एकाएक हमें मृत्युका सामना करना पड़ा । भाई की दुःखभरी बात सुनकर महा धीरवीर अकलंकने कहा—प्रिय ! तुम बुद्धिमान् हो, तुम्हे भय करना उचित नहीं । घबराओ मत । अब भी हम अपने जीवनकी रक्षा कर सकेंगे । देखो मेरे पास यह छत्री है, इसके द्वारा अपनेकी छुपा कर हम लोग यहॉसे निकल चलते हैं और शीघ्र ही अपने स्थानपर जा पहुॅचते हैं । यह विचार कर के दोनों भाई दबे पॉव निकल गये और जल्दी-जल्दी रास्ता तय करने लगे ।

इधर जब आधी रात बीत चुकी और बौद्धगुरुकी आज्ञानुसार उन दोनो भाइयोंके मारनेका समय आया ; तब उन्हें पकड़ लानेके लिये नौकर लोग दौड़े गये, पर वे कैदखानेमें जाकर देखते हैं तो वहाँ उनका पता नहीं । उन्हे उनके एकाएक गायब हो जानेसे बड़ा आश्चर्य हुआ । पर कर क्या सकते थे । उन्हें उनके कहीं आस-पास ही छुपे रहनेका सन्देह हुआ । उन्होने आस-पासके वन, जंगल, खंडहर, बावड़ी, कुएँ, पहाड़, गुफाये आदि सब एक-एक करके ढूँढ़ डाले, पर उनका कहीं पता न चला । उन पापियोंको तब भी सन्तोष न हुआ सो उनके मारनेकी इच्छासे अश्व द्वारा उन्होने यात्रा की । उनकी दयारूपी बेल क्रोधरूपी दावाग्निसे खूब ही झुलस गई थी, इसीलिये उन्हे ऐसा करनेको बाध्य होना पड़ा । दोनों भाई भागते जाते थे और पीछे फिर-फिर कर देखते जाते थे कि कहीं किसीने हमारा पीछा तो नहीं किया है । पर उनका सन्देह ठीक निकला । निकलंकने दूर तक देखा तो उसे आकाशमे धूल उठती हुई दीख पड़ी । उसने बड़े भाईसे कहा—भैया ! हम लोग जितना कुछ करते हैं, वह सब निष्फल जाता है । जान पड़ता है दैवने अपनेसे पूर्ण शत्रुता बाँधी है । खेद है परम पवित्र जिनशासनकी हम लोग कुछ भी सेवा न कर सके और मृत्युने बीच ही में आकर धर दबाया । भैया ! देखो, तो पापी लोग हमे मारनेके लिये पीछा किये चले आ रहे हैं । अब रक्षा होना असभव है । हाँ मुझे एक उपाय सूझ पड़ा है उसे आप करेंगे तो जैनधर्मका बड़ा उपकार होगा । आप बुद्धिमान हैं, एक संस्थ हैं । आपके द्वारा जैनधर्मका खूब प्रकाश होगा । देखते हैं—वह सरोवर है । उसमे बहुतसे कमल हैं । आप जल्दी जाइये और तालाब में उतरकर कमलोमे अपनेको छुपा लीजिये। जाइये, जल्दी कीजिये; देरीका काम नहीं है । शत्रु पास पहुँचे आ रहे हैं । आप मेरी चिन्ता न कीजिये । मैं भी जहाँ तक बन पड़ेगा, जीवन की रक्षा करूँगा और यदि मुझे अपना जीवन दे देना भी पड़े तो मुझे उसकी कुछ परवाह नहीं, जब कि मेरे प्यारे भाई जीते रहकर पवित्र जिनशासनकी भरपूर सेवा करेगे। आप जाइये, मैं भी अब यहाँ से भागता हूँ ।

अकलंक की ऑखोंसे आँसुओकी धार बह चली । उनका गला भ्रातृप्रेमसे भर आया । वे भाईसे एक अक्षर भी न कह पाये कि निकलंक

वहॉसे भाग खड़ा हुआ । लाचार होकर अकलंकको अपने जीवनकी नहीं, पवित्र जिनशासनकी रक्षाके लिये कमलोंमे छुपना पड़ा । उनके लिये कमलोका आश्रय केवल दिखाऊ था । वास्तवमे तो उन्होने जिसके बराबर संसारमें कोई आश्रय नहीं हो सकता, उस जिनशासनका आश्रय लिया था ।

निकलंक भाईसे विदा हो जी छोड़कर भागा जा रहा था । रास्तेमें उसे एक धोबी कपड़े धोते हुये मिला । धोबीने आकाशमे धूलकी घटा छाई हुई देखकर निकलंकसे पूछा, यह क्या हो रहा है ? और तुम ऐसे जी छोडकर क्यों भागे जा रहे हो ? निकलंकने कहा—पीछे शत्रुओकी सेना आ रही है । उन्हें जो मिलता है उसे ही वह मार डालती है । इसीलिये मैं भागा जा रहा हूॅ । ऐसा सुनते ही धोबी भी कपड़े वगैरह सब वैसे ही छोड़कर निकलंकके साथ भाग खड़ा हुआ । वे दोनो बहुत भागे, पर आखिर कहॉ तक भाग सकते थे ? सवारो ने उन्हें धर पकड़ा और उसी समय अपनी चमचमाती हुई तलवारसे दोनोंका शिर काटकर वे अपने मालिकके पास ले गये । सच है पवित्र जिनधर्म अहिंसा धर्म से रहित मिथ्यात्वको अपनाये हुए पापी लोगोके लिए ऐसा कौन महापाप बाकी रह जाता है, जिसे वे नहीं करते । जिनके हृदयमे जीव मात्रको सुख पहुॅचाने वाले जिनधर्मका लेश भी नहीं है, उन्हे दूसरोपर दया आ भी कैसे सकती है ?

उधर शत्रु अपना कामकर वापिस लौटे और इधर अकलंक अपनेको निर्विघ्न समझ सरोवरसे निकले और निडर होकर आगे बढ़े । वहॉसे चलते-चलते वे कुछ दिनों बाद कलिंग देशान्तर्गत रत्नसंचयपुर नामक शहरमें पहुॅचे । इसके बाद का हाल हम नीचे लिखते हैं —

उस समय रत्नसंचयपुरके राजा हिमशीतल थे । उनकी रानीका नाम मदनसुन्दरी था । वह जिन भगवान् की बड़ी भक्त थी । उसने स्वर्ग और मोक्ष सुखके देनेवाले पवित्र जिनधर्मकी प्रभावनाके लिये अपने बनवाये हुये जिनमन्दिरमे फाल्गुन शुक्ल अष्टमीके दिनसे रथयात्रोत्सव का आरम्भ करवाया था । उसमें उसने बहुत द्रव्य व्यय किया था ।

वहॉ सघश्री नामक बौद्धोका प्रधान आचार्य रहता था । उसे महारानीका कार्य सहन नहीं हुआ । उसने महाराजसे कहकर रथयात्रोत्सव अटका दिया

और साथ ही वहाँ जिनधर्मका प्रचार न देखकर शास्त्रार्थके लिये घोषणा भी करवा दी । महाराज शुभतुंगने अपनी महारानीसे कहा—प्रिये, जबतक कोई जैन विद्वान् बौद्धगुरुके साथ शास्त्रार्थ करके जिनधर्मका प्रभाव न फैलावेगा तबतक तुम्हारा उत्सव होना कठिन है । महाराजकी बातें सुनकर रानीको बड़ा खेद हुआ । पर वह कर ही क्या सकती थी । उस समय कौन उसकी आशा पूरीकर सकता था । वह उसी समय जिनमन्दिर गई और वहाँ मुनियोंको नमस्कार कर उनसे बोली—प्रभो, बौद्धगुरुने मेरा रथयात्रोत्सव रुकवा दिया है । वह कहता है कि पहले मुझसे शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त कर लो, फिर रथोत्सव करना । बिना ऐसा किये उत्सव न हो सकेगा । इसलिये मैं आपके पास आई हूँ । बतलाइए जैनदर्शनका अच्छा विद्वान् कौन है, जो बौद्धगुरुको जीतकर मेरी इच्छा पूरी करे ? सुनकर मुनि बोले—इधर आसपास तो ऐसा विद्वान् नहीं दिखता जो बौद्धगुरुका सामना कर सके । हाँ मान्यखेट नगरमें ऐसे विद्वान् अवश्य हैं । उनके बुलवानेका आप प्रयत्न करें तो सफलता प्राप्त हो सकती है । रानीने कहा—वाह, आपने बहुत ठीक कहा, सर्प तो शिरके पास फुंकार कर रहा है और कहते हैं कि गारुड़ी दूर है । भला, इससे क्या सिद्धि हो सकती है ? अस्तु । जान पड़ा कि आप लोग इस विपत्तिका सद्यः प्रतिकार नहीं कर सकते । दैवको जिनधर्मका पतन कराना ही इष्ट मालूम देता है । जब मेरे पवित्र धर्मकी दुर्दशा होगी तब मैं ही जीकर क्या करूँगी ? यह कहकर महारानी राजमहलसे अपना सम्बन्ध छोड़कर जिनमन्दिर गई और उसने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की—"जब संघश्रीका मिथ्याभिमान चूर्ण होकर मेरा रथोत्सव बड़े ठाठबाटके साथ निकलेगा और जिनधर्मकी खूब प्रभावना होगी, तब ही मैं भोजन करूँगी, नहीं तो वैसे ही निराहार रहकर मर मिटूँगी; पर अपनी आँखोंसे पवित्र जैनशासनकी दुर्दशा कभी नहीं देखूँगी ।" ऐसा हृदयमें निश्चयकर मदनसुन्दरी जिन भगवान्के सन्मुख कायोत्सर्ग धारणकर पचनमस्कार मत्रकी आराधना करने लगी। उस समय उसकी ध्यान निश्चल अवस्था बड़ी ही मनोहर दीख पड़ती थी । मानो सुमेरुगिरिकी श्रेष्ठ निश्चल चूलिका हो ।

"भव्यजीवोको जिनभक्तिका फल अवश्य मिलता है ।" इस नीतिके

अनुसार महारानी भी उससे वंचित नहीं रही । महारानीके निश्चय ध्यानके प्रभावसे पदमावतीका आसन कपित हुआ । वह आधीरातके समय आई और महारानीसे बोली—देवी, जबकि तुम्हारे हृदयमे जिनभगवान्के चरण कमल शोभित हैं, जब तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं । उनके प्रसादसे तुम्हारा मनोरथ नियमसे पूर्ण होगा । सुना, कल प्रातःकाल ही अकलकदेव इधर आवेगे, वे जैनधर्मके बड़े भारी विद्वान् हैं । वे ही संघश्रीका दर्प चूर्णकर जिनधर्मकी खूब प्रभावना करेगे और तुम्हारा रथोत्सवका कार्य निर्विध्न समाप्त करेंगे । उन्हे अपने मनोरथोके पूर्ण करनेवाले मूर्त्तिमान शरीर समझो । यह कहकर पद्मावती अपने स्थान चली गई ।

देवीकी बात सुनकर महारानी अत्यन्त प्रसन्न हुई । उसने बड़ी भक्तिके साथ जिनभगवान्की स्तुति की और प्रातःकाल होते ही महाभिषेक पूर्वक पूजा की । इसके बाद उसने अपने राजकीय प्रतिष्ठित पुरुषोको अकलंकदेवके ढूॅढनेको चारो ओर दौड़ाया । उनमे जो पूर्व दिशाकी ओर गये थे, उन्होने एक बगीचेमे अशोक वृक्षके नीचे बहुतसे शिष्योके साथ एक महात्माको बैठे देखा । उनके किसी एक शिष्यसे महात्माका परिचय और नाम धाम पूछकर वे अपनी मालकिनके पास आये और सब हाल उन्होने उससे कह सुनाया सुनकर ही वह धर्मवत्सला खानपान आदि सब सामग्री लेकर अपने सधर्मियोके साथ बडे प्रेम और भक्तिसे उन्हे प्रणाम किया । उनके दर्शनसे रानीको अत्यन्त आनन्द हुआ । जैसे सूर्यको देखकर कमलिनीको और मुनियोका तत्त्वज्ञान देखकर बुद्धिको आनन्द होता है ।

इसके बाद रानीने धर्मप्रेमके वश होकर अकलकदेवकी चन्दन, अगर, फल, फूल, वस्त्रादिसे बड़े विनयके साथ पूजा की और पुन प्रणाम कर वह उनके सामने बैठ गई। उसे आशीर्वाद देकर पवित्रात्मा अकलक बोले—देवी, तुम अच्छी तरह तो हो, और सब सघ भी अच्छी तरह है न ? महात्माके वचनोको सुनकर रानीकी ऑखोसे ऑसू बह निकले, उसका गला भर आया । वह बड़ी कठिनतासे बोली—प्रभो, सघ है तो कुशल, पर इस समय उसका घोर अपमान हो रहा है, उसका मुझे बडा कष्ट है । यह कहकर उसने सघश्रीका सब हाल अकलकसे कह सुनाया । पवित्र धर्मका अपमान अकलक

न सह सके । उन्हे क्रोध हो आया । वे बोले—वह वराक संघश्री मेरे पवित्र धर्मका अपमान करता है, पर वह मेरे सामने है कितना, इसकी उसे खबर नहीं है । अच्छा देखूँगा उसके अभिमानको कि वह कितना पाण्डित्य रखता है । मेरे साथ खास बुद्ध तक तो शास्त्रार्थ करनेकी हिम्मत नहीं रखता, तब वह वेचारा किस गिनती मे है ? इस तरह रानीको सन्तुष्ट करके अकलंकने संघश्रीके शास्त्रार्थके विज्ञापनकी स्वीकारता उसके पास भेज दी और आप बड़े उत्सवके साथ जिनमन्दिर आ पहुँचे ।

पत्र संघश्री के पास पहुँचा । उसे देखकर और उसकी लेखन शैलीको पढ़कर उसका चित्त क्षुभित हो उठा । आखिर उसे शास्त्रार्थके लिये तैयार होना ही पड़ा ।

अकलंकके आनेके समाचार महाराज हिमशीतलके पास पहुँचे । उन्होंने उसी समय बड़े आदर सम्मानके साथ उन्हें राजसभामें बुलवाकर सघश्रीके साथ उनका शास्त्रार्थ करवाया । सघश्री उनके साथ शास्त्रार्थ करनेको तो तैयार हो गया, पर जब उसने अकलंकके प्रश्नोत्तर करनेका पाण्डित्य देखा और उससे अपनी शक्तिकी तुलना की तब उसे ज्ञात हुआ कि मैं अकलंकके साथ शास्त्रार्थ करनेमे असमर्थ हूँ, पर राजसभामें ऐसा कहना भी उसने उचित न समझा । क्योकि उससे उसका अपमान होता । तब उसने एक नई युक्ति सोचकर राजासे कहा—महाराज, यह धार्मिक विषय है, इसका निर्णय होना कठिन है । इसलिये मेरी इच्छा है कि यह शास्त्रार्थ सिलसिलेवार तबतक चलना चाहिये जब तक कि एक पक्ष पूर्ण निरुत्तर न हो जाय । राजाने अकलंककी अनुमति लेकर संघश्रीके कथनको मान लिया । उस दिनका शास्त्रार्थ बन्द हुआ । राजसभा भंग हुई ।

अपने स्थानपर आकर सघश्रीने जहाँ-जहाँ बौद्धधर्मके विद्वान् रहते थे, उनके बुलवानेको अपने शिष्योको दौड़ाया और आपने रात्रिके समय अपने धर्मकी अधिष्ठात्री देवीकी आराधना की । देवी उपस्थित हुई । संघश्रीने उससे कहा—देखती हो, धर्मपर बडा सकट उपस्थित हुआ है । उसे दूरकर धर्मकी रक्षा करनी होगी । अकलंक बड़ा पंडित है । उसके साथ शास्त्रार्थकर विजय प्राप्त करना असम्भव था इसीलिये मैंने तुम्हे कष्ट दिया है । यह शास्त्रार्थ मेरे

द्वारा तुम्हे करना होगा और अकलकको पराजितकर बुद्धधर्मकी महिमा प्रगट करनी होगी। बोलो—क्या कहती हो ? उत्तर में देवीने कहा—हॉ मैं शास्त्रार्थ करूँगी सही, पर खुली सभामे नहीं; किन्तु परदेके भीतर घड़ेमे रहकर। 'तथास्तु' कहकर संघश्रीने देवीको विसर्जित किया और आप प्रसन्नताके साथ दूसरी निद्रा देवीकी गोदमें जा लेटा।

प्रात:काल हुआ। शौच, स्नान, देवपूजन आदि नित्य कर्मसे छुट्टी पाकर संघश्री राजसभामे पहुँचा और राजासे बोला—महाराज, हम आजसे शास्त्रार्थ परदेके भीतर रहकर करेगे। हम शास्त्रार्थके समय किसीका मुँह नहीं देखेगे। आप पूछेगे क्यो ? इसका उत्तर अभी न देकर शास्त्रार्थ के अन्तमे दिया जायगा। राजा सघश्रीके कपट जालको कुछ नहीं समझ सके। उसने जैसा कहा वैसा उन्होने स्वीकार कर उसी समय वहॉ एक परदा लगवा दिया। सघश्रीने उसके भीतर जाकर बुद्धभगवान्की पूजा की और देवीकी पूजाकर एक घड़े मे आह्वान किया। धूर्त लोग बहुत कुछ छल कपट करते हैं, पर अन्तमे उसका फल अच्छा न होकर बुरा ही होता है।

इसके बाद घड़ेकी देवी अपनेमें जितनी शक्ति थी उसे प्रगटकर अकलकके साथ शास्त्रार्थ करने लगी। इधर अकलंकदेव भी देवीके प्रतिपादन किये हुए विषयका अपनी दिव्य भारती द्वारा खण्डन और अपने पक्षका समर्थन तथा परपक्षका खण्डन करनेवाले परम पवित्र अनेकान्तस्याद्वादमतका समर्थन बड़े ही पाण्डित्यके साथ निडर होकर करने लगे। इस प्रकार शास्त्रार्थ होते-होते छह महीने बीत गये, पर किसीकी विजय न हो पाई। यह देख अकलंकदेवको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा—संघश्री साधारण पढ़ा-लिखा और जो पहले ही दिन मेरे सम्मुख थोड़ी देर भी न ठहर सका था, वह आज बराबर छह महीनेसे शास्त्रार्थ करता चला आता है, इसका क्या कारण है, सो नहीं जान पड़ता। उन्हे इसकी बड़ी चिन्ता हुई। पर वे कर ही क्या सकते थे। एक दिन इसी चिन्तामे डूबे हुए थे कि इतनेमे जिनशासनकी अधिष्ठात्री चक्रेश्वरी देवी आई और अकलंकदेवसे बोली—प्रभो! आपके साथ शास्त्रार्थ करनेकी मनुष्यमात्रमे शक्ति नहीं है और बेचारा सघश्री भी तो मनुष्य है तब उसकी क्या मजाल जो वह आपसे शास्त्रार्थ करे ? पर यहॉ तो बात कुछ

और ही है । आपके साथ जो शास्त्रार्थ करता है वह संघश्री नहीं है, किन्तु बुद्धधर्मकी अधिष्ठात्री तारा नामकी देवी है । इतने दिनों से वही शास्त्रार्थ कर रही है । संघश्रीने उसकी आराधनाकर यहाँ उसे बुलाया है । इसलिये कल जब शास्त्रार्थ होने लगे और देवी उस समय जो कुछ प्रतिपादन करे तब आप उससे उसी विषय का फिरसे प्रतिपादन करनेके लिये कहिये । वह उसे फिर न कह सकेगी और तब उसे अवश्य नीचा देखना पड़ेगा यह कहकर देवी अपने स्थान पर चली गई । अकलङ्कदेवकी चिन्ता दूर हुई । वे बड़े प्रसन्न हुए ।

प्रातःकाल हुआ । अकलंकदेव अपने नित्यकर्मसे मुक्त होकर जिनमन्दिर गये। बड़े भक्तिभावसे उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की । इसके बाद वे वहाँसे सीधे राजसभामे आये । उन्होंने महाराज शुभतुंगको सम्बोधन करके कहा– राजन् ! इतने दिनोतक मैंने जो शास्त्रार्थ किया, उसका यह मतलब नहीं था कि मैं संघश्रीको पराजित नहीं कर सका । परन्तु ऐसा करनेसे मेरा अभिप्राय जिनधर्मका प्रभाव बतलानेका था । वह मैंने बतलाया । पर अब मैं इस वादका अन्त करना चाहता हूँ । मैंने आज निश्चय कर लिया है कि मैं आज इस वादकी समाप्ति करके ही भोजन करूँगा । ऐसा कहकर उन्होंने परदेकी ओर देखकर कहा–क्या जैनधर्मके सम्बन्धमें कुछ और कहना बाकी है या मैं शास्त्रार्थ समाप्त करूँ ? वे कहकर जैसे ही चुप रहे कि परदेकी ओरसे फिर वक्तव्य आरम्भ हुआ । देवी अपना पक्ष समर्थन करके चुप हुई कि अकलंकदेवने उसी समय कहा–जो विषय अभी कहा गया है, उसे फिरसे कहो ? वह मुझे ठीक नहीं सुन पड़ा । आज अकलंकका यह नया ही प्रश्न सुनकर देवीका साहस एक साथ ही न जाने कहाँ चला गया । देवता जो कुछ बोलते वे एक ही बार बोलते हैं–उसी बातकी वे पुनः नहीं बोल पाते । तारा देवीका भी यही हाल हुआ । वह अकलंकदेवके प्रश्नका उत्तर न दे सकी । आखिर उसे अपमानित होकर भाग जाना पडा । जैसे सूर्योदयसे रात्रि भाग जाती है ।

इसके बाद ही अकलंकदेव उठे और परदेको फाड़कर उसके भीतर घुस गये । वहाँ जिस घडेमे देवीका आह्वान किया गया था, उसे उन्होंने पाँवकी ठोकरसे फोड डाला । संघश्री सरीखे जिनशासनके शत्रुओंका, मिथ्यात्वियोका अभिमान चूर्ण किया । अकलंककी इस विजय और जिनधर्मकी

प्रभावनासे मदनसुन्दरी और सर्वसाधारणको बड़ा आनन्द हुआ । अकलंकने सब लोगोंके सामने जोर देकर कहा—सज्जनो ! मैंने इस धर्मशून्य संघश्रीको पहले ही दिन पराजित कर दिया था, किन्तु इतने दिन जो मैंने देवीके साथ शास्त्रार्थ किया, वह जिनधर्मका माहात्म्य प्रगट करनेके लिये और सम्यग्ज्ञानका लोगोंके हृदयपर प्रकाश डालनेके लिये था। यह कहकर अकलंकदेव ने इस श्लोकको पढ़ा —

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं,
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुध्या मया ।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो,
बौद्धौघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फालितः ॥

अर्थात्—महाराज, हिमशीतलकी सभामे मैंने सब बौद्धविद्वानोको पराजित कर सुगतको ठुकराया, यह न तो अभिमानके वश होकर किया और न किसी प्रकार द्वेषभावसे, किन्तु नास्तिक बनकर नष्ट होते हुए जनोपर मुझे बड़ी दया आई, इसलिये उनकी दयासे बाध्य होकर मुझे ऐसा करना पड़ा ।

उस दिनसे बौद्धोंका राजा और प्रजाके द्वारा चारों ओर अपमान होने लगा । किसीकी बुद्धधर्मपर श्रद्धा नहीं रही । सब उसे घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे । यही कारण है बौद्ध लोग यहाँसे भागकर विदेशोंमे जा बसे ।

महाराज हिमशीतल और प्रजाके लोग जिनशासनकी प्रभावना देखकर बड़े खुश हुए । सबने मिथ्यात्वमत छोड़कर जिनधर्म स्वीकार किया और अकलंकदेवका सोने, रत्न आदिके अलंकारोंसे खूब आदर सम्मान किया, खूब उनकी प्रशंसा की । सच बात है जिनभगवान्के पवित्र सम्यग्ज्ञानके प्रभावसे कौन सत्कारका पात्र नहीं होता ।

अकलंकदेवके प्रभावसे जिनशासनका उपद्रव टला देखकर महारानी मदनसुन्दरीने पहलेसे भी कई गुणे उत्साहसे रथ निकलवाया । रथ बडी सुन्दरताके साथ सजाया गया था । उसकी शोभा देखते ही बन पड़ती थी । वह वेशकीमती वस्त्रोसे शोभित था, छोटी-छोटी घटियाँ उसके चारो ओर लगी हुई थीं, उनकी मधुर आवाज एक बड़े घटेकी आवाजमे मिलकर, जो कि उन घटियोके ठीक बीचमे था, बड़ी सुन्दर जान पडती थी, उसपर रत्नो

और मोतियोंकी मालायें अपूर्व शोभा दे रही थीं, उसके ठीक बीचमें रत्नमयी सिंहासनपर जिनभगवान्‌की बहुत सुन्दर प्रतिमा शोभित थी। वह मौलिक छत्र, चामर, भामण्डल आदिसे अलंकृत थी। रथ चलता जाता था और उसके आगे-आगे भव्यपुरुष बड़ी भक्तिके साथ जिनभगवान्‌की जय बोलते हुए और भगवान्‌पर अनेक प्रकारके सुगन्धित फूलोंकी, जिनकी महकसे सब दिशायें सुगन्धित होती थीं, वर्षा करते चले जाते थे। चारणलोग भगवान्‌की स्तुति पढ़ते जाते थे। कुल कामिनियाँ सुन्दर-सुन्दर गीत गाती जाती थीं। नर्तकियाँ नृत्य करती जाती थीं। अनेक प्रकारके बाजोंका सुन्दर शब्द दर्शकोंके मनको अपनी ओर आकर्षित करता था। इन सब शोभाओंसे रथ ऐसा जान पड़ता था, मानों पुण्यरूपी रत्नोंके उत्पन्न करनेको चलनेवाला वह एक दूसरा रोहण पर्वत उत्पन्न हुआ है। उस समय जो याचकोंको दान दिया जाता था, वस्त्राभूषण वितीर्ण किये जाते थे, उससे रथकी शोभा एक चलते हुए कल्पवृक्षकीसी जान पड़ती थी। हम रथकी शोभाका कहाँतक वर्णन करें ? आप इसीसे अनुमान कर लीजिये कि जिसकी शोभाको देखकर ही बहुतसे अन्यधर्मी लोगोंने जब सम्यग्दर्शन ग्रहण कर लिया तब उसकी सुन्दरताका क्या ठिकाना है ? इत्यादि दर्शनीय वस्तुओंसे सजाकर रथ निकाला गया, उसे देखकर यही जान पड़ता था, मानों महादेवी मदनसुन्दरीकी यशोराशि ही चल रही है। वह रथ भव्य-पुरुषोंके लिए सुखका देनेवाला था। उस सुन्दर रथकी हम प्रतिदिन भावना करते हैं, उसका ध्यान करते हैं। वह हमें सम्यग्दर्शनरूपी लक्ष्मी प्रदान करे।

जिस प्रकार अकलंकदेवने सम्यग्ज्ञानकी प्रभावना की, उसका महत्व सर्व साधारण लोगोंके हृदयपर अंकित कर दिया उसी प्रकार और-और भव्य पुरुषोंको भी उचित है कि वे भी अपनेसे जिस तरह बन पड़े जिनधर्मकी प्रभावना करें, जैनधर्मके प्रति उनका जो कर्तव्य है उसे वे पूरा करें।

संसारमें जिनभगवान्‌की सदा जय हो, जिन्हें इन्द्र, धरणेन्द्र नमस्कार करते हैं और जिनका ज्ञानरूपी प्रदीप सारे संसारको सुख देनेवाला है।

श्रीप्रभाचन्द्र मुनि मेरा कल्याण करें, जो गुण रत्नोंके उत्पन्न होनेके स्थान पर्वत हैं और ज्ञानके समुद्र हैं।

---

३. सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी कथा

स्वर्ग और मोक्ष सुखके देनेवाले श्रीअर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओको नमस्कार करके मैं सम्यक्चारित्रका उद्योत करनेवाले चौथे सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी कथा लिखता हूँ ।

अनन्तवीर्य भारतवर्षके अन्तर्गत वीतशोक नामक शहरके राजा थे । उनकी महारानीका नाम सीता था । हमारे चरित्रनायक सनत्कुमार इन्हींके पुण्य के फल थे । वे चक्रवर्ती थे । सम्यग्दृष्टियोमें प्रधान थे । उन्होने छहों खण्ड पृथ्वी अपने वश कर ली थी। उनकी विभूतिका प्रमाण ऋषियोने इस प्रकार लिखा है—नवनिधि, चौदहरत्न, चौरासी लाख हाथी, इतने ही रथ, अठारह करोड़ घोडे, चौरासी करोड़ शूरवीर, छ्यानवे करोड़ धान्यसे भरे हुए ग्राम, छ्यानवे हजार सुन्दरियाँ और सदा सेवामें तत्पर रहनेवाले बत्तीस हजार बड़े-बड़े राजा, इत्यादि संसार श्रेष्ठ सम्पत्तिसे वे युक्त थे । देव विद्याधर उनकी सेवा करते थे । वे बड़े सुन्दर थे, बड़े भाग्यशाली थे । जिनधर्मपर उनकी पूर्ण श्रद्धा थी । वे अपना नित्य-नैमित्तिक कर्म श्रद्धाके साथ करते, कभी उनमें विघ्न नहीं आने देते । इसके सिवा अपने विशाल राज्यका वे बड़ी नीतिके साथ पालन करते और सुखपूर्वक दिन व्यतीत करते ।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका इन्द्र अपनी सभा में पुरुषोंके रूपसौन्दर्यकी प्रशसा कर रहा था । सभामे बैठे हुए एक विनोदी देवने उनसे पूछा—प्रभो ! जिस रूपगुणकी आप बेहद तारीफ कर रहे हैं, भला, ऐसा रूप भारतवर्ष मे किसीका है भी या केवल यह प्रशंसा ही मात्र है ?

उत्तरमे इन्द्रने कहा—हॉ, इस समय भी भारतवर्षमे एक ऐसा पुरुष है, जिसके रूपकी मनुष्य तो क्या देव भी तुलना नहीं कर सकते । उसका नाम है सनत्कुमार चक्रवर्ती ।

इन्द्रके द्वारा देव—दुर्लभ सनत्कुमार चक्रवर्तीके रूपसौन्दर्यकी प्रशसा सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नामके दो देव चक्रवर्तीकी रूपसुधाके पानकी बढी हुई लालसाको किसी तरह नहीं रोक सके । वे उसी समय गुप्त वेशमे स्वर्गधराको छोड़कर भारतवर्षमे आये और स्नान करते हुए चक्रवर्तीका वस्त्रालकार रहित, पर उस हालतमे भी त्रिभुवनप्रिय और सर्व सुन्दर रूपको देखकर उन्हें अपना सिर हिलाना ही पडा । उन्हे मानना पड़ा कि चक्रवर्तीका रूप वैसा ही सुन्दर है, जैसा इन्द्रने कहा था और सचमुच यह रूप देवोंके लिये भी दुर्लभ है । इसके बाद उन्होंने

अपना असली वेष बनाकर पहरेदारसे कहा तुम जाकर अपने महाराजसे कहो कि आपके रूपको देखनेके लिये स्वर्गसे दो देव आये हुए हैं । पहरेदारने जाकर महाराजसे देवोके आनेका हाल कहा । चक्रवर्तीने इसी समय अपने श्रृगार भवनमें पहुँचकर अपनेको बहुत अच्छी तरह वस्त्राभूषणोसे सिगारा । इसके बाद वे सिंहासनपर आकर बैठे और देवोको राजसभामें आनेकी आज्ञा दी ।

देव राजसभामे आये और चक्रवर्तीका रूप उन्होने देखा । देखते ही वे खेदके साथ बोल उठे, महाराज ! क्षमा कीजिये; हमे बड़े दुःखके साथ कहना पड़ता है कि स्नान करते समय वस्त्राभूषणरहित आपके रूपमें जो सुन्दरता, जो माधुरी हमने छुपकर देख पाई थी, वह अब नहीं रही । इससे जैनधर्मका यह सिद्धान्त बहुत ठीक है कि ससारकी सब वस्तुएँ क्षण-क्षणमे परिवर्तित होती हैं—सब क्षणभगुर हैं ।

देवोकी विस्मय उत्पन्न करनेवाली बात सुनकर राजकर्मचारियों तथा और और उपस्थित सभ्योने देवोसे कहा—हमे तो महाराजके रूपमे पहले से कुछ भी कमी नहीं दिखती, न जाने तुमने कैसे पहली सुन्दरतासे इसमें कमी बतलाई है । सुनकर देवोने सबको उसका निश्चय करानेके लिये एक जल भरा हुआ घड़ा मँगवाया और उसे सबको बतलाकर फिर उसमे से तृण द्वारा एक जलकी बूँद निकाल ली । उसके बाद फिर घडा सबको दिखलाकर उन्होने उनसे पूछा—बतलाओ पहले जैसे घड़ेमें जल भरा था अब भी वैसा ही भरा है, पर तुम्हें पहलेसे इसमें कुछ विशेषता दिखती है क्या ? सबने एक मत होकर यही कहा कि नहीं । तब देवोंने राजासे कहा—महाराज, घडा पहले जैसा था, उसमेसे एक बूँद जलकी निकाल ली गई तब भी वह इन्हें वैसा ही दिखता है । इसी तरह हमने आपका जो रूप पहले देखा था, वह अब नहीं रहा । वह कमी हमे दिखती है, पर इन्हें नहीं दिखती । यह कहकर दोनों देव स्वर्गकी ओर चले गये ।

चक्रवर्तीने इस चमत्कारको देखकर विचारा—स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु, धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चाँदी आदि जितनी सम्पत्ति है, वह सब बिजलीकी तरह क्षणभरमे देखते-देखते नष्ट होनेवाली है और ससार दुःखका समुद्र है । यह शरीर भी, जिसे दिनरात प्यार किया जाता है, घिनौना है, सन्तापको बढानेवाला है, दुर्गन्धियुक्त है और अपवित्र वस्तुओसे भरा हुआ है । तब इस क्षणविनाशी शरीरके साथ कौन बुद्धिमान् प्रेम करेगा ? ये पाँच इन्द्रियोके विषय ठगोसे भी बढ़कर ठग हैं । इनके द्वारा ठगाया हुआ प्राणी एक पिशाचिनीकी तरह उनके वश होकर अपनी सब सुधि भूल जाता है और फिर जैसा वे नाच नचाते हैं नाचने लगता है । मिथ्यात्व

जीवका शत्रु है, उसके वश हुए जीव अपने आत्महितके करनेवाले, संसारके दु:खोसे छुटाकर अविनाशी सुखके देनेवाले, पवित्र जिनधर्मसे भी प्रेम नहीं करते । सच भी तो है—पित्तज्वरवाले पुरुषको दूध भी कड़वा ही लगता है । परन्तु मैं तो अब इन विषयोके जालसे अपने आत्माको छुडाऊँगा । मैं आज ही मोहमायाका नाशकर अपने हितके लिये तैयार होता हूँ । यह विचार कर वैरागी चक्रवर्तीने जिनमन्दिरमें पहुँचकर सब सिद्धिकी प्राप्ति करानेवाले भगवान्की पूजा की, याचकोंको दयाबुद्धिसे दान दिया और उसी समय पुत्रको राज्यभार देकर आप वनकी ओर रवाना हो गये, और चारित्रगुप्त मुनिराजके पास पहुँचकर उनसे जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि ससारका हित करनेवाली है । इसके बाद वे पचाचार आदि मुनिव्रतों का निरतिचार पालन करते हुए कठिनसे कठिन तपश्चर्या करने लगे । उन्हे न शीत सताती है और न आताप सन्तापित करता है । न उन्हे भूखकी परवा है और न प्यास की । वनके जीव-जन्तु उन्हे खूब सताते हैं, पर वे उससे अपनेको कुछ भी दुखी ज्ञान नहीं करते । वास्तवमे जैन साधुओका मार्ग बड़ा कठिन है, उसे ऐसे ही धीर वीर महात्मा पाल सकते हैं । साधारण पुरुषो गम्य नहीं । चक्रवर्ती इस प्रकार आत्मकल्याणके मार्गमे आगे-आगे बढने लगे ।

एक दिनकी बात है कि वे आहारके लिये शहरमे गये । आहार करते समय कोई प्रकृति-विरुद्ध वस्तु उनके खानेमे आ गई । उसका फल यह हुआ कि उनका सारा शरीर खराब हो गया, उसमे अनेक भयकर व्याधियॉं उत्पन्न हो गईं और सबसे भारी व्याधि तो यह हुई कि उनके सारे शरीरमे कोढ़ फूट निकली । उससे रुधिर, पीप बहने लगा, दुर्गन्धि आने लगी । यह सब कुछ हुआ पर इन व्याधियोका असर चक्रवर्तीके मनपर कुछ भी नहीं हुआ । उन्होने कभी इस बातकी चिन्ता तक भी नहीं की कि मेरे शरीरकी क्या दशा है ? किन्तु वे जानते थे कि—

बीभत्सु तापक पूति शरीरमशुचेर्गृहम् ।
का प्रीतिर्विदुषामत्र यत्क्षणार्धे परिक्षयि ॥

इसलिये वे शरीर से सर्वथा निर्मोही रहे और बड़ी सावधानीसे तपश्चर्या करते रहे—अपने व्रत पालते रहे ।

एक दिन सौधर्मस्वर्गका इन्द्र अपनी सभामें धर्म-प्रेमके वश हो मुनियो के पॉंच प्रकारके चारित्रका वर्णन कर रहा था । उस समय एक मदनकेतु नामक देवने उससे पूछा—प्रभो ! जिस चारित्रका आपने अभी वर्णन किया उसका ठीक पालनेवाला क्या कोई इस समय भारतवर्षमे है ? उत्तरमे इन्द्रने कहा, सनत्कुमार चक्रवर्ती हैं । वे छह खण्ड पृथ्वीको तृणकी तरह छोडकर ससार, शरीर, भोग आदिसे उदास हैं

और दृढ़ताके साथ तपश्चर्या तथा पचप्रकार का चारित्र पालन करते हैं ।

मदनकेतु सुनते ही स्वर्गसे चलकर भारतवर्षमें जहाँ संनत्कुमार मुनि तपश्चर्या करते थे, वहाँ पहुँचा । उसने देखा कि उनका सारा शरीर रोगोका घर बन रहा है, तब भी चक्रवर्ती सुमेरुके समान निश्चल होकर तप कर रहे हैं । उन्हे अपने दु:खकी कुछ परवा नहीं है । वे अपने पवित्र चारित्रका धीरताके साथ पालनकर पृथ्वीको पावन कर रहे हैं । उन्हें देखकर मदनकेतु बहुंत प्रसन्न हुआ । तब भी वे शरीरसे कितने निर्मोही हैं, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसने वैद्यका वेष बनाया और लगा वनमें घूमने । वह घूम-घूम कर यह चिल्लाता था कि "मैं एक बड़ा प्रसिद्ध वैद्य हूँ, सब वैद्योका शिरोमणि हूँ । कैसी ही भयकरसे भयकर व्याधि क्यों न हो उसे देखते-देखते नष्ट करके शरीरको क्षणभरमे मैं निरोग कर सकता हूँ ।" देखकर सनत्कुमार मुनिराजने उसे बुलाया और पूछा तुम कौन हो ? किसलिये इस निर्जन वनमें घूमते फिरते हो? और क्या कहते हो ? उत्तरमें देवने कहा—मैं एक प्रसिद्ध वैद्य हूँ । मेरे पास अच्छीसे अच्छी दवायें हैं । आपका शरीर बहुत बिगड़ रहा है, यदि आज्ञा दें तो मैं क्षणमात्रमे इसकी सब व्याधियाँ खोकर इसे सोने सरीखा बना सकता हूँ । मुनिराज बोले—हाँ तुम वैद्य हो ? यह तो बहुत अच्छा हुआ जो तुम इधर अनायास आ निकले । मुझे एक बडा भारी और महाभयंकर रोग हो रहा है, मैं उसके नष्ट करनेका प्रयत्न करता हूँ पर सफल प्रयत्न नहीं होता । क्या तुम उसे दूर कर दोगे ?

देवने कहा—निस्सन्देह मैं आपके रोगको जड़ मूलसे खो दूँगा । वह रोग शरीरसे गलनेवाला कोढ़ ही है न ।

मुनिराज बोले—नहीं, यह तो एक तुच्छ रोग है । इसकी तो मुझे कुछ भी परवा नहीं । जिस रोगकी बाबत मैं तुमसे कह रहा हूँ, वह तो बड़ा ही भयंकर है ।

देव बोला—अच्छा, तब बतलाइये वह क्या रोग है, जिसे आप इतना भयंकर बतला रहे हैं ?

मुनिराजने कहा—सुना, वह रोग है संसारका परिभ्रमण । यदि तुम मुझे उससे छुड़ा दोगे तो बहुत अच्छा होगा । बोलो क्या कहते हो ? सुनकर देव बड़ा लज्जित हुआ । वह बोला, मुनिनाथ ! इस रोगको तो आप ही नष्ट कर सकते हैं । आप ही इसके दूर करनेको शूरवीर और बुद्धिमान हैं । तब मुनिराजने कहा—भाई, जब इस रोगको तुम नष्ट नहीं कर सकते तब मुझे तुम्हारी आवश्यकता भी नहीं । कारण—विनाशीक, अपवित्र, निर्गुण और दुर्जनके समान इस शरीरकी व्याधियोको

तुमने नष्ट कर भी दिया तो उसकी मुझे जरूरत नहीं । जिस व्याधिका वमनके स्पर्शमात्रसे ही जब क्षय हो सकता है, तब उसके लिये बड़े-बड़े वैद्यशिरोमणिकी और अच्छी-अच्छी दवाओकी आवश्यकता ही क्या है ? यह कहकर मुनिराजने अपने वमन द्वारा एक हाथके रोगको नष्टकर उसे सोने-सा निर्मल बना दिया । मुनिकी इस अतुल शक्तिको देखकर देव भौंचक्का रह गया । वह अपने कृत्रिम वेषको पलटकर मुनिराजसे बोला—भगवन् ! आपके विचित्र और निर्दोष चारित्रकी तथा शरीरमे निर्मोहपनेकी सौधर्मेन्द्रने धर्मप्रेमके वश होकर जैसी प्रशंसा की थी, वैसा ही मैंने आपको पाया । प्रभो ! आप धन्य हैं, संसारमे आपहीका मनुष्य जन्म प्राप्त करना सफल और सुख देनेवाला है । इस प्रकार मदनकेतु सनत्कुमार मुनिराजकी प्रशंसा कर और बड़ी भक्तिके साथ उन्हें बारम्बार नमस्कार कर स्वर्गमे चला गया ।

इधर सनत्कुमार मुनिराज क्षणक्षणमे बढते हुए वैराग्यके साथ अपने चारित्रको क्रमशः उन्नत करने लगे अन्तमे शुक्लध्यानके द्वारा घातिया कर्मोका नाश कर उन्होने लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया और इन्द्र धरणेन्द्रादि द्वारा पूज्य हुए ।

इसके बाद वे संसार मे दुःखरूपी अग्निसे झुलसते हुए अनेक जीवोको सद्धर्मरूपी अमृतकी वर्षासे शान्त कर उन्हे मुक्तिका मार्ग बतलाकर, और अन्तमें अघातिया कर्मोका भी नाशकर मोक्षमें जा विराजे, जो कभी नाश नहीं होनेवाला है ।

उन स्वर्ग और मोक्ष-सुख देनेवाले श्रीसनत्कुमार केवलीकी हम भक्ति और पूजन करते हैं, उन्हें नमस्कार करते हैं । वे हमें भी केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्रदान करें ।

जिस प्रकार सनत्कुमार मुनिराजने सम्यक्चारित्रका उद्योत किया उसी तरह सब भव्य पुरुषोको भी करना उचित है। वह सुखका देनेवाला है ।

श्रीमूलसघ सरस्वतीगच्छमे चारित्रचूड़ामणी श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए । सिहनन्दी मुनि उनके प्रधान शिष्योंमे थे । वे बड़े गुणी थे और सत्पुरुषोका आत्मकल्याणका मार्ग बतलाते थे । वे मुझे भी ससारसमुद्रसे पार करे ।

शाश्वत, क्षण में छिपा है और अणु में विराट । अणु को जो अणु मानकर छोड़ दें, वह विराट को ही खो देता है । क्षुद्र में ही खोदने से परम की उपलब्धि होती है ।

४. समन्तभद्राचार्यकी कथा

संसारके द्वारा पूज्य और सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका उद्योत करनेवाले श्रीजिनभगवान्को नमस्कारकर श्रीसमन्तभद्राचार्य की पवित्र कथा लिखता हूँ, जो कि सम्यक्चारित्रकी प्रकाशक है ।

भगवान् समन्तभद्रका पवित्र जन्म दक्षिणप्रान्तके अन्तर्गत कांची नामकी नगरीमें हुआ था। वे बड़े तत्त्वज्ञानी और न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि विषयोंके भी बड़े भारी विद्वान् थे । संसारमें उनकी बहुत ख्याति थी । वे कठिनसे कठिन चारित्रका पालन करते, दुस्सह तप तपते और बड़े आनन्दसे अपना समय आत्मानुभव, पठनपाठन, ग्रन्थरचना आदिमें व्यतीत करते ।

कर्मोंका प्रभाव दुर्निवार है । उसके लिये राजा हो या रंक हो, धनी हो या निर्धन हो, विद्वान् हो या मूर्ख हो, साधु हो या गृहस्थ हो सब सामान हैं, सबको अपने-अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है । भगवान् समन्तभद्रके लिये भी एक ऐसा ही कष्टका समय आया । वे बड़े भारी तपस्वी थे, विद्वान् थे, पर कर्मोंने इन बातोंकी कुछ परवा न कर उन्हें अपने चक्रमें फँसाया असातावेदनीयके तीव्र उदयसे भस्मव्याधि नामका एक भयंकर रोग उन्हें हो गया । उससे वे जो कुछ खाते वह उसी समय भस्म हो जाता और भूख वैसीकी वैसी बनी रहती । उन्हें इस बातका बड़ा कष्ट हुआ कि हम विद्वान् हुए और पवित्र जिनशासनका संसारभरमें प्रचार करनेके लिये समर्थ भी हुए तब भी उसका कुछ उपकार नहीं कर पाते । इस रोगने असमयमें बड़ा कष्ट पहुँचाया । अस्तु । अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे इसकी शान्ति हो । अच्छे-अच्छे स्निग्ध, सच्चिकण और पौष्टिक पक्वान्नका आहार करनेसे इसकी शान्ति हो सकेगी; इसलिये ऐसे भोजनका योग मिलाना चाहिये पर यहाँ तो इसका कोई साधन नहीं दीख पडता । इसलिये जिस जगह, जिस तरह ऐसे भोजनकी प्राप्ति हो सकेगी मैं वहीं जाऊँगा और वैसा ही उपाय करूँगा ।

यह विचारकर वे कांचीसे निकले और उत्तरकी ओर रवाना हुए। कुछ दिनोंतक चलकर वे पुण्ड्र नगरमें आये। वहाँ बौद्धोंकी एक बड़ी भारी दानशाला थी । उसे देखकर आचार्यने सोचा, यह स्थान अच्छा है । यहाँ

अपना रोग नष्ट हो सकेगा । इस विचारके साथ-ही उन्होने बुद्धसाधुका वेष बनाया और दानशालामें प्रवेश किया । पर वहाँ उन्हें उनकी व्याधिशान्तिके योग्य भोजन नहीं मिला । इसलिये वे फिर उत्तरकी ओर आगे बढ़े और अनेक शहरोमे घूमते हुए कुछ दिनोके बाद दशपुर-मन्दोसोरमें आये । वहाँ उन्होने भागवत-वैष्णवोका एक बड़ा भारी मठ देखा । उसमे बहुतसे भागवतसम्प्रदायके साधु रहते थे । उनके भक्तलोग उन्हे खूब अच्छा-अच्छा भोजन देते थे । यह देखकर उन्होंने बौद्धवेषको छोड़कर भगवतसाधुका वेष ग्रहण कर लिया । वहाँ वे कुछ दिनोतक रहे, पर उनकी व्याधिके योग्य उन्हे वहाँ भी भोजन नहीं मिला । तब वे वहाँसे भी निकलकर और अनेक देशो और पर्वतोमे घूमते हुए बनारस आये । उन्होने यद्यपि बाह्यमें जैनमुनियोके वेषको छोड़कर कुलिंग धारणकर रक्खा था, पर इसमे कोई सन्देह नहीं कि उनके हृदयमे सम्यग्दर्शनकी पवित्र ज्योति जगमगा रही थी । इस वेषमे वे ठीक ऐसे जान पड़ते थे, मानों कीचड़से भरा हुआ कान्तिमान् रत्न हो । इसके बाद आचार्य योगलिग धारणकर शहरमें घूमने लगे ।

उस समय बनारसके राजा थे शिवकोटी । वे शिवके बड़े भक्त थे । उन्होंने शिवका एक विशाल मन्दिर बनवाया था । वह बहुत सुन्दर था । उसमें प्रतिदिन अनेक प्रकारके व्यंजन शिवको भेंट चढ़ा करते थे । आचार्यने देखकर सोचा कि यदि किसी तरह अपनी इस मन्दिरमे कुछ दिनोंके लिये स्थिति हो जाय, तो निस्सन्देह अपना रोग शान्त हो सकता है । यह विचार वे कर ही रहे थे कि इतनेमें पुजारी लोग महादेवकी पूजा करके बाहर आये और उन्होंने एक बड़ी भारी व्यजनोको राशि, जो कि शिवको भेट चढ़ाई गई थी, लाकर बाहर रख दी । उसे देखकर आचार्यने कहा, क्या आप लोगोमे ऐसी किसीकी शक्ति नहीं जो महाराजके भेजे हुए इस दिव्य भोजनको शिवकी पूजाके बाद शिवको ही खिला सके ? तब उन ब्राह्मणोंने कहा, तो क्या आप अपनेमें इस भोजनको शिवको खिलानेकी शक्ति रखते हैं ? आचार्यने कहा—हाँ मुझमे ऐसी शक्ति है । सुनकर उन बेचारोको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने उसी समय जाकर यह हाल राजासे कहा—प्रभो ! आज एक योगी आया है । उसकी बाते बड़ी विलक्षण हैं । हमने महादेवकी पूजा करके उनके लिये चढाया हुआ

नैवेद्य बाहर लाकर रक्खा, उसे देखकर वह योगी बोला कि–"आश्चर्य है, आप लोग इस महादिव्य-भोजनको पूजनके बाद महादेवको न खिलाकर पीछा उठा ले आते हो ! भला ऐसी पूजासे लाभ ? उसने साथ ही यह भी कहा कि मुझमें ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा यह सब भोजन मैं महादेवको खिला सकता हूँ। यह कितने खेदकी बात है कि जिसके लिये इतना आयोजन किया जाता है, इतना खर्च उठाया जाता है, वह यों ही रह जाय और दूसरे ही उससे लाभ उठावें ? यह ठीक नहीं । इसके लिये कुछ प्रबन्ध होना चाहिये, जो जिसके लिये इतना परिश्रम और खर्च उठाया जाता है वही उसका उपयोग भी कर सके ।"

महाराजको भी इस अभूतपूर्व बातके सुननेसे बड़ा अचंभा हुआ । वे इस विनोदको देखनेके लिये उसी समय अनेक प्रकारके सुन्दर और सुस्वादु पक्वान्न अपने साथ लेकर शिवमन्दिर गये और आचार्यसे बोले–योगिराज ! सुना है कि आपमें कोई ऐसी शक्ति है, जिसके द्वारा शिवमूर्तिको भी आप खिला सकते हैं, तो क्या यह बात सत्य है ? और सत्य है तो लीजिये यह भोजन उपस्थित है, इसे महादेवको खिलाइये ।

उत्तरमें आचार्यने 'अच्छी बात है' यह कहकर राजाके लाये हुए सब पक्वानोंको मन्दिरके भीतर रखवा दिया और सब पुजारी पंडोंको मन्दिर बाहर निकालकर भीतरसे आपने मन्दिरके किवाड़ बन्द कर लिये । इसके बाद लगे उसे आप उदरस्थ करने । आप भूखे तो खूब थे ही इसलिये थोड़ी ही देरमें सब आहारको हजमकर आपने झटसे मन्दिरका दरवाजा खोल दिया और निकलते ही नौकरोंको आज्ञा की कि सब बरतन बाहर निकाल लो । महाराज इस आश्चर्यको देखकर भौंचकसे रह गये । वे राजमहल लौट गये । उन्होंने बहुत तर्क-वितर्क उठाये पर उनकी समझमें कुछ भी नहीं आया कि वास्तवमें बात क्या है ?

अब प्रतिदिन एकसे एक बढ़कर पक्वान्न आने लगे और आचार्य महाराज भी उनके द्वारा अपनी व्याधि नाश करने लगे । इस तरह पूरे छह महिना बीत गये । आचार्यका रोग भी नष्ट हो गया ।

एक दिन आहारराशिको ज्योंकी त्यों बची हुई देखकर पुजारी-पण्डोंने उनसे पूछा, योगिराज ! यह क्या बात है ? क्यों आज यह सब आहार यों

ही पड़ा रहा ? आचार्य ने उत्तर दिया—राजाकी परम भक्तिसे भगवान् बहुत खुश हुए, वे अब तृप्त हो गये हैं। पर इस उत्तरसे उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने जाकर आहारके बाकी बचे रहनेका हाल राजासे कहा। सुनकर राजाने कहा—अच्छा इस बातका पता लगाना चाहिये, कि वह योगी मन्दिरके किवाड़ देकर भीतर क्या करता है ? जब इस बातका ठीक-ठीक पता लग जाय तब उससे भोजनके बचे रहनेका कारण पूछा जा सकता है और फिर उसपर विचार भी किया जा सकता है। बिना ठीक हाल जाने उससे कुछ पूछना ठीक नहीं जान पड़ता।

एक दिनकी बात है कि आचार्य कहीं गये हुए थे और पीछेसे उन सबने मिलकर एक चालाक लड़केको महादेवके अभिषेक जलके निकलनेकी नालीमें छुपा दिया और उसे खूब फूल पत्तोंसे ढक दिया। वह वहाँ छिपकर आचार्यकी गुप्त क्रिया देखने लगा।

सदाके माफिक आज भी खूब अच्छे-अच्छे पक्वान्न आये। योगिराजने उन्हे भीतर रखवाकर भीतरसे मन्दिरका दरवाजा बन्द कर लिया और आप लगे भोजन करने। जब आपका पेट भर गया, तब किवाड़ खोलकर आप नौकरोंसे उस बचे सामानको उठा लेनेके लिये कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि सामने ही खड़े हुए राजा और ब्राह्मणोंपर पड़ी। आज एकाएक उन्हें वहाँ उपस्थित देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। ये झटसे समझ गये कि आज अवश्य कुछ न कुछ दालमें काला है। इतने ही मे वे ब्राह्मण उनसे पूछ बैठे कि योगिराज ! क्या बात है, जो कई दिनोंसे बराबर आहार बचा रहता है ? क्या शिवजी अब कुछ नहीं खाते ? जान पड़ता है, वे अब खूब तृप्त हो गये हैं। इसपर आचार्य कुछ कहना ही चाहते थे कि वह धूर्त लड़का उन फूल पत्तोके नीचेसे निकलकर महाराज के सामने आ खड़ा हुआ और बोला—राजा राजेश्वर ! वे योगी तो यह कहते थे कि मैं शिवजीको भोजन कराता हूँ, पर इनका यह कहना बिलकुल झूठा है। असलमें ये शिवजीको भोजन न कराकर स्वयं ही खाते हैं। इन्हे खाते हुए मैंने अपनी ऑखोसे देखा है। योगिराज ! सबकी ऑखोंमे आपने तो बड़ी बुद्धिमानीसे धूल झोकी है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप योगी नहीं, किन्तु एक बड़े भारी धूर्त हैं। और महाराज ! इनकी धूर्तता तो देखिये, जो शिवजीको हाथ जोड़ना तो

दूर रहा उल्टा ये उनका अविनय करते हैं । इतनेमें वे ब्राह्मण भी बोल उठे, महाराज ! जान पड़ता है यह शिवभक्त भी नहीं है । इसलिये इससे शिवजीको हाथ जोड़नेके लिये कहा जाय, तब सब पोल स्वयं खुल जायगी । सब कुछ सुनकर महाराजने आचार्य से कहा—अच्छा जो कुछ हुआ उसपर ध्यान न देकर हम यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारा असल धर्म क्या है ? इसलिये तुम शिवजीको नमस्कार करो । सुनकर भगवान् समन्तभद्र बोले— राजन् ! मैं नमस्कार कर सकता हूॅ, पर मेरा नमस्कार स्वीकार कर लेनेको शिवजी समर्थ नहीं हैं । कारण—वे राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया आदि विकारोंसे दूषित हैं । जिस प्रकार पृथ्वीके पालनका भार एक सामान्य मनुष्य नहीं उठा सकता, उसी प्रकार मेरी पवित्र और निर्दोष नमस्कृतिको एक रागद्वेषादि विकारोसे अपवित्र देव नहीं सह सकता । किन्तु जो क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं, केवलज्ञानरूपी प्रचण्ड तेजका धारक है और लोकालोकका प्रकाशक है, वही जिनसूर्य मेरे नमस्कारके योग्य है और वही उसे सह भी सकता है । इसलिये मैं शिवजीको नमस्कार नहीं करूॅगा इसके सिवा भी यदि आप आग्रह करेंगे तो आपको समझ लेना चाहिये कि इस शिवमूर्ति की कुशल नहीं है,यह तुरंत ही फट पडेगी । आचार्यकी इस बातसे राजाका विनोद और भी बढ़ गया । उन्होंने कहा—योगिराज ! आप इसकी चिन्ता न करे, यह मूर्ति यदि फट पड़ेगी तो इसे फट पड़ने दीजिये, पर आपको तो नमस्कार करना ही पड़ेगा राजाका बहुत ही आग्रह देख आचार्यने "तथास्तु" कहकर कहा, अच्छा तो कल प्रातःकाल ही मैं अपनी शक्तिका आपको परिचय कराऊॅगा । 'अच्छी बात है,' यह कहकर राजाने आचार्यको मन्दिरमें बन्द करवा दिया और मन्दिरके चारों ओर नंगी तलवार लिये सिपाहियों का पहरा लगवा दिया । इसके बाद "आचार्यकी सावधानीके साथ देखरेख की जाय, वे कहीं निकल न भागें" इस प्रकार पहरेदारोंको खूब सावधानकर आप राजमहल लौट गये ।

आचार्यने कहते समय तो कह डाला, पर अब उन्हें ख्याल आया कि मैंने यह ठीक नहीं किया । क्यो मैंने बिना कुछ सोचे-विचारे जल्दीसे ऐसा कह डाला ! यदि मेरे कहनेके अनुसार शिवजीकी मूर्ति न फटी तब मुझे

कितना नीचा देखना पड़ेगा और उस समय राजा क्रोधमे आकर न जाने क्या कर बैठें ! खैर, उसकी भी कुछ परवा नहीं, पर इससे धर्मकी कितनी हॅसी होगी । जिस परमात्माकी राजाके सामने मैं इतनी प्रशसा कर चुका हूॅ, उसे और मेरी झूठको देखकर सर्व साधारण क्या विश्वास करेगे, आदि एक पर एक चिन्ता उनके हृदयमें उठने लगी । पर अब हो भी क्या सकता था । आखिर उन्होने यह सोचकर कि जो होना था वह तो हो चुका और जो कुछ बाकी है वह कल सबेरे हो जायेगा, अब व्यर्थ चिन्तासे ही लाभ क्या ? जिनभगवान्‌की आराधनामे अपने ध्यानको लगाया और बड़े पवित्र भावोसे उनकी स्तुति करने लगे ।

आचार्यकी पवित्र भक्ति और श्रद्धा के प्रभावसे शासनदेवीका आसन कम्पित हुआ । वह उसी समय आचार्यके पास आई और उनसे बोली-हे जिनचरणकमलो के भ्रमर ! हे प्रभो ! आप किसी बातकी चिन्ता न कीजिये । विश्वास रखिये कि जैसा आपने कहा है वह अवश्य ही होगा । आप स्वयभुवाभूतहितेन भूतले इस पद्याशको लेकर चतुर्विंशति तीर्थंकरो-का एक स्तवन रचियेगा । उसके प्रभावसे आपका क्या हुआ सत्य होगा और शिवमूर्ति भी फट पड़ेगी । इतना कहकर अम्बिका देवी अपने स्थानपर चली गई ।

आचार्यको देवी के दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उनके हृदयकी चिन्ता मिटी, आनन्दने अब उसपर अपना अधिकार किया । उन्होने उसी समय देवीके कहे अनुसार एक बहुत सुन्दर जिनस्तवन बनाया, जो कि इस समय स्वयंभूस्तोत्रके नामसे प्रसिद्ध है ।

रात सुखपूर्वक बीती । प्रात काल हुआ । राजा भी इसी समय वहॉ आ उपस्थित हुआ । उसके साथ और भी बहुतसे अच्छे-अच्छे विद्वान आये । अन्य साधारण जनसमूह भी बहुत इकट्ठा हो गया । राजा ने आचार्यको बाहर ले आने की आज्ञा दी । वे बाहर लाये गये । अपने सामने आते हुए आचार्यको खूब प्रसन्न और उनके मुॅहपर तो चिन्ताके बदले स्वर्गीय तेजकी छटायें छूट रही हैं, इससे जान पडता हैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी करेंगे । अस्तु । तब भी देखना चाहिये कि ये क्या करते हैं । इसके साथ ही उसने आचार्यसे कहा-योगिराज ! कीजिये नमस्कार, जिससे हम भी आपकी अद्‌भुत शक्तिका परिचय पा सके ।

राजाकी आज्ञा होते ही आचार्यने संस्कृत भाषामे एक वहुत ही सुन्दर और अर्थपूर्ण जिनस्तवन आरम्भ किया । स्तवन रचते-रचते जहाँ उन्होंनें चन्द्रप्रभ चन्द्रमरीचिगौरम् यह पद्याश रचना शुरू किया कि उसी समय शिवमूर्ति फटी और उसमेंसे श्रीचन्द्रप्रभ भगवान्की चतुर्मुख प्रतिमा प्रगट हुई । इस आश्चर्यके साथ ही जयध्वनि-के मारे आकाश गूँज उठा । आचार्यके इस अप्रतिम प्रभावको देखकर उपस्थित जनसमूहको दाँतोंतले अँगुली दबानी पड़ी । सबके सब आचार्य-की ओर देखतेके देखते ही रह गये ।

इसके बाद राजाने आचार्य महाराजसे कहा-योगिराज ! आपकी शक्ति, आपका प्रभाव, आपका तेज देखकर हमारे आश्चर्यका कुछ ठिकाना नहीं रहता । बतलाइये तो आप हैं कौन ? और आपने वेष तो शिवभक्त-का धारण कर रक्खा है, पर आप शिवभक्त हैं नहीं। सुनकर आचार्यने नीचे लिखे दो श्लोक पढ़े-

कांच्यां नग्नाटकोहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः,
पुण्ड्रोण्डे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मृष्टभोजी परिव्राट् ।
बाणारस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी,
राजन् यस्यास्तिशक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥
पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता,
पश्चान्मालवसिन्धुढक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे ।
प्राप्तोहं करहाटकं वहुभटैर्विद्योत्कटैः संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥

भावार्थ-मैं कां.मिं नग्न दिगम्बर साधु होकर रहा । इसके बाद शरीरमें रोग हो जानेसे पुं. नगरमें बुद्धभिक्षुक, दशपुर (मन्दोसोर) में मिष्टान्नभोजी परिव्राजक और बनारसमें शैवसाधु बनकर रहा । राजन्, मैं जैन निर्ग्रन्थवादी स्याद्वादी हूँ । जिसकी शक्ति वाद करनेकी हो, वह मेरे सामने आकर वाद करे ।

पहले मैंने पाटलीपुत्र (पटना) मे वादभेरी बजाई । इसके बाद मालवा, सिन्धुदेश, ढक्क (ढाका-बंगाल) कांचीपुर और विदिशा नामक देशमें भेरी बजाई । अब वहाँसे चलकर मैं बड़े-बड़े विद्वानोंसे भरे हुए इस करहाटक (कराडजिला सतारा) मे आया हूँ । राजन् शास्त्रार्थ करनेकी इच्छासे मैं सिंहके समान निर्भय होकर इधर-उधर घूमता ही रहता हूँ ।

यह कहकर ही समन्तभद्रस्वामीने शैव वेष छोड़कर जिनमुनिका वेष धारण कर लिया, जिसमें साधुलोग जीवोंकी रक्षाके लिये हाथमे मोरकी पीछी रखते हैं ।

इसके बाद उन्होंने शास्त्रार्थकर बड़े-बड़े विद्वानोको, जिन्हें अपने पाण्डित्यका अभिमान था, अनेकान्त-स्याद्वादके बलसे पराजित किया और जैनशासनकी खूब प्रभावना की, जो स्वर्ग और मोक्षकी देनेवाली है । भगवान् समन्तभद्र भावी तीर्थकर हैं । उन्होने कुदेवको नमस्कार न कर सम्यग्दर्शनका खूब प्रकाश किया, सबके हृदयपर उसकी श्रेष्ठता अंकित कर दी । उन्होंने अनेक एकान्तवादियों को जीतकर सम्यग्ज्ञानका भी उद्योत किया ।

आश्चर्यमें डालनेवाली इस घटनाको देखकर राजाकी जैनधर्मपर बड़ी श्रद्धा हुई । विवेकबुद्धिने उसके मनको खूब ऊँचा बना दिया और चारित्रमोहनीयकर्मका क्षयोपशम हो जानेसे हृदयमें वैराग्यका प्रवाह बह निकला । उसने उसे सब राज्यभार छोड़ देनेके लिये बाध्य किया । शिवकोटीने क्षणभरमे सब मायामोहके जालको तोड़कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । साधु बनकर उन्होंने गुरुके पास खूब शास्त्रोंका अभ्यास किया । इसके बाद उन्होंने श्रीलोहाचार्यके बनाये हुए चौरासी हजार श्लोक प्रमाण आराधनाग्रन्थको सक्षेपमें लिखा । वह इसलिये कि अब दिनपर दिन मनुष्योंकी आयु और बुद्धि घटती जाती है, और वह ग्रन्थ बड़ा और गंभीर था, सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते थे । शिवकोटी मुनिके बनाये हुए ग्रन्थके चवालीस अध्याय हैं और उसकी श्लोकसंख्याा साढ़े तीन हजार है । उससे संसारका बहुत उपकार हुआ ।

वह आराधना ग्रन्थ और समन्तभद्राचार्य तथा शिवकोटी मुनिराज मुझे सुखके देनेवाले हों । तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र-रूप परम रत्नों समुद्र और कामरूपी प्रचंड बलवान् हाथीके नष्ट करने-को सिह समान विद्यानन्दी गुरु और छहो शास्त्रोंके अपूर्व विद्वान् तथा श्रुतज्ञानके समुद्र श्रीमल्लिभूषण मुनि मुझे मोक्षश्री प्रदान करें ।

---

५. संजयन्त मुनिकी कथा

सुखके देनेवाले श्रीजिनभगवान्‌के चरण कमलोंको नमस्कारकर श्रीसंजयन्त मुनिराजकी कथा लिखता हूं, जिन्होंने सम्यक्तपका उद्योत किया था ।

सुमेरुके पश्चिमकी ओर विदेहके अन्तर्गत गन्धमालिनी नामका देश है । उसकी प्रधान राजधानी वीतशोकपुर है । जिस समयकी बात हम लिख रहे हैं उस समय उसके राजा वैजयन्त थे । उनकी महारानीका नाम भव्यश्री था । उनके दो पुत्र थे । उनके नाम थे संजयन्त और जयन्त ।

एक दिनकी बात है कि बिजलीके गिरनेसे महाराज वैजयन्तका प्रधान हाथी मर गया । यह देख उन्हें संसारसे बड़ा वैराग्य हुआ । उन्होंने राज्य छोड़नेका निश्चयकर अपने दोनों पुत्रोंको बुलाया और उन्हें राज्यभार सौंपना चाहा, तब दोनों भाइयोंने उनसे कहा-पिताजी; राज्य तो संसार के बढ़ानेका कारण है, इससे तो उल्टा हमे सुखकी जगह दुःख भोगना पड़ेगा । इसलिये हम तो इसे नहीं लेते । आप भी तो इसीलिये छोड़ते हैं न ? कि यह बुरा है, पापका कारण है । हमारा तो विश्वास है कि बुद्धिमानोंको, आत्म हितके चाहनेवालोको, राज्य सरीखी झंझटोंको शिरपर उठाकर अपनी स्वाभाविक शान्तिको नष्ट नहीं करना चाहिये । यही विचारकर हम राज्य लेना उचित नहीं समझते । बल्कि हम तो आपके साथ ही साधु बनकर अपना आत्महित करेंगे ।

वैजयन्तने पुत्रोंपर अधिक दबाव न डालकर उनकी इच्छाके अनुसार उन्हें साधु बनने की आज्ञा दे दी और राज्यका भार सजयन्त के पुत्र को देकर स्वयं भी तपस्वी बन गये । साथ ही वे दोनों भाई भी साधु हो गये ।

तपस्वी बनकर वैजयन्त मुनिराज खूब तपश्चर्या करने लगे, कठिनसे कठिन परीषह सहने लगे । अन्तमे ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोका नाशकर उन्होंने लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त किया । उस समय उनके ज्ञानकल्याणकी पूजा करनेको स्वर्ग से देव आये । उनके स्वर्गीय ऐश्वर्य और उनकी दिव्य सुन्दरताको देखकर सजयन्तके छोटे भाई जयन्त-ने निदान किया-मैंने जो इतना तपश्चरण किया है, मैं चाहता हूँ कि उसके प्रभावसे मुझे दूसरे जन्ममे ऐसी ही सुन्दता और ऐसी ही विभूति प्राप्त हो । वही हुआ ।

उसका किया निदान उसे फला। वह आयुके अन्तमे मरकर धरणेन्द्र हुआ।

इधर संजयन्त मुनि पन्द्रह पन्द्रह दिनके, एक-एक महीनाके उपवास करने लगे, भूख प्यासकी कुछ परवाह न कर बड़ी धीरताके साथ परीषह सहने लगे। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया, तब भी भयंकर वनोंमे सुमेरु-के समान निश्चल रहकर सूर्यकी ओर मुँहकिये वे तपश्चर्या करने लगे। गरमीके दिनोमे अत्यन्त गरमी पड़ती,शीतके दिनोंमें जाड़ा खूब सताता, वर्षाके समय मूसलाधार पानी वर्षा करता और आप वृक्षों के नीचे बैठकर ध्यान करते। वन के जीव-जन्तु सताते, पर इन सब कष्टोकी कुछ परवा न कर आप सदा आत्मध्यानमें लीन रहते।

एक दिनकी बात है संजयन्त मुनिराज तो अपने ध्यानमें डूबे हुए थे कि उसी समय एक विद्युद्दंष्ट्र नामका विद्याधर आकाशमार्गसे उधर होकर निकला। पर मुनिके प्रभावसेउसका विमान आगे नहीं बढ पाया। एकाएक विमानको रुका हुआ देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने नीचेकी ओर दृष्टि डालकर देखा तो उसे संजयन्त मुनि दीख पड़े। उन्हें देखते ही उसका आश्चर्य क्रोधके रूपमें परिणत हो गया। उसने मुनिराजको अपने विमानको रोकनेवाले समझकर उनपर नाना तरह के भयकर उपद्रव करना शुरू किया उससे जहाँ तक बना उसने उन्हें बहुत कष्ट पहुँचाया। पर मुनिराज उसके उपद्रवोंसे रंचमात्र भी विचलित नहीं हुए। वे जैसे निश्चल थे वैसे ही खड़े रहे। सच है वायुका कितना ही भयकर वेग क्यों न चले, पर सुमेरु हिलता तक भी नहीं।

इन सब भयकर उपद्रवोसे भी जब उसने मुनिराजको पर्वतसे अचल देखा तब उसका क्रोध और भी बहुत बढ़ गया। वह अपने विद्याबलसे मुनिराजको वहाँसे उठा ले चला और भारतवर्षमे पूर्व दिशाकी ओर बहनेवाली सिहवती नामकी एक बड़ी भारी नदी मे जिसमे कि पाँच बड़ी-बड़ी नदियाँ और मिली थीं, डाल दिया। भाग्यसे उस प्रान्तके लोग भी बड़े पापी थे। सो उन्होंने मुनिको एक राक्षस समझकर और सर्वसाधारणमे यह प्रचार कर, कि यह हमे खानेके लिये आया है, पत्थरोसे खूब मारा। मुनिराजने सब उपद्रव बडी शान्तिके साथ सहा। उन्होने अपने पूर्ण आत्मबलके प्रभावसे हृदयको लेशमात्र भी अधीर नहीं बनने दिया। क्योकि सच्चे साधु वे ही हैं-

तृणं रत्नं वा रिपुरिव परममित्रमथवा,
स्तुतिर्वा निन्दा वा मरणमथना जीवितमथ ।
सुख वा दुःखं वा पितृवनमहोत्सौधमथवा,
स्फुटं निर्ग्रन्थानां द्वयमपि समं शान्तमनसाम् ॥

जिनके पास रागद्वेष बढ़ानेवाला परिग्रह नहीं है, जो निर्ग्रन्थ है, और सदा शान्तचित्त रहते हैं, उन साधुओंके लिये तृण हो या रत्न, शत्रु हो या मित्र, उनकी कोई प्रशंसा करो या बुराई, वे जीवें अथवा मर जाय, उन्हें सुख हो या दुःख और उनके रहनेको श्मशान हो या महल, पर उनकी दृष्टि सबपर समान रहेगी । वे किसीसे प्रेम या द्वेष न कर सबपर समभाव रक्खेंगे । यही कारण था कि संजयन्त मुनिने विद्याधरकृत सब कष्ट समभावसे सहकर अपने अलौकिक धैर्यका परिचय दिया । इस अपूर्व ध्यानके बलसे संजयन्त मुनिने चार घातिया कर्मोका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और इसके बाद अघातिया कर्मोका भी नाश कर वे मोक्ष चले गये । उनके निर्वाणकल्याणकी पूजन करनेको देव आये । वह धरणेन्द्र भी इनके साथ था, जो संजयन्त मुनिका छोटा भाई था और निदान करके धरणेन्द्र हुआ था ।

धरणेन्द्रको अपने भाईके शरीरकी दुर्दशा देखकर बड़ा क्रोध आया । उसने भाईको कष्ट पहुँचानेका कारण वहाँके नगरवासियोंको समझकर उन सबको अपने नागपाशसे बाँध लिया और लगा उन्हें वह दुःख देने । नगरवासियोंने हाथ जोड़कर उससे कहा-प्रभो, हम तो इस अपराधसे सर्वथा निर्दोष हैं । आप हमें व्यर्थ ही कष्ट दे रहे हो । यह सब कर्म तो पापी विद्युद्दंष्ट्र विद्याधरका है । आप उसे ही पकड़िये न ? सुनते ही धरणेन्द्र विद्या

धरको पकड़नेके लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकरउसे उसने नागपाशसे बाँध लिया । इसके बाद उसे खूब मार,पीटकर धरणेन्द्रने समुद्र में डालना चाहा ।

धरणेन्द्रका इस प्रकार निर्दय व्यवहार देखकर एक दिवाकर नामके दयालु देवने उससे कहा-तुम इसे व्यर्थ ही क्यों कष्ट दे रहे हो ? उसकी तो संजयन्त मुनिके साथ कोई चार भवसे शत्रुता चली आ रही है । इसीसे उसने

मुनिपर उपसर्ग किया था ।

धरणेन्द्र—बोला-यदि ऐसा है तो उसका कारण मुझे बतलाइये ।

दिवाकर देवने तब यों कहना आरंभ किया—

पहले समयमें भारतवर्षमें एक सिंहपुर नामका शहर था । उसके राजा सिंहसेन थे । वे बड़े बुद्धिमान् और राजनीतिके अच्छे जानकार थे । उनकी रानीका नाम रामदत्ता था । वह बुद्धिमती और बड़ी सरल स्वभावकी थी । राजमंत्रीका नाम श्रीभूति था । वह बड़ा कुटिल था । दूसरोंको धोखा देना, उन्हें ठगना यह उसका प्रधान कर्म था।

एक दिन पद्मखंडपुरके रहनेवाले सुमित्र सेठका पुत्र समुद्रदत्त श्रीभूतिके पास आया और उससे बोला—"महाशय, मैं व्यापारके लिये विदेश जा रहा हूँ । दैवकी विचित्र लीलासे न जाने कौन समय कैसा आवे ? इसलिये मेरे पास ये पॉच रत्न हैं, इन्हें आप अपनी सुरक्षामें रक्खें तो अच्छा होगा और मुझपर भी आपकी बड़ी दया होगी । मैं पीछे आकर अपने रत्न ले लूँगा ।" यह कहकर और श्रीभूतिको रत्न सौंपकर समुद्रदत्त चल दिया ।

कई वर्ष बाद समुद्रदत्त पीछे लौटा । वह बहुत धन कमाकर लाया था । जाते समय जैसा उसने सोचा था, दैवकी प्रतिकूलतासे वही घटना उसके भाग्यमें घटी । किनारे लगते-लगते जहाज फट पड़ा । सब माल असबाब समुद्रके विशाल उदरमें समा गया । पुण्योदयसे समुद्रदत्तको कुछ ऐसा सहारा मिल गया, जिससे उसकी जान बच गई । वह कुशलपूर्वक अपना जीवन लेकर घट लौट आया ।

दूसरे दिन वह श्रीभूतिके पास गया और अपनेपर जैसी विपत्ति आई थी उसे उसने आदिसे अन्ततक कहकर श्रीभूतिसे अपने अमानत रखे हुए रत्न पीछे मॉगे । श्रीभूतिने ऑखें चढ़ाकर कहा—कैसे रत्न तू मुझसे मॉगता है ? जान पड़ता है जहाज डूब जानेसे तेरा मस्तक बिगड़ गया है । श्रीभूतिने बेचारे समुद्रदत्तको मनमानी फटकार बताकर और अपने पास बैठे हुए लोगोंसे कहा—देखिये न साहब, मैंने आपसे अभी ही कहा था न ? कि कोई निर्धन मनुष्य पागल बनकर मेरे पास आवेगा और झूठा ही बखेड़ाकर झगड़ा

करेगा। वही सत्य निकला। कहिये तो ऐसे दरिद्रीके पास रत्न आ कहाँसे सकते हैं ? भला, किसीने भी इसके पास कभी रत्न देखे हैं ? यों ही व्यर्थ गले पड़ता हैं। ऐसा कहकर उसने नौकरों द्वारा समुद्रदत्तको निकलवा दिया। बेचारा समुद्रदत्त एक तो वैसे ही विपत्तिका मारा हुआ था; इसके सिवा उसे जो एक बड़ी भारी आशा थी उसे भी पापी श्रीभूतिने नष्ट कर दिया। वह सब ओरसे अनाथ हो गया। निराशाके अथाह समुद्रमे गोते खाने लगा। पहले उसे अच्छा होनेपर भी श्रीभूतिने पागल बना डाला था; पर अब वह सचमुच ही पागल हो गया। वह शहरमे घूम-घूमकर चिल्लाने लगा कि पापी श्रीभूतिने मेरे पॉच रत्न ले लिये और अब वह उन्हें देता नहीं है। राजमहलके पास भी उसने बहुत पुकार मचाई, पर उसकी कहीं सुनाई नहीं हुई। सब उसे पागल समझकर दुतकार देते थे। अन्तमे निरुपाय हो उसने एक वृक्षपर चढ़कर, जो कि रानीके महलके पीछे ही था, पिछली रातको बढ़े जोरसे चिल्लाना आरभ किया। रानीने बहुत दिनोंतक तो उसपर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। उसने भी समझ लिया कि कोई पागल चिल्लाता होगा। पर एक दिन उसे ख्याल हुआ कि वह पागल होता तो प्रतिदिन इसी समय आकर क्यों चिल्लाता ? सारे दिन ही इसी तरह आकर क्यों न चिल्लाता फिरता ? इसमें कुछ रहस्य अवश्य है। यह विचार कर उसने एक दिन राजासे कहा—प्राणनाथ ! आप इस चिल्लानेवालेको पागल बताते हैं, पर मेरी समझमें यह बात नहीं आती क्योकि यदि वह पागल होता तो न तो बराबर इसी समय चिल्लाता और न सदा एक ही वाक्य बोलता। इसलिये इसका ठीक-ठीक पता लगाना चाहिये कि बात क्या है ? ऐसा न हो कि अन्यायसे बेचारा एक गरीब बिना मौत मारा जाय रानीके कहनेके अनुसार राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर सब बातें पूछीं। समुद्रदत्तने जैसी अपने पर बीती थी, वह ज्योंकी त्यों महाराजसे कह सुनाई। तब रत्न कैसे प्राप्त किये जाय, इसके लिये राजाको चिन्ता हुई। रानी बड़ी बुद्धिमती थी। इसलिये रत्नोंके मॅगवालेनेका भार उसने अपनेपर लिया।

रानीने एक दिन श्रीभूतिको बुलाया और उससे कहा—मैं आपकी शतरंज खेलनेमे बड़ी तारीफ सुना करती हूॅ। मेरी बहुत दिनोसे इच्छा थी कि मैं एक दिन आपके साथ खेलूॅ। आज बडा अच्छा सुयोग मिला जो आप

हींपर उपस्थित हैं । यह कहकर उसने दासोको शतरज ले आनेकी आज्ञा दी ।

श्रीभूति रानीकी बात सुनते ही घबरा गया । उसके मुँहसे एक शब्द तक निकलना मुश्किल पड़ गया । उसने बड़ी घबराहटके साथ कॉपते-कॉपते कहा—महारानीजी, आज आप यह क्या कह रही हैं । मैं एक क्षुद्र कर्मचारी और आपके साथ खेलूँ ? यह मुझसे न होगा । भला, राजा साहब सुन पावें तो मेरा क्या हाल हो ?

रानीने कुछ मुस्कराते हुए कहा—वाह, आप तो बड़े ही डरते हैं । आप घबराइये मत । मैंने खुद राजा साहबसे पूछ लिया है और फिर आप तो हमारे बुजुर्ग हैं । इसमे डरकी बात ही क्या है ? मैं तो केवल विनोदवश होकर खेल रही हूँ ।

"राजाका मैंने स्वयं आज्ञा ले ली" जब रानीके मुँहसे यह वाक्य सुना तब श्रीभूतिके जीमें जी आया और वह रानीके साथ खेलनेके लिये तैयार हुआ ।

दोनोका खेल आरम्भ हुआ । पाठक जानते हैं कि रानीके लिये खेलका तो केवल बहाना था । असलमे तो उसे अपना मतलब गॉठना था । इसीलिये उसने यह चाल चली थी । रानी खेलते-खेलते श्रीभूतिको अपनी बातोंमे लुभाकर उसके घरकी सब बातें जान ली और इशारेसे अपनी दासीको कुछ बातें बतलाकर उसे श्रीभूतिके यहॉ भेजा । दासीने जाकर श्रीभूतिकी पत्नीसे कहा—तुम्हारे पति बड़े कष्टमे फॅसे हैं, इसलिये तुम्हारे पास उन्होने जो पॉच रत्न रक्खे हैं, उनके लेनेको मुझे भेजा है । कृपा करके वे रत्न जल्दी दे दो जिससे उनका छुटकारा हो जाय ।

श्रीभूतिकी स्त्रीने उसे फटकार दिखला कर कहा चल, मेरे पास रत्न नहीं हैं और न मुझे कुछ मालूम है । जाकर उन्हींसे कह दे कि जहॉ रत्न रक्खे हो, वहॉसे तुम्हीं जाकर ले आओ ।

दासीने पीछे लौट आकर सब हाल अपनी मालकिनसे कह दिया । रानीने अपनी चालका कुछ उपयोग नहीं हुआ देखकर दूसरी युक्ति निकाली । अबकी बार वह हारजीतका खेल खेलने लगी । मत्रीने पहले तो कुछ आनाकानी की, पर फिर

"रानीके पास धनका तो कुछ पार नहीं है और मेरी जीत होगी तो मैं मालामाल हो जाऊँगा" यह सोचकर वह खेलनेको तैयार हो गया ।

रानी बड़ी चतुर थी । उसने पहले ही पासेमें श्रीभूतिकी एक कीमती अंगूठी जीत ली । उस अंगूठीको चुपकेसे दासीके हाथ देकर और कुछ समझाकर उसने श्रीभूतिके घर फिर भेजा और आप उसके साथ खेलने लगी ।

अबकी बार रानीका प्रयत्न व्यर्थ नहीं गया । दासीने पहुँचते ही बड़ी घबराहटके साथ कहा—देखो, पहले तुमने रत्न नहीं दिये, उससे उन्हें वहुत कष्ट उठाना पड़ा । अब उन्होंने यह अँगूठी देकर मुझे भेजा है और यह कहलाया है कि यदि तुम्हें मेरी जान प्यारी हो, तो इस अँगूठीको देखते ही रत्नोंको दे देना और रत्न प्यारे हों तो न देना । इससे अधिक में और कुछ नहीं कहता ।

अब तो वह एक साथ घवरा गई । उसने उससे कुछ विशेष पूछताछ न करके केवल अँगूठीके भरोसेपर रत्न निकालकर दासीके हाथ सौंप दिये । दासीने रत्नोंको लाकर रानीको दे दिये और रानी ने उन्हें महाराजके पास पहुँचा दिये ।

राजाको रत्न देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने रानीकी बुद्धिमानी को वहुत-वहुत धन्यवाद दिया । इसके बाद उन्होंने समुद्रदत्तको बुलाया और उन रत्नोंको और बहुतसे रत्नोंमें मिलाकर उससे कहा—देखा, इन रत्नोंमें तुम्हारे रत्न हैं क्या ? और हों तो उन्हें निकाल लो । समुद्रदत्तने अपने रत्नोंको पहचान कर निकाल लिया । सच है बहुत समय वीत जानेपर भी अपनी वस्तुको कोई नहीं भूलता ।

इसके बाद राजाने श्रीभूतिको राजसभामें बुलाया और रत्नोंको उसके सामने रखकर कहा—कहिये आप तो इस बेचारेके रत्नोंको हड़पकर भी उल्टा इसे ही पागल वनाते थे न ? यदि महारानी मुझसे आग्रह न करती और अपनी बुद्धिमानीसे इन रत्नोंको प्राप्त नहीं करती, तब यह बेचारा गरीब तो व्यर्थ मारा जाता और मेरे सिरपर कलंकका टीका लगता । क्या इतने उच्च अधिकारी बनकर मेरी प्रजाका इसी तरह तुमने सर्वस्व हरण किया है ?

राजाको बड़ा क्रोध आया । उसने अपने राज्यके कर्मचारियोंसे पूछा—कहो, इस महापापीको इसके पापका क्या प्रायश्चित दिया जाय, जिससे आगेके लिये सब सावधान हो जायँ और इस दुरात्माका जैसा भयंकर कर्म है, उसीके उपयुक्त इसे उसका प्रायश्चित भी मिल जाय ?

राज्यकर्मचारियोंने विचार कर और सबकी सम्मति मिलाकर कहा—महाराज, जैसा इन महाशयका नीच कर्म है, उसके योग्य हम तीन दण्ड उपयुक्त समझते हैं और उनमेंसे जो इन्हें पसन्द हो, वही ये स्वीकार करें ।

१. एक सेर पक्का गोमय खिलाया जाय; २. मल्लके द्वारा बत्तीस घूँसे लगवाये जाये; या ३. सर्वस्थ हरण पूर्वक देश निकाला दे दिया जाय ।

राजाने अधिकारियोंके कहे माफिक दण्डकी योजना कर श्रीभूतिसे कहा कि—तुम्हें जो दण्ड पसन्द हो, उसे बतलाओ । पहले श्रीभूतिने गोमय खाना स्वीकार किया, पर उसका उससे एक ग्रास भी नहीं खाया गया । तब उसने मल्लके घूँसे लगना आरम्भ हुआ । कुछ घूँसोंकी मार पड़ी होगी कि उसका आत्मा शरीर छोड़कर चल बसा । उसकी मृत्यु बड़े आर्त्तध्यानसे हुई । वह मरकर राजाके खजानेपर ही एक विकराल सर्प हुआ ।

इधर समुद्रदत्तको इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ । उसने संसारकी दशा देखकर उसमें अपनेको फँसाना उचित नहीं समझा । वह उसी समय अपना सब धन परोपकारके कामोंमे लगाकर वनकी ओर चल दिया और धर्माचार्य नामके महामुनिसे पवित्र धर्मका उपदेश सुनकर साधु बन गया । बहुत दिनोंतक उसने तपश्चर्या की । इसके बाद आयुके अन्तमें मृत्यु प्राप्त कर वह इन्हीं सिंहसेन राजाके सिंहचन्द्र नामक पुत्र हुआ ।

एक दिन राजा अपने खजानेको देखनेके लिये गये थे, उन्हें देखकर श्रीभूतिके जीवको, जो कि खजानेपर सर्प हुआ था, बड़ा क्रोध आया । क्रोधके वश हो उसने महाराजको काट खाया । महाराज आर्त्तध्यानसे मरकर सल्लकी नामक वनमें हाथी हुए । राजाकी सर्प द्वारा मृत्यु देखकर सुघोष मंत्रीको बड़ा क्रोध आया । उसने अपने मन्त्रबलसे बहुतसे सर्पोको बुलाकर कहा—यदि तुम निर्दोष हो, तो इस अग्निकुण्डमें प्रवेश करते हुए अपने-अपने स्थानपर चले

जाओ । तुम्हें ऐसा करनेसे कुछ भी कष्ट न होगा । जितने बाहरके सर्प आये थे वे सब तो चले गये। अब श्रीभूतिका जीव बाकी रह गया । उससे कहा गया कि या तो तू विष खींचकर महाराजको छोड़ दे, या इस अग्निकुण्डमें प्रवेश कर । पर वह महाक्रोधी था उसने अग्निकुण्डमें प्रवेश करना अच्छा समझा, पर विष खींच लेना उचित नहीं समझा । वह क्रोधके वश हो अग्निमें प्रवेश कर गया । प्रवेश करते ही वह देखते-देखते जलकर खाक हो गया । जिस सल्लकी वनमें महाराजका जीव हाथी हुआ था, वह सर्प भी मरकर उसी वनमें मुर्गा हुआ । सच है पापियोंका कुयोनियोंमे उत्पन्न होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । इधर तो ये सब अपने-अपने कर्मोंके अनुसार दूसरे भवोंमें उत्पन्न हुए और उधर सिंहसेनकी रानी पति-वियोगसे बहुत दुखी हुई । उसे संसारकी क्षणभंगुर लीला देखकर वैराग्य हुआ । वह उसी समय संसारका मायाजाल तोड़ ताड़कर वनश्री आर्यिकाके पास साध्वी बन गई । सिंहसेनका पुत्र सिंहचन्द्र भी वैराग्यके वश हो, अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्रको राज्यभार सौंपकर सुव्रत नामक मुनिराजके पास दीक्षित हो गया । साधु होकर सिंहचन्द्र मुनिने खूब तपश्चर्या की, शान्ति और धीरताके साथ परीषहोंपर विजय प्राप्त किया, इन्द्रियोंको वश मे किया और चंचल मनको दूसरी ओरसे रोककर ध्यानकी ओर लगाया । अन्तमें ध्यानके बलसे उन्हे मनःपर्ययज्ञान प्राप्त हुआ । उन्हें मनःपर्ययज्ञानसे युक्त देखकर उनकी माताने, जो कि इन्हींके पहले आर्यिका हुई थीं, नमस्कार कर पूछा—साधुराज ! मेरी कूँख धन्य है, वह आज कृतार्थ हुई, जिसने आपसे पुरुषोत्तमको धारण किया । पर अब यह तो कहिये कि आपके छोटे भाई पूर्णचन्द्र आत्महितके लिये कब उद्यत होंगे ?

उत्तरमे सिहचद्र मुनि बोले—माता, सुनो तो मैं तुम्हे संसार की विचित्र लीला सुनाता हूँ, जिसे सुनकर तुम भी आश्चर्य करोगी । तुम जानती हो कि पिताजीको सर्पने काटा था और उसीसे उनकी मृत्यु हो गई थी । वे मरकर सल्लकी वनमें हाथी हुए । वे ही पिता एक दिन मुझे मारनेके लिये मेरे पर झपटे, तब मैंने उस हाथीको समझाया और कहा—गजेन्द्रराज, जानते हो, तुम पूर्व जन्मने राजा सिहसेन थे और मैं प्राणोसे भी प्यारा सिहचन्द्र नामका तुम्हारा पुत्र था । कैसा आश्चर्य है कि आज पिता ही पुत्रको मारना चाहता

है । मेरे इन शब्दोको सुनते ही गजेन्द्रको जातिस्मरण हो आया पूर्वजन्मकी उसे स्मृति हो गई । वह रोने लगा, उसकी ऑखोसे ऑसुओ की धारा बह चली । वह मेरे सामने चित्र लिखासा खड़ा रह गया । उसकी यह अवस्था देखकर मैंने उसे जिनधर्मका उपदेश दिया और पंचाणुव्रतका स्वरूप समझाकर उसे अणुव्रत ग्रहण करनेको कहा । उसने अणुव्रत ग्रहण किये और पश्चात् वह प्रासुक भोजन और प्रासुक जलसे अपना निर्वाह कर व्रतका दृढताके साथ पालन करने लगा ।

एक दिन वह जल पीनेके लिये नदीपर पहुँचा । जलके भीतर प्रवेश करते समय वह कीचड़मे फॅस गया । उसने निकलनेकी बहुत चेष्टा की, पर वह प्रयत्न सफल नहीं हुआ । अपना निकलना असभव समझकर उसने समाधिमरणकी प्रतिज्ञा ले ली । उस समय वह श्रीभूतिका जीव, जो मुर्गा हुआ था, हाथीके सिरपर बैठकर उसका मांस खाने लगा । हाथीपर बडा उपसर्ग आया, पर उसने उसकी कुछ परवा न कर बड़ी धीरताके साथ पच नमस्कार मत्रकी आराधना करना शुरू कर दिया, जो कि सब पापोका नाश करने वाला है । आयुके अन्तमे शान्तिके साथ मृत्यु प्राप्त कर वह सहस्रारस्वर्गमें देव हुआ । सच है धर्मके सिवा और कल्याणका कारण हो ही क्या सकता है ?

वह सर्प भी बहुत कष्टोंको सहन कर मरा और तीव्र पापकर्मके उदयसे चौथे नरकमे जाकर उत्पन्न हुआ, जहॉ अनन्त दु ख हैं और जबतक आयु पूर्ण नहीं होती तबतक पलक गिराने मात्र भी सुख प्राप्त नहीं होता ।

सिंहसेनका जीव जो हाथी हुआ था, उसके दॉत और कपोलोमेंसे निकले हुए मोती, एक भीलके हाथ लगे । भीलने उन्हे एक धनमित्र नामक साहूकारके हाथ बेच दिये और धनमित्रने उन्हें सर्वश्रेष्ठ और कीमती समझकर राजा पूर्णचद्रको भेट कर दिये । राजा देखकर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने उनके बदलेमे धनमित्रको खूब धन दिया । इसके बाद राजाने दॉतोके तो अपने पलगके पाये बनवाये और मोतियोका रानीके लिये हार बनवा दिया । इस समय वे विषयसुखमे खूब मग्न होकर अपना काल बिता रहे हैं । यह संसारकी विचित्र दशा है । क्षण-क्षणमे क्या होता है सो सिवा ज्ञानी के कोई नहीं जान पाता और इसीसे जीवोको संसारके दु ख भोगना पड़ते हैं । माता,

पूर्णचन्द्रके कल्याणका एक मार्ग है, यदि तुम जाकर उपदेश दो और यह सब घटना उसे सुनाओ, तो वह अवश्य अपने कल्याणकी ओर दृष्टि देगा ।

सुनते ही वह उठी और पूर्णचन्द्रके महल पहुँची । अपनी माताको देखते ही पूर्णचंद्र उठे और बड़े विनयसे उसका सत्कार कर उन्होंने उसके लिये पवित्र आसन दिया और हाथ जोड़कर वे बोले—माताजी, आपने अपने पवित्र चरणोंसे इस समय भी इस घरको पवित्र किया, उससे मुझे जो प्रसन्नता हुई वह वचनों द्वारा नहीं कही जा सकती । मैं अपने जीवनको सफल समझूँगा यदि मुझे आप अपनी आज्ञाका पात्र बनावेंगी । वह बोली—मुझे एक आवश्यक बातकी ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना है । इसीलिये मैं यहाँ आई हूँ और वह बड़ी विलक्षण बात है, सुनते हो न ? इसके बाद आर्यिकाने यों कहना आरंभ किया—

"पुत्र, जानते हो, तुम्हारे पिताको सर्पने काटा था, उसकी वेदनासे मरकर वे सल्लकीवनमें हाथी हुए और वह सर्प मरकर उसी वनमें मुर्गा हुआ । एक दिन हाथी जल पीने गया । वह नदीके किनारे पर खूब गहरे कीचड़ मे फँस गया । वह उसमेंसे किसी तरह निकल नहीं सका । अन्तमें निरुपाय होकर वह मर गया । उसके दाँत और मोती एक भीलके हाथ लगे । भीलने उन्हें एक सेठके हाथ बेचे दिये । सेठके द्वारा वे ही दाँत और मोती तुम्हारे पास आये । तुमने दाँतोंके तो पलंगके पाये बनवाये और मोतियोंका अपनी पत्नीके लिये हार बनवाया । यह संसार की विचित्र लीला है । इसके बाद तुम्हें उचित जान पड़े सो करो ।" आर्यिका इतना कहकर चुप हो रही । पूर्णचन्द्र अपने पिताकी कथा सुनकर एक साथ रो पड़े । उनका हृदय पिताके शोकसे सन्तप्त हो उठा । जैसे दावग्निसे पर्वत सन्तप्त हो उठता है । उनके रोनेके साथ ही सारे अन्तःपुरमें हाहाकार मच गया । उन्होंने पितृप्रेमके वश हो उन पलंगके पायोंको छातीसे लगाया । इसके बाद उन्होंने पलंगके पायों और मोतियोंको चन्दनादिसे पूजा कर उन्हें जला दिया । ठीक है मोहके वश होकर यह जीव क्या-क्या नहीं करता ?

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मोहका चक्र जब अच्छे-अच्छे महात्माओं पर भी चल जाता है, तब पूर्णचन्द्रपर उसका प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्यका कारण नहीं है । पर पूर्णचन्द्र बुद्धिमान् थे, उन्होंने झटसे अपनेको सम्हाल

लिया और पवित्र श्रावकधर्मको ग्रहण कर बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ उनका पालन करने लगे । फिर आयु के अन्त में वे पवित्र भावोंसे मृत्यु लाभकर महाशुक्र नामक स्वर्गमें देव हुए । उनकी माता भी अपनी शक्तिके अनुसार तपश्चर्या कर उसी स्वर्गमें देव हुई । सच है संसारमें जन्म लेकर कौन-कौन कालके ग्रास नहीं बने ? मनःपर्ययज्ञानके धारक सिंहचन्द्र मुनि भी तपश्चर्या और निर्मल चारित्रके प्रभावसे मृत्यु प्राप्त कर ग्रैवेयकमें जाकर देव हुए ।

भारतवर्षके अन्तर्गत सूर्याभपुर नामक एक शहर था । उसके राजाका नाम सुरावर्त था ! वे बड़े बुद्धिमान और तेजस्वी है । उनकी महारानीका नाम था यशोधरा । वह बड़ी सुन्दरी थी, बुद्धिमती थी, सती थी, सरल स्वभाव वाली थी और विदुषी थी । वह सदा दान देती, जिन भगवान्‌की पूजा करती, और बड़ी श्रद्धाके साथ उपवासादि करती थी ।

सिंहसेन राजाका जीव, जो हाथीकी पर्यायसे मरकर स्वर्ग गया था, यशोधरा रानीका पुत्र हुआ । उसका नाम था रश्मिवेग । कुछ दिनो बाद महाराज सुरावर्त तो राज्यभार रश्मिवेगके लिये सौंपकर साधु बन गये और राज्यकार्य रश्मिवेग चलाने लगा ।

एक दिनकी बात है कि धर्मात्मा रश्मिवेश सिद्धकूट जिनालयकी वन्दनाके लिये गया । वहाँ उसने एक हरिचन्द्र नामके मुनिराजको देखा; उनसे धर्मोपदेश सुना । धर्मोपदेशका उसके चित्तपर बड़ा प्रभाव पड़ा । उसे बहुत वैराग्य हुआ । संसार शरीरभोगादिकों से उसे बड़ी घृणा हुई । उसने उसी समय मुनिराजसे दीक्षा ग्रहण कर ली ।

एक दिन रश्मिवेग महामुनि एक पर्वतकी गुफामें कायोत्सर्ग धारण किये हुए थे कि एक भयानक अजगरने, जो कि श्रीभूतिका जीव सर्पपर्यायसे मरकर चौथे नरक गया था और वहाँसे आकर यह अजगर हुआ, उन्हें काट खाया । मुनिराज तब भी ध्यानमे निश्चल खड़े रहे, जरा भी विचलित नहीं हुए । अन्तमें मृत्यु प्राप्त कर समाधिमरणके प्रभावसे वे कापिष्ठस्वर्गमें जाकर आदित्यप्रभ नामक महर्द्धिक देव हुए, जो कि सदा जिनभगवान्‌के चरणकमलोंकी भक्ति मे लीन रहते थे । और वह अजगर मरकर पापके उदयसे फिर चौथे

६. अंजनचोरकी कथा

सुखके देनेवाले श्रीसर्वज्ञ वीतराग भगवान्‌के चरणकमलोंको नमस्कार कर अंजनचोरकी कथा लिखता हूँ, जिसने सम्यग्दर्शनके निःशंकित अंगका उद्योत किया है ।

भारतवर्ष-मगधदेशके अन्तर्गत राजगृह नामक शहरमें एक जिनदत्त सेठ रहता था । वह बड़ा धर्मात्मा था । वह निरन्तर जिनभगवान्‌की पूजा करता, दीन दुखियोंको दान देता, श्रावकोंके व्रतोंका पालन करता और सदा शान्त और विषयभोगोंसे विरक्त रहता । एक दिन जिनदत्त चतुर्दशीके दिन आधीरातके समय श्मशानमें कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था । उस समय वहाँ दो देव आये । उनके नाम अमितप्रभ और विद्युत्प्रभ थे । अमितप्रभ जैनधर्मका विश्वासी था और विद्युत्प्रभ दूसरे धर्मका । वे अपने-अपने स्थानसे परस्परके धर्मकी परीक्षा करनेको निकले थे । पहले उन्होंने एक पंचाग्नितप करनेवाले तापसकी परीक्षा की । वह अपने ध्यानसे विचलित हो गया । इसके बाद उन्होंने जिनदत्तको श्मशानमें ध्यान करते देखा । तब अमितप्रभने विद्युत्प्रभसे कहा—प्रिय, उत्कृष्ट चारित्रके पालनेवाले जिनधर्मके सच्चे साधुओंकी परीक्षा की बातको तो जाने दो, परन्तु देखते हो, वह गृहस्थ जो कायोत्सर्गसे खड़ा हुआ है, यदि तुममें कुछ शक्ति हो, तो तुम उसे ही अपने ध्यानसे विचलित कर दो यदि तुमने उसे ध्यानसे चला दिया तो हम तुम्हारा ही कहना सत्य मान लेंगे ।

अमितप्रभसे उत्तेजना पाकर विद्युत्प्रभने जिनदत्तपर अत्यन्त दुस्सह और भयानक उपद्रव किया, पर जिनदत्त उससे कुछ भी विचलित न हुआ और पर्वतकी तरह खड़ा रहा । जब सबेरा हुआ तब दोनों देवोंने अपना असली वेष प्रगट कर बड़ी भक्तिके साथ उसका खूब सत्कार किया और बहुत प्रशंसा कर जिनदत्तको एक आकाशगामिनी विद्या दी । इसके बाद वे जिनदत्तसे यह कहकर, कि श्रावकोत्तम ! तुम्हें आजसे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई; तुम पंच नमस्कार मंत्र की साधनविधिके साथ इसे दूसरोंको प्रदान करोगे तो उन्हें भी यह सिद्ध होगी—इस प्रकार कहकर दोनों देव अपने स्थानपर चले गये ।

विद्याकी प्राप्तिसे जिनदत्त बड़ा प्रसन्न हुआ । उसकी अकृत्रिम चैत्यालयोके दर्शन करनेकी इच्छा पूरी हुई । वह उसी समय विद्याके प्रभावसे अकृत्रिम चैत्यालयके दर्शन करनेको गया और खूब भक्तिभावसे उसने जिनभगवान्‌की पूजा की, जो कि स्वर्गमोक्षकी देनेवाली है ।

इसी प्रकार अब जिनदत्त प्रतिदिन अकृत्रिम जिनमन्दिरों के दर्शन करनेके लिये जाने लगा । एक दिन वह जानेके लिये तैयार खड़ा हुआ था कि उससे एक सोमदत्त नामके मालीने पूछा—आप प्रतिदिन सबेरे ही उठकर कहाँ जाया करते हैं ? उत्तरमें जिनदत्त सेठने कहा—मुझे दो देवोंकीकृपासे आकाशगामिनी विद्या की प्राप्ति हुई है । सो उसके बलसे सुवर्णमय अकृत्रिम जिनमन्दिरों की पूजा करनेके लिये जाया करता हूँ, जो कि सुखशान्तिकी देनेवाली है । तब सोमदत्तने जिनदत्तसे कहा—प्रभो, मुझे भी विद्या प्रदान कीजिये न ? जिससे मैं भी अच्छे सुन्दर सुगन्धित फूल लेकर प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करनेको जाया करूँ और उसके द्वारा शुभकर्म उपार्जन करूँ । आपकी बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे विद्या प्रदान करेंगे ।

सोमदत्तकी भक्ति और पवित्रता को देखकर जिनदत्तने उसे विद्या साधन करनेकी रीति बतला दी । सोमदत्त उससे सब विधि ठीक-ठीक समझकर विद्या साधनेके लिये कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीकी अन्धेरी रातमें श्मशानमें गया, जो कि बड़ा भयंकर था । वहाँ उसने एक बड़की डालीमें एकसौ आठ लड़ीका एक दूबाका सींका बाँधा और उसके नीचे अनेक भयंकर तीखे-तीखे शस्त्र सीधे मुँह गाड़कर उनकी पुष्पादिसे पूजा की । इसके बाद वह सींकेपर बैठकर पंच नमस्कार मंत्र जपने लगा । मंत्र पूरा होनेपर जब सींकाके काटनेका समय आया और उसकी दृष्टि चमचमाते हुए शस्त्रोंपर पड़ी तब उन्हें देखते ही वह काँप उठा । उसने विचारा—यदि जिनदत्तने मुझे झूठ कह दिया हो तब तो मेरे प्राण ही चले जायेंगे; यह सोचकर वह नीचे उतर आया । उसके मनमें फिर कल्पना उठी कि भला जिनदत्तको मुझसे क्या लेना है जो वह झूठ कहकर मुझे ऐसे मृत्युके मुखमें डालेगा ? और फिर वह तो जिनधर्मका परम श्रद्धालु है, उसके रोम रोममें दया भरी हुई है, उसे मेरी जान लेनेसे क्या लाभ ? इत्यादि विचारोंसे अपने मनको सन्तुष्ट कर वह फिर सींकेपर चढा, पर जैसे

ही उसकी दृष्टि फिर शस्त्रोंपर पड़ी कि वह फिर भयके मारे नीचे उतर आया। इसी तरह वह बार-बार उतरने चढ़ने लगा, पर उसकी हिम्मत सींका काट देनेकी नहीं हुई। सच है जिन्हें स्वर्गमोक्षका सुख देने वाले जिनभगवान्के वचनोंपर विश्वास नहीं, मनमे उनपर निश्चय नहीं, उन्हें संसारमें कोई सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती।

उसी रातको एक और घटना हुई वह उल्लेख योग्य है और खासकर उसकी इसी घटना से सम्बन्ध है। इसलिये उसे लिखते हैं। वह इस प्रकार है—

इधर तो सोमदत्त सशक होकर क्षणभरमें वृक्षपर चढ़ता और क्षणभरमें उसपर से उतरता था, और दूसरी ओर इसी समय माणिकांजन सुन्दरी नामकी एक वेश्याने अपनेपर प्रेम करनेवाले एक अंजन नामके चोरसे कहा—प्राणवल्लभ, आज मैंने प्रजापाल महाराज की कनकवती नामकी पट्टरानीके गलेमें रत्नोंका हार देखा है। वह वहुत ही सुन्दर है। मेरा तो यह भी विश्वास है कि संसार भरमें उसकी तुलना करनेवाला कोई और हार होगा ही नहीं। सो आप उसे लाकर मुझे दीजिये, तब ही आप मेरे स्वामी हो सकेंगे अन्यथा नहीं।

माणिकांजन सुन्दरीकी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा सुनकर पहले तो वह कुछ हिचका, पर साथ ही उसके प्रेमने उसे वैसा करनेको वाध्य किया। वह अपने जीवनकी भी कुछ परवा न कर हार चुरा लानेके लिये राजमहल पहुँचा और मौका देखकर महलमें घुस गया। रानीके शयनागारमें पहुँचकर उसने उसके गलेमेंसे बड़ी कुशलताके साथ हार निकाल लिया। हार लेकर वह चलता वना। हजारों पहरेदारोंकी आँखोमें धूल डालकर साफ निकल जाता, पर अपने दिव्य प्रकाशसे गाढ़ेसे गाढ़े अन्धकारको भी नष्ट करनेवाले हारने उसे सफल प्रयत्न नहीं होने दिया। पहरेवालोंने उसे हार ले जाते हुए देख लिया। वे उसे पकड़नेको दौड़े। अंजन चोर भी खूब जी छोड़कर भागा, पर आखिर कहाँतक भाग सकता था। पहरेदार उसे पकड़ लेना ही चाहते थे कि उसने एक नई युक्ति की। वह हारको पीछेकी ओर जोरसे फेंक कर भागा। सिपाही लोग तो हार उठानेमें लगे और इधर अंजन चोर बहुत दूर तक निकल आया। सिपाहियोंने तब भी उसका पीछा न छोड़ा। वे उसका पीछा किये

चले ही गये । अंजनचोर भागता-भागता श्मशानकी ओर जा निकला, जहॉ जिनदत्तके उपदेशसे सोमदत्त विद्यासाधनके लिये व्यग्र हो रहा था। उसका यह भयंकर उपक्रम देखकर अंजनने उससे पूछा कि तुम यह क्या कर रहे हो ? क्यो अपनी जान दे रहे हो ? उत्तरमें सोमदत्तने सब बाते उसे बता दीं, जैसी कि जिनदत्तने उसे बतलाई थीं । सोमदत्तकी बातोसे अंजनको बड़ी खुशी हुई। उसने सोचा कि सिपाही लोग तो मुझे मारनेके लिये पीछे आ ही रहे हैं और वे अवश्य मुझे मार भी डालेगे । क्योंकि मेरा अपराध कोई साधारण नहीं है। फिर यदि मरना ही है तो धर्मके आश्रित रहकर ही मरना अच्छा है। यह विचार कर उसने सोमदत्तसे कहा—बस इसी थोड़ीसी बातके लिये इतने डरते हो ? अच्छा लाओ, मुझे तलवार दो, मैं भी तो जरा आजमा लूँ। यह कहकर उसने सोमदत्तसे तलवार ले ली और वृक्षपर चढ़कर सींकेपर जा बैठा। वह सींकेको काटनेके लिये तैयार हुआ कि सोमदत्तके बताये मन्त्रको भूल गया। पर उसकी वह कुछ परवा न कर और केवल इस बातपर विश्वास करके कि "जैसा सेठने कहा उसका कहना मुझे प्रमाण है।" उसने निःशंक होकर एक ही झटकेमें सारे सींकेको काट दिया। काटनेके साथ ही जबतक वह शस्त्रोपर गिरता तबतक आकाशगामिनी विद्याने आकर उससे कहा—देव, आज्ञा कीजिये, मैं उपस्थित हूँ। विद्याको अपने सामने खड़ी देखकर अंजनचोरको बड़ी खुशी हुई । उसने विद्यासे कहा, मेरु पर्वतपर जहॉ जिनदत्त सेठ भगवान्‌की पूजा कर रहा है, वहीं मुझे पहुॅचा दो । उसके कहनेके साथ ही विद्याने उसे जिनदत्तके पास पहुॅचा दिया । सच है, जिनधर्मके प्रसादसे क्या नहीं होता ?

सेठके पास पहुॅचकर अंजनने बड़ी भक्तिके साथ उन्हे प्रणाम किया और वह बोला—हे दयाके समुद्र ! मैंने आपकी कृपासे आकाशगामिनी विद्या तो प्राप्त की, पर अब आप मुझे कोई ऐसा मंत्र बतलाइये जिससे मैं संसार समुद्रसे पार होकर मोक्षमे पहुँच जाऊॅ, सिद्ध हो जाऊॅ ।

अंजनको इस प्रकार वैराग्य भरी बाते सुनकर परोपकारी जिनदत्तने उसे एक चारणऋद्धिके धारक मुनिराजके पास लिवा लेजाकर उनसे जिनदीक्षा दिलवा दी । अजनचोर साधु बनकर धीरे-धीरे कैलाशपर्वत पर जा पहुचा ।

वहाँ खूब तपश्चर्या कर ध्यानके प्रभावसे उसने घातिया कर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर वह त्रैलोक्य द्वारा पूजित हुआ। अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाश कर अंजन मुनिराजने अविनाशी, अनन्त गुणोंके समुद्र मोक्षपदको प्राप्त किया।

सम्यग्दर्शनके निःशंकितगुणका पालनकर अंजनचोर भी निरजन हुआ, कर्मोंके नाश करनेमें समर्थ हुआ। इसलिये भव्यपुरुषोंको तो निःशंकित अंगका पालन करना ही चाहिये।

मूलसंघमें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए। वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप उत्कृष्ट रत्नोंसे अलंकृत थे, बुद्धिमान थे, और ज्ञानके समुद्र थे। सिंहनन्दी मुनि उनके शिष्य थे। वे मिथ्यात्वमतरूपी पर्वतोंको तोड़नेके लिये वज्रके समान थे, बड़े पाण्डित्यके साथ वे अन्य सिद्धान्तोंका खण्डन करते थे और भव्यपुरुषरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेके लिये वे सूर्यके समान थे। वे चिरकाल तक जीयें उनका यशःशरीर इस नश्वर संसारमें सदा बना रहें।

''हृदय की बात''

प्रभु के हृदय की बात जब तक नहीं समझोगे, तब तक उन जैसी दृष्टि, उन जैसा आचरण, उन जैसे चैतन्य की परिणति को प्राप्त नहीं कर सकते। जड़ तत्व की सुरक्षा एवं विकास के लिए जो व्यक्ति भौतिक ज्ञानधन का प्रयोग करता है वह पैर धोने के लिए अमृत कलश ढोल रहा है, राख के लिए चन्दन की लकड़ी जला रहा है।

आ० विद्यासागर जी

७. अनन्तमतीकी कथा

मोक्ष सुखके देनेवाले श्रीअर्हन्त भगवान्के चरणोंको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अनन्तमतीकी कथा लिखता हूँ, जिसके द्वारा सम्यग्दर्शनके निःकाक्षित गुणका प्रकाश हुआ है ।

ससारमें अंगदेश बहुत प्रसिद्ध देश है । जिस समयकी हम कथा लिखते हैं, उस समय उसकी प्रधान राजधानी चम्पापुरी थी । उसके राजा थे वसुवर्धन और उनकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था । वह सती श्री, गुणवती थी और बड़ी सरल स्वभावकी थी । उनके एक पुत्र था । उसका नाम था प्रियदत्त प्रियदत्तकी जिनधर्मपर पूर्ण श्रद्धा थी । उसकी गृहिणीका नाम अगवती था । वह बड़ी धर्मात्मा थी, उदार थी । अंगवतीके एक पुत्री थी । उसका नाम अनन्तमती था वह बहुत सुन्दर थी, गुणोकी समुद्र थी ।

अष्टाह्निका पर्व आया । प्रियदत्तने धर्मकीर्ति मुनिराजके पास आठ दिनके लिये ब्रह्मचर्य व्रत लिया । साथहीमें उसने अपनी प्रिय पुत्रीको भी विनोद वश होकर ब्रह्मचर्य व्रत दिलवा दिया । कभी-कभी सत्पुरुषोका विनोद भी सत्य मार्गका प्रदर्शक बन जाता है । अनन्तमती के चित्तपर भी प्रियदत्तके दिलाये व्रतका ऐसा ही प्रभाव पड़ा । जब अनन्तमतीके ब्याहका समय आया और उसके लिये आयोजन होने लगा, तब अनन्तमतीने अपने पितासे कहा—पिताजी ! आपने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिलवाया था न ? फिर यह ब्याहका आयोजन आप किसलिये करते हैं ?

उत्तरमे प्रियदत्तने कहा—पुत्री, मैंने तो तुझे जो व्रत दिलवाया था वह केवल मेरा विनोद था । क्या तू उसे सच समझ बैठी है ?

अनन्तमती बोली—पिताजी, धर्म और व्रतमें हॅसी विनोद कैसा, यह मैं नहीं समझी ?

प्रियदत्तने फिर कहा—मेरे कुलकी प्रकाशक प्यारी पुत्री, मैंने तो तुझे ब्रह्मचर्य केवल विनोदसे दिलवाया था । और तू उसे सच ही समझ बैठी है, तो भी वह आठ ही दिनके लिये था । फिर अब तू ब्याहसे क्यों इंकार करती है ?

अनन्तमतीने कहा—मैं मानती हूँ कि आपने अपने भावोंसे मुझे आठ ही दिनका ब्रह्मचर्य दिलवाया होगा; परन्तु न तो आपने उस समय मुझसे ऐसा कहा और न मुनि महाराजने ही, तब मैं कैसे समझूँ कि वह आठ ही दिनके लिये था। इसलिये अब जैसा कुछ हो, मैं तो जीवन पर्यन्त ही उसे पालूँगी। मैं अब ब्याह नहीं करूँगी।

अनन्तमतीकी बातोंसे उसके पिताको बड़ी निराशा हुई; पर वे कर भी क्या सकते थे। उन्हे अपना सब आयोजन समेट लेना पड़ा। इसके वाद उन्होंने अनन्तमतीके जीवनको धार्मिक-जीवन बनानेके लिये उसके पठनपाठनका अच्छा प्रबन्ध कर दिया। अनन्तमती भी निराकुलतासे शास्त्रोंका अभ्यास करने लगी।

इस समय अनन्तमती पूर्ण युवती है। उसकी सुन्दरताने स्वर्गीय सुन्दरता धारण की है। उसके अंग-अंगसे लावण्यसुधाका झरना बह रहा है। चन्द्रमा उसके अप्रतिम मुखकी शोभाको देखकर फीका पड़ रहा है और नखोके प्रतिबिम्बके बहानेसे उसके पावोमें पड़कर अपनी इज्जत बचा लेनेके लिये उससे प्रार्थना करता है। उसकी बड़ी-बड़ी और प्रफुल्लित आँखोंको देखकर बेचारे कमलोसे मुख भी ऊँचा नहीं किया जाता है। यदि सच पूछो तो उसके सौन्दर्यकी प्रशसा करना मानो उसकी मर्यादा बाँध देना है, पर वह तो अमर्याद है, स्वर्गकी सुन्दरियोको भी दुर्लभ है।

चैत्रका महिना था। एक दिन अनन्तमती विनोदवश हो, अपने बगीचेमे अकेली झूलेपर झूल रही थी। इसी समय एक कुण्डलमंडित नामका विद्याधरोंका राजा, जो कि विद्याधरोंकी दक्षिणश्रेणीके किन्नरपुरका स्वामी था, इधर ही होकर अपनी प्रियाके साथ वायुयानमें बैठा हुआ जा रहा था। एकाएक उसकी दृष्टि झूलती हुई अनन्तमती पर पड़ी उसकी स्वर्गीय सुन्दरताको देखकर कुण्डलमंडित कामके बाणोंसे बुरी तरह बींधा गया। उसने अनन्तमतीकी प्राप्तिके बिना अपने जन्मको व्यर्थ समझा। वह उस बेचारी बालिकाको उड़ा तो उसी वक्त ले जाता, पर साथमें प्रियाके होनेसे ऐसा अनर्थ करनेके लिये उसकी हिम्मत न पड़ी। पर उसे बिना अनन्तमतीके कब चैन पड सकता था? इसलिये वह अपने विमानको शीघ्रतासे घर लौटा ले गया और वहाँ

अपनी प्रियाको छोड उसी समय अनन्तमतीके बगीचेमे आ उपस्थित हुआ और बड़ी फुर्तीसे उस भोली बालिकाको उठा ले चला । उधर उसकी प्रियाको भी इसके कर्मका कुछ-कुछ अनुसन्धान लग गया था । इसलिये कुण्डलमंडित तो उसे घरपर छोड़ आया था, पर वह घरपर न ठहर कर उसके पीछे-पीछे हो चली । जिस समय कुण्डलमंडित अनन्तमतीको लेकर आकाशकी ओर जा रहा था, कि उसकी दृष्टि अपनी प्रिया पर पड़ी । उसे क्रोधके मारे लाल मुख किये हुई देखकर कुण्डलमंडितके प्राणदेवता एक साथ शीतल पड़ गये । उसके शरीरको काटो तो खून नहीं । ऐसी स्थितिमे अधिक गोलमाल होनेके भयसे उसने बड़ी फुर्तीके साथ अनन्तमतीको एक पर्णलध्वी नामकी विद्याके आधीन कर उसे एक भयंकर वनमें छोड़ देनेको आज्ञा दे दी और आप पत्नीके साथ घर लौट गया और उसके सामने अपनी निर्दोषताका यह प्रमाण पेश कर दिया कि अनन्तमती न तो विमानमे उसे देखनेको मिली और न विद्याके सुपुर्द करते समय कुण्डलमडितने ही उसे देखने दी ।

उस भयंकर वनमे अनन्तमती बड़े जोर-जोरसे रोने लगी, पर उसके रोनेको सुनता भी कौन ? वह तो कोसोंतक मनुष्योंके पदचारसे रहित थी । कुछ समय बाद एक भीलोका राजा शिकार खेलता हुआ उधर आ निकला । उसने अनन्तमतीको देखा । देखते ही वह भी कामके बाणोसे घायल हो गया और उसी समय उसे उठाकर अपने गॉवमे ले गया । अनन्तमती तो यह समझी कि देवने मुझे इसके हाथ सौंपकर मेरी रक्षा की है और अब मैं अपने घर पहुॅचा दी जाऊॅगी । पर नहीं, उसकी यह समझ ठीक नहीं थी । वह छुटकारेके स्थानमे एक और नई विपत्तिके मुखमे फॅस गई ।

राजा उसे अपने महल ले जाकर बोला—बाले, आज तुम्हे अपना सौभाग्य समझना चाहिये कि एक राजा तुमपर मुग्ध है, और वह तुम्हें अपनी पट्टरानी बनाना चाहता है । प्रसन्न होकर उसकी प्रार्थना स्वीकार करो और अपने स्वर्गीय समागमसे उसे सुखी करो । वह तुम्हारे सामने हाथ जोड़े खडा है तुम्हें वनदेवी समझकर अपना मन चाहा वर मॉगता है। उसे देकर उसकी आशा पूरी करो । बेचारी भोली अनन्तमती उस पापीकी बातोका क्या जवाब देती ? वह फूट-फूटकर रोने लगी और आकाश पाताल एक करने लगी । पर

उसकी सुनता कौन ? वह तो राज्यही मनुष्यजातिके राक्षसोंका था ।

भीलराजाके निर्दयी हृदयमें तब भी अनन्तमतीके लिये कुछ भी दया नहीं आई । उसने और भी बहुत-बहुत प्रार्थना की, विनय-अनुनय किया, भय दिखाया, पर अनन्तमतीने उसपर कुछ ध्यान नहीं दिया । किन्तु यह सोचकर, कि इन नारकियोंके सामने रोने धोनेसे कुछ काम नहीं चलेगा, उसने उसे फटकारना शुरू किया । उसकी ऑखोंसे क्रोधकी चिनगारियाँ निकलने लगीं, उसका चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया । सब कुछ हुआ, पर उस भील राक्षसपर उसका कुछ प्रभाव न पड़ा । उसने अनन्तमतीसे बलात्कार करना चाहा । इतनेमें उसके पुण्यप्रभावसे, नहीं, शीलके अखड बलसे वनदेवीने आकर अनन्तमतीकी रक्षा की और उस पापीको उसके पापका खूब फल दिया और कहा—नीच, तू नहीं जानता यह कौन है ? याद रख यह संसारकी पूज्य एक महादेवी है, जो इसे तूने सताया कि समझ तेरे जीवनकी कुशल नहीं है। यह कहकर वनदेवी अपने स्थानपर चली गई । उसके कहनेका भीलराजपर बहुत असर पड़ा और पड़ना चाहिये था । क्योंकि थी तो वह देवी ही न ? देवीके डरके मारे दिन निकलते ही उसने अनन्तमतीको एक साहूकारके हाथ सौंपकर उससे कह दिया कि इसे इसके घर पहुँचा दीजियेगा । पुष्पक सेठने उस समय तो अनन्तमतीको उसके घर पहुँचा देनेका इकरार कर भीलराजसे ले ली । पर यह किसने जाना कि उसका हृदय भी भीतरसे पापपूर्ण होगा । अनन्तमतीको पाकर वह समझने लगा कि मेरे हाथ अनायास स्वर्गकी सुन्दरी लग गई । यह यदि मेरी बात प्रसन्नता पूर्वक मान ले तब तो अच्छा ही है, नहीं तो मेरे पंजेसे छूट कर भी तो यह नहीं जा सकती । यह विचारकर उस पापीने अनन्तमतीसे कहा—सुन्दरी, तुम बड़ी भाग्यवती हो, जो एक नरपिशाचके हाथसे छूटकर पुण्यपुरुषके सुपुर्द हुई । कहाँ तो यह तुम्हारी अनिन्द्य स्वर्गीय सुन्दरता और कहाँ वह भीलराक्षस, कि जिसे देखते ही हृदय कॉप उठता है ? मैं तो आज अपनेको देवोंसे भी कहीं बढकर भाग्यशाली समझता हूँ, जो मुझे अनमोल स्त्री रत्न मिल सकता है ? सुन्दरी, देखती हो, मेरे पास अटूट धन है, अनन्त वैभव है, पर उस सबको तुमपर न्यौछावर करनेको तैयार हूँ और तुम्हारे चरणोका अत्यन्त दास बनता हूँ । कहो, मुझपर प्रसन्न हो ? मुझे अपने हृदयमे

जगह दोगी न ? दो, और मेरे जीवनको, मेरे धन-वैभवको सफल करो ।

अनन्तमतीने समझा था कि इस भले मानसकी कृपासे मैं सुखपूर्वक पिताजीके पास पहुँच जाऊँगी, पर वह बेचारी पापियोंके पापी हृदयकी बातको क्या जाने ? उसे जो मिलता था, उसे वह भली ही समझती थी । यह स्वाभाविक बात है कि अच्छेको संसार अच्छा ही दिखता है । अनन्तमतीने पुष्पक सेठकी पापपूर्ण बातें सुनकर बड़े कोमल शब्दोंमे कहा—महाशय, आपको देखकर तो मुझे विश्वास हुआ था कि अब मेरे लिये कोई डरकी बात नहीं रही मैं निर्विघ्न अपने घरपर पहुँच जाऊँगी । क्योंकि मेरे एक दूसरे पिता मेरी रक्षाके लिये आ गये हैं । पर मुझे अत्यन्त दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आप सरीखे भले मानसके मुँहसे और ऐसी नीच बाते? जिसे मैंने रस्सी समझकर हाथमे लिया था, मैं नहीं समझती थी कि वह इतना भयंकर सर्प होगा । क्या वह बाहरी चमक-दमक और सीधापन केवल दाम्भिकपना है ? केवल बगुलोकी हंसोंमें गणना करानेके लिये है ? यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें, तुम्हारे इस ठगी वेषको, तुम्हारे कुलको, तुम्हारे धन-वैभवको और तुम्हारे जीवनको धिक्कार देती हूँ, लोगोंको धोखा देकर अपने मायाजालमें फँसाया है, वह मनुष्य नहीं है; किन्तु पशु है, पिशाच है, राक्षस है । वह पापी मुँह देखने योग्य नहीं, नाम लेने योग्य नहीं । उसे जितना धिक्कार दिया जाय थोड़ा है । मैं नहीं जानती थी कि आप भी उन्हीं पुरुषोंमेसे एक होगे । अनन्तमती और भी कहती, पर वह ऐसे कुलकलंक नीचोके मुँह लगना उचित नहीं समझ चुप हो रही । अपने क्रोधको वह दबा गई ।

उसकी जली भुनी बातें सुनकर पुष्पक सेठकी अक्ल ठिकाने आ गई। वह जलकर खाक हो गया, क्रोधसे उसका सारा शरीर काँप उठा, पर तब भी अनन्तमतीके दिव्य तेजके सामने उससे कुछ करते नहीं बना । उसने अपने क्रोधका बदला अनन्तमतीसे इस रूपमें चुकाया कि वह उसे अपने शहरमें ले जाकर एक कामसेना नामकी कुट्टिनीके हाथ सौंप दिया । सच बात तो यह है कि यह सब दोष दिया किसे जा सकता है, किन्तु कर्मोंकी ही ऐसी विचित्र स्थिति है, जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है । इसमें नई बात कुछ नहीं है ।

कामसेनाने भी अनन्तमतीको कष्ट देनेमें कुछ कसर नहीं रखी। जितना उससे बना उसने भयसे, लोभसे उसे पवित्र पथसे गिराना चाहा, उसके सतीत्वधर्मको भ्रष्ट करना चाहा, पर अनन्तमती उससे नहीं डिगी। वह सुमेरुके समान निश्चल बनी रही। ठीक तो है जो संसारके दुःखोंसे डरते हैं, वे ऐसे भी सांसारिक कामोंके करनेसे घबरा उठते हैं, जो न्यायमार्गसे भी क्यों न प्राप्त हुए हो, तब भला उन पुरुषोंकी ऐसे घृणित और पाप कार्योमें कैसे प्रीति हो सकती है ? कभी नहीं होती।

कामसेनाने उसपर अपना चक्र चलता न देखकर उसे एक सिंहराज नामके राजाको सौंप दिया। बेचारी अनन्तमतीका जन्म ही न जाने कैसे बुरे समयमें हुआ था, जो वह जहाँ पहुँचती वहीं आपत्ति उसके सिरपर सवार रहती। सिंहराज भी एक ऐसा ही पापी राजा था। वह अनन्तमतीके देवांगना दुर्लभ रूपको देखकर उसपर मोहित हो गया। उसने भी उससे बहुत हाथाजोड़ी की, पर अनन्तमतीने उसकी बातोंपर कुछ ध्यान न देकर उसे भी फटकार डाला। पापी सिहराजने अनन्तमतीका अभिमान नष्ट करनेको उससे बलात्कार करना चाहा। पर जो अभिमान मानवी प्रकृतिका न होकर अपने पवित्र आत्मीय तेजका होता है, भला, किसकी मजाल जो उसे नष्ट कर सके ? जैसे ही पापी सिंहराजने उस तेजोमय मूर्त्तिकी ओर पॉव बढ़ाया कि उसी वनदेवीने, जिसने एक बार पहले भी अनन्तमतीकी रक्षा की थी, उपस्थित होकर कहा—खबरदार ! इस सती देवीका स्पर्श भूलकर भी मत करना, नहीं तो समझ लेना कि तेरा जीवन जैसे संसारमें था ही नहीं। इसके साथ ही देवी उसे उसके पापकर्मोका उचित दण्ड देकर अन्तर्हित हो गई। देवीको देखते ही सिहराजका कलेजा कॉप उठा। वह चित्रलिखेसा निश्चेष्ट हो गया। देवीके चले जानेपर बहुत देर बाद उसे होश हुआ। उसने उसी समय नौकरको बुलवाकर अनन्तमतीको जंगलमें छोड़ आनेकी आज्ञा दी। राजाकी आज्ञाका पालन हुआ। अनन्तमती एक भयंकर वनमें छोड़ दी गई।

अनन्तमती कहाँ जायेगी, किस दिशामें उसका शहर है, और वह कितनी दूर है ? इन सब बातोंका यद्यपि उसे कुछ पता नहीं था, तब भी वह पंचपरमेष्ठीका स्मरण कर वहाँसे आगे बढ़ी और फल फूलादिसे अपना निर्वाह

कर वन, जंगल, पर्वतोको लॉघती हुई अयोध्यामे पहुँच गई । वहाँ उसे एक पद्मश्री नामकी आर्यिकाके दर्शन हुए । आर्यिकाने अनन्तमतीसे उसका परिचय पूछा । उसने अपना सब परिचय देकर अपनेपर जो-जो विपत्ति आई थी और उससे जिस-जिस प्रकार अपनी रक्षा हुई थी उसका सब हाल आर्यिकाको सुना दिया । आर्यिका उसकी कथा सुनकर बहुत दुखी हुई । उसे उसने एक सती-शिरोमणि रमणी-रत्न समझ कर अपने पास रख लिया । सच है सज्जनोका व्रत परोपकारार्थ ही होता है ।

उधर प्रियदत्तको जब अनन्तमतीके हरे जानेका समाचार मालूम हुआ तब वह अत्यन्त दु:खी हुआ । उसके वियोगसे वह अस्थिर हो उठा । उसे घर श्मशान सरीखा भयंकर दिखने लगा । ससार उसके लिये सूना हो गया । पुत्रीके विरहसे दुखी होकर तीर्थयात्राके बहानेसे वह घरसे निकल खड़ा हुआ । उसे लोगोने बहुत समझाया, पर उसने किसी की बातको न मानकर अपने निश्चयको नहीं छोडा । कुटुम्बके लोग उसे घरपर न रहते देखकर स्वय भी उसके साथ-साथ चले । बहुतसे सिद्धक्षेत्रो और अतिशय क्षेत्रोकी यात्रा करते-करते वे अयोध्यामें आये । वहींपर प्रियदत्तका साला जिनदत्त रहता था । प्रियदत्त उसीके घरपर ठहरा । जिनदत्त ने बड़े आदर सम्मानके साथ अपने बहनोईकी पाहुनगति की । इसके बाद स्वस्थताके समय जिनदत्तने अपनी बहिन आदिका समाचार पूछा । प्रियदत्तने जैसी घटना बीती थी, वह सब उससे कह सुनाई । सुनकर जिनदत्तको भी अपनी भानजीके बाबत बहुत दु·ख हुआ । दु:ख सभीको हुआ पर उसे दूर करनेके लिये सब लाचार थे । कर्मोंकी विचित्रता देखकर सब हीको सन्तोष करना पड़ा ।

दूसरे दिन प्रात काल उठकर और स्नानादि करके जिनदत्त तो जिनमन्दिर चला गया । इधर उसकी स्त्री भोजनकी तैयारी करके पद्मश्री आर्यिकाके पास जो बालिका थी, उसे भोजन करनेको और ऑगनमें चौक पूरनेको बुला लाई । बालिकाने आकर चौक पूरा और बाद मे भोजन करके वह अपने स्थानपर लौट आई ।

जिनदत्तके साथ प्रियदत्त भी भगवान्की पूजा करके घरपर आया । आते ही उसकी दृष्टि चौकपर पड़ी । देखते ही उसे अनन्तमतीकी याद हो

उठी । वह रो पड़ा । पुत्रीके प्रेमसे उसका हृदय व्याकुल हो गया । उसने रोते-रोते कहा--जिसने यह चौक पूरा है, क्या मुझ अभागेको उसके दर्शन होंगे । जिनदत्त अपनी स्त्रीसे उस बालिकाका पता पूछ कर जहाँ वह थी, वहीं दौड़ा गया और झटसे उसे अपने घर लिवा लाया । बालिकाको देखते ही प्रियदत्तके नेत्रोंसे आँसू बह निकले । उसका गला भर आया । आज वर्षों बाद उसे अपनी पुत्रीके दर्शन हुए । बड़े प्रेमके साथ उसने अपनी प्यारी पुत्रीको गलेसे लगाया और उससे एक-एक बातें पूछना शुरू कीं । उसके दुःखोंका हाल सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ । उसने कर्मोंका, इसलिये कि अनन्तमती इतने कष्टोंको सहकर भी अपने धर्मपर दृढ़ रही और कुशलपूर्वक अपने पितासे आ मिली, बहुत-बहुत उपकार माना । पिता-पुत्रीका मिलाप हो जानेसे जिनदत्तको बहुत प्रसन्नता हुई । उसने इस खुशीमें जिनभगवान्का रथ निकलवाया, सबका यथायोग्य आदर सम्मान किया और खूब दान किया ।

इसके बाद प्रियदत्त अपने घर जानेको तैयार हुआ । उसने अनन्तमतीसे भी चलनेको कहा । वह बोली—पिताजी, मैंने संसारकी लीलाको खूब देखा है । उसे देखकर तो मेरा जी काँप उठता है। अब मैं घरपर नहीं चलूँगी । मुझे संसारके दु खोंसे बहुत डर लगता है । अब तो आप दया करके मुझे दीक्षा दिलवा दीजिये । पुत्रीकी बात सुनकर प्रियदत्त बहुत दुःखी हुआ, पर अब उसने उससे घरपर चलनेको विशेष आग्रह न करके केवल इतना कहा कि—पुत्री, तेरा यह शरीर अत्यन्त कोमल है और दीक्षाका पालन करना बड़ा कठिन है उसमें बड़ी-बड़ी कठिन परीषह सहनी पड़ती है । इसलिये अभी कुछ दिनोके लिये मन्दिर हीमें रहकर अभ्यास कर और धर्मध्यान पूर्वक अपना समय बिता । इसके बाद जैसा तू चाहती है, वह स्वयं ही हो जायगा । प्रियदत्तने इस समय दीक्षा लेनेसे अनन्तमतीको रोका, पर उसके तो रोम-रोममे वैराग्य प्रवेश कर गया था; फिर वह कैसे रुक सकती थी ? उसने मोहजाल तोड़कर उसी समय पद्मश्री आर्यिकाके पास जिनदीक्षा ग्रहण कर ही ली । दीक्षित होकर अनन्तमती खूब दृढ़ताके साथ तप तपने लगी । महिना-महिनाके उपवास करने लगी, परीषह सहने लगी । उसकी उमर और तपश्चर्या देखकर सबको दाँतोतले अँगुली दबानी पड़ती थी । अनन्तमतीका जबतक जीवन रहा

तबतक उसने बड़े साहससे अपने व्रतको निवाहा । अन्तमे वह संन्यासमरण कर सहस्रार स्वर्गमें जाकर देव हुई । वहाँ वह नित्य नये रत्नोंके स्वर्गीय भूषण पहिनती है, जिनभगवान्‌की भक्तिके साथ पूजा करती है, हजारों देव देवांगनायें उसकी सेवामे रहती हैं । उसके ऐश्वर्यका पार नहीं और न उसके सुख हीकी सीमा है । बात यह है कि पुण्यके उदयसे क्या-क्या नहीं होगा ?

अनन्तमतीको उसके पिताने केवल विनोदसे शीलव्रत दिलवा दिया था । पर उसने उसका बड़ी दृढ़ताके साथ पालन किया, कर्मोंके पराधीन सांसारिक सुखकी उसने स्वप्नमें भी चाह नहीं की । उसके प्रभावसे वह स्वर्गमे जाकर देव हुई, जहाँ सुखका पार नहीं । वहाँ वह सदा जिन-भगवान्‌के चरणोंमें लीन रह कर बड़ी शान्तिके साथ अपना समय बिताती है । सती-शिरोमणि अनन्तमती हमारा भी कल्याण करे ।

जिस समय किसी धर्मात्मा के ऊपर संकट आ जाता है, उस समय दूसरा धर्मात्मा यदि छिपने का प्रयास करता है तो वह कायर है । उसे नश्वर जीवन के सदुपयोग के लिए सिंह के समान गर्जना करते हुए आना चाहिये मुझे कोई भय नहीं, जीवित रहने की कोई आवश्यकता नहीं यही मेरा धर्म है यही जीवन है ऐसा समझ धर्मात्मा की सुरक्षा में सहयोग देना चाहिए ।

आ० विद्यासागर

प्रभोः—मेरा मैं मेरी दृष्टि में रहे बस यही एक आकांक्षा है ।

ब्र० राजेश

बोला—राजराजेश्वर, सचमुच ही तुम सम्यग्दृष्टि हो, महादानी हो। निर्विचिकित्सा अगके पालन करनेमें इन्द्रने जैसी तुम्हारी प्रशंसा की थी, वह अक्षर-अक्षर ठीक निकली, वैसा ही मैंने तुम्हें देखा। वास्तवमें तुम हीने जैनशासनका रहस्य समझा है। यदि ऐसा न होता तो तुम्हारे बिना और कौन मुनिकी दुर्गन्धित उछाट अपने हाथोंसे उठाता ? राजन् ! तुम धन्य हो, शायद ही इस पृथ्वीमंडलपर इस समय तुम सरीखा सम्यग्दृष्टियोंमे शिरोमणि कोई होगा ? इस प्रकार उद्दायनकी प्रशंसा कर देव अपने स्थानपर चला गया और राजा फिर अपने राज्यका सुखपूर्वक पालन करते हुए दान, पूजा, व्रत आदिमें अपना समय बिताने लगे।

इसी तरह राज्य करते-करते उद्दायनका कुछ और समय बीत गया। एक दिन वे अपने महलपर बैठे हुए प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे कि इतनेमें एक बड़ा भारी बादलका टुकड़ा उनकी आँखोंके सामनेसे निकला। वह थोड़ी ही दूर पहुँचा होगा कि एक प्रबल वायुके वेगने उसे देखते-देखते नामशेष कर दिया। क्षणभरमें एक विशाल मेघखण्डकी यह दशा देखकर उद्दायनकी आँखें खुलीं। उन्हें सारा संसार ही अब क्षणिक जान पड़ने लगा। उन्होंने उसी समय महलसे उतरकर अपने पुत्रको बुलाया और उसके मस्तकपर राजतिलक करके आप भगवान् वर्द्धमानके समवसरणमें पहुँचे और भक्तिके साथ भगवान्‌की पूजा कर उनके चरणोंके पास ही उन्होने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जिसका इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि सभी आदर करते हैं।

साधु होकर उद्दायन राजाने खूब तपश्चर्या की, संसारका सर्व श्रेष्ठ पदार्थ रत्नत्रय प्राप्त किया। इसके बाद ध्यानरूपी अग्निसे घातिया कर्मोंका नाश कर उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया। उसके द्वारा उन्होंने संसारके दुःखोंसे तड़फते हुए अनेक जीवोंको उबार कर, अनेकोंको धर्मके पथपर लगाया और अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाश कर अविनाशी अनन्त मोक्षपद प्राप्त किया।

उधर उनकी रानी सती प्रभावती भी दिनदीक्षा ग्रहण कर तपश्चर्या करने लगी और अन्तमें समाधि मृत्यु प्राप्त कर ब्रह्मस्वर्गमें जाकर देव हुई।

वे जिनभगवान् मुझे मोक्ष लक्ष्मी प्रदान करे, जो सब श्रेष्ठ गुणोंके समुद्र हैं जिनका केवलज्ञान संसारके जीवोका हृदयस्थ अज्ञानरूपी आताप नष्ट करनेको चन्द्रमा समान है, जिनके चरणोको इन्द्र, नरेन्द्र आदि सभी नमस्कार करते हैं, जो ज्ञानके समुद्र और साधुओं के शिरोमणि हैं ।

———

९. रेवती रानीकी कथा

संसारका हित करनेवाले जिनभगवान्को परम भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अमूढ़दृष्टि अगका पालन करनेवाली रेवती रानीकी कथा लिखता हूँ।

विजयाधपर्वतकी दक्षिणश्रेणीमें मेघकूट नामका एक सुन्दर शहर है। उसके राजा थे चन्द्रप्रभ। चंद्रप्रभने बहुत दिनोतक सुखके साथ अपना राज्य किया। एक दिन वे बैठे हुए थे कि एकाएक उन्हें तीर्थयात्रा करनेकी इच्छा हुई। राज्यका कारोबार अपने चन्द्रशेखर नामके पुत्रको सौंपकर वे तीर्थयात्रा के लिये चल दिये। वे यात्रा करते हुए दक्षिण मथुरामे आये। उन्हें पुण्यसे वहॉ गुप्ताचार्यके दर्शन हुए। आचार्यसे चन्द्रप्रभने धर्मोपदेश सुना। उनके उपदेशका उनपर बहुत असर पड़ा। वे आचार्यके द्वारा–

प्रोक्त· परोपकारोऽत्र महापुण्याय भूतले।

—ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात–परोपकार करना महान् पुण्यका कारण है, यह जानकर और तीर्थयात्रा करनेके लिये एक विद्याको अपने अधिकारमें रखकर क्षुल्लक बन गये।

एक दिन उनकी इच्छा उत्तरमथुराकी यात्रा करने की हुई। जब वे जानेको तैयार हुए तब उन्होने अपने गुरु महाराजसे पूछा–है दयाके समुद्र, मैं यात्राके लिये जा रहा हूॅ, क्या आपको कुछ समाचार तो किसीके लिय नहीं कहना है ? गुप्ताचार्य बोले–मथुरा में एक सूरत नामके बड़े ज्ञानी और गुणी मुनिराज हैं, उन्हे मेरा नमस्कार कहना और सम्यग्दृष्टिनी धर्मात्मा रेवतीके लिये मेरी धर्मवृद्धि कहना।

क्षुल्लकने और पूछा कि इसके सिवा और भी आपको कुछ कहना है क्या ? आचार्यने कहा नहीं। तब क्षुल्लकने विचारा कि क्या कारण है जो आचार्यने एकादशांगके ज्ञाता श्रीभव्यसेन मुनि तथा और-और मुनियोंको रहते उन्हें कुछ नहीं कहा और केवल सूरत मुनि और रेवतीके लिये ही नमस्कार किया तथा धर्मवृद्धि दी ? इसका कोई कारण अवश्य होना चाहिये। अस्तु। जो कुछ होगा वह आगे स्वयं मालूम हो जायगा। यह सोचकर चन्द्रप्रभको बडी खुशी हुई। बहुत ठीक कहा है–

ये कुर्वन्ति सुवात्सल्यं भव्या धर्मानुरागतः ।
साधर्मिकेषु तेषां हि सफलं जन्म भूतले ॥

—ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात्—संसारमें उन्हींका जन्म लेना सफल है जो धर्मात्माओंसे वात्सल्य-प्रेम करते हैं ।

इसके बाद क्षुल्लक चन्द्रप्रभ एकादशांगके ज्ञाता, पर नाम मात्रके भव्यसेन मुनिके पास गये । उन्होंने भव्यसेनको नमस्कार किया । पर भव्यसेन मुनिने अभिमानमें धर्मवृद्धि तक भी न दी । ऐसे अभिमानको धिक्कार है । जिन अविचारी पुरुषोंके वचनोंमें भी दरिद्रता है जो वचनोंसे भी प्रेमपूर्वक आये हुए अतिथिसे नहीं बोलते—वे उनका और क्या सत्कार करेंगे ? उनसे तो स्वप्नमें भी अतिथिसत्कार नहीं बन सकेगा । जैन शास्त्रोंका ज्ञान सब दोषोंसे रहित है, निर्दोष है । उसे प्राप्त कर हृदय पवित्र होना ही चाहिए । पर खेद है कि उसे पाकर भी मान होता है । पर यह शास्त्रका दोष नहीं, किन्तु यों कहना चाहिए कि पापियोंके लिए अमृत भी विष हो जाता है । जो हो, तब भी देखना चाहिए कि इनमे कुछ भी भव्यपना है भी, या केवल नाम मात्रके ही भव्य हैं ? यह विचार कर दूसरे दिन सबेरे जब भव्यसेन कमण्डलु लेकर शौचके लिए चले तब उनके पीछे-पीछे चन्द्रप्रभ क्षुल्लक भी हो लिए । आगे चलकर क्षुल्लक महाशयने अपने विद्याबलसे भव्यसेनके आगेकी भूमिको कोमल और हरे-हरे तृणोंसे युक्त कर दिया । भव्यसेन उसकी कुछ परवा न कर और यह विचार कर कि जैनशास्त्रोंमे तो इन्हें एकेन्द्री कहा है, इनकी हिंसाका विशेष पाप नहीं होता, उसपरसे निकल गए । आगे चलकर जब वे शौच हो लिए और शुद्धिके लिए कमण्डलुकी ओर देखा तो उसमे जल नहीं और वह ओंधा पड़ा हुआ है, तब तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई । इतनेमें एकाएक क्षुल्लक महाशय भी उधर आ निकले । कमण्डलुका जल यद्यपि क्षुल्लकजीने ही अपने विद्याबलसे सुखा दिया था, तब भी वे बड़े आश्चर्यके साथ भव्यसेनसे बोले—मुनिराज, पास ही एक निर्मल जलका सरोवर भरा हुआ है, वहीं जाकर शुद्धि कर लीजिए न ? भव्यसेनने अपने पदस्थपर, अपने कर्त्तव्यपर कुछ भी ध्यान न देकर जैसा क्षुल्लकने कहा, वैसा ही कर लिया ।

सच बात तो यह है—

किं करोति न मूढ़ात्मा कार्यं मिथ्यात्वदूषितः ।
न स्यान्मुक्तिप्रदं ज्ञानं चरित्रं दुर्दशामपि ।
उद्गतो भास्करश्चापि किं धूकस्य सुखायते ॥
मिथ्यादृष्टे· श्रुत शास्त्रं कुमार्गाय प्रवर्तते ।
यथा मृष्ट भवेत्कष्टं सुदुग्धं तुम्बिकागतम् ॥

—ब्रह्म नेमिदत्त

अर्थात्—मूर्ख पुरुष मिथ्यात्वके वश होकर कौन बुरा काम नहीं करते ? मिथ्यादृष्टियोंका ज्ञान और चारित्र मोक्षका कारण नहीं होता । जैसे सूर्यके उदयसे उल्लूको कभी सुख नहीं होता । मिथ्यादृष्टियोंका शास्त्र सुनना, शास्त्रभ्यास करना केवल कुमार्गमें प्रवृत्त होनेका कारण है । जैसे मीठा दूध भी तुबड़ीके सम्बन्धसे कड़वा हो जाता है । इन सब बातोंकी विचार क्षुल्लकने भव्यसेन के आचरणसे समझ लिया कि ये नाम मात्रके जैनी हैं, पर वास्तवमें इन्हें जैनधर्मपर श्रद्धान नहीं, ये मिथ्यात्वी हैं । उस दिनसे चन्द्रप्रभने भव्यसेनका नाम अभव्यसेन रक्खा । सच बात है दूराचारसे क्या नहीं होता ?

क्षुल्लकने भव्यसेनकी परीक्षा कर अब रेवती रानीकी परीक्षा करनेका विचार किया । दूसरे दिन उसने अपने विद्याबलसे कमलपर बैठे हुए और वेदोंका उपदेश करते हुए चतुर्मुख ब्रह्माका वेष बनाया और शहरसे पूर्व दिशाको ओर कुछ दूरीपर जंगलमें वह ठहरा । यह हाल सुनकर राजा, भव्यसेन आदि सभी वहाँ गए और ब्रह्माजीको उन्होंने नमस्कार किया । उनके पावों पड़ कर वे बड़े खुश हुए । राजाने चलते समय अपनी प्रिया रेवतीसे भी ब्रह्माजीकी वन्दनाके लिए चलने को कहा था, पर रेवती सम्यक्त्व रत्नसे भूषित थी, जिनभगवान्की अनन्यभक्त थी; इसलिए वह नहीं गई । उसने राजासे कहा—महाराज, मोक्ष और सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रका प्राप्त करानेवाला सच्चा ब्रह्मा हो ही नहीं सकता और जिस ब्रह्माकी वन्दनाके लिए आप जा रहे हैं, वह ब्रह्मा नहीं है; किन्तु कोई धूर्त ठगनेके लिए ब्रह्माका वेष लेकर आया है । मैं तो नहीं चलूँगी ।

दूसरे दिन क्षुल्लकने गरुड़पर बैठे हुए, चतुर्बाहु, शंख, चक्र, गदा आदिसे युक्त और दैत्योंको कॅपानेवाले वैष्णव भगवान्‌का वेष बनाकर दक्षिण दिशामें अपना डेरा जमाया ।

तीसरे दिन उस बुद्धिमान् क्षुल्लकने बैलपर बैठे हुए, पार्वतीके मुखकमलको देखते हुए, सिरपर जटा रखाये हुए, गणपति युक्त और जिन्हें हजारो देव आ आकर नमस्कार कर रहे है, ऐसा शिवका वेष धारण कर पश्चिम दिशाकी शोभा बढ़ाई ।

चौथे दिन उसने अपनी मायासे सुन्दर समवशरणमे विराजे हुए, आठ प्रातिहार्योसे विभूषित, मिथ्यादृष्टियोंके मानको नष्ट करनेवाले मानस्तभादिसे युक्त, निर्ग्रन्थ और जिन्हे हजारो देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आ आकर नमस्कार करते हैं, ऐसा संसार श्रेष्ठ तीर्थकरका वेष बनाकर पूर्व दिशाको अलंकृत किया । तीर्थकर भगवान्‌का आगमन सुनकर सबको बहुत आनन्द हुआ । सब प्रसन्न होते हुए भक्तिपूर्वक उनको वन्दना करनेको गये । राजा, भव्यसेन आदि भी उनमें शामिल थे । तीर्थकर भगवान्‌के दर्शनोके लिये भी रेवती रानीको न जाती हुई देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ । बहुतोने उससे चलनेके लिये आग्रह भी किया, पर वह न गई । कारण वह सम्यक्त्वरूप मौलिक रत्नसे भूषित थी, उसे जिनभगवान्‌के वचनोंपर पूरा विश्वास था कि तीर्थकर परम देव चौबीस ही होते हैं और वासुदेव नौ और रुद्र ग्यारह होते हैं । फिर उनकी सख्याको तोड़नेवाले ये दशवें वासुदेव, बारहवें रुद्र और पच्चीसवें तीर्थकर आ कहॉसे सकते हैं ? वे तो अपने-अपने कर्मोके अनुसार जहॉ उन्हें जाना था वहॉ चले गये । फिर यह नई सृष्टि कैसी ? इनमें न तो कोई सच्चा रुद्र है, न वासुदेव है, और न तीर्थकर है, किन्तु कोई मायावी ऐन्द्रजालिक अपनी धूर्ततासे लोगोंको ठगनेके लिये आया है । यह विचार कर रेवती रानी तीर्थकरकी वन्दनाके लिये भी नहीं गई । सच है कहीं वायुसे मेरु पर्वत भी चला है ?

इसके बाद चन्द्रप्रभ, क्षुल्लक-वेष हीमे, पर अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त तथा अत्यन्त मलिन शरीर होकर रेवतीके घर भिक्षाके लिये पहुॅचे । ऑगनमे पहुॅचते ही वे मूर्च्छा खाकर पृथ्वीपर धड़ामसे गिर पड़े । उन्हे

देखते ही धर्मवत्सला रेवती रानी हाय-हाय कहती हुई उनके पास दौड़ी गई और वड़ी भक्ति और विनयसे उसने उन्हें उठाकर सचेत किया। इसके वाद अपने महलमें लिवा जाकर वड़े कोमल और पवित्र भावोंसे उसने उन्हें प्रासुक आहार कराया। सच है जो दयावान होते हैं उनको वुद्धि दान देनेमें स्वभावहीसे तत्पर रहती है।

क्षुल्लकको अवतक भी रेवतीकी परीक्षासे सन्तोप नहीं हुआ। सो उन्होंने भोजन करनेके साथ ही वमन कर दिया, जिसमें अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी क्षुल्लककी यह हालत देखकर रेवतीको बहुत दुःख हुआ। उसने वहुत पश्चात्ताप किया कि न जाने क्या अपथ्य मुझ पापिनीके द्वारा दे दिया गया, जिससे इनकी यह हालत हो गई। मेरी इस असावधानताको धिक्कार है। इस प्रकार वहुत कुछ पश्चात्ताप करके उसने क्षुल्लकका शरीर पोंछा और वाद कुछ-कुछ गरम जलसे उसे धोकर साफ किया।

क्षुल्लक रेवतीकी भक्ति देखकर वहुत प्रसन्न हुए। वे अपनी माया समेट कर वड़ी खुशीके साथ रेवतीसे वोले—देवी, संसारश्रेष्ठ मेरे परम गुरु महाराज गुप्ताचार्यकी धर्मवृद्धि तेरे मनको पवित्र करे, जो कि सब सिद्धियोंकी देनेवाली है और तुम्हारे नामसे मैंने यात्रामें जहाँ-जहाँ जिनभगवान्‌की पूजा की है वह भी तुम्हें कल्याणकी देनेवाली हो।

देवी, तुमने जिस संसारश्रेष्ठ और संसार समुद्रसे पार करनेवाले अमूढ़दृष्टि अंगको ग्रहण किया है, उसकी मैंने नाना तरहसे परीक्षा की, पर उसमें तुम्हें अचल पाया। तुम्हारे इस त्रिलोकपूज्य सम्यक्त्वकी कौन प्रशंसा करनेको समर्थ है ? कोई नहीं। इस प्रकार गुणवती रेवती रानीकी प्रशंसा कर और उसे सव हाल कहकर क्षुल्लक अपने स्थान चले गए।

इसके वाद वरुण नृपति और रेवती रानीका वहुत समय सुखके साथ वीता। एक दिन राजाको किसी कारणसे वैराग्य हो गया है। वे अपने शिवकीर्ति नामक पुत्रको राज्य सौंपकर और सब मायाजाल तोड़कर तपस्वी वन गए। साधु वनकर उन्होंने खूव तपश्चर्या की और आयुके अन्तमें समाधिमरण कर वे माहेन्द्रस्वर्गमें जाकर देव हुए।

जिनभगवान्‌की परम भक्त महारानी रेवती भी जिनदीक्षा ग्रहण कर और शक्तिके अनुसार तपश्चर्या कर आयुके अन्तमें ब्रह्मस्वर्गमे जाकर महर्द्धिक देव हुई ।

भव्य पुरुषो, यदि तुम भी स्वर्ग या मोक्ष-सुखको चाहते हो, तो जिस तरह श्रीमती रेवती रानीने मिथ्यात्व छोड़ा उसी तरह तुम भी मिथ्यात्वको छोड़कर स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले, अत्यन्त पवित्र और बड़े-बड़े देव, विद्याधर, राजा महाराजाओसे भक्तिपूर्वक ग्रहण किए हुए जैनधर्मका आश्रय स्वीकार करो ।

''मैं को देखो''

दुनियॉ की ओर मत देखो, अपने आप की ओर देखो । महावीर ने कभी दुनियॉ की ओर दृष्टिपात नहीं किया, यदि किया है तो दुनियाँ के पास जो गुण हैं उन्हें लेने का प्रयास किया महावीर में अपने को देखो, अपने मैं को देखो उन महावीर में ।

अब अपना कार्य एक ही रहा है कि अपने घर में हमारी अज्ञानतावश के कारण हमारे बेहोश होने के फलस्वरूप जो शत्रुओं का आगमन हो चुका है उनको बाहर निकालना । हमारे शत्रु हमारे अन्दर छिपे हैं उन्हें हम निकाल दें बस । पड़ोसी की ओर देखने की कोई आवश्यकता नहीं है । बाहर कोई शत्रु है ही नहीं ।

आ० विद्यासागर जी

उसे सिपाहियोंने देख लिया । वे उसे पकड़नेको दौड़े । क्षुल्लकजी दुवले पतले तो पहले हीसे हो रहे थे, इसलिये वे अपनेको भागनेमें असक्त समझ लाचार होकर जिनेन्द्रभक्तकी ही शरणमें गये और प्रभो, वचाइये ! वचाइये !! यह कहते हुए उनके पॉवोंमें गिर पड़े । जिनेन्द्रभक्तने, "चोर भागा जाता है ! इसे पकड़ना" ऐसा हल्ला सुन करके जान लिया कि यह चोर है और क्षुल्लक वेषमें लोगोंको ठगता फिरता है । यह जानकर भी दर्शनकी निन्दाके भयसे जिनेन्द्रभक्तने क्षुल्लकके पकड़नेको आये हुए सिपाहियोंसे कहा—आप लोग बड़े कम समझ हैं ! आपने वहुत बुरा किया जो एक तपस्वीको चोर बतला दिया । रत्न तो ये मेरे कहनेसे लाये हैं । आप नहीं जानते कि ये वड़े सच्चरित्र साधु हैं ? अस्तु । आगेसे ध्यान रखिये । जिनेन्द्रभक्तके वचनोंको सुनते ही सब सिपाही लोग ठण्डे पड़ गये और उन्हें नमस्कार कर चलते वने ।

जब सब सिपाही चले गये तव जिनेन्द्रभक्तने क्षुल्लकजीसे रत्न लेकर एकान्तमें उनसे कहा—वड़े दुःखकी वात है कि तुम ऐसे पवित्र वेषको धारण कर उसे ऐसे नीच कर्मोंसे लजा रहे हो ? तुम्हें यही उचित है क्या ? याद रक्खो, ऐसे अनर्थोंसे तुम्हें कुगतियोंमे अनन्त काल दुःख भोगना पड़ेंगे । शास्त्रकारोंने पापी पुरुषोंके लिये लिखा है कि—

ये कृत्वा पातकं पापाः पोपयन्ति स्वकं भुवि ।
त्यक्त्वा न्यायक्रमं तेषां महादुःखं भवार्णवे ॥

—व्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—जो पापी लोग न्यायमार्गको छोड़कर और पापके द्वारा अपना निर्वाह करते हैं, वे संसार समुद्रमे अनन्त काल दुःख भोगते हैं । ध्यान रक्खो कि अनीतिसे चलनेवाले और अत्यन्त तृष्णावान तुम सरीखे पापी लोग वहुत ही जल्दी नाशको प्राप्त होते हैं । तुम्हें उचित है, तुम वड़ी कठिनतासे प्राप्त हुए इस मनुष्य जन्मको इस तरह वर्वाद न कर कुछ आत्महित करो । इस प्रकार शिक्षा देकर जिनेन्द्रभक्तने अपने स्थानसे उसे अलग कर दिया ।

इसी प्रकार और भी भव्य पुरुषोंको, दुर्जनोंके मलिन कर्मोंसे निन्दाको प्राप्त होनेवाले सम्यग्दर्शनकी रक्षा करनी उचित है ।

जिनभगवान्‌का शासन पवित्र है, निर्दोष है, उसे जो सदोष बनानेकी कोशिश करते हैं, वे मूर्ख हैं, उन्मत्त हैं। ठीक भी है उन्हें वह निर्दोष धर्म अच्छा जान भी नहीं पड़ता। जैसे पित्तज्वरवालेको अमृतके समान मीठा दूध भी कड़वा ही लगता है।

दूसरे के न्यायधीश मत बनना। दूसरा स्वयं जिम्मेदार है अपने कृत्यों के लिए, अपने कृत्यों का फल स्वयं पा लेगा। तुम बीच में विरोध, और व्याख्या मत करना। और ध्यान रखना, जैसे दूसरे के गुणों को देखना जरूरी है, अपने दोषों को देखना जरूरी नहीं है? अपने गुणों को देखना जरूरी नहीं.....अपने दुर्गणों को देखना जरूरी है, अपने गुणों को देखना जरूरी नहीं है। क्योंकि जो व्यक्ति अपने गुणों को बहुत देखने लगता है, वो फूलने लगता है उसका अहंकार मजबूत होने लगता हैं। अपने गुणों की कोई चर्चा मत करना। क्योंकि अगर वे हैं तो उनकी सुगंध अपने से पहुंच जायेगी। अगर वे नहीं हैं तो चर्चा करने से कुछ सार नहीं।

ब्र० राजेश

चित्र लिखेसे होकर महाराजकी ओर देखने लगे । सबकी आँखोंमें पानी भर आया । पर किसकी मजाल जो उनकी आज्ञाका प्रतिवाद कर सके । जल्लाद लोग उसी समय वारिषेणको बध्यभूमिमे ले गये । उनमेसे एकने तलवार खींचकर बड़े जोरसे वारिषेणकी गर्दनपर मारी, पर यह क्या आश्चर्य ? जो उसकी गर्दनपर बिलकुल घाव नहीं हुआ, किन्तु वारिषेणको उलटा यह जान पडा—मानो किसीने उसपर फूलोंकी माला फैंकी है । जल्लाद लोग देखकर दॉतोंमे ॲगुली दबा गये । वारिषेणके पुण्यने उसकी रक्षा की । सच है—

अहो पुण्येन तीव्राग्निर्जलत्वं याति भूतले,
समुद्रः स्थलतामेति दुर्विषं च सुधायते ।
शत्रुर्मित्रत्वमाप्नोति विपत्तिः सम्पदायते,
तस्मात्सुखैषिणो भव्याः पुण्यं कुर्वन्तु निर्मलम् ॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—पुण्यके उदयसे अग्नि जल बन जाती है, समुद्र स्थल हो जाताहैं, विष अमृत हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है और विपत्ति सम्पत्तिके रूपमे परिणित हो जाती है । इसलिए जो लोग सुख चाहते हैं, उन्हें पवित्र कार्यो द्वारा सदा पुण्य उत्पन्न करना चाहिये ।

जिनभगवान्‌की पूजा करना, दान देना, व्रत उपवास करना, सदा विचार पवित्र और शुद्ध रखना, परोपकार करना, हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापकर्मोका न करना, ये पुण्य उत्पन्न करनेके कारण हैं ।

वारिषेणकी यह हालत देखकर सब उसकी जय जयकार करने लगे । देवोंने प्रसन्न होकर उसपर सुगंधित फूलोंकी वर्षा की । नगरवासियोंको इस समाचारसे बड़ा आनन्द हुआ । सबने एक स्वरसे कहा कि, वारिषेण तुम धन्य हो, तुम वास्तवमे साधु पुरुष हो, तुम्हारा चारित्र बहुत निर्मल है, तुम जिनभगवान्‌के सच्चे सेवक हो, तुम पवित्र पुरुष हो, तुम जैनधर्मके सच्चे पालन करनेवाले हो । पुण्य-पुरुष, तुम्हारी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है । सच है, पुण्यसे क्या नहीं होता ?

श्रेणिकने जब इस अलौकिक घटनाका हाल सुना तो उन्हें भी अपने

अविचारपर बड़ा पश्चाताप हुआ । वे दुःखी होकर बोले—

ये कुर्वन्ति जडात्मानः कार्यं लोकेऽविचार्य च ।
ते सीदन्ति महन्तोपि मादृशा दुःखसागरे ॥

• —ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—जो मूर्ख लोग आवेशमे आकर बिना विचारे किसी कामको कर बैठते हैं, वे फिर बड़े भी क्यो न हो, उन्हे मेरी तरह दुःख ही उठाने पड़ते हैं । इसलिये चाहे कैसा ही काम क्यों न हो, उसे बड़े विचारके साथ करना चाहिए ।

श्रेणिक बहुत कुछ पश्चाताप करके पुत्रके पास श्मशानमें आये । वारिषेणकी पुण्यमूर्तिको देखते ही उनका हृदय पुत्रप्रेमसे भर आया । उनकी ऑखोंसे ऑसू बह निकले । उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर रोते-रोते कहा—प्यारे पुत्र, मेरी मूर्खताको क्षमा करो ! मैं क्रोधके मारे अन्धा बन गया था, इसलिए आगे पीछेका कुछ सोच विचार न कर मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया । पुत्र, पश्चात्तापसे मेरा हृदय जल रहा है, उसे अपने क्षमारूपी जलसे बुझाओ ! दुःखके समुद्रमे मैं गोते खा रहा हूँ, मुझे सहारा देकर निकालो !

अपने पूज्य पिताकी यह हालत देखकर वारिषेणको बड़ा कष्ट हुआ । वह बोला—पिताजी, आप यह क्या कहते हैं ? आप अपराधी कैसे ? आपने तो अपने कर्त्तव्यका पालन किया है और कर्त्तव्य पालन करना कोई अपराध नहीं है । मान लीजिये कि यदि आप पुत्र-प्रेमके वश होकर मेरे लिए ऐसे दण्डकी आज्ञा न देते, तो उससे प्रजा क्या समझती ? चाहे मैं अपराधी नहीं भी था तब भी क्या प्रजा इस बातको देखती ? वह तो यही समझती कि आपने मुझे अपना पुत्र जानकर छोड़ दिया । पिताजी, आपने बहुत ही बुद्धिमानी और दूरदर्शिताका काम किया है । आपकी नीतिपरायणता देखकर मेरा हृदय आनन्दके समुद्रमें लहरें ले रहा है । आपने पवित्र वंशकी आज लाज रख ली । यदि आप ऐसे समयमें अपने कर्त्तव्यसे जरा भी खिसक जाते, तो सदाके लिए अपने कुलमें कलंकका टीका लग जाता । इसके लिए तो आपको प्रसन्न होना चाहिए न कि दुखी । हॉ इतना जरूर हुआ कि मेरे इस

समय पापकर्मका उदय था; इसलिए मैं निरपराधी पाकर भी अपराधी बना। पर इसका मुझे कुछ खेद नहीं। क्योकि—

अवश्य ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।

—वादीभसिंह

अर्थात्—जो जैसा कर्म करता है उसका शुभ या अशुभ फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। फिर मेरे लिए कर्मोंका फल भोगना कोई नई बात नहीं है।

पुत्रके ऐसे उन्नत और उदार विचार सुनकर श्रेणिक बहुत आनन्दित हुए। वे सब दु.ख भूल गये। उन्होंने कहा, पुत्र, सत्पुरुषोंने बहुत ठीक लिखा है—

चंदनं घृष्यमाणं च दह्यमानी यथाऽगुरुः।
न याति विक्रियां साधुः पीडितोऽपि तथाऽपरैः॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—चन्दनको कितना भी घिसिये, अगुरुको खूब जलाइये, उससे उनका कुछ न बिगड़कर उलटा उनमेंसे अधिक-अधिक सुगन्ध निकलेगी। उसी तरह सत्पुरुषोको दुष्ट लोग कितना ही सतावे, कितना ही कष्ट दें, पर वे उससे कुछ भी विकारको प्राप्त नहीं होते, सदा शान्त रहते हैं और अपनी बुराई करनेवालेका भी उपकार ही करते हैं।

वारिषेणके पुण्यका प्रभाव देखकर विद्युत् चोरको बड़ा भय हुआ। उसने सोचा कि राजाको मेरा हाल मालूम हो जानेसे वे मुझे बहुत कड़ी सजा देगे। इससे यही अच्छा है कि मैं स्वयं ही जाकर उनसे सब सच्चा-सच्चा हाल कह दूँ। ऐसा करनेसे वे मुझे क्षमा भी कर सकेगे। यह विचार कर विद्युत् चोर महाराजके सामने जा खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उनसे बोला—प्रभो, यह सब पापकर्म मेरा है। पवित्रात्मा वारिषेण सर्वथा निर्दोष है। पापिनी वेश्याके जालमें फँसकर ही मैंने यह नीच काम किया था; पर आजसे मैं कभी ऐसा काम नहीं करूँगा। मुझे दया करके क्षमा कीजिये।

विद्युत् चोरको अपने कृतकर्मके पश्चात्तापसे दुखी देख श्रेणिक उसे

अभय देकर अपने प्रिय पुत्र वारिषेणसे बोले—पुत्र, अब राजधानीमें चलो, तुम्हारी माता तुम्हारे वियोगसे बहुत दुखी हो रही होंगी ।

उत्तरमें वारिषेणने कहा—पिताजी, मुझे क्षमा कीजिये । मैंने संसार की लीला देख ली । मेरी आत्मा उसमें और प्रवेश करनेके लिये मुझे रोकती है । इसलिये मैं अब घरपर न जाकर जिनभगवान्‌के चरणोंका आश्रय ग्रहण करूँगा । सुनिये, अबसे मेरा कर्तव्य होगा कि मैं हाथ ही में भोजन करूँगा, सदा वनमें रहूँगा और मुनि मार्गपर चलकर अपना आत्महित करूँगा । मुझे अब संसारमे पैठनेकी अच्छा नहीं, विषयवासनासे प्रेम नहीं । मुझे संसार दुःखमय जान पड़ता है, इसलिये मैं जान-बूझकर अपनेको दुःखोंमे फँसाना नहीं चाहता । क्योंकि—

निजे पाणौ दीपे लसति भुवि कूपे निपतता फलं किं तेन स्यादिति—

—जीवंधरचम्पू

अर्थात्—हाथमें प्रदीप लेकर भी यदि कोई कुँएमे गिरना चाहे, तो बतलाइये उस दीपकसे क्या लाभ ? जब मुझे दो अक्षरोका ज्ञान है और संसारकी लीलासे मैं अपरिचित नहीं हूँ; इतना होकर भी फिर मैं यदि उसमें फसूँ, तो मुझसा मूर्ख और कौन होगा ? इसलिये आप मुझे क्षमा कीजिये कि मैं आपकी पालनीय आज्ञाका भी बाध्य होकर विरोध कर रहा हूँ । यह कहकर वारिषेण फिर एक मिनटके लिए भी न ठहर कर वनकी ओर चल दिया और श्रीसूरदेव मुनिके पास जाकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली ।

तपस्वी बनकर वारिषेण मुनि बड़ी दृढ़ताके साथ चारित्रका पालन करने लगे । वे अनेक देशो-विदेशोंमें घूम-घूम कर धर्मोपदेश करते हुए एकबार 'पलाशकूट' नामक शहरमें पहुँचे । वहाँ श्रेणिकका मन्त्री अग्निभूति रहता था । उसका एक पुष्पडाल नामका पुत्र था । वह बहुत धर्मात्मा था और दान, व्रत, पूजा आदि सत्कर्मोके करनेमें सदा तत्पर रहा करता था । वह वारिषेण मुनिको भिक्षार्थ आये हुए देखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके सामने गया और भक्तिपूर्वक उनका आह्वान कर उसने नवधा भक्ति सहित उन्हे प्रासुक आहार दिया । आहार करके जब वारिषेण मुनि वनमे जाने लगे तब पूष्पडाल भी कुछ तो भक्तिसे, कुछ बालपनेकी मित्रताके नातेसे और कुछ

राजपुत्र होनेके लिहाजसे उन्हें थोड़ी दूर पहुँचा आनेके लिए अपनी स्त्रीसे पूछकर उनके पीछे-पीछे चल दिया। वह दूरतक जानेकी इच्छा न रहते हुए भी मुनिके साथ-साथ चलता गया। क्योंकि उसे विश्वास था कि थोड़ी दूर गये बाद ये मुझे लौट जानेके लिए कहेंगे ही। पर मुनिने उसे कुछ नहीं कहा, तब उसकी चिन्ता बढ़ गई। उसने मुनिको यह समझानेके लिये, कि मैं शहरसे बहुत दूर निकल आया हूँ, मुझे घरपर जल्दी लौट जाना है, कहा—कुमार, देखते हैं यह वही सरोवर है, जहॉ हम आप खेला करते थे; यह वही छायादार और उन्नत आमका वृक्ष है, जिसके नीचे आप हम बाललीलाका सुख लेते थे; और देखो, यह वही विशाल भूभाग है, जहॉ मैंने और आपने बालपनमें अनेक खेल खेले थे। इत्यादि अपने पूर्व परिचित चिह्नोंको बार-बार दिखलाकर पुष्पडालने मुनिका ध्यान अपने दूर निकल आनेकी ओर आकर्षित करना चाहा, पर मुनि उसके हृदयकी बात जानकर भी उसे लौट जानेको न कह सके। कारण वैसा करना उनका मार्ग नहीं था। इसके विपरीत उन्होंने पुष्पडालके कल्याणकी इच्छासे उसे खूब वैराग्यका उपदेश देकर मुनिदीक्षा दे दी। पुष्पडाल मुनि हो गया, संयमका पालन करने लगा और खूब शास्त्रोंका अभ्यास करने लगा; पर तब भी उसकी विषयवासना न मिटी, उसे अपनी स्त्रीकी बार-बार याद आने लगी। आचार्य कहते हैं कि—

धिक्कामं धिड्महामोहं धिड्भोगान्यैस्तु वंचितः ।
सन्मार्गेपि स्थितो जन्तुर्न जानाति निजं हितम् ॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—उस कामको, उस मोहको, उन भोगोंको धिक्कार है, जिनके वश होकर उत्तम मार्गमें चलनेवाले भी अपना हित नहीं कर पाते। यही हाल पुष्पडालका हुआ, जो मुनि होकर भी वह अपनी स्त्रीको हृदय से न भुला सका।

इसी तरह पुष्पडालको बारह वर्ष बीत गये। उसकी तपश्चर्या सार्थक होनेके लिए गुरुने उसे तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा दी और उसके साथ वे भी चले। यात्रा करते-करते एक दिन वे भगवान् वर्धमानके समवशरणमें पहुँच गये। भगवान्को उन्होंने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उस समय वहॉ गंधर्वदेव भगवान्की भक्ति कर रहे थे। उन्होंने कामकी निन्दामें एक पद्य पढा। वह पद्य

यह था—

मइलकुचेली दुम्मणी णाहे पवसियएण ।
कह जीवेसइ धणियधर उब्भते विरहेण ।।

—कोई कवि

अर्थात्—स्त्री चाहे मैली हो, कुचेली हो, हृदयकी मलिन हो, पर वह भी अपने पतिके प्रवासी होनेपर, विदेशमे रहनेपर, पतिवियोगसे वन-वन, पर्वतो-पर्वतोमे मारी-मारी फिरती है अर्थात् कामके वश होकर नहीं करनेके काम भी कर डालती है ।

उक्त पद्यको सुनते ही पुष्पडाल मुनि भी कामसे पीड़ित होकर अपनी स्त्रीकी प्राप्तिके लिये अधीर हो उठे । वे व्रतसे उदासीन होकर अपने शहरकी ओर रवाना हुए । उनके हृदयकी बात जानकर वारिषेण मुनि भी उन्हें धर्ममे दृढ़ करनेके लिये उनके साथ-साथ चल दिये ।

गुरु और शिष्य अपने शहरमें पहुँचे । उन्हे देखकर सती चेलनाने सोचा—कि जान पडता है, पुत्र चारित्रसे चलायमान हुआ है । नहीं तो ऐसे समय इसके यहॉ आनेकी क्या आवश्यकता थी ? वह विचार कर उसने उसकी परीक्षाके लिए उसके बैठनेको दो आसन दिये । उनमे एक काष्ठका था और दूसरा रत्नजडित । वारिषेण मुनि रत्नजड़ित आसनपर न बैठकर काष्ठके आसनपर बैठे । सच है—जो सच्चे मुनि होते हैं वे कभी ऐसा तप नहीं करते जिससे उनके आचरणमे किसीको सन्देह हो । इसके बाद वारिषेण मुनिने अपनी माताके सन्देहको दूर करके उनसे कहा—माता, कुछ समयके लिये मेरी सब स्त्रियोको यहॉ बुलवा तो लीजिये । महारानीने वैसा ही किया । वारिषेणकी सब स्त्रियॉ खूब वस्त्राभूषणोसे सजकर उनके सामने आ उपस्थित हुई । वे बडी सुन्दरी थीं । देवकन्याये भी उनके रूपको देखकर लज्जित होती थीं । मुनिको नमस्कार कर वे सब उनका आज्ञाकी प्रतीक्षाके लिये खडी रहीं ।

वारिषेणने तब अपने शिष्य पुष्पडालसे कहा—क्यो देखते हो न ? ये मेरी स्त्रियॉ हैं, यह राज्य है, यह सम्पत्ति है, यदि तुम्हे ये अच्छी जान पडती हैं, तुम्हारा ससारसे प्रेम है, तो इन्हे तुम स्वीकार करो । वारिषेण मुनिराजका

यह आश्चर्यमे डालनेवाला कर्त्तव्य देखकर पुष्पडाल बड़ा लज्जित हुआ। उसे अपनी मूर्खतापर बहुत खेद हुआ। वह मुनिके चरणोंको नमस्कार कर बोला—प्रभो, आप धन्य हैं, आपने लोभरूपी पिशाचको नष्ट कर दिया है, आपहीने जिनधर्मका सच्चा सार समझा है। संसारमें वे ही बड़े पुरुष हैं, महात्मा हैं, जो आपके समान संसारकी सब सम्पत्तिको लात मारकर वैरागी बनते हैं। उन महात्माओके लिए फिर कौन वस्तु संसारमें दुर्लभ रह जाती है ? दयासागर, मैं तो सचमुच जन्मान्ध हूँ, इसीलिये तो मौलिक तपरत्नको प्राप्त कर भी अपनी स्त्रीको चित्तमें अलग नहीं कर सका। प्रभो, जहाँ आपने बारह वर्ष पर्यन्त खूब तपश्चर्या की वहाँ मुझ पापीने इतने दिन व्यर्थ गँवा दिये—सिवा आत्माको कष्ट पहुँचानेके कुछ नहीं किया। स्वामी, मैं बहुत अपराधी हूँ, इसलिये दया करके मुझे अपने पापका प्रायश्चित्त देकर पवित्र कीजिये। पुष्पडालके भावोंका परिवर्तन और कृतकर्मके पश्चात्तापसे उनके परिणामोकी कोमलता तथा पवित्रता देखकर वारिषेण मुनिराज बोले—धीर, इतने दुखी न बनिये। पापकर्मोके उदयसे कभी-कभी अच्छे-अच्छे विद्वान् भी हतबुद्धि हो जाते हैं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। यही अच्छा हुआ जो तुम पीछे अपने मार्गपर आ गये। इसके बाद उन्होंने पुष्पडाल मुनिको उचित प्रायश्चित्त देकर पीछा धर्ममे स्थिर किया, अज्ञानके कारण सम्यग्दर्शनसे विचलित देखकर उनका धर्ममे स्थितिकरण किया।

पुष्पडाल मुनि गुरु महाराजकी कृपासे अपने हृदयको शुद्ध बनाकर बड़े वैराग्यभावोंसे कठिन-कठिन तपश्चर्या करने लगे, भूख प्यासकी कुछ परवाह न कर परीषह सहने लगे।

इसी प्रकार अज्ञान वा मोहसे कोई धर्मात्मा पुरुष धर्मरूपी पर्वतसे गिरता हो, तो उसे सहारा देकर न गिरने देना चाहिये। जो धर्मज्ञ पुरुष इस पवित्र स्थितिकरण अंगका पालन करते हैं, समझो कि वे स्वर्ग और मोक्ष सुखके देनेवाले धर्मरूपी वृक्षको सींचते हैं। शरीर, सम्पत्ति, कुटुम्ब आदि अस्थिर हैं, विनाशक हैं, इनकी रक्षा भी जब कभी-कभी सुख देनेवाली हो जाती है तब अनन्तसुख देनेवाले धर्मकी रक्षाका कितना महत्त्व होगा, यह सहजमें जाना जा सकता है। इसलिये धर्मात्माओको उचित है कि वे दु:ख

देनेवाले प्रमादको छोड़कर संसार-समुद्रसे पार करनेवाले पवित्र धर्मका सेवन करें ।

श्रीवारिषेण मुनि, जो कि सदा जिनभगवान्‌की भक्तिमें लीन रहते थे, तप पर्वतसे गिरते हुए पुष्पडाल मुनिको हाथका सहारा देकर तपश्चर्या और ध्यानाध्ययन करनेके लिये वनमे चले गये, वे प्रसिद्ध महात्मा आत्मसुख प्रदान कर मुझे भी संसार-समुद्रसे पार करे ।

जीवन जीने के लिए दृष्टि बदलना अनिवार्य है । औरों को स्वार्थी मतलबी और तुच्छ मानकर अपने आप को ''सुपर'' बताने की घटिया मनोवृत्ति खतरनाक है ।

दूध पानी को मिला सकता है विजातीय होने पर भी हम सजातीय को भी नहीं मिला पाते ! भाई एक डोरी से बंध जाओ फिर देखो परस्पर वात्सल्य कैसा अलौकिक आनंद देता है

आ० विद्यासागर जी

१२. विष्णुकुमार मुनिकी कथा

अनन्त सुख प्रदान करनेवाले जिनभगवान् जिनवाणी और जैन साधुओंको नमस्कार कर मैं वात्सल्य अंगके पालन करनेवाले श्री विष्णुकुमार मुनिराजकी कथा लिखता हूँ ।

अवन्तिदेशके अन्तर्गत उज्जयिनी बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध नगरी है । जिस समयका यह उपाख्यान है, उस समय उसके राजा श्रीवर्मा थे । वे बड़े धर्मात्मा थे, सब शास्त्रोंके अच्छे विद्वान् थे, विचारशील थे, और अच्छे शूरवीर थे । वे दुराचारियोंको उचित दण्ड देते और प्रजाका नीतिके साथ पालन करते । सुतरां प्रजा उनकी बड़ी भक्त थी ।

उनकी महारानीका नाम था श्रीमती । वह भी विदुषी थी । उस समय की स्त्रियोंमें वह प्रधान सुन्दरी समझी जाती थी । उसका हृदय बड़ा दयालु था । वह जिसे दुखी देखती, फिर उसका दुःख दूर करनेके लिए जी जानसे प्रयत्न करती । महारानीको सारी प्रजा देवी समझती थी ।

श्रीवर्माके राजमंत्री चार थे । उनके नाम थे बलि, वृहस्पति, प्रह्लाद और नमुचि । ये चारों ही धर्मके कट्टर शत्रु थे । इन पापी मंत्रियोंसे युक्त राजा ऐसे जान पड़ते थे मानों जहरीले सर्पसे युक्त जैसे चन्दनका वृक्ष हो ।

एक दिन ज्ञानी अकम्पनाचार्य देश-विदेशोंमें पर्यटन कर भव्य पुरुषोंको धर्मरूपी अमृतसे सुखी करते हुए उज्जयिनीमें आये । उनके साथ सातसौ मुनियोंका बड़ा भारी संघ था । वे शहर के बाहर एक पवित्र स्थानमें ठहरे । अकम्पनाचार्यको निमित्तज्ञानसे उज्जयिनीकी स्थिति अनिष्ट कर जान पड़ी । इसलिए उन्होंने सारे संघसे कह दिया कि देखो, राजा वगैरह कोई आवे पर आप लोग उनसे वादविवाद न कीजियेगा । नहीं तो सारा संघ बड़े कष्टमें पड़ जायेगा, उसपर घोर उपसर्ग आवेगा । गुरुकी हितकर आज्ञाको स्वीकार कर सब मुनि मौनके साथ ध्यान करने लगे । सच है—

शिष्यास्तेत्र प्रशस्यन्ते ये कुर्वन्ति गुरोर्वचः ।
प्रीतितो विनयोपेता भवन्त्यन्ये कुपुत्रवत् ॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्–शिष्य वे ही प्रशसाके पात्र हैं, जो विनय और प्रेमके साथ अपने गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं । इसके विपरीत चलनेवाले कुपुत्रके समान निन्दाके पात्र है ।

अकम्पनाचार्यके आनेके समाचार शहरके लोगोंको मालूम हुए । वे पूजाद्रव्य लेकर बड़ी भक्तिके साथ आचार्यकी वन्दनाको जाने लगे । आज एकाएक अपने शहरमे आनन्दकी धूमधाम देखकर महलपर बैठे हुए श्रीवर्माने मंत्रियोंसे पूछा–ये सब लोग आज ऐसे सजधजकर कहाँ जा रहे हैं ? उत्तरमें मंत्रियोंने कहा–महाराज, सुना जाता है कि अपने शहरमे नंगे जैन साधु आये हुये हैं । ये सब उनकी पूजाके लिए जा रहे हैं । राजाने प्रसन्नताके साथ कहा–तब तो हमें भी चलकर उनके दर्शन करना चाहिए । वे महापुरुष होंगे ! यह विचार कर राजा भी मत्रियोके साथ आचार्यके दर्शन करनेको गए । उन्हें आत्मध्यानमे लीन देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए । उन्होने क्रमसे एक-एक मुनिको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया । सब मुनि अपने आचार्यकी आज्ञानुसार मौन रहे । किसीने भी उन्हें धर्मवृद्धि नहीं दी । राजा उनकी वन्दना कर वापिस महल लौट चले । लौटते समय मत्रियोंने उनसे कहा–महाराज, देखा साधुओंको ? बेचारे बोलना तक भी नहीं जानते, सब नितान्त मूर्ख हैं । यही तो कारण है कि सब मौनी बैठे हुए हैं । उन्हें देखकर सर्व साधारण तो यह समझेगे कि ये सब आत्मध्यान कर रहे हैं, बड़े तपस्वी हैं । पर यह इनका ढोग है । अपनी सब पोल न खुल जाय, इसलिए उन्होने लोगोंको धोखा देनेको यह कपटजाल रचा है । महाराज, ये दाम्भिक हैं । इस प्रकार त्रैलोक्यपूज्य और परम शान्त मुनिराजोंकी निन्दा करते हुए ये मलिनहृदयी मंत्री राजाके साथ लौट के आ रहे थे कि रास्तेमे इन्हे एक मुनि मिल गए, जो कि शहरसे आहार करके वनकी ओर आ रहे थे । मुनिको देखकर इन पापियोने उनकी हॅसी की, महाराज, देखिए वह एक बैल और पेट भरकर चला आ रहा है । मुनिने मंत्रियोंके निन्दावचनोको सुन लिया । सुनकर भी उनका कर्त्तव्य था कि वे शान्त रह जाते, पर वे निन्दा न सह सके । कारण वे आहारके लिए शहरमे चले गये थे, इसलिए उन्हें अपने आचार्य महाराजकी आज्ञा मालूम न थी । मुनिने यह समझ कर, कि इन्हें अपनी विद्याका बडा अभिमान है, उसे मैं चूर्ण

करूँगा, कहा—तुम व्यर्थ क्यों किसीकी बुराई करते हो ? यदि तुममे कुछ विद्या हो, आत्मबल हो, तो मुझसे शास्त्रार्थ करो ! फिर तुम्हें जान पड़ेगा कि बैल कौन है ? भला वे भी तो राजमंत्री थे, उसपर भी दुष्टता उनके हृदयमें कूट-कूटकर भरी हुई थी; फिर वे कैसे एक अकिंचन्य साधुके वचनोंको सह सकते थे ? उन्होने कह तो दिया कि हम ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया । अभिमानमे आकर उन्होने कह तो दिया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे पर जब शास्त्रार्थ हुआ तब उन्हें जान पड़ा कि शास्त्रार्थ करना बच्चों का सा खेल नहीं है । एक ही मुनिने अपने स्याद्वादके बलसे बातकी बातमे चारो मंत्रियोंको पराजित कर दिया । सच है—एक ही सूर्य सारे संसार के अन्धकारको नष्ट करनेके लिए समर्थ है ।

विजय लाभकर श्रुतसागरमुनि अपने आचार्यके पास आये । उन्होंने रास्तेकी सब घटना आचार्यसे ज्योंकी त्यों कह सुनाई । सुनकर आचार्य खेदके साथ बोले—हाय ! तुमने बहुत ही बुरा किया, जो उनसे शास्त्रार्थ किया । तुमने अपने हाथोसे सारे संघका घात किया, संघकी अब कुशल नहीं है । अस्तु, जो हुआ, अब यदि तुम सारे संघकी जीवनरक्षा चाहते हो, तो पीछे जाओ और जहॉ मत्रियों के साथ शास्त्रार्थ हुआ है, वहीं जाकर कायोत्सर्ग ध्यान करो । आचार्यकी आज्ञाको सुनकर श्रुतसागर मुनिराज जरा भी विचलित नहीं हुए । वे सघकी रक्षाके लिए उसी समय वहॉसे चल दिये और शास्त्रार्थकी जगहपर आकर मेरुकी तरह निश्चल हो बड़े धैर्यके साथ कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे ।

शास्त्रार्थ मुनिसे पराजित होकर मंत्री बड़े लज्जित हुए । अपने मानभंगका बदला चुकानेका विचार कर मुनिवधके लिये रात्रि समय वे चारो शहरसे बाहर हुए । रास्तेमे श्रुतसागर मुनि ध्यान करते हुए मिले । पहले उन्होने अपने मानभग करनेवालेहीको परलोक पहुॅचा देना चाहा । उन्होने मुनिकी गर्दन काटने को अपनी तलवारको म्यानसे खींचा और एक ही साथ उनका काम तमाम करनेके विचारसे उनपर वार करना चाहा कि, इतनेमे मुनिके पुण्य प्रभावसे पुरदेवीने आकर उन्हें तलवार उठाये हुए ही कील दिये ।

प्रात काल होते ही बिजलीकी तरह सारे शहरमे मंत्रियों की दुष्टताका हाल फैल गया । सब शहर उनके देखनेको आया । राजा भी आये । सबने

एक स्वरसे उन्हे धिक्कारा । है भी तो ठीक, जो पापी लोग निरपराधोंको कष्ट पहुँचाते हैं वे इस लोकमे भी घोर दुःख उठाते हैं और परलोकमे नरकोंके असह्य दु.ख सहते हैं । राजा ने उन्हें बहुत धिक्कार कर कहा—पापियो, जब तुमने मेरे सामने इन निर्दोष और ससारमात्रका उपकार करनेवाले मुनियो की निन्दा की थी, तब मैं तुम्हारे विश्वासपर निर्भर रहकर यह समझा था कि संभव है मुनि लोग ऐसे ही हो, पर आज मुझे तुम्हारी नीचताका ज्ञान हुआ, तुम्हारे पापी हृदयका पता लगा । तुम इन्हीं निर्दोष साधुओकी हत्या करनेको आये थे न ? पापियो, तुम्हारा मुख देखना भी महापाप है । तुम्हे तुम्हारे इस घोर कर्मका उपयुक्त दण्ड तो यही देना चाहिये था कि जैसा तुम करना चाहते थे, वही तुम्हारे लिये किया जाता । पर पापियो, तुम ब्राह्मण कुलमे उत्पन्न हुए हो और तुम्हारी कितनी ही पीढियॉ मेरे यहॉ मत्रीपदपर प्रतिष्ठा पा चुकी हैं, इसलिये उसके लिहाजसे तुम्हें अभय देकर अपने नौकरोको आज्ञा करता हूँ कि वे तुम्हे गधोपर बैठाकर मेरे देशकी सीमासे बाहर कर दे । राजाकी आज्ञाका उसी समय पालन हुआ । चारो मन्त्री देशसे निकाल दिये गये । सच है—पापियोकी ऐसी दशा होना उचित ही है ।

धर्मके ऐसे प्रभाव को देखकर लोगोंके आनन्दका ठिकाना न रहा । वे अपने हृदयमे बढते हुए हर्षके वेगको रोकनेमे समर्थ नहीं हुए । उन्होंने जयध्वनिके मारे आकाशपातालको एक कर दिया । मुनिसंघका उपद्रव टला । सबके चित्त स्थिर हुए । अकम्पनाचार्य भी उज्जयिनीसे विहार कर गये ।

हस्तिनापुर नामका एक शहर है । उसके राजा हैं महापद्म । उनकी रानीका नाम लक्ष्मीमती था । उसके पद्म और विष्णु नामके दो पुत्र हुए ।

एक दिन राजा संसारकी दशापर विचार कर रहे थे । उसकी अनित्यता और निस्सारता देखकर उन्हे बहुत वैराग्य हुआ ! उन्हे संसार दु खमय दिखने लगा । वे उसी समय अपने बडे पुत्र पद्मको राज्य देकर अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमारके साथ वनमे चले गये और श्रुतसागर मुनिके पास पहुँचकर दोनो पिता-पुत्रने दीक्षा ग्रहण कर ली । विष्णुकुमार बालपनेसे ही ससारसे विरक्त थे, इसलिये पिताके रोकनेपर भी वे दीक्षित हो गये । विष्णुकुमार मुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे । कुछ दिनो बाद तपश्चर्याके प्रभावसे

उन्हें विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई ।

पिताके दीक्षित हो जानेपर हस्तिनापुरका राज्य पद्मराज करने लगे । उन्हें सव कुछ होनेपर भी एक वातका वड़ा दुःख था । वह यह कि, कुंभपुरका राजा सिंहवल उन्हें वड़ा कष्ट पहुँचाया करता था । उनके देशमें अनेक उपद्रव किया करता था । उसके अधिकारमें एक वड़ा भारी सुदृढ़ किला था । इसलिये वह पद्मराजकी प्रजापर एकाएक धावा मारकर अपने किले में जाकर छुप जाता है । तव पद्मराज उसका कुछ अनिष्ट नहीं कर पाते थे । इस कष्ट की उन्हें सदा चिन्ता रहा करती थी ।

इसी समय श्रीवर्माके चारों मंत्री उज्जयिनीसे निकलकर कुछ दिनों वाद हस्तिनापुरकी ओर आ निकले । उन्हें किसी तरह राजाके इस दुःख सूत्र का मालूम हो गया । वे राजासे मिले और उन्हें चिन्तासे निर्मुक्त करनेका वचन देकर कुछ सेनाके साथ सिंहवलपर जा चढ़े और अपनी बुद्धिमानीसे किलेको तोड़कर सिंहवलको उन्होंने वाँध लिया और लाकर पद्मराजके सामने उपस्थित कर दिया । पद्मराज उनकी वीरता और बुद्धिमानीसे वहुत प्रसन्न हुआ । उसने उन्हें अपना मंत्री वनाकर कहा—कि तुमने मेरा उपकार किया है । तुम्हारा मैं वहुत कृतज्ञ हूँ । यद्यपि उसका प्रतिफल नहीं दिया जा सकता, तव भी तुम जो कहो वह मैं तुम्हें देनेको तैयार हूँ । उत्तरमें वलि नामके मंत्रीने कहा—प्रभो, आपकी हमपर कृपा है, तो हमें सव कुछ मिल चुका । इसपर भी आपका आग्रह है, तो उसे हम अस्वीकार भी नहीं कर सकते । अभी हमें कुछ आवश्यकता नहीं है । जव समय होगा तव आपसे प्रार्थना करेंगे ही ।

इसी समय श्री अकम्पनाचार्य अनेक देशोंमें विहार करते हुए और धर्मोपदेश द्वारा संसारके जीवोंका हित करते हुए हस्तिनापुरके वगीचेमें आकर ठहरे । सव लोग उत्सवके साथ उनकी वन्दना करनेको गये । अकम्पनाचार्यके आनेका समाचार राजमंत्रियोंको मालूम हुआ । मालूम होते ही उन्हें अपने अपमानकी वात याद हो आई । उनका हृदय प्रतिहिंसासे उद्विग्न हो उठा । उन्होंने परस्परमें विचार किया कि समय वहुत उपयुक्त है, इसलिये वदला लेना ही चाहिये । देखो न, इन्हीं दुष्टोंके द्वारा अपनेको कितना दुःख उठाना पड़ा था ? सवके हम धिक्कार पात्र वने और अपमानके साथ देशसे निकाले गये । पर हाँ

अपने मार्गमें एक कॉटा है । राजा इनका बड़ा भक्त है । वह अपने रहते हुए इनका अनिष्ट कैसे होने देगा ? इसके लिए कुछ उपाय सोच निकालना आवश्यक है । नहीं तो ऐसा न हो कि ऐसा अच्छा समय हाथसे निकल जाय ? इतने मे बलि मत्री बोल उठा कि,हॉ इसकी आप चिन्ता न करे । अब सिहबलके पकड़ लाने का पुरस्कार राजासे पाना बाकी है, उसकी एवजमें उससे सात दिनका राज्य ले लेना चाहिये । फिर जैसा हम करेंगे वही होगा । राजाको उसमें दखल देनेका कुछ अधिकार न रहेगा । यह प्रयत्न सबको सर्वोत्तम जान पड़ा । बलि उसी समय राजाके पास पहुँचा और बड़ी विनीततासे बोला—महाराज, आपपर हमारा एक पुरस्कार पाना है । आप कृपाकर अब उसे दीजिये । इस समय उससे हमारा बड़ा उपकार होगा । राजा उसका कूट कपट न समझ और यह विचार कर, कि इन लोगोंने मेरा बड़ा उपकार किया था, अब उसका बदला चुकाना मेरा कर्तव्य है, बोला—बहुत अच्छा, जो तुम्हें चाहिए वह मॉग लो, मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारे ऋणसे उऋण होनेका यत्न करूँगा ।

बलि बोला—महाराज, यदि आप वास्तवमे ही हमारा हित चाहते हैं, तो कृपा करके सात दिनके लिए अपना राज्य हमे प्रदान कीजिये ।

राजा सुनते ही अवाक् रह गया । उसे किसी बड़े भारी अनर्थकी आशंका हुई । पर अब वश ही क्या था ? उसे वचनबद्ध होकर राज्य दे देना पड़ा । उन्होने मुनियोके मारनेके लिए यज्ञका बहाना बनाकर षड्यंत्र रचा, जिससे कि सर्वसाधारण न समझ सके ।

मुनियोको बीचमें रखकर यज्ञके लिए एक बड़ा भारी मडप तैयार किया गया । उनके चारों ओर काष्ठ ही काष्ठ रखवा दिया गया । हजारो पशु इकट्ठे किये गये । यज्ञ आरम्भ हुआ । वेदोके जानकार बडे-बड़े विद्वान् यज्ञ कराने लगे । वेदध्वनिसे यज्ञमण्डप गूँजने लगा । बेचारे निरपराध पशु बडी निर्दयतासे मारे जाने लगे । उनकी आहुतियॉ दी जाने लगीं । देखते-देखते दुर्गन्धित धुएँसे आकाश परिपूर्ण हुआ । मानो इस महापापको न देख सकनेके कारण सूर्य अस्त हुआ । मनुष्योके हाथसे राज्य राक्षसोके हाथोमे गया ।

सारे मुनिसघपर भयकर उपसर्ग हुआ । परन्तु उन शान्तिकी मूर्त्तियोने

इसे अपने किये कर्मोका फल समझकर बड़ी धीरताके साथ सहना आरम्भ किया। वे मेरु समान निश्चल रहकर एक चित्तसे परमात्माका ध्यान करने लगे। सच है—जिन्होने अपने हृदयको खूब उन्नत और दृढ़ बना लिया है, जिनके हृदयमें निरन्तर यह भावना बनी रहती है—

अरि मित्र, महल मसान, कंचन कॉच, निन्दन थुतिकरन।
अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन ॥

वे क्या कभी ऐसे उपसर्गोसे विचलित होते हैं ? पाण्डवोंको शत्रुओंने लोहेके गरम-गरम भूषण पहना दिये। अग्निकी भयानक ज्वाला उनके शरीरको भस्म करने लगी। पर वे विचलित नहीं हुए। धैर्यके साथ उन्होंने सब उपसर्ग सहा। जैन साधुओका यही मार्ग है कि वे आये हुए कष्टों को शान्तिसे सहें और वे ही यथार्थ साधु हैं। जिनका हृदय दुर्वल है, जो रागद्वेषरूपी शत्रुओंकी जीतनेके लिए ऐसे कष्ट नहीं सह सकने, दु:खोंके प्राप्त होनेपर समभाव नहीं रख सकते, वे न तो अपने आत्महितके मार्गमें आगे वढ़ पाते हैं और न वे साधुपद स्वीकार करने योग्य हो सकते हैं।

मिथिलामे श्रुतसागर मुनिको निमित्तज्ञानसे इस उपसर्गका हाल मालूम हुआ। उनके मुँहसे बड़े कष्टके साथ वचन निकले—हाय ! हाय !! इस समय मुनियोंपर बडा उपसर्ग हो रहा है। वहीं एक पुष्पदन्त नामक क्षुल्लक भी उपस्थित थे। उन्होने मुनिराजसे पूछा—प्रभो, यह उपसर्ग कहाँ हो रहा है ? उत्तरमे श्रुतसागर मुनि बोले—हस्तिनापुरमें सातसौ मुनियोंका संघ ठहरा हुआ है। उसके संरक्षक अकम्पनाचार्य हैं। उस सारे संघपर पापी वलिके द्वारा यह उपसर्ग किया जा रहा है।

क्षुल्लकने फिर पूछा—प्रभो, कोई ऐसा उपाय भी है, जिससे यह उपसर्ग दूर हो ?

मुनिने कहा—हॉ उसका एक उपाय है। श्रीविष्णुकुमार मुनिको विक्रियाऋद्धि प्राप्त हो गई। वे अपनी ऋद्धिके वलसे उपसर्गको रोक सकते हैं।

पुष्पदन्त फिर एक क्षणभर भी वहॉ न ठहरे और जहॉ विष्णुकुमार मुनि तपश्चर्या कर रहे थे, वहॉ पहुँचे। पहुँचकर उन्होंने सब हाल विष्णुकुमार

मुनिसे कह सुनाया। विष्णुकुमारको ऋद्धि प्राप्त होनेकी पहले खबर
थी। पर जब पुष्पदन्त के द्वारा उन्हें मालूम हुआ, तब उन्होने परीक्षा
एक हाथ पसारकर देखा। पसारते ही उनका हाथ बहुत दूरतक चला
उन्हे विश्वास हुआ। वे उसी समय हस्तिनापुर आये और अपने
बोले—भाई, आप किस नींदमें सोते हुए हो ? जानते हो, शहरमे कित
भारी अनर्थ हो रहा है ? अपने राज्यमें तुमने ऐसा अनर्थ क्यो होने
क्या पहले किसीने भी अपने कुलमें ऐसा घोर अनर्थ आजतक किया है
। धर्मके अवतार, परम शान्त और किसीसे कुछ लेते देते नहीं, उन मु
यह अत्याचार ? और वह भी तुम सरीखे धर्मात्माओं के राज्यमे ?
भाई, राजाओका धर्म तो यह कहा गया है कि वे सज्जनोंकी, धर्मात
रक्षा करें और दुष्टोको दण्ड दें। पर आप तो बिलकुल इससे उ
रहे हैं। समझते हो, साधुओका सताना ठीक नहीं। ठण्डा जल
होकर शरीरको जला डालता है। इसलिये जबतक आपत्ति तुमपर
उसके पहले ही उपसर्ग शान्ति करवा दीजिये।

अपने का भाई उपदेश सुनकर पद्मराज बोले—मुनिराज,
करूँ ? मुझे क्या मालूम था कि ये पापी लोग मिलकर मुझे ऐसा धोखा देगे
तो मैं बिलकुल विवश हूँ। मैं कुछ नहीं कर सकता। सात दिनतक जै
ये करेंगे वह सब मुझे सहना होगा। क्योकि मैं वचनबद्ध हो चुका हूँ
तो आप ही किसी उपाय द्वारा मुनियोका उपसर्ग दूर कीजिये। आप
लिये समर्थ भी हैं और सब जानते हैं। उसमें मेरा दखल देना तो
जैसा सूर्यको दीपक दिखलाना। आप अब जाइये और शीघ्रता की
विलम्ब करना उचित नहीं।

विष्णकुमारमुनिने विक्रियाऋद्धिके प्रभावसे बावन ब्राह्मणका वेष
और बड़ी मधुरतासे वेदध्वनिका उच्चारण करते हुए वे यज्ञमडपमे
उनका सुन्दर स्वरूप और मनोहर वेदोच्चार सुनकर सब बड़े प्रसन्न हुए
तो उनपर इतना मुग्ध हुआ कि उसके आनन्दका कुछ पार नहीं रहा
बडी प्रसन्नतासे उनसे कहा—महाराज, आपने पधारकर मेरे यज्ञकी अपूर्व
कर दी। मैं बहुत खुश हुआ। आपको जो इच्छा हो, माँगिये। इस

१३. वज्रकुमारकी कथा

संसारके परम गुरु जिनभगवान्‌को नमस्कार कर मैं प्रभावनांगके पालन करनेवाले श्रीवज्रकुमारमुनिकी कथा लिखता हूँ ।

जिस समयकी यह कथा है, उस समय हस्तिनापुरके राजा थे बल । वे राजनीतिके अच्छे विद्वान थे, बड़े तेजस्वी थे और दयालु थे । उनके मंत्रीका नाम था गरुड़ । उसका एक पुत्र था । उसका नाम सोमदत्त था । वह सब शास्त्रोंका विद्वान् था और सुन्दर भी बहुत था । उसे देखकर सबको बड़ा आनन्द होता था । एक दिन सोमदत्त अपने मामा सुभूति के यहाँ गया, जो कि अहिछत्रपुरमे रहता था । उसने मामासे विनयपूर्वक कहा—मामाजी, यहाँके राजासे मिलनेकी मेरी बहुत उत्कंठा है । कृपाकर आप उनसे मेरी मुलाकात करवा दीजिये न ? सुभूतिने अभिमानमें आकर अपने महारोजसे सोमदत्तकी मुलाकात नहीं कराई । सोमदत्तको मामाकी यह बात वहुत खटकी । आखिर वह स्वयं ही दुर्मुख महाराजके पास गया और मामाका अभिमान नष्ट करनेके लिये राजाको अपने पाण्डित्य और प्रतिभाशालिनी बुद्धिका परिचय कराकर स्वयं भी उनका राजमंत्री बन गया । ठीक भी है सबको अपनी ही शक्ति सुख देनेवाली होती है ।

सुभूतिको अपने भानजेका पाण्डित्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने उसके साथ अपनी यज्ञदत्ता नामकी पुत्रीको ब्याह दिया । दोनों दम्पत्ति सुखसे रहने लगे । कुछ दिनों बाद यज्ञदत्ताके गर्भ रहा ।

समय चातुर्मासका था । यज्ञदत्ताको दोहद उत्पन्न हुआ । उसे आम खानेकी प्रबल उत्कण्ठा हुई । स्त्रियोंको स्वभावसे गर्भावस्था में दोहद उत्पन्न हुआ ही करते हैं । सो आमका समय न होनेपर भी सोमदत्त वनमें आम ढूँढ़नेको चला । बुद्धिमान् पुरुष असमयमें भी अप्राप्त वस्तुके लिये साहस करते ही हैं । सोमदत्त वनमें पहुँचा, तो भाग्यसे उसे सारे बगीचेमें केवल एक आमका वृक्ष फला हुआ मिला । उसके नीचे एक परम महात्मा योगिराज बैठे हुए थे । उनसे वह वृक्ष ऐसा जान पड़ता था, मानो मूर्तिमान् धर्म है । सारे वनमें एक ही वृक्षको फला हुआ देखकर उसने समझ लिया कि यह मुनिराजका

प्रभाव है । नहीं तो असमयमे आम कहाँ ? वह बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने उसपरसे बहुत से फल तोड़कर अपनी प्रियाके पास पहुँचा दिये और आप मुनिराजको नमस्कार कर भक्तिसे उनके पाँवोंके पास बैठ गया । उसने हाथ ज़ोड़कर मुनिसे पूछा—प्रभो, संसारमे सार क्या है ? इस बातको आपके श्रीमुखसे सुननेकी मेरी बहुत उत्कण्ठा है । कृपाकर कहिये ।

मुनिराज बोले—वत्स, संसारमें सार—आत्माको कुगतियोसे बचाकर सुख देनेवाला, एक धर्म है । उसके दो भेद हैं १-मुनिधर्म, २-श्रावक धर्म । मुनियोंका धर्म—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहका त्याग ऐसे पाँच महाव्रत तथा उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप आदि दश लक्षण धर्म और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसे तीन रत्नत्रय, पाँच समिति, तीन गुप्ति खड़े होकर आहार करना, स्नान न करना, सहनशक्ति बढ़ानेके लिये सिरके बालोंका हाथोंसे ही लोच करना, वस्त्रका न रखना आदि हैं और श्रावक धर्म—बारह व्रतोंका पालन करना, भगवान्‌की पूजा करना, पात्रोंको दान देना और जितना अपनेसे बन सके दूसरोंका उपकार करना, किसीकी निन्दा बुराई न करना, शान्तिके साथ अपना जीवन बिताना आदि है । मुनिधर्मका पालन सर्वदेश किया जाता है और श्रावक धर्मका एकदेश । जैस अहिंसाव्रतका पालन मुनि तो सर्वदेश करेगे अर्थात् स्थावर जीवों की भी हिंसा वे नहीं करेगे और श्रावक इसी व्रतका पालन एकदेश अर्थात् स्थूल रूपसे करेगा । वह त्रस जीवोकी संकल्पी हिंसाका त्याग करेगा और स्थावर जीव-वनस्पति आदिको अपने काम लायक उपयोग में लाकर शेषकी रक्षा करेगा ।

श्रावकधर्म परम्परा से मोक्षका कारण है और मुनिधर्म द्वारा उसी पर्यायसे भी मोक्ष जा सकता है । श्रावकको मुनिधर्म धारण करना ही पड़ता है । क्योंकि उसके बिना मोक्ष होता ही नहीं । जन्मजरामरणका दुःख बिना मुनिधर्म के कभी नहीं छूटता । इसमें भी एक विशेषता है । वह यह कि जितने मुनि होते हैं, वे सब मोक्षमें ही जाते होंगे ऐसा नहीं समझना चाहिये । उसमें परिणामोंपर सब बात निर्भर है । जिसके जितने-जितने परिणाम उन्नत होते जायेगे और राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आत्मशत्रु नष्ट होकर अपने स्वभावकी प्राप्ति होती

ऑखमेंसे कॉटा निकाल दिया । पवनवेगा स्वस्थ होकर फिर मंत्र साधनमें तत्पर हुई । मंत्रयोग पूरा होनेपर उसे विद्या सिद्ध हो गई । वह सब उपकार वज्रकुमारका समझकर उसके पास आई और उससे बोली—आपने मेरा बहुत उपकार किया है । ऐसे समय यदि आप उधर नहीं आते तो कभी संभव नहीं था, कि मुझे विद्या सिद्ध होती । इसका बदला मैं एक क्षुद्र बालिका क्या चुका सकती हूँ, पर यह जीवन आपके समर्पण कर आपकी चरण दासी बनना चाहती हूँ । मैंने सकल्प कर लिया है कि इस जीवनमें आपके सिवा किसी को मैं अपने पवित्र हृदयमें स्थान न दूँगी । मुझे स्वीकार कर कृतार्थ कीजिये । यह कहकर वह सतृष्ण नयनोसे वज्रकुमारकी ओर देखने लगी । वज्रकुमारने मुस्कुराकर उसके पेमोपहारको बड़े आदरके साथ ग्रहण किया । दोनों वहॉसे विदा होकर अपने-अपने घर गये । शुभ दिनमें गरुड़वेगने पवनवेगाका परिणय संस्कार वज्रकुमारके साथ कर दिया । दोनों सुखसे रहने लगे ।

एक दिन वज्रकुमारको मालूम हो गया कि मेरे पिता थे तो राजा, पर उन्हे उनके छोटे भाईने लड़ झगड़कर अपने राज्यसे निकाल दिया है । यह देख उसे काकापर बडा क्रोध आया । वह पिताके बहुत कुछ मना करनेपर भी कुछ सेना और अपनी पत्नीकी विद्याको लेकर उसी समय अमरावतीपर जा चढ़ा । पुरन्दरदेवको इस चढ़ाईका हाल कुछ मालूम नहीं हुआ था, इसलिये वह बातकी बातोंमें पराजित कर बॉध लिया गया । राज्य सिंहासन पीछा दिवाकरदेवके अधिकारमें आया । सच है "सुपुत्रः कुलदीपकः" अर्थात् सुपुत्रसे कुलकी उन्नति ही होती है । इस वीर वृत्तान्तसे वज्रकुमार बहुत प्रसिद्ध हो गया । अच्छे-अच्छे शूरवीर उसका नाम सुनकर कॉपने लगे ।

इसी समय दिवाकरदेवकी प्रिया जयश्रीके भी एक और पुत्र उत्पन्न हो गया । अब उसे वज्रकुमारसे डाह होने लगी । उसे एक भ्रमसा हो गया कि इसके सामने मेरे पुत्रको राज्य कैसे मिलेगा ? खैर, यह भी मान लूँ कि मेरे आग्रहसे प्राणनाथ अपने पुत्रको राज्य दे भी दे तो यह क्यो उसे देने देगा ? ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो—

आश्रयन्तीं श्रिय को वा पादेन भुवि ताडयेत् ।

—वादीभसिह

कौन आती हुई लक्ष्मीको पॉवकी ठोकरसे ठुकरावेगा ? तब अपने पुत्रको राज्य मिलनेमे यह एक कटक है । इसे किसी तरह उखाड़ फेकना चाहिए । यह विचार कर मौका देखने लगी । एक दिन वज्रकुमारने अपनी माताके मुॅहसे यह सुन लिया कि "वज्रकुमार बड़ा दुष्ट है । देखो, तो कहॉ तो उत्पन्न हुआ और किसे कष्ट देता है ?" उसकी माता किसीके सामनेउसकी बुराई कर रही थी । सुनते ही वज्रकुमारके हृदयमे मानो आग बरस गई । उसका हृदय जलने लगा । उसे फिर एक क्षणभर भी उस घरमें रहना नर्क बराबर भयंकर हो उठा । वह उसी समय अपने पिताके पास गया और बोला—पिताजी, जल्दी बतलाइए मैं किसका पुत्र हूॅ ? और क्यो यहॉ आया ? मैं जानता हूॅ कि आपने मेरा अपने बच्चेसे कहीं बढ़कर पालन किया है, तब भी मुझे कृपाकर बतला दीजिए कि मेरे सच्चे पिता कौन हैं ? यदि आप मुझे ठीक-ठीक हाल नहीं कहेगे तो मैं आजसे भोजन नहीं करूॅगा ।

दिवाकरदेवने आज एकाएक वज्रकुमारके मुॅहसे अचम्भेमे डालनेवाली बाते सुनकर वज्रकुमारसे कहा—पुत्र, क्या आज तुम्हे कुछ हो तो नहीं गया, जो बहकी-बहकी बाते करते हो ? तुम समझदार हो, तुम्हे ऐसी बाते करना उचित नहीं, जिससे मुझे कष्ट हो ।

वज्रकुमार बोला—पिताजी मैं यह नहीं कहता कि मैं आपका पुत्र नहीं, क्योंकि मेरे सच्चे पिता तो आप ही हैं, आप हीने मुझे पालापोषा है । पर जो सच्चा वृत्तान्त है, उसके जाननेकी मेरी बड़ी उत्कण्ठा है; इसलिए उसे आप न छिपाइए । उसे कहकर मेरे अशान्त हृदयको शान्त कीजिए । बहुत सच है बड़े पुरुषोके हृदय मे जो बात एक बार समा जाती है फिर वे उसे तबतक नहीं छोड़ते जबतक उसका उन्हे आदि अन्त मालूम न हो जाय । वज्रकुमारके आग्रहसे कोई बात छुपाई नहीं जा सकती । वज्रकुमार अपना हाल सुनकर बडा विरक्त हुआ । उसे ससारका मायाजाल बहुत भयंकर जान पडा । वहउसी समय विमानमें चढ़कर अपने पिताकी वन्दना करनेको गया । उसके साथ ही उसका पिता तथा और-और बन्धुलोग भी गये । सोमदत्त मुनिराज मथुराके पास एक गुफामे ध्यान कर रहे थे । उन्हे देखकर सब ही बहुत आनन्दित हुए । सब बडी भक्तिके साथ मुनिको प्रणाम कर जब बैठे, तब

वज्रकुमारने मुनिराजसे कहा—पूज्यपाद, आज्ञा दीजिए, जिससे मैं साधु वनकर तपश्चर्या द्वारा अपना आत्मकल्याण करूँ। वज्रकुमारको एक साथ संसारसे विरक्त देखकर दिवाकरदेवको वहुत आश्चर्य हुआ। उसने इस अभिप्रायसे, कि सोमदत्त मुनिराज वज्रकुमारको कहीं मुनि हो जानेकी आज्ञा न दे दें, उनमें वज्रकुमार उन्हींका पुत्र है, और उसीपर मेरा राज्यभार भी निर्भर है आदि सब हाल कह दिया। इसके वाद वह वज्रकुमारसे बोला—पुत्र, तुम यह क्या करते हो ? तप करने का मेरा समय है या तुम्हारा ? तुम अव सब तरह योग्य हो गए, राजधानीमें जाओ ओर अपना कारोवार सम्हालो। अव मैं सब तरह निश्चिन्त हुआ। मैं आज ही दीक्षा ग्रहण करूँगा। दिवाकरदेवने उसे बहुत कुछ समझाया और दीक्षा लेनेसे रोका, पर उसने किसीकी एक न सुनी और सब वस्त्राभूषण फेंकर मुनिराजके पास दीक्षा ले ली। कन्दर्पकेसरी वज्रकुमार मुनि साधु बनकर खूब तपश्चर्या करने लगे। कठिनसे कठिन परीषह सहने लगे। वे जिनशासनरूप समुद्रके वढ़ानेवाले चन्द्रमाके समान शोभने लगे।

वज्रकुमारके साधु वन जानेके वादकी कथा अव लिखी जाती है। इस समय मथुराके राजा थे पूतीगन्ध। उनकी रानीका नाम था उर्विला। वह बड़ी धर्मात्मा थी, सती थी, विदुषी थी सम्यग्दर्शनसे भूषित थी। उसे जिनभगवान्‌की पूजासे बहुत प्रेम था। वह प्रत्येक नन्दीश्वरपर्वमें आठ दिनतक खूव पूजा महोत्सव करवाती, खूब दान करती। उससे जिनधर्मकी बहुत प्रभावना होती। सर्व साधारणपर जैनधर्मका अच्छा प्रभाव पडता। मथुरा हीमें एक सागदत्त नामका सेठ था। उसकी गृहिणीका नाम समुद्रदत्ता। पूर्व पापके उदयसे उसके दरिद्रा नामकी पुत्री हुई। उसके जन्मसे माता पिताको सुख न होकर दु:ख हुआ। धन सम्पत्ति सब जाती रही। माता-पिता मर गये। बेचारी दरिद्राके लिए अब अपना पेट भरना भी मुश्किल पड़ गया। अव वह दूसरों का झूठा खा-खाकर दिन काटने लगी। सच है पापके उदयसे जीवोंको दु:ख भोगना ही पड़ता है।

एक दिन दो मुनि भिक्षाके लिये मथुरामें आये। उनके नाम थे नन्दन और अभिनन्दन। उनमें नन्दन बडे थे और अभिनन्दन छोटे। दरिद्राको

एक-एक अन्नका झूठा कण खाती हुई देखकर अभिनन्दनने नन्दनसे कहा—मुनिराज, देखिये हाय ! यह बेचारी बालिका कितनी दुखी है ? कैसे कष्टसे अपना जीवन बिता रही है ! तब नन्दनमुनिने अवधिज्ञानसे विचार कर कहा—हॉ यद्यपि इस समय इसकी दशा अच्छी नहीं है, तथापि इसका पुण्यकर्म बहुत प्रबल है उससे यह पूतीगन्ध राजाकी पट्टरानी बनेगी । मुनिने दरिद्राका जो भविष्य सुनाया, उसे भिक्षाके लिए आये हुए एक बौद्ध भिक्षुकने भी सुन लिया । उसे जैन ऋषियोके विषयमे बहुत विश्वास था, इसलिए वह दरिद्राको अपने स्थानपर लिवा लाया और उसका पालन करने लगा ।

दरिद्रा जैसी-जैसी बड़ी होती गई वैसे ही वैसे यौवनने उसकी श्रीको खूब सम्मान देना आरम्भ किया । वह अब युवती हो चली । उसके सारे शरीरसे सुन्दरताकी सुधाधारा बहने लगी । ऑखोंने चंचल मीनको लजाना शुरू किया । मुँहने चन्द्रमाको अपना दास बनाया । नितम्बोको अपनेसे जल्दी बढ़ते देखकर शर्मके मारे स्तनोका मुँह काला पड गया । एक दिन युवती दरिद्रा शहरके बगीचेमें जाकर झूलेपर झूल रही थी कि कर्मयोगसे उसी दिन राजा भी वहीं आ गये । उनकी नजर एकाएक दरिद्रा पर पड़ी । उसे देखकर वे अचम्भेमे आ गये कि यह स्वर्ग सुन्दरी कौन है ? उन्होंने दरिद्रोसे उसका परिचय पूछा । उसने निस्सकोच होकर अपना स्थान वगैरह सब उन्हे बता दिया । वह बेचारी भोली थी । उसे क्या मालूम कि मुझसे खास मथुराके राजा पूछताछ कर रहे हैं । राजा तो उसे देखकर कामान्ध हो गये । वे बडी मुश्किलसे अपने महलपर आये । आते ही उन्होंने अपने मंत्रीको श्रीवन्दकके पास भेजा । मन्त्रीने पहुँचकर श्रीवन्दकसे कहा—आज तुम्हारा और तुम्हारी कन्याका बडा ही भाग्य है, जो मथुराधीश्वर उसे अपनी महारानी बनाना चाहते हैं । कहो, तुम्हे भी यह बात सम्मत है न ? श्रीवन्दक बोला—हॉ मुझे महाराजकी बात स्वीकार है, पर एक शर्तके साथ । वह शर्त यह है कि महाराज बौद्धधर्म स्वीकार करे तो मैं इसका ब्याह महाराजके साथ कर सकता हूँ । मन्त्रीने महाराजसे श्रीवन्दककी शर्त कह सुनाई । महाराजने उसे स्वीकार किया । सच है लोग कामके वश होकर धर्मपरिवर्तन तो क्या बड़े-बड़े अनर्थ भी कर बैठते हैं ।

आखिर महाराजका दरिद्राके साथ ब्याह हो गया । दरिद्रा मुनिराजके भविष्य कथनानुसार पट्टरानी हुई । दरिद्रा इस समय बुद्धदासीके नामसे प्रसिद्ध है । इसलिये आगे हम भी इसी नामसे उसका उल्लेख करेंगे । बुद्धदासी पट्टरानी वनकर बुद्धधर्मका प्रचार बढ़ानेमें सदा तत्पर रहने लगी । सच है, जिनधर्म संसारमें सुखका देनेवाला और पुण्यप्राप्तिका खजाना है, पर उसे प्राप्त कर पाते हैं भाग्यशाली ही । बेचारी अभागिनी बुद्धदासीके भग्यमें उसकी प्राप्ति कहाँ ?

अष्टाह्निका पर्व आया । उर्विला महारानीने सदाके नियमानुसार अबकी बार भी उत्सव करना आरम्भ किया । जब रथ निकालनेका दिन आया और रथ, छत्र, चँवर, वस्त्र, भूषण, पुष्पमाला आदिसे खूब सजाया गया, उसमे भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान की जाकर वह निकाला जाने लगा, तब बुद्धदासीने राजासे यह कह कर, कि पहले मेरा रथ निकलेगा, उर्विला रानीका रथ रुकवा दिया । राजाने भी उसपर कुछ वाधा न देकर उसके कहनेको मान लिया । सच है—

मोहान्धा नैव जानंति गोक्षीरार्कपयोन्तरम् ।

—व्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात् मोहसे अन्धे हुए मनुष्य गायके दूधमे और आकड़ेके दूधमें कुछ भी भेद नहीं समझते । बुद्धदासीके प्रेमने यही हालत पूतगंधराजाकी कर दी । उर्विलाको इससे वहुत कष्ट पहुँचा । उसने दुखी होकर प्रतिज्ञा कर ली कि जब पहले मेरा रथ निकलेगा तब ही मैं भोजन करूँगी । यह प्रतिज्ञा कर वह क्षत्रिया नामकी गुहामे पहुँची । वहाँ योगिराज सोमदत्त और वज्रकुमार महामुनि रहा करते हैं । वह उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वोली—हे जिनशासनरूप समुद्रके बढ़ानेवाले चन्द्रमाओं और हे मिथ्यात्वरूप अन्धकारके नष्ट करनेवाले सूर्य । इस समय आप हो मेरे लिये शरण हैं । आप ही मेरा दु:ख दूर कर सकते हैं । जैनधर्मपर इस समय वडा सकट उपस्थित है, उसे नष्ट कर उसकी रक्षा कीजिये । मेरा रथ निकलने वाला था, पर उसे बुद्धदासीने महाराजसे कहकर रुकवा दिया है । आजकल वह महाराजकी बड़ी कृपापात्र है, इसलिये जैसा वह कहती है महाराज भी बिना विचारे वही कहते है । मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि सदाकी भाँति मेरा रथ पहले यदि निकलेगा तब ही मैं भोजन करूँगी

। अब जैसा आप उचित समझे वह कीजिये । उर्विला अपनी बात कर रही थी कि इतनेमे वज्रकुमार तथा सोमदत्त मुनिकी वन्दना करनेको दिवाकरदेव आदि बहुतसे विद्याधर आये । वज्रकुमार मुनिने उनसे कहा—आप लोग समर्थ हैं और इस समय जैनधर्मपर कष्ट उपस्थित है । बुद्धदासीने महारानी उर्विलाका रथ रुकवा दिया है । सो आप जाकर जिस तरह बन सके इसका रथ निकलवाइये । वज्रकुमार मुनिकी आज्ञानुसार सब विद्याधर आये । वज्रकुमार मुनिने उनसे कहा—आप लोग समर्थ है और इस समय जैनधर्मपर कष्ट उपस्थित है । बुद्धदासीने महारानी उर्विलाका रथ रुकवा दिया है । सो आप जाकर जिस तरह बन सके इसका रथ निकलवाइये । वज्रकुमार मुनिकी आज्ञानुसार सब विद्याधर लोग अपने-अपने विमानपर चढ़कर मथुरा आये । सच है जो धर्मात्मा होते हैं वे धर्म प्रभावनाके लिए स्वय प्रयत्न करते हैं, तब उन्हे तो मुनिराजने स्वय प्रेरणा की है, इसलिये रानी उर्विलाको सहायता देना तो उन्हे आवश्यक ही था । विद्याधरोने पहुँचकर बुद्धदासीको बहुत समझाया और कहा, जो पुरानी रीति है उसे ही पहले होने देता अच्छा है । पर बुद्धदासीको तो अभिमान आ रहा था, इसलिये वह क्यो मानने चली ? विद्याधरोने सीधेपनसे अपना कार्य होता हुआ न देखकर बुद्धदासीके नियुक्त किये हुए सिपाहियोसे लडना शुरू किया और बातकी बातमें उन्हें भगाकर बडे उत्सव और आनन्दके साथ उर्विला रानीका रथ निकलवा दिया । रथके निर्विध्न निकलनेसे सबको बहुत आनन्द हुआ । जैनधर्मकी भी खूब प्रभावना हुई । बहुतोने मिथ्यात्व छोड़कर सम्यग्दर्शन ग्रहण किया । बुद्धदासी और राजापर भी इस प्रभावनाका खूब प्रभाव पड़ा । उन्होने भी शुद्धान्त.करणसे जैनधर्म स्वीकार किया ।

जिस प्रकार श्रीवज्रकुमार मुनिराजने धर्मप्रेमके वश होकर जैनधर्मकी प्रभावना करवाई उसी तरह और धर्मात्मा पुरुषोंको भी संसारका उपकार करनेवाली और स्वर्गसुखकी देनेवाली धर्म प्रभावना करना चाहिये । जो भव्य पुरुष, प्रतिष्ठा, जीर्णोद्धार, रथयात्रा, विद्यादान, आहारदान, अभयदान आदि द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना करते हैं, वे सम्यग्दृष्टि होकर त्रिलोक पूज्य होते हैं और अन्तमे मोक्षसुख प्राप्त करते हैं ।

धर्मप्रेमी श्रीवज्रकुमार मुनि मेरी बुद्धिको सदा जैनधर्ममें दृढ़ रक्र जिसके द्वारा मैं भी कल्याण पथपर चलकर अपना अन्तिमसाध्य मोक्ष प्राप्त व सकूँ ।

श्रीमल्लिभूषण गुरु मुझे मंगल प्रदान करे, वे मूल संघके प्रध शारदागच्छमे हुए हैं । वे ज्ञानके समुद्र हैं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान अ सम्यक्चारित्र रूपी रत्नोसे अलंकृत हैं । मैं उनकी भक्तिपूर्वक आराधना कर हूँ ।

प्रभावना ! तुम किसी को प्रभावित करने की चेष्टा मत करना । तुम्हारा होना प्रभावना बने ! वे प्रभावित हो तुमसे नहीं-सत्य से; जो तुममें घटा है- उससे; वो जो पारलौकिक तुममें उतरा है उससे ।

तुम्हारे होने के ढंग से उनको उपदेश मिल जायेगा । और जिनके जीवन में रोशनी नहीं है; उनको भी प्यास पैदा जो इस भांति जीने से धर्म की प्रभावना होती है ।

१४. नागदत्त मुनिकी कथा

मोक्षराज्यके अधीश्वर श्रीपचपरमगुरुको नमस्कार कर श्रीनागदत्त मुनिका सुन्दर चरित मैं लिखता हूॅ ।

मगधदेशकी प्रसिद्ध राजधानी राजगृहमे प्रजापाल नामके राजा थे । वे विद्वान् थे, उदार थे, धर्मात्मा थे, जिनभगवान्के भक्त थे और नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करते थे । उनकी रानीका नाम था प्रियधर्मा । वह भी बड़ी सरल स्वभावकी और सुशील थी । उसके दो पुत्र हुए । उनके नाम थे प्रियधर्म और प्रियमित्र । दोनो भाई बड़े बुद्धिमान् और सुचरित थे ।

किसी कारणसे दोनों भाई ससारसे विरक्त होकर साधु बन गये और अनन्तसमय समाधिमरण कर अच्युतस्वर्गमे जाकर देव हुए । उन्होंने वहॉ परस्परमें प्रतिज्ञा की कि, "जो दोनोमेसे पहले मनुष्य पर्याय प्राप्त करे उसके लिये स्वर्गस्थ देवका कर्त्तव्य होगा कि वह उसे जाकर सम्बोधे और ससारसे विरक्त कर मोक्षसुखकी देनेवाली जिनदीक्षा ग्रहण करनेके लिए उसे उत्साहित करे । " इस प्रकार प्रतिज्ञा कर वे वहॉ सुखसे रहने लगे । उन दोनोंमे से प्रियदत्तकी आयु पहले पूर्ण हो गई । वह वहॉसे उज्जयिनीके राजा नागधर्मकी प्रिया नागदत्ताके, जो कि बहुत ही सुन्दरी थी, नागदत्त नामक पुत्र हुआ । नागदत्त सर्पोके साथ क्रीडा करनेमे बहुत चतुर था, सर्पके साथ उसे विनोद करते देखकर सब लोग बडा आश्चर्य प्रगट करते थे ।

एक दिन प्रियधर्म, जो कि स्वर्गमे नागदत्तका मित्र था, गारुड़िका वेष लेकर नागदत्तको सम्बोधनको उज्जयिनीमे आया । उसके पास दो भयंकर सर्प थे । वह शहरमे घूम-घूमकर लोगोको तमाशा बताता और सर्व साधारणमें यह प्रगट करता कि मैं सर्प-क्रीडाका अच्छा जानकार हूॅ । कोई और भी इस शहरमे सर्पक्रीडाका अच्छा जानकार हो, तो फिर उसे मैं अपना खेल दिखलाऊॅ । यह हाल धीरे-धीरे नागदत्तके पास पहुॅचा । वह तो सर्पक्रीडाका पहले हीसे बहुत शौकीन था, फिर अब तो एक और उसका साथी मिल गया । उसने उसी समय नौकरोंको भेजकर उसे अपने पास बुला मॅगाया । गारुड़ि तो इस कोशिश मे था ही कि नागदत्तको किसी तरह मेरी खबर लग जाय और वह

इसके वाद प्रियधर्मने कुछ मन्त्र पढ़ पढ़ाकर उसे जिन्दा कर दिया। जैसे मिथ्यात्वरूपी विषसे अचेत हुए मनुष्योको परोपकारी मुनिराज अपना स्वरूप प्राप्त करा देते हैं। जैसे ही नागदत्त सचेत होकर उठा और उसे राजाने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनाई। वह उससे बहुत प्रसन्न हुआ। पश्चात् एक क्षणभर ही वह वहाँ न ठहर कर वनकी और रवाना हो गया और यमधर मुनिराजके पास पहुँचकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। उसे दीक्षित हो जानेपर प्रियधर्म, जो गारुड़िका वेष लेकर स्वर्गसे नागदत्तके सम्वोधनेको आया था, उसे सव हाल कहकर और अन्तमें नमस्कार कर पीछे स्वर्ग चला गया।

मुनि वनकर नागदत्त खूब तपश्या करने लगे और अपने चारित्रका दिनपर दिन निर्मल करके अन्तमें जिनकल्पी मुनि हो गये। अर्थात् जिनभगवान्‌की तरह अब वे अकेले ही विहार करने लगे। एक दिन वे तीर्थयात्रा करते हुए एक भयानक वनमें निकल आये। वहाँ चोरोंका अड्डा था, सो चोरोंने मुनिराजको देख लिया। उन्होंने यह समझ कर, कि ये हमारा पता लोगोंको बता देंगे और फिर हम पकड़ लिये जावेंगे, उन्हें पकड़ लिया और अपने मुखियाके पास वे लिवा ले गये। मुखियाका नाम था सूरदत्त। वह मुनिको देखकर वोला—तुमने इन्हें क्यो पकड़ा? ये तो बड़े सीधे और सरल स्वभावी हैं। इन्हें किसीसे कुछ लेना देना नहीं, किसीपर इनका राग-द्वेष नहीं। ऐसे साधुको तुमने कष्ट देकर अच्छा नहीं किया। इन्हें जल्दी छोड़ दो। जिस भयकी तुम इनके द्वारा आशका करते हो, वह तुम्हारी भूल है। ये कोई बात ऐसी नहीं करते जिससे दूसरोंको कष्ट पहुँचे। अपने मुखियाकी आज्ञाके अनुसार चोरोने उसी समय मुनिराजको छोड़ दिया।

इसी समय नागदत्तकी माता अपनी पुत्रीको साथ लिये हुए वत्स देशकी ओर जा रही थी। उसे उसका विवाह कोशाम्बीके रहनेवाले जिनदत्त सेठके पुत्र धनपालसे करना था। अपने जमाईको दहेज देनेके लिए उसने अपने पास उपयुक्त धन-सम्पत्ति भी रख ली थी। उसके साथ और भी पुरजन परिवारके लोग थे। सो उसे रास्ते में अपने पुत्र नागदत्तमुनिके दर्शन हो गये। उसने उन्हें प्रणाम कर पूछा—प्रभो, आगे रास्ता तो अच्छा है न?

मुनिराज इसका कुछ उत्तर न देकर मौन सहित चले गये । क्योकि उनके लिए तो शत्रु और मित्र दोनो ही समान हैं ।

आगे चलकर नागदत्ताको चोरोने पकड़कर उसका सब माल असबाब छीन लिया और उसकी कन्याको भी उन पापियोंने छीन लिया । तब सूरदत्त उनका मुखिया उनसे बोला—क्यो आपने देखी न उस मुनिकी उदासीनता और निस्पृहता ? जो इस स्त्रीने मुनिको प्रणाम किया और उनकी भक्ति की तब भी उन्होने हमसे कुछ द्वेष नहीं किया । सच बात तो यह कि उनकी वह वृत्ति ही इतने ऊँचे दरजेकी है, जो उसमे भक्ति करनेवालेपर तो प्रेम नहीं और शत्रुता करनेवालेसे द्वेष नहीं । दिगम्बर मुनि बड़े ही शान्त, धीर, गम्भीर और तत्त्वदर्शी हुआ करते हैं ।

नागदत्ता यह सुनकर, कि यह सब कारस्तानी मेरे ही पुत्रकी है, यदि वह मुझे इस रास्तेका सब हाल कह देता, तो क्यों आज मेरी यह दुर्दशा होती ? क्रोधके तीव्र आवेगसे थरथर कॉपने लगी । उसने अपने पुत्रकी निर्द्रयतासे दु खी होकर चोरोके मुखिया सूरदत्तसे कहा—भाई, जरा अपनी छुरी तो मुझे दे, जिससे मैं अपनी कूँख को चीरकर शान्ति लाभ करूँ । जिस पापीका तुम जिक्र कर रहे हो, वह मेरा ही पुत्र है । जिसे मैंने नौ महीने कूँखमें रक्खा और बडे-बड़े कष्ट सहे उसीने मेरे साथ इतनी निर्दयता की कि मेरे पूछनेपर भी उसने मुझे रास्तेका हाल नहीं बतलाया । तब ऐसे कुपुत्रको पैदाकर मुझे जीते रहनेसे ही क्या लाभ ?

नागदत्ताका हाल जानकर सूरदत्त बडा वैराग्य हुआ ! वह उससे बोला—जो उस मुनिकी माता है, वह मेरी भी माता है । माता, क्षमा करो ! यह कहकर उसने उसका सब धन असबाब उसी समय पीछा लौटा दिया और आप मुनिके पास पहुँचा । उसने बडी भक्तिके साथ परम गुणवान नागदत्त मुनिकी स्तुति की और पश्चात् उन्हींके द्वारा दीक्षा लेकर वह तपस्वी बन गया ।

साधु बनकर सूरदत्तने तपश्चर्या और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र द्वारा घातिया कर्मोका नाश कर लोकालोक का प्रकाशक केवलज्ञान

प्राप्त किया और ससार द्वारा पूज्य होकर अनेक भव्य जीवोंको कल्याणका रास्ता बतलाया और अन्तमें अघातिया कर्मोंका भी नाश कर अविनाशी, अनन्त, मोक्षपर प्राप्त किया ।

श्रीनागदत्त और सूरदत्त मुनि संसारके दुःखोंको नष्ट कर मेरे लिए शान्ति प्रदान करें, जो कि गुणो के समुद्र हैं, जो देवो द्वारा सदा नमस्कार किये जाते हैं और जो संसारी जीवोके नेत्ररूपी कुमुद पुष्पोको प्रफुल्लित करनेके लिये चन्द्रमा समान हैं जिन्हे देखकर नेत्रोको बड़ा आनन्द मिलता है, शान्ति मिलती है ।

आत्म तत्व का श्रद्धान करना यही शुद्ध सम्यकत्व है उसे जानना वही सम्सक्ग्ज्ञान है और उसी मे अपने मन को निश्चल कर ठहराना वही सम्यक्चारित्र हैं । यही रत्तत्रय है जो कि मोक्ष का मार्ग है अर्थात तत्व को देखना, जानना, व उसमे लीन् होना यही मोक्ष का निश्चल मार्ग है । —

''रत्तत्रय''

आत्म तत्त्व का श्रध्दान करना वही शुद्ध सम्यकत्त्व है उसे जानना वही सम्यक्ज्ञान है और उसीमें अपने मन को निश्चल कर ठहराना वही सम्यक्चरित्र है । यही रत्नत्रय है जो कि मोक्ष का मार्ग है अर्थात् आत्म तत्त्व को देखना, जानना, व उसमें लीन होना यही मोक्ष का निश्चल मार्ग है ।

१५. शिवभूति पुरोहितकी कथा

मैं ससारके हित करनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कार कर दुर्जनोंकी सगतिसे जो दोष उत्पन्न होते हैं, उससे सम्बन्ध रखनेवाली एक कथा लिखता हूँ, जिससे कि लोग दुर्जनोकी सगति छोड़नेका यत्न करे ।

यह कथा उस समयकी है, जब कि कोशाम्बीका राजा धनपाल था । धनपाल अच्छा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था । शत्रु तो "उसका नाम सुनकर कॉपते थे । राजाके यहॉ एक पुरोहित था । उसका नाम था शिवभूति । वह पौराणिक अच्छा था ।

वहीं दो शूद्र रहते थे । उनके नाम कल्पपाल और पूर्णचन्द्र थे । उनके पास कुछ धन भी था । उनमे पूर्णचन्द्रकी स्त्रीका नाम था मणिप्रभा । उसके एक सुमित्रा नामकी लड़की थी । पूर्णचन्द्रने उसके विवाहमे अपने जातीय भाइयोको जिमाया और उसका राज पुराहितसे कुछ परिचय होनेसे उसने उसे भी निमंत्रित किया । पर पुराहित महाराजने उसमे यह बाधा दी कि भाई, तुम्हारा भोजन तो मैं नहीं कर सकता । तब कल्पपालने बीचमे ही कहा—अस्तु । आप हमारे यहॉका भोजन न करे । हम ब्राह्मणोके द्वारा आपके लिये भोजन तैयार करवा देगे तब तो आपको कुछ उजर न होगा । पुरोहितजी आखिर थे तो ब्राह्मण ही न ? जिनके विषयमे यह नीति प्रसिद्ध है कि "असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः" अर्थात् लोभमे फॅसकर ब्राह्मण नष्ट हुए । सो वे अपने एकबारके भोजनका लोभ नहीं रोक सके । उन्होने यह विचार कर, कि जब ब्राह्मण भोजन बनानेवाले हैं, तब तो कुछ नुकसान नहीं, उसका भोजन करना स्वीकार कर लिया । पर इस बातपर उन्होंने तनिक भी विचार नहीं किया कि ब्राह्मणोने ही भोजन बना दिया तो हुआ क्या ? आखिर पैसा तो उसका है और न जाने उसने कैसे-कैसे पापों द्वारा उसे कमाया है ।

जो हो, नियमित समयपर भोजन तैयार हुआ । एक ओर पुरोहित देवता भोजनके लिये बैठे और दूसरी ओर पूर्णचन्द्रका परिवारवर्ग । इस जगह इतना और ध्यानमेरखना चाहिए कि दोनोका चौका अलग-अलग था । भोजन होने लगा । पुरोहितजीने मनभर माल उड़ाया । मानो उन्हे कभी ऐसे भोजनका

मौका' ही नसीब नहीं हुआ था । पुरोहितजीको वहाँ भोजन करते हुए कुछ लोगोने देख लिया । उन्होंने पुरोहितजीको शिकायत महाराजसे कर दी । महाराजने एक शूद्रके साथ भोजन करनेवाले, वर्णव्यवस्थाको धूलमें मिलानेवाले ब्राह्मणको अपने राज्यमे रखना उचित न समझ देशसे निकलवा दिया । सच है—''कुसगो कष्टदो ध्रुवम्'' अर्थात् बुरी सगति दु:ख देनेवाली ही होती है । इसलिए अच्छे पुरुषोको उचित है कि वे बुरोंकी संगति न कर सज्जनोंकी सगति करे, जिससे वे अपने धर्म, कुल, मान-मर्यादाकी रक्षा कर सकें ।

एक प्रसिद्ध विचारक डॉ. ने कहा है कि आज का मनुष्य जितना भोजन करता है उसमें आधा भोजन वह अपने जीवन को चलाने के लिए करता है और आधा भोजन हम डाक्टरों की आजीविका चलाने के लिए करता है ।

पंचेन्द्रियों में रसना इन्द्रिय की आसक्ति अति निकृष्ट है । साधक को अन्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने के लिए रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना ही होगा तब अन्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होगी ।

* हर चीज हमारी स्वीकृति हमारी सम्मति हमारी स्वानुभूति मिलते ही अच्छी बन जाती है ।

१६. पवित्र हृदयवाले एक बालककी कथा

बालक जैसा देखता है, वैसा ही कह भी देता है । क्योंकि उसका हृदय पवित्र रहता है । यहाँ मैं जिनभगवान्को नमस्कार कर एक ऐसी हो कथा लिखता हूँ, जिसे पढ़कर सर्व साधारणका ध्यान पापकर्मोंके छोड़नेकी ओर जाय ।

कौशाम्बीमे जयपाल नामके राजा हो गये हैं । उनके समयमे वहीं एक सेठ हुआ है । उसका नाम समुद्रदत्त था और उसकी स्त्रीका नाम समुद्रदत्ता । उसके एक पुत्र हुआ । उसका नाम सागरदत्त था । वह बहुत ही सुन्दर था । उसे देखकर सबका चित्त उसे खिलानेके लिए व्यग्र हो उठता था । समुद्रदत्तका एक गोपायन नामका पड़ोसी था । पूर्वजन्मके पापकर्मके उदयसे वह दरिद्री हुआ । इसलिये धनकी लालसाने उसे व्यसनी बना दिया । उसकी स्त्रीका नाम सीमा था । उसके भी एक सोमक नामका पुत्र था । वह धीरे-धीरे कुछ बडा हुआ और अपनी मीठी और तोतली बोलीसे मातापिताको आनन्दित करने लगा ।

एक दिन गोपायनके घरपर सागरदत्त और सोमक अपना बालसुलभ खेल-खेल रहे थे । सागरदत्त इस समय गहना पहरे हुए था । उसी समय पापी गोपायन आ गया । सागरदत्त को देखकर उसके हृदयमे पाप वासना हुई । दरवाजा बन्दकर वह कुछ लोभके बहाने सागरदत्तको घरके भीतर लिवा ले गया । उसीके साथ सोमक भी दौड़ा गया । भीतर लेजाकर पापी गोपायनने उस अबोध बालकका बड़ी निर्दयतासे छुरी द्वारा गला काट दिया और उसका सब गहना उतारकर उसे गड्ढेमे गाड़ दिया ।

कई दिनोतक बराबर कोशिश करते रहनेपर भी जब सागरदत्तके मातापिताकोअपने बच्चेका कुछ हाल नहीं मिला, तब उन्होने जान लिया कि किसी पापीने उसे धनके लोभसे मार डाला है । उन्हे अपने प्रिय बच्चेकी मृत्युसे जो दु:ख हुआ उसे वे ही पाठक अनुभव कर सकते हैं जिनपर कभी ऐसा दैवी प्रसग आया हो । आखिर बेचारे अपना मन मसोस कर रहे गये । इसके सिवा वे और करते भी तो क्या ?

कुछ दिन बीतनेपर एक दिन सोमक समुददत्तके घरके ऑगनमे खेल रहा था । तब समुद्रदत्ताके मनमे न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई सो उसने सोमकको बड़े प्यारसे अपने पास बुलाकर उससे पूछा-भैया, बतला तो तेरा साथी सागरदत्त कहॉ गया है ? तूने उसे देखा है ?

सोमक बालक था और साथ ही बालस्वभावके अनुसार पवित्र हृदयी था । इसलिये उसने झटसे कह दिया कि वह तो मेरे घरमे एक गड्ढेमे गड़ा हुआ है । बेचारी समुद्रदत्ता अपने बच्चे की दुर्दशा सुनते ही धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ी । इतने मे समुद्रदत्त भी वहीं आ पहुँचा । उसने उसे होश में लाकर उसके मूर्च्छित हो जानेका कारण पूछा । समुद्रदत्तने सोमकका कहा हाल उसे सुना दिया । समुद्रदत्तने उसी समय दौड़े जाकर यह खबर पुलिसको दी । पुलिसने आकर मृत बच्चेकी लाश सहित गोपायनको गिरफ्तार किया, मुकदमा राजाके पास पहुँचा । उन्होने गोपायनके कर्मके अनुसार उसे फॉसीकी सजा दी । बहुत ठीक कहा है —

पापी पापं करोत्यत्र प्रच्छन्नमपि पापत· ।

तत्प्रसिद्धं भवत्येव भवभ्रमणदायकः ब्रह्मनेमिदत्त॥

अर्थात् पापी लोग बहुत छुपकर भी पाप करते हैं, पर वह नहीं छुपता और प्रगट हो ही जाता है और परिणाममें अनन्त कालतक संसारके दुःख भोगना पड़ता है । इसलिये सुख चाहनेवाले पुरुषोको हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाप, जो कि दुःख देनेवाले हैं, छोड़कर सुख देनेवाला दयाधर्म, जिनधर्म ग्रहण करना उचित है ।

बालपनेमें विशेष ज्ञान नहीं होता, इसलिये बालक अपना हिताहित नहीं जान पाता, युवावस्थामे कुछ ज्ञानका विकास होता है, पर काम उसे अपने हित की ओर नहीं फटकने देता और वृद्धावस्था में इन्द्रियॉ जर्जर हो जाती हैं, किसी कामके करनेमें उत्साह नहीं रहता और न शक्ति ही रहती है । इसके सिवा और जो अवस्थाये हैं, उनमे कुटुम्ब परिवारके पालन-पोषणका भार सिरपर रहने के कारण सदा अनेक प्रकारकी चिन्ताये घेरे रहती हैं कभी स्वस्थचित्त होने ही नहीं पाता, आखिर होता यह है कि जैसे पैदा हुए, वैसे

ही चल बसते हैं । अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त हुई मनुष्य पर्यायको समुद्रमे रत्न फैंक देनेकी तरह गॅवा बैठते है । और प्राप्त करते है वही एक ससार- भ्रमण । जिसमें अनन्त काल ठोकरे खाते-खाते बीत गये । पर ऐसा करना उचित नहीं, किन्तु प्रत्येक जीवमात्रको अपने आत्महित की ओर ध्यान देना परमावश्यक है । उन्हे सुख प्रदान करनेवाला जिनधर्म ग्रहरणकर शान्तिलाभ करना चाहिये ।

---

* हर चीज हमारी स्वीकृति हमारी सम्मति हमारी स्वानुभूति मिलते ही अच्छी बन जाती है ।
* श्रद्धा को पाया जा सकता है लूटा नहीं जा सकता ।
* चांद में धब्बे है कीचड़ में कमल है कोयले की खान में हीरा है फिर भी लोगों को वे ही अच्छे लगते हैं ।
* अच्छा बुरा होने वाले में नहीं देखनेवालों की ऑखों में हुआ करता है ।
* रूप और रुपये का जंजाल ही मुक्ति में बाधक है ।
* सत्य का ना जानना ही अज्ञान है ।

१७. धनदत्त राजाकी कथा

देवादिके द्वारा पूज्य और अनन्तज्ञान, दर्शनादि आत्मीयश्रीसे विभूषित जिनभगवान्‌को नमस्कार कर मैं धनदत्त राजाकी पवित्र कथा लिखता हूँ।

अन्ध्रदेशान्तर्गत कनकपुर नामक एक प्रसिद्ध और मनोहर शहर था। उसके राजा थे धनदत्त। वे सम्यग्दृष्टि थे, गुणवान् थे, और धर्मप्रेमी थे। राजमंत्रीका नामक श्रीवन्दक था। वह बौद्धधर्मानुयायी था। परन्तु तब भी राजा अपने मंत्रीकी सहायतासे राजकार्य अच्छा चलाते थे। उन्हें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती थी।

एक दिन राजा और मंत्री राजमहलके ऊपर बैठे हुए कुछ राज्य सम्बन्धी विचार कर रहे थे राजाको आकाशमार्गसे जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंके दर्शन हुए। राजाने हर्षके साथ उठकर मुनिराजको बड़े विनयसे नमस्कार किया और अपने महलमें उनका आह्वान किया। ठीक भी है -"साधुसंगः सता प्रियः" अर्थात्-साधुओंकी संगति सज्जनोंको बहुत प्रीतिकर जान पड़ती है।

इसके बाद राजा के प्रार्थना करनेपर मुनिराजने उसे धर्मोपदेश दिया और चलते समय वे श्रीवन्दक मंत्रीको अपने साथ लिवा ले गये। लेजाकर उन्होंने उसे समझाया और आत्महितकी इच्छासे उसके प्रार्थना करनेपर उसे श्रावकके व्रत दे दिये। श्रीवन्दक अपने स्थान लौट आया। इसके पहले श्रीवन्दक अपने बौद्धगुरुकी वन्दनाभक्ति करनेको प्रतिदिन उनके पास जाया करता था। सो जब उसने श्रावकव्रत ग्रहण कर लिये तबसे वह नहीं जाने लगा। यह देख बौद्धगुरुने उसे बुलाया, पर जब श्रीवन्दकने आकर भी उसे नमस्कार नहीं किया? उत्तरमे मंत्रीने मुनिके आने, उपदेश करने और अपने व्रत ग्रहण करने का सब हाल संघश्रीसे कह सुनाया। सुनकर संघश्री बड़े दु खके साथ बोला-हाय! तू ठगा गया, पापियोंने तुझे बड़ा धोखा दिया। क्या कभी यह संभव है कि निराश्रय आकाशमें भी कोई चल सकता है? जान पडता है तुम्हारा राजा बडा कपटी और ऐन्द्रजालिक है। इसीलिये उसने तुम्हें

ऐसा आश्चर्य दिखला कर अपने धर्ममें शामिल कर लिया । तुम तो भगवान् बुद्धके इतने विश्वासी थे, फिर भी तुम उस पापी राजाकी बहकावटमे आ गये ? इस तरह उसे बहुत कुछ ऊँचा नीचा समझाकर सघश्रीने कहा-अब तुम कभी राजसभामे नहीं जाना और जाना भी पड़े तो यह आजका हाल राजासे नहीं कहना । कारण वह जैनी है । सो बुद्धधर्मपर स्वभावही से उसे प्रेम नहीं होगा । इसलिए क्या मालूम कब वह बुद्धधर्मका अनिष्ट करनेको तैयार हो जाय ? बेचारा श्रीवन्दक फिर संघ श्रीकी चिकनी चुपड़ी बातो मे आ गया । उसने श्रावक-धर्मको भी उसी समय जलाण्जलि दे दी । बहुत ठीक कहा गया है —

स्वयं ये पापिनो लोके परं कुर्वन्ति पापिनम् ।

यथा सतप्तमानोसौ दहत्यग्निर्न संशय ब्रह्मनेमिदत्त।।

अर्थात्-जो स्वयं पापी होते हैं वे औरोको भी पापी बना डालते हैं । यह उनका स्वभाव ही होता है । जैसे अग्नि स्वयं भी गरम होती है और दूसरोको भी जला देती है ।

दूसरे दिन धनदत्तने राजयसभामे बड़े आनन्द और धर्मप्रेमके साथ चारणमुनिका हाल सुनाया । उनमे प्राय· लोगोको, जो कि जैन नहीं थे, बहुत आश्चर्य हुआ । उनका विश्वास राजाके कथनपर नहीं जमा । सब आश्चर्य भरी दृष्टिसे राजाके मुहँकी ओर देखने लगे । राजाको जान पडा कि मेरे कहनेपर लोगोंको विश्वास नहीं हुआ । तब उन्होंने अपनी गभीरताको हँसीके रूपमे परिवर्तित कर झटसे कहा, हॉ मैं यह कहना तो भूल ही गया कि उस समय हमारे मत्री महाशय भी मेरे पास ही थे । यह कहकर उन्होने मत्रीपर नजर दौडाई पर वे उन्हे नहीं दीख पड़े । तब राजाने उसी समय नौकरोको भेजकर श्रीवन्दकको बुलवाया । उसके आते ही राजाने अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित करने के लिये उससे कहा-मत्रीजी, कल दोपहरका हाल तो इन सबको सुनाइये कि वे चारणमुनि कैसे थे ? तब बौद्धगुरुका बहकाया हुआ पापी श्रीवन्दक बोल उठा कि महाराज, मैंने तो उन्हे नहीं देखा और न यह सभव ही है कि आकाशमे कोई चल सके ? पापी श्रीवन्दकके मुँहसे उक्त वाक्योका निकलना था कि उसी समय उसकी दोनो ऑखे मुनिनिन्दा के तीव्र

पापके उदयसे फूट गई ।

प्रभावो जिनधर्मस्य सूर्यस्येव जगत्त्रये ।
नैव संछाद्यते केन घूकप्रायेण पापिना ।।

—ब्रह्म० नेमिदत्त

जैसे संसारमे फैले हुए सूर्यके प्रभाव उल्लू नहीं रोक सकता, ठीक उसी तरह पापी लोग पवित्र जिनधर्मके प्रभावको कभी नहीं रोक सकते । उक्त घटनाको देखकर राजा वगैरह ने जिनधर्मकी खूब प्रशंसा की और श्रावक धर्म स्वीकार कर वे उपासक बन गये ।

इस प्रकार निर्मल और देवादिके द्वारा पूज्य जिनशासन का प्रभाव देखकर भव्य पुरुषोको उचित है कि वे निर्भ्रान्त होकर सुखके खजाने और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले पवित्र जिनधर्मकी ओर अपनी निर्मल और मनोवांछितकी देनेवाली बुद्धिको लगावे ।

सब सुखी नहीं । सब दुःखी नहीं । कुछ सुखी है, कुछ दुःखी ।
सब संपन्न नहीं । सब गरीब नहीं । कुछ संपन्न हैं, कुछ गरीब ।
सब स्वस्थ नहीं । सब रुग्ण नहीं । कुछ स्वस्थ हैं, कुछ रुग्ण ।
सब बुद्धिजीवी नहीं । सब श्रमिक नहीं । कुछ बुद्धिजीवी है, कुछ श्रमिक ।
सब प्रशासक नहीं । सब प्रशासित नहीं । कुछ प्रशासकं है, कुछ प्रशासित।
दुनियां में ये विविधताएं हैं । विविधताओं का नाम ही दुनिया है ।

१८. ब्रह्मदत्तकी कथा

परम भक्तिसे संसार पूज्य जिन भगवान्‌को नमस्कार कर मैं ब्रह्मदत्तकी कथा लिखता हूँ । वह इसलिये कि सत्पुरुषोको इसके द्वारा कुछ शिक्षा मिले ।

कांपिल्य नामक नगरमे एक ब्रह्मरथ नामका राजा रहता था । उसकी रानीका नाम था रामिली । वह सुन्दरी थी, विदुषी थी और राजाको प्राणोसे भी कहीं प्यारी थी, बारहवे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त इसीके पुत्र थे । वे छह खण्ड पृथ्वीको अपने वश करके सुखपूर्वक अपना राज्य शासनका काम करते थे ।

एक दिन राजा भोजन करनेको बैठे उस समय उनके विजयसेन नामके रसोइयेने उन्हे खीर परौसी । पर वह बहुत गरम थी, इसलिये राजा उसे खा न सके । उसे इतनी गरम देखकर राजा रसोइयेपर बहुत गुस्सा हुए । गुस्से मे आकर उन्होने खीरके उसी बर्तनको रसोइयेके सिरपर दे मारा । उसका सिर सब जल गया । साथ ही वह मर गया । हाय ! ऐसे क्रोधको धिक्कार है, जिससे मनुष्य अपना हिताहित न देखकर बड़े-बड़े अनर्थ कर बैठता है और फिर अनन्त कालतक कुगतियों दु:ख भोगता रहता है ।

रसोइया बड़े दु:खसे मरा सही, पर उसके परिणाम उस समय भी शान्त रहे । वह मरकर लवण समुद्रान्तर्गत विशालरत्न नामक द्वीपमें व्यन्तर देव हुआ । विभगावधिज्ञानसे वह अपने पूर्वभवकी कष्ट कथा जानकर क्रोधके मारे कॉपने लगा । वह एक सन्यासीके वेषमे राजाके पास आया और राजाको उसने केला, आम, सेव, सन्तरा आदि बहुतसे फल भेट किये । राजा जीभ की लोलुपतासे उन्हे खाकर संन्यासीसे बोला-साधुजी, कहिये आप ये फल कहॉसे लाये ? और कहॉ मिलेगे ? ये तो बडे ही मीठे हैं । मैंने तो आजतक ऐसे फल कभी नहीं खाये । मैं आपकी इस भेंटसे बहुत खुश हुआ ।

सन्यासीने कहा, महाराज, मेरा घर एक टापूमे है । वहीं एक बहुत सुन्दर बगीचा है । उसीके फल हैं । और अनन्त फल उसमे लगे हुए हैं । सन्यासीकी रसभरी बात सुनकर राजाके मुँहमे पानी भर आया । उसने सन्यासीके साथ जाने की तैयारी की । सच है —

शुभाऽशुभं न जानाति हा कष्टं लपटः पुमान ।

—व्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्-जिह्वलोलुपी पुरुष भला-बुरा नहीं जान पाते, यह वड़े दुःख की वात है । यही हाल राजाका हुआ । जब वह लोलुपनाके वश हो उस संन्यासीके साथ समुद्रके बीचमें पहुँचा, तव उसने राजाको मारनेके लिये वड़ा कष्ट देना शुरू किया । चक्रवर्ती अपनेको कष्टों से घिग देखकर पंचनमस्कार मंत्रकी आराधना करने लगा । उसके प्रभावसे कपटी संन्यासीकी सव शक्ति रुद्ध हो गई । वह राजाको कुछ कष्ट न दे सका । आखिर प्रगट होकर उसने राजासे कहा-दुष्ट, याद है ? मैं जव तेरा रसोइया था, नव तूने मुझे जानसे मार डाला था ? वही आग आज मेरे हृदयको जला रही है और उसीको बुझानेके लिये, अपने पूर्व भवका बैर निकालनेके लिये मैं तुझे यहाँ छलकर लाया हूँ और वहुत कष्टके साथ तुझे जानसे मारूँगा, जिससे फिर कभी तू ऐसा अनर्थ न करे । पर यदि तू एक काम करे तो वच भी सकता है । वह यह कि तू अपने मुँहसे पहले तो यह कह दे कि संसारमें जिनधर्म ही नहीं है और जो कुछ है वह अन्य धर्म है । इसके सिवा पंचनमस्कार मंत्रको जलमें लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटा दे, तव मैं तुझे छोड़ सकता हूँ । मिथ्यादृष्टि व्रह्मदत्तने उसके वहकानेमें आकर वही किया जैसा उसे देवने कहा था । उसका व्यन्तरके कहे अनुसार करना था कि उसने चक्रवर्तीको उसी समय मारकर समुद्र में फैंक दिया । अपना वैर उसने निकाल लिया । चक्रवर्ती मरकर मिथ्यात्वके उदयसे सातवे नरक गया । सच है मिथ्यात्व अनन्त दुःखों का देनेवाला है । जिसका जिनधर्मपर विश्वास नहीं क्या उसे इस अनन्त दुःखमय ससार में कभी सुख हुआ है ? नहीं । मिथ्यात्वके समान संसारमें और कोई इतना निन्द्य नहीं है । उसीसे तो चक्रवर्ती व्रह्मदत्त सातवे नरक गया । इसलिये आत्महितके चाहनेवाले पुरुषोको दूरसे मिथ्यात्व छोडकर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्तिका कारण सम्यक्त्व ग्रहण करना उचित है ।

---

१९. श्रेणिकराजाकी कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्रकी द्वारा समस्त संसारके पदार्थोंके देखने जाननेवाले और जगत्पूज्य श्रीजिनभगवान्‌को नमस्कार कर मैं राजा श्रेणिककी कथा लिखता हूँ, जिसके पढ़नेसे सर्वसाधारणका हित हो ।

श्रेणिक मगध देशके अधीश्वर थे । मगधकी प्रधान राजधानी राजगृह थी । श्रेणिक कई विषयोके सिवा राजनीतिके बहुत अच्छे विद्वान थे । उनकी महारानी चेलनी बड़ी धर्मात्मा, जिनभगवान्‌की भक्त और सम्यग्दर्शनसे विभूषित थी ।

एक दिन श्रेणिकने उससे कहा-देखो, ससारमे वैष्णव धर्मकी बहुत प्रतिष्ठा है और वह जैसा सुख देनेवाला है वैसा और धर्म नहीं । इसलिये तुम्हे भी उसी धर्मका आश्रय स्वीकार करना उचित है ।

सुनकर चेलनी देवी, जिसे कि जिनधर्मपर अगाध विश्वास था, बड़े विनयसे बोली-नाथ, अच्छी बात है, समय पाकर मैं इस विषयकी परीक्षा करूँगी ।

इसके कुछ दिनो बाद चेलनीने कुछ भागवत साधुओका अपने यहॉ निमंत्रण किया और बड़े गौरवके साथ अपने यहॉ उन्हें बुलाया । वहाँ आकर अपना ढोग दिखलाने के लिये वे कपट मायाचारसे ईश्वराराधन करनेको बैठे । उस समय चेलनीने उनसे पूछा, आप लोग क्या करते है ? उत्तरमे उन्होंने कहा-देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओंसे भरे हुए शरीरको छोड़कर अपने आत्माको विष्णु अवस्थामें प्राप्त कर स्वानुभवजन्य सुख भोगते है ।

सुनकर देवी चेलनीने उस मंडपमे, जिसमे सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवा दी । आग लगते ही वे सब कव्वेकी तरह भाग खड़े हुए । यह देखकर श्रेणिकने बडे क्रोधके साथ चेलनीसे कहा-आज तुमने साधुओके साथ बडा अनर्थ किया । यदि तुम्हारी उनपर भक्ति नहीं थी, तो क्या उसका यह अर्थ है कि उन्हे जानसे ही मार डालना ? बतलाओ तो उन्होने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवनकी ही प्यासी हो उठी ?

रानी बोली-नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिये सुखका कारण था । मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था । जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं ? तब उन्होंने मुझे कहा था कि हम अपवित्र शरीर छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपद प्राप्त करते हैं । तब मैंने सोचा कि ओहो, ये शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तव तो बहुत ही अच्छा है और इससे यह उत्तम होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु बने रहें । संसारमें बार-बार आना और जाना यह इनके पीछे पचड़ा क्यों ? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमें रहकर सुखभोग करें, इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मंडपमें आग लगवा दी थी । आप ही अव विचार कर बतलाइये कि इसमें मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया ? और सुनिये मेरे वचनोंपर आपको विश्वास हो, इसलिये एक कथा भी आपको सुनाये देती हूँ ।

"जिस समयकी यह कथा है, उस समय वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे । वे अपना राज्य शासन नीतिके साथ करते हुए सुखसे समय बिताते थे । कोशाम्बीमें दो सेठ रहते थे । उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त । दोनो सेठोंमें परस्पर बहुत प्रेम था । उनका प्रेम उन्होंने सदा दृढ़ बना रहे, इसलिये परस्परमें एक शर्त की । वह यह कि, "मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका व्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़कीका व्याह उसके साथ कर देना पड़ेगा ।"

दोनोंने उक्त शर्त स्वीकार की । इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्तके घर पुत्रजन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र हुआ । पर उसमें एक बड़े भारी आश्चर्यकी वात थी । वह यह कि वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प ।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई । उसका नाम रक्खा गया । नागदत्ता । वह वड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी । उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका व्याह वसुमित्रके साथ कर दिया । सच है –

अर्थात्-सत्पुरुष सैकड़ो कष्ट सह लेते है, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते । वसुमित्रका ब्याह हो गया । वह अब प्रतिदिन दिनमे तो सर्प बनकर एक पिटारेमे रहता और रातमे एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोभोग करता । सचमुच ससारको विचित्र ही स्थिति होती है । इसी तरह उसे कई दिन बीत गये । एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्थामे पदार्पण करती हुई और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली-हाय ! दैवकी कैसी विडम्बना है, जो कहॉ देवबाला सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयकर सर्प ? उसकी दु:ख भरी आहको नागदत्ताने सुन लिया । वह दौड़ी आकर अपनी मातासे बोली-माता, इसके लिये दु:ख आप क्यो करती है ? मेरा जब भाग्य ही ऐसा था, तब उसके लिये दु ख करना व्यर्थ है और अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है । इसके बाद नागदत्ताने अपनी माताको स्वामीके उद्धार सम्बन्धकी बात समझा दी ।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्पका शरीर छोड़कर मनुष्यरूपमें आया और अपने शय्या-भवनमे पहुँचा । इधर नागदत्ता छुपी हुई आकर वसुमित्रके पिटारेको वहॉ उठा ले आई और उसे उसी समय उसने जला डाला । तबसे वसुमित्र मनुष्यरूपमे ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्दसे बिताने लगा ।" नाथ ! उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विऽणुलोकमें रहकर सुख भोगे यह मेरी इच्छा थी; इसलिये मैंने वैसे किया था । महारानी चेलनीकी कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उसपर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोधको उस समय दबा भी गये ।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिये गये हुए थे । उन्होंने वनमे यशोधर मुनिराजको देखा । वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे । श्रेणिकने उन्हे शिकारके लिये विघ्नरूप समझकर मारने का विचार किया और बडे गुस्सेमे आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तो को उनपर छोड़ दिया । कुत्ते

हुई । वे उसी समय फिर वहाँसे बड़े वैभवके साथ भगवान्के दर्शनोंके लिये चले । यह हाल धन्वन्तरी और विश्वानुलोम नामके दो देवों को जान पड़ा । सो वे पद्मरथकी परीक्षाके लिये मध्यलोकमे आये । उन्होंने पद्मरथकी भक्तिकी दृढ़ता देखने के लिए रास्तेमें उनपर उपद्रव करना शुरू किया । पहले उन्होने उन्हे एक भयंकर कालसर्प दिखलाया, इसके बाद राज्यछत्रका भंग, अग्निका लगना, प्रचण्ड वायु द्वारा पर्वत और पत्थरोंका गिरना, असमयमें भयंकर जलवर्षा और खूब कीचड़मय मार्ग और उसमें फँसा हाथी आदि, दिखलाया । यह उपद्रव देखकर साथके सब लोग भयके मारे अधमरे हो गये । मंत्रियोने यात्रा अमंगलमय बतलाकर पद्मरथसे पीछे लौट चलने के लिये आग्रह किया । परन्तु पद्मरथने किसीकी बात नहीं सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ "नम· श्रीवासुपूज्याय" कहकर अपना हाथी आगे बढ़ाया । पद्मरथकी इस प्रकार अचल भक्ति देखकर दोनों देवोंने उनकी बहुत-बहुत प्रशंसा की । इसके बाद वे पद्मरथको सब रोगों को नष्ट करनेवाला एक दिव्य हार और एक बहुत सुन्दर वीणा, जिसकी आवाज एक योजन पर्यन्त सुनाई पड़ती है, देकर अपने स्थान चले गये। ठीक कहा है- जिनके हृदयमें जिनभगवान्की भक्ति सदा विद्यमान रहती है, उनके सब काम सिद्ध हों, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

पद्मरथने चम्पानगरीमें पहुँच कर समवशरणमें विराजे हुए, आठ प्रातिहार्यो विभूपित, देव, विद्याधर, राजा, महाराजाओं द्वारा पूज्य, केवलज्ञान द्वारा ससारके सब पदार्थोको जानकर धर्मका उपदेश करते हुए और अनन्त जन्मोमें बाँधे हुए मिथ्यात्वको नष्ट करनेवाले भगवान् वासुपूज्यके पवित्र दर्शन किये, उनकी पूजा की, स्तुति की और उपदेश सुना । भगवान्के उपदेशका उनके हृदयपर बहुत प्रभाव पड़ा । वे उसी समय जिनदीक्षा लेकर तपस्वी हो गये । प्रव्रजित होते ही उनके परिणाम इतने विशुद्ध हुए कि उन्हें अवधि और मन·पर्ययज्ञान हो गया । भगवान । वासुपूज्य के वे गणधर हुए । इसलिए भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे मिथ्यात्व छोड़कर स्वर्ग-मोक्ष की देनवाली जिनभगवान्की भक्ति निरन्तर पवित्र भावोके साथ करें और जिस प्रकार पद्मरथ सच्चा जिनभक्त हुआ उसी प्रकार वे भी हों ।

जिनभक्ति सब प्रकारका सासारिक सुख देती है और परम्परा मोक्षको प्राप्तिका कारण है, जो केवलज्ञान द्वारा ससारके प्रकाशक है ओर सत्पुरुषों द्वारा पूज्य हैं, वे भगवान् वासुपूज्य सारे संसारको मोक्ष सुख प्रदान करे कर्मोके उदय से घोर दु ख सहते हुए जीवोका उद्धार करे ।

पहली बार लाख रुपये की आय हुई ।
बहुत प्रसन्नता हुई ।

दूसरी बार लाख रुपये की आय हुई ।
सामान्य प्रसन्नता हुई ।

तीसरी लाख रुपये का आय हुई । किसी
कारण से दुःख हुआ ।

पहली बार लाख रुपये का घाटा लगा ।
सामान्य कष्ट हुआ ।

दूसरी बार लाख रुपये का घाटा लगा ।
बहुत कष्ट हुआ ।

तीसरी बार लाख रुपये का घाटा लगा ।
हृदय की गति बन्द हुई ।

२१. पंच नमस्कारमंत्र-माहात्म्य कथा

मोक्षसुख प्रदान करनेवाले श्रीअर्हन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार कर पंच नमस्कारमंत्रकी आराधना द्वारा फल प्राप्त करनेवाले सुदर्शनकी कथा लिखी जाती है ।

अगदेशकी राजधानी चम्पानगरीमें गजवाहन नामके एक राजा हो चुके हैं । वे बहुत खूबसूरत और साथ ही बड़े भारी शूरवीर थे । अपने तेजसे शत्रुओंपर विजय प्राप्तकर सारे राज्यको उन्होने निष्कण्टक बना लिया था । वहीं वृषभदत्त नामके एक सेठ रहा करते थे । उनकी गृहिणीका नाम था अर्हद्दासी । अपनी प्रियापर सेठका बहुत प्रेम था । वह भी सच्ची पतिभक्तिपरायणा थी, सुशीला थी, सती थी, वह सदा जिनभक्तिमें तत्पर रहा करती थी ।

वृषभदत्तके यहाँ एक ग्वाल नौकर था । एक दिन वह वन से अपने घरपर आ रहा था। समय शीतकालका था । जाड़ा खूब पड़ रह था । उस समय रास्तेमे उसे एक ऋद्धिधारी मुनिराजके दर्शन हुए, जो कि एक शिलापर ध्यान लगाये बैठे हुए थे । उन्हें देखकर गुवालेको बड़ी दया आई । वह यह विचार कर, कि अहा ! इनके पास कुछ वस्त्र नहीं है और जाड़ा इतने जोरका पड़ रहा है, तब भी ये इसी शिलपर बैठे हुए ही रात बिता डालेंगे, अपने घर गया और आधी रातके समय अपनी स्त्रीको साथ लिये मुनिराजके पास आया । मुनिराजको जिस अवस्थामें बैठे हुए वह देख गया था, वे अब भी उसी तरह ध्यानस्थ बैठे हुए थे । उनका सारा शरीर ओससे भीग रहा था। उनकी यह हालत देखकर दयावृद्धिसे उसने मुनिराजके शरीरपरसे ओसको साफ किया और सारी रात वह उनके पाँव दाबता रहा, सब तरह उनकी वैयावृत्य करता रहा । सबेरा होते ही मुनिराज का ध्यान पूरा हुआ । उन्होंने आँख उठाकर देखा तो गुवालेको पास ही बैठा पाया । मुनिराजने गुवालेको निकटभव्य समझकर पच नमस्कारमंत्रकाउपदेश किया, जो कि स्वर्गमोक्षकी प्राप्तिका कारण है । इसके बाद मुनिराज भी पंचनमस्कारमंत्रका उच्चारण कर आकाशमे विहार कर गये ।

गुवालेकी धीरे-धीरे मत्रपर बहुत श्रद्धा हो गई । वह किसी भी कामको

जब करने लगता तो पहले ही नमस्कारमत्रका स्मरण कर लिया करता था। एक दिन जब गुवाला मंत्र पढ़ रहा था, तब उसे उसके सेठने सुन लिया। वे मुस्कराकर बोले—क्यों रे, तूने यह मंत्र कहॉसे उडाया ? गुवालेने पहलेकी सब बात अपने स्वामीसे कह दी। सेठने प्रसन्न होकर गुवालेसे कहा—भाई, क्या हुआ यदि तू छोटे भी कुलमे उत्पन्न हुआ ? पर आज तू कृतार्थ हुआ, जो तुझे त्रिलोकपूज्य मुनीराजके दर्शन हुए। सच बात है सत्पुरुष धर्मके बडे प्रेमी हुआ करते हैं।

एक दिन गुवाला भैंसे चरानेके लिए जंगलमे गया। समय वर्षाका था। नदी नाले सब पूर थे। उसकी भैंसे चरनेके लिए नदी पार जाने लगीं। सो इन्हे लौटा लानेकी इच्छासे गुवाला भी उनके पीछे ही नदीमे कूद पडा। जहॉ वह कूदा वहीं एक नुकीला लकड़ा गड़ा हुआ था। उसे उसके कूदते ही लकड़ेकी नोंक उसके पेटमे जा घुसी। उससे उसका पेट फट गया। वह उसी समय मर गया। वह जिस समय नदीमें कूदा था, उस समय सदाके नियमानुसार पचनमस्कारमंत्रका उच्चारण कर कूदा था। वह मरकर मत्रके प्रभावसे वृषभदत्तके यहॉ पुत्र हुआ। वह जाता तो कहीं स्वर्गमे पर, उसने वृषभदत्त के यहीं उत्पन्न होने का निदान कर लिया था, इसलिए निदान उसकी ऊॅची गतिका बाधक बन गया। उसका नाम रक्खा गया सुदर्शन। सुदर्शन बड़ा सुन्दर था। उसका जन्म मातापिताके लिए खूब उत्कर्षका कारण हुआ। पहलेसे कई गुणी सम्पत्ति उनके पास बढ़ गई। सच है पुण्यवानोके लिए कहीं भी कुछ कमी नहीं रहती।

वहीं एक सागरदत्त सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था सागरसेना। उसके एक पुत्री थी। उसका नाम मनोरमा था। वह बहुत सुन्दरी थी। देवकन्यायें भी उसकी रूपमाधुरी को देखकर शर्मा जाती थीं। उसका ब्याह सुदर्शनके साथ हुआ। दोनो दम्पत्ति सुख के रहने लगे।

एक दिन वृषभदत्त समाधिगुप्त मुनिराजके दर्शन करने के लिए गए। वहॉ उन्होने मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश सुना। उपदेश उन्हे बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उनपर खूब पडा। ससार की दशा देखकर उन्हे बहुत वैराग्य हुआ। वे घरका कारोबार सुदर्शनके सुपुर्द कर समाधिगुप्त मुनिराजके पास दीक्षा लेकर तपस्वी बन गए।

पिताके प्रव्रजित हो जानेपर सुदर्शनने भी खूब प्रतिष्ठा सम्पादन की । राजदरबारमें भी उसकी पिताके जैसी ही पूछताछ होने लगी । वह सर्वसाधारणमें खूब प्रसिद्ध हो गया । सुदर्शन न केवल लौकिक कामोमे ही प्रेम करता था, किन्तु वह उस समय एक बहुत धार्मिक पुरुष गिना जाता था । वह सदा जिनभगवान्‌की भक्तिमें तत्पर रहता, श्रावकके व्रतोका श्रद्धाके साथ पालन करता, दान देता, पूजन स्वाध्यान करता । यह सब होनेपर भी ब्रह्मचर्यमे वह बहुत दृढ़ था ।

एक दिन मगधाधीश्वर गजवाहनके साथ सुदर्शन वनविहारके लिये गया । राजाके साथ राजमहिषी भी थी । सुदर्शन सुन्दर तो था ही, सो उसे देखकर राजरानी कामके पाशमें बुरी तरह फॅसी । उसने अपनी एक परिचारिकाको बुलाकर पूछा—क्यो तू जानती है कि महाराजके साथ आगन्तुक कौन है ? और ये कहॉ रहते हैं ?

परिचारिकाने कहा—देवी, आप नहीं जानतीं, ये तो अपने प्रसिद्ध राजश्रेष्ठी सुदर्शन हैं ।

राजमहिषी ने कहा—हॉ ! तब तो ये अपनी राजधानी के भूषण हैं । अरी, देख तो इनका रूप कितना सुन्दर, कितना मनको अपनी ओर खींचनेवाला है ? मैंने तो आजतक ऐसा सुन्दर नररत्न नहीं देखा । मैं तो कहती हूॅ, इनका रूप स्वर्गके देवोंसे भी कहीं बढ़कर है । तूने भी कभी ऐसा सुन्दर पुरुष देखा है ।

वह बोली—महारानीजी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि इनके समान सुन्दर पुरुषरत्न तीन लोकमें भी नहीं मिलेगा ।

राजमहिषीने उसे अपने अनुकूल देखकर कहा—हॉ तो तुझसे मुझे एक बात कहनी है ।

वह बोली—वह क्या, महारानीजी ?

महारानी बोली—पर तू उसे कर दे तो मैं कहूॅ

वह बोली—देवी, भला, मैं तो आपकी दासी हूॅ फिर मुझे आपकी आज्ञा पालन करनेमें क्यो इन्कार होगा । आप निःसंकोच होकर कहिये ।

जहॉतक मेरा बस चलेगा, मैं उसे पूरा करूॅगी ।

महारानीने कहा—देख, मेरा तेरेपर पूर्ण विश्वास है, इसलिए मैं

अपने मनकी बात तुझे कहती हूँ। देखना कहीं मुझे धोखा न देना ? तो सुन, मैं जिस सुदर्शनकी बाबत ऊपर तुझसे कह आई हूँ, वह मेरे हृदयमें स्थान पा गया है। उसके बिना मुझे संसार नि:सार और सूना जान पड़ता है। तू यदि किसी प्रयत्नसे मुझे उससे मिला दे तब ही मेरा जीवन बच सकता है। अन्यथा समझ संसारमें मेरा जीवन कुछ ही दिनोके लिये है।

वह महारानीकी बात सुनकर पहले तो कुछ विस्मित सी हुई, पर थी तो आखिर पैसेकी गुलाम न ? उसने महारानीकी आशा पूरी कर देनेके बदलेमे अपनेको आशातीत धनकी प्राप्ति होगी, इस विचारसे कहा—महारानीजी, बस यही बात है ? इसीके लिये आप इतनी निराश हुई जाती हैं ? जबतक मेरे दममें दम है तबतक आपको निराश होनेका कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। मैं आपकी आशा अवश्य पूरी करूँगी। आप घबराये नहीं। बहुत ठीक लिखा है—

असभ्य दुष्टनारीभिर्निन्दितं क्रियते न किम्।

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात—असभ्य और दुष्ट स्त्रियाँ कौन बुरा काम नहीं करतीं ? अभयाकी धाय भी ऐसी ही स्त्रियोंमें थी। फिर वह क्यों इस काममे अपना हाथ न डालती ? वह अब सुदर्शनको राजमहलमें ले आनेके प्रयत्नमें लगी।

सुदर्शन एक धर्मात्मा श्रावक था। वह वैरागी था। ससार मे रहता तब भी सदा उससे छुटकारा पानेके उपायमें लगा रहता था। इसलिए वह ध्यानका भी अभ्यास किया करता था। अष्टमी और चतुर्दशीको रात्रिमें वह भयकर श्मशानमे जाकर ध्यान करता। धायको सुदर्शनके ध्यानको बात मालूम थी। उसने सुदर्शनको राजमहलमे लिवा लेजानेको एक षड्यंत्र रचा। एक दिन वह एक कुम्हारके पास गई और उससे मनुष्यके आकार-का एक मिट्टीका पुतला बनवाया और उसे वस्त्र पहराकर वह राजमहल लिवा ले चली। महलमे प्रवेश करते समय पहरेदारोने उसे रोका और पूछा कि यह क्या है ? वह उसका कुछ उत्तर न देकर आगे बढी। पहरेदारोने उसे नहीं जाने दिया। उसने गुस्सेका ढौंग बनाकर पुतलेको जमीनपर दे मारा। वह चूर-चूर हो गया। इसके साथ ही उसने कड़ककर कहा—पापियो, दुष्टों, तुमने आज

वड़ा अनर्थ किया है। तुम नहीं जानते कि महारानीके नरव्रत था, सो वे इस पुतलेकी पूजा करके भोजन करतीं। सो तुमने इसे फोड़ डाला है। अव वे कभी भोजन नहीं करेंगी। देखो, मैं अव महारानीसे जाकर तुम्हारी दुष्टताका हाल कहती हूँ। फिर वे सवेरे ही तुम्हारी क्या गति करती हैं ? तुम्हारी दुष्टता सुनकर ही वे तुम्हें जानसे मरवा डालेंगी। धायकी धूर्ततासे वेचारे पहरेदारोंके प्राण सूख गये। उन्हें काटो तो खून नहीं। मारे डरके वे थर-थर काँपने लगे। वे उसके पाँवोंमें पड़कर अपने प्राण वचाने की उससे भीख माँगने लगे। वड़ी आरजू मिन्नत करनेपर उसने कहा—तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे दया आती है। खैर,मैं तुम्हारे वचाने का उपाय करूँगी। पर याद रखना अव तुम मुझे कोई काम करते समय मत छेड़ना। तुमने इस पुतलेको तो फोड़ डाला, वतलाओ अव महारानी आज अपना व्रत कैसे पूरा करेंगी ? और न इसी समय और दूसरा पुतला ही वन सकता है। अस्तु। फिर भी मैं कुछ उपाय करती हूँ। जहाँतक वन पड़ा वहाँतक तो दूसरा पुतला ही वनवाकर लाती हूँ और यदि नहीं वन सका तो किसी जिन्दा ही पुरुपको मुझे थोड़ी देरके लिये लाना पड़ेगा। तुम्हें सचेत करती हूँ कि उस समय मैं किसीसे नहीं वोलूँगी, इसलिये तुम मुझसे कुछ कहना सुनना नहीं। वेचारे पहरेदारोंको तो अपनी जानकी पड़ी हुई थी, इसलिए उन्होंने हाथ जोड़कर कह दिया कि—अच्छा, हम लोग आपसे अव कुछ नहीं कहेंगे। आप अपना काम निडर हो कर कीजिये।

इस प्रकार वह धूर्त्ता सव पहरेदारोंको अपने वश कर उसी समय श्मशान में पहुँची। श्मशानमें सुदर्शन कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। महारानी अभयाकी परिचारिकाने उसे उठा लाकर महारानीके सुपुर्द कर दिया। अभया अपनी परिचारिकापर वहुत प्रसन्न हुई। सुदर्शन को प्राप्त कर उसके आनन्दका कुछ ठिकाना न रहा, मानों उसे अपनी मनमानी निधि मिल गई। वह कामसे तो अत्यन्त पीड़ित थी ही, उसने सुदर्शनसे वहुत अनुनय विनय किया, इसलिये कि वह उसकी इच्छा पूरी करके उसे सुखी करे, कामाग्नि से जलते हुए शरीरको आलिंगनसुधा प्रदान कर शीतल करें। पर सुदर्शनने उसकी एक भी वातका उत्तर नहीं दिया। यह देख रानी ने उसके साथ अनेक प्रकार की कुचेष्टायें करनी आरंभ की, जिससे वह विचलित हो

जाय। पर तब भी रानी की इच्छा पूरी नहीं हुई । सुदर्शन मेरुसा निश्चल और समुद्रसा गंभीर बना रहकर जिनभगवान्के चरणोका ध्यान करने लगा । उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं इस अपसर्गसे बच गया तो अब ससारमे रहकर साधु हो जाऊँगा । प्रतिज्ञा कर वह काष्ठकी तरह निश्चल हो कर ध्यान करने लगा । बहुत ठीक लिखा है—

सन्त· कष्टशतैश्चापि चारित्रान्न चलत्य हो । —ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—सत्पुरुष सैकडो कष्ट सह लेते हैं, पर अपने व्रतसे कभी नहीं चलते । अनेक तरह का यत्न, अनेक कुचेष्टाये करनेपर भी जब रानी सुदर्शनको शीलशैलसे न गिरा सकी, उसे तिलभर भी विचलित नहीं कर सकी, तब शर्मिन्दा होकर उसने सुदर्शनको कष्ट देनेके लिये एक नया ही ढोग रचा । उसने अपने शरीरको नखोंसे खूब खुजा डाला, अपने कपडे फाड डाले, भूषण तोड-फोड़ डाले और यह कहती हुई वह जोर-जोरसे हिचकियॉ ले लेकर रोने लगी कि हाय ! इस पापी दुराचारीने मेरी यह हालत कर दी । मैंने तो इसे भाई समझकर अपने महल बुलाया था । मुझे क्या मालूम था कि यह इतना दुष्ट होगा ? हाय ! दौड़ो !! मुझे बचाओ ! मेरी रक्षा करो ! यह पापी मेरा सर्वनाश करना चाहता है । रानीके चिल्लाते ही बहुतसे नौकर-चाकर दौडे आये और सुदर्शनको बॉधकर वे महाराजके पास लिवा ले गये । सच है—

कि न कुर्वन्ति पापिन्यो निंद्य दुष्टस्त्रियो भुवि । —नेमिदत्त

अर्थात्—पापिनी और दुष्ट स्त्रियॉ संसारमें कौन बुरा काम नहीं करतीं ? अभया भी ऐसी हो स्त्रियोमे एक थी । इसलिये उसने अपना चरित कर बतलाया। महाराजको जब यह हाल मालूम हुआ, तो उन्होने क्रोधमे आकर सुदर्शनको मार डालनेका हुकुम दे दिया । महाराजकी आज्ञा होते ही जल्लाद लोग उसे श्मशानमे लिवा ले गये । उनमेसे एकने अपनी तेज तलवार सुदर्शन गले पर दे मारी । पर यह हुआ क्या ? जो सुदर्शनको उससे कुछ कष्ट नहीं पहुँचा और उलटा उसे वह तलवारका मारना ऐसा जान पड़ा, मानो किसीने उसपर फूलकी माला फैंकी हो । जान पडा यह सब उसके अखण्ड शीलव्रतका प्रभाव था । ऐसे कष्टके समय देवो ने आकर उसकी

रक्षा की और स्तुति की कि सुदर्शन, तुम धन्य हो, तुम सच्चे जिनभक्त हो, सच्चे श्रावक हो, तुम्हारा व्रह्मचर्य अखण्ड है, तुम्हारा हृदय सुमेरुसे भी कहीं अधिक निश्चल है । इस प्रकार प्रशंसा कर देवोंने उसपर सुगन्धित फूलोंकी वर्षा की और धर्मप्रेमके वश होकर उसकी पूजा की। सच है—

अहो पुण्यवतां पुंसां कष्टं चापि सुखायते ।
तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितम् ।

— व्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात् — पुण्यवानोंके लिये दुःख भी सुखके रूपमें परिणत हो जाता है । इसलिये भव्य पुरुषोंकी जिनभगवान्‌के कहे मार्गसे पुण्यकर्म करना चाहिये । भक्तिपूर्वक जिनभगवान्‌की पूजा करना, पात्रोंकी दान देना, व्रह्मचर्यका पालना, अणुव्रतोंका पालन करना, अनाथ, अपाहित दुखियोंको सहायता देना, विद्यालय, पाठशाला खुलवाना, उनमें सहायता देना, विद्यार्थियोंको छात्र-वृत्तियाँ देना आदि पुण्यकर्म है । सुदर्शनके व्रतमाहात्म्यका हाल महाराजको मालूम हुआ । वे उसी सुदर्शनके पास आये और उन्होंने उससे अपने अविचारके लिये क्षमा माँगी ।

सुदर्शनको संसारकी इस लीलासे वड़ा वैराग्य हुआ । वह अपना करोवार सव सुकान्त पुत्रको सौंपकर वनमें गया और त्रिलोकपूज्य विमलवाहन मुनिराजको नमस्कार कर उनके पास प्रव्रजित हो गया। मुनि होकर सुदर्शनने दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपश्चर्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और अनेक भव्य पुरुषोंको कल्याणका मार्ग दिखलाकर तथा देवादि द्वारा पूज्य होकर अन्तमें वह निरावाध, अनन्त सुखमय मोक्षधाममें पहुँच गया ।

इस प्रकार नमस्कर मंत्रका माहत्म्य जानकर भव्योंको उचित है कि वे प्रसन्नताके साथ उसपर विश्वास करें और प्रतिदिन उसकी आराधना करें ।

धर्मात्माओं के नेत्ररूपी कुमुद-पुष्पोंके प्रफुल्लित करनेवाले, आनन्द देनेवाले और श्रुतज्ञानके समुद्र तथा मुनि, देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि द्वारा पूज्य, केवलज्ञानरूपी कान्तिसे शोभायमान भगवान् जिनचन्द्र संसारमें सदा काल रहें ।

---

२२. यम मुनिकी कथा

मैं देव, गुरु और जिनवाणी नमस्कार कर यम मुनिकी कथा लिखता हूँ, जिन्होने बहुत ही थोड़ा ज्ञान होनेपर भी अपनेको मुक्तिका पात्र बना लिया और अन्तमे वे मोक्ष गये । यह कथा सब सुखकी देनेवाली है ।

उड्रदेशके अन्तर्गत एक धर्म नामका प्रसिद्ध और सुन्दर शहर है । उसके राजा थे यम । वे बुद्धिमान और शास्त्रज्ञ थे । उनकी रानीका नाम धनवती था । धनवतीके एक पुत्र और एक पुत्री थी । उनके नाम थे गर्दभ और कोणिका । कोणिका बहुत सुन्दरी थी । धनवतीके अतिरिक्त राजाकी और भी कई रानियॉ थीं । उनके पुत्रोंकी सख्या पॉचसौ थी । ये पॉचसौ ही भाई धर्मात्मा थे और ससारसे उदासीन रहा करते थे । राजमत्रीका नाम था दीर्घ । वह बहुत बुद्धिमान् और राजनीतिका अच्छा जानकार था । राजा इन सब साधनोसे बहुत सुखी थे और राज्य भी बडीसे शान्ति से करते थे ।

एक दिन एक राज ज्योतिषीने कोणिकाके लक्षण वगैरह देखकर राजासे कहा—महाराज, राजकुमारी बड़ी भाग्यवती है । जो इसका पति होगा वह सारी पृथ्वीका स्वामी होगा । यह सुनकर राजा बहुत खुश हुए और उस दिनसे वे उसकी बड़ी सावधानीसे रक्षा करने लगे, उन्होने उसके लिये एक बहुत सुन्दर और भव्य तलग्रह बनवा दिया । वह इसलिये कि उसे और छोटा-मोटा बलवान् राजा न देख पाये ।

एक दिन उसकी राजधानीमे पॉचसौ मुनियोका संघ आया । सघके आचार्य थे महामुनि सुधर्माचार्य । संसारका हित करना उनका एक मात्र व्रत था । बड़े आनन्द उत्साहके साथ शहर के सब लोग अनेक प्रकारके पूजन द्रव्य हाथोमे लिये हुए आचार्यकी पूजा के लिये गये । उन्हें जाते हुए देख राजा भी अपने पाण्डित्यके अभिमानमें आकर मुनियो की निन्दा करते हुए उनके पास गये । मुनि निन्दा और ज्ञानका अभिमान करनेसे उसी समय उसने कोई ऐसा कर्मोका तीव्र उदय आया कि उनकी सब बुद्धि नष्ट हो गई । वे महामूर्ख बन गये । इसलिये जो उत्तम पुरुष हैं और ज्ञानी बनना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि वे कभी ज्ञानका गर्व न करे और ज्ञानहीका क्यो ? किन्तु

कुल, जाति, बल, ऋद्धि, ऐश्वर्य, शरीर, तप, पूजा, प्रतिष्ठा आदि किसीका भी गर्व, अभिमान न करे। इनका अभिमान करना बड़ा दुःखदायी हैं ।

अपनी यह हालत देखकर राजाका होश ठिकाने आया । वे एक साथ ही दॉत रहित हाथी को तरह गर्व रहित हो गये । उन्होने अपने कृत कर्मोका बहुत पश्चात्ताप किया और मुनिराजको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर उनसे धर्मोपदेश सुना, जो कि जीव मात्रको सुखका देनेवाला है । धर्मोपदेशसे उन्हे बहुत शान्ति मिली । उसका असर भी उनपर बहुत पड़ा । वे संसारसे विरक्त हो गये । वे उसी समय अपने गर्दभनामके पुत्रको राज्य सौंपकर अपने अन्य पॉचसौ पुत्रोके साथ, जो कि बालपन हीसे वैरागी रहा करते थे, मुनि हो गये। मुनि हुए बाद उन सबने खूब शास्त्रोका अभ्यास किया । आश्चर्य है कि वे पॉच सौ ही भाई तो खूब विद्वान् हो गये, पर राजाको (यम मुनिको) पचनमस्कार मत्रका उच्चारण करना तक भी नहीं आया । अपनी यह दशा देखकर यम मुनि बड़े शर्मिन्दा और दुःखी हुए । उन्होंने वहॉ रहना उचित न समझ अपने गुरुसे तीर्थयात्रा करनेकी आज्ञा ली और अकेले ही वहॉसे वे निकल पड़े । यम मुनि अकेले ही यात्रा करते हुए एक दिन स्वच्छन्द होकर रास्तेमे जा रहे थे । जाते हुए उन्होने एक रथ देखा । रथमे गधे जुते हुए थे और उसपर एक आदमी बैठा हुआ था । गधे उसे एक हरे धानके खेतकी ओर लिये जा रहे थे । रास्तेमें मुनिको जाते हुए देखकर रथपर बैंठे हुए मनुष्यने उन्हे पकड़ लिया और लगा वह उन्हे कष्ट पहुँचाने । मुनिने कुछ ज्ञानका क्षयोपशम हो जानेसे एक खण्ड गाथा बनाकर पढ़ी । वह गाथा यह थी—

कट्टसि पुण णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि ।

— खादिदुमिति

अर्थात्—रे गधो, कष्ट उठाओगे, तो तुम जब भी खा सकोगे ।

इसी तरह एक दिन कुछ बालक खेल रहे थे । वहीं कोणिका भी न जाने किसी तरह पहुँच गई । उसे देखकर सब बालक डरे । उस समय कोणिकाको देखकर यम मुनिने एक और खण्ड गाथा बनाकर आत्माके प्रति कहा। वह गाथा यह थी—

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे पत्थरणिबुद्धिं,
या छिद्दे अच्छई कोणिआ इति ।

अर्थात–दूसरी ओर क्या देखते हो ? तुम्हारी पत्थर सरीखी कठोर बुद्धिको छेदनेवाली कोणिका तो है ।

एक दिन यम मुनिने एक मेढकको एक कमल पत्रकी आड़मे छुपे हुए सर्पकी ओर आते हुए देखा। देखकर वे मेढकसे बोले–

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भय तुम्हे ति ।

अर्थात्–मुझे–मेरे आत्माको तो किसीसे भय नहीं है । भय है, तो तुम्हे ।

बस, यम मुनिने जो ज्ञान सम्पादन कर पाया, वह इतना था । वे इन्हीं तीन खण्ड गाथाओका स्वाध्याय करते, पाठ करते और कुछ उन्हे आता नहीं था । इसी तरह पवित्रात्मा और धर्मानुयायी यम मुनिने अनेक तीर्थोकी यात्रा करते हुए धर्मपुरकी ओर आ निकले । वे शहर बाहर एक बगीचेमे कायोत्सर्ग ध्यान करने लगे । उनके पीछे लौट आनेका हाल उनके पुत्र गर्दभ और राजमत्री दीर्घको ज्ञात हुआ । उन्होने समझा कि ये हमसे पीछा राज्य लेनेको आये हैं । सो वे दोनो मुनिके मारनेका विचार कर आधीरातके समय वनमे गये और तलवार खींचकर उनके पीछे खड़े हो गये । आचार्य कहते हैं कि –

धिक्राज्य धिड्मूर्खत्व कातरत्व च धिक्तराम ।
निस्पृहाच्च मुनेर्येन शका राजयेऽभवत्तयो ॥

अर्थात्–ऐसे राज्यको, ऐसी मूर्खता और ऐसे डरपोकपने को धिक्कार है, जिससे एक निस्पृह और ससारत्यागी मुनिके द्वारा राज्यके छिन जानेका उन्हे भय हुआ । गर्दभ और दीर्घ, मुनिको हत्या करनेको तो आये पर उनकी हिम्मत उन्हे मारनेको नहीं पडी । वे बार-बार अपनी तलवारोको म्यानमे रखने लगे और बाहर निकालने लगे । उसी समय यम मुनिने अपनी स्वाध्यायकी पहली गाथा पढो, जो कि ऊपर लिखी जा चुकी है । उसे सुनकर गर्दभने अपने मत्रीसे कहा–जान पडता है मुनिने हम दोनोको देख लिया । पर साथ ही जब मुनिने दूसरी गाथा पढी तब उसने कहा–नहीं जी, मुनिराज राज्य

लेनेको नहीं आये हैं । मैंने जो वैसा समझा वह मेरा भ्रम था । मेरी वहिन कोणिकाको प्रेमके वश कुछ कहनेको ये आये हुए जान पड़ते हैं । इसके वाद जव मुनिराजने तीसरी आधी गाथा भी पढ़ी तव उसे सुनकर गर्दभने अपने मनमें उसका यह अर्थ समझा कि "मंत्री टीर्घ वड़ा कूट है और मुझे मारना चाहता है" यही वात पिताजी, प्रेमके वश हो तुझे कहकर सावधान करनेको आये हैं । परन्तु थोड़ी देर वाद ही उसका यह सन्देह भी दूर हो गया । उन्होंने अपने हृदयकी सव दुष्टता छोड़कर वड़ी भक्तिके साथ पवित्र चारित्रके धारक मुनिराजको प्रणाम किया और उनसे धर्मका उपदेश सुना, जो कि स्वर्ग-मोक्ष का देनेवाला है । उपदेश सुनकर वे दोनों वहुत प्रसन्न हुए । इसके वाद वे श्रावकधर्म ग्रहण कर अपने स्थान लौट गये ।

इधर यमधर मुनि भी अपने चारित्रको दिन दूना निर्मल करने लगे, परिणामोंको वैराग्यकी ओर खूव लगाने लगे । उसके प्रभावसे थोड़े ही दिनोंमें उन्हें ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई ।

अहा । नाममात्र ज्ञान द्वारा भी यम मुनिराज वड़े ज्ञानी हुए, उन्होंने अपनी उन्नतिको अन्तिम सीढ़ी तक पहुँचा दिया । इसलिये भव्य पुरुषों को संसारका हित करनेवाले जिन भगवान्के द्वारा उपदिष्ट सम्यग्ज्ञानको सदा आराधना करना चाहिये ।

देखो, यम मुनिराजको वहुत थोड़ा ज्ञान था, पर उसकी उन्होंने वड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ आराधना की । उसके प्रभावसे वे संसारमें प्रसिद्ध हुए, मुनियोंमें प्रधान और मान्य हुए और सातों ऋद्धियाँ उन्हें प्राप्त हुईं । इसलिये सज्जन धर्मात्मा पुरुषोंको उचित है कि वे त्रिलोकपूज्य जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट, सव सुखोंका देनेवाला और मोक्ष-प्राप्तिका कारण अत्यन्त पवित्र सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करें ।

---

२३. दृढसूर्यकी कथा

लोकालोक के प्रकाश करनेवाले, केवलज्ञान द्वारा संसारके सब पदार्थोंको जानकर उनका स्वरूप कहनेवाले और देवेन्द्रादि द्वारा पूज्य श्रीजिनभगवान्‌को नमस्कार मैं दृढसूर्यकी कथा लिखता हूँ, जो कि जीवोको विश्वासकी देनेवाली है ।

उज्जयिनीके राजा जिस समय धनपाल थे, उस समयकी यह कथा है । धनपाल उस समयके राजाओंमें एक प्रसिद्ध राजा थे । उनकी महारानीका नाम धनवती था । एक दिन धनवती अपनी सखियोके साथ वसन्तश्री देखनेको उपवनमे गई । उसके गलेमे एक बहुत कीमती रत्नोका हार पड़ा हुआ था । उसे वहीं आई हुई एक वसन्तसेना नामकी वेश्याने देखा । उसे देखकर उसका मन उसकी प्राप्तिके लिए आकुलित हो उठा । उसके बिना उसे अपना जीवन निष्फल जान पडने लगा । वह दुःखी होकर अपने घर लौटी । सारे दिन वह उदास रही । जब रातके समय उसका प्रेमी दृढ़सूर्य आया तब उसने उसे उदास देखकर पूछा—प्रिये, कहो ! कहो ! जल्दी कहो !! तुम आज अप्रसन्न कैसी ? वसन्तसेनाने उसे अपने लिए इस प्रकार खेदित देखकर कहा—आज मैं उपवनमे गई हुई थी । वहाँ मैंने राजरानीके गलेमे एक हार देखा है । वह बहुत ही सुन्दर है । उसे आप लाकर दे तब ही मेरा जीवन रह सकता है और तब ही आप मेरे सच्चे प्रेमी हो सकते हैं ।

दृढ़सूर्य हारके लिये चला । वह सीधा राजमहल पहुँचा । भाग्यसे हार उसके हाथ पड़ गया । वह उसे लिये हुए राजमहलसे निकला । सच है लोभी, लपटी कौन काम नहीं करते ? उसे निकलते ही पहरेदारोंने पकड़ लिया । सबेरा होनेपर वह राजसभा मे पहुँचाया गया । राजाने उसे शूलोंकी आज्ञा दी । इसी समय धनदत्त नामके एक सेठ दर्शन करनेको जिनमन्दिर जा रहे थे । दृढ़सूर्यने उनके चेहरे और चाल-ढालसे उन्हे दयालु समझ कर उनसे कहा—सेठजी, आप बड़े जिनभक्त और दयावान् हैं, इसलिए आपसे प्रार्थना है कि मैं इस समय बड़ा प्यासा हूँ, सो आप कहींसे थोडासा जल लाकर मुझे पिला दें, तो आपका बड़ा उपकार हो । धनदत्तने उसकी भलाईकी इच्छासे

कहा—'भाई, मैं जल तो लाता हूँ, पर इस बीचमे तुम्हे एक बात करनी होगी । वह यह कि—मैंने कोई बारह वर्षके कठिन परिश्रम द्वारा अपने गुरुमहाराजकी कृपासे एक विद्या सीख पाई है, सो में तुम्हारे लिए जल लेनेको जाते समय कदाचित् उसे भूल जाऊँ तो उससे मेरा सब श्रम व्यर्थ जायगा और मुझे बहुत हानि भी उठानी पडेगी, इसलिए उसे मैं तुम्हें सौंप जाता हूँ । मैं जब जल लेकर आऊँ तब तुम मुझे वह पीछी लौटा देना । यह कहकर परोपकारी धनदत्त स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाला पंच नमस्कारमंत्र उसे सिखाकर आप जल लेनेको चला गया । वह जल लेकर वापिस लौटा, इतनेमें दृढ़सूर्यकी जान निकल गई, वह मर गया । पर वह मरा नमस्कार मंत्रका ध्यान करता हुआ । उसे सेठके इस कहनेपर पूर्ण विश्वास हो गया था कि वह विद्या महाफलके देनेवाली है । नमस्कारमत्रके प्रभावसे वह सौधर्मस्वर्ग जाकर देव हुआ । सच है—पच नमस्कारमत्रके प्रभावसे मनुष्यको क्या प्राप्त नहीं होता ?

इसी समय किसी एक दुष्टने राजासे धनदत्तकी शिकायत कर दी कि, महाराज, धनदत्तने चोरके साथ कुछ गुप्त मत्रणा की है, इसलिये उसके घरमे चोरीका धन होना चाहिये । नहीं तो एक चोरसे बातचीत करनेका उसे क्या मतलब ? ऐसे दुष्टोको और उनके दुराचारोंको धिक्कार है' जो व्यर्थ ही दूसरोके प्राण लेनेके यत्नमे रहते हैं और परोपकार करनेवाले सज्जनो-को भी जो दुर्वचन कहते रहते हैं । राजा सुनते ही क्रोधके मारे आग बबूला हो गए । उन्होने बिना कुछ सोचे विचारे धनदत्तको बाँध ले आनेके लिये अपने नौकरों को भेजा । इसी समय अवधिज्ञान द्वारा यह हाल सौधर्मेन्द्रको, जोकि दृढसूर्यका जीव था, मालूम हो गया । अपने उपकारीको, कष्टमे फँसा देखकर वह उसी समय उज्जयिनीमे आया और स्वयं ही द्वारपाल बनकर उससे घरके दरवाजेपर पहरा देने लगा । जब राजा का नौकर धनदत्तको पकड़नेके लिये घरमे घुसने लगे तब देवने उन्हे रोका । पर जब वे हठ करने लगे और जबरन घरमें घुसने लगे तब देवने भी अपनी मायासे उन सबको एक क्षणभरमें धराशायी बना दिया । राजाने यह हाल सुनकर और भी बहुतसे अपने अच्छे-अच्छे शूरवीरोंको भेजा, देवने उन्हें भी पृथ्वीपर लौटा दिया । इससे राजाका क्रोध

अत्यन्त बढ़ गया । तब वे स्वय अपनी सेनाको लेकर धनदत्तपर आ चढे । पर उस एक ही देवने उनकी सारी सेनाको तीन तेरह कर दिया । यह देखकर राजा भयके मारे भागने लगे । उन्हे भागते हुए देखकर देवने उनका पीछा किया और वह उनसे बोला—आप कहीं नहीं भाग सकते । आपके जीनेका एक धनदत्तके आश्रय जायें और उससे अपने प्राणोकी भीख मॉगे । बिना ऐसा किये आपकी कुशल नहीं । सुनकर ही राजा धनदत्तके पास जिनमन्दिर गये और उन्होने सेठसे प्रार्थना की कि—धनदत्त, मेरी रक्षा करो ! मुझे बचाओ । मैं तुम्हारे शरणमे प्राप्त हूॅ । सेठने देवको पीछे ही आया हुआ देखकर कहा—तुम कौन हो ? और क्यो हमारे महाराजको कष्ट दे रहे हो ? देवने अपनी माया समेटी और सेठको प्रणाम करके कहा—हे जिनभक्त सेठ, मैं वही पापी चोरका जीव हूॅ, जिसे तुमने नमस्कारमत्र उपदेश दिया था । उसी के प्रभावसे मैं सौधर्मस्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ हूॅ । मैंने अवधिज्ञान द्वारा जब अपना पूर्वभवका हाल जाना तब मुझे ज्ञात हुआ कि इस समय मेरे उपकारीपर बडी आपत्ति आ रही है, इसलिये मैं आया हूॅ । यह सब कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये और आपकी रक्षाके लिये मैं आया हूॅ । यह सब माया मुझ सेवककी ही की हुई है । इस प्रकार सब हाल सेठसे कहकर और रत्नमय भूषणादिसे उसका यथोचित सत्कार कर देव स्वर्गमे चला गया । जिनभक्त धनदत्तकी परोपकारबुद्धि और दूसरों के दु ख दूर करने को कर्त्तव्यपरता देखकर राजा वगैरहने उसका खूब आदर सम्मान किया । सच है—“धार्मिक कैर्न पूज्यते” अर्थात् धर्मात्माका कौन सत्कार नहीं करता ?

राजा और प्रजाके लोग इस प्रकार नमस्कारमत्रका प्रभाव देखकर बहुत खुश हुए पवित्र जिनशासनके श्रद्धानी हुए । इसी तरह धर्मात्माओको भी उचित है कि वे अपने आत्महितके लिये भक्तिपूर्वक जिनभगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्ममे अपनी बुद्धिको स्थिर करे ।

---

२४. यमपाल चांडालकी कथा

मोक्ष सुखके देनेवाले श्रीजिनभगवान् धर्मप्राप्तिके लिये नमस्कार कर मैं एक ऐसे चाण्डालकी कथा लिखता हूं, जिसकी कि देवों तकने पूजा की है।

काशीके राजा पाकशासनने एक समय अपनी प्रजाको महामारीसे पीड़ित देखकर ढिंढोरा पिटवा दिया कि "नन्दीश्वरपर्वमे आठ दिन पर्यन्त किसी जीवका वध न हो। इस राजाज्ञाका उल्लंघन करनेवाला प्राणदंडका भागी होगा।" वहीं एक सेठ पुत्र रहता था। उसका नाम तो था धर्म, पर असलमे वह महा अधर्मी था। वह सात व्यसनोका सेवन करनेवाला था। उसे मॉस खानेकी बुरी आदत पड़ी हुई थी। एक दिन भी बिना मॉस खाये उससे नहीं रहा जाता था। एक दिन वह गुप्तरीतिसे राजाके बगीचेमे गया। वहॉ एक राजाका खास मेंढा बॅधा करता था। उसने उसे मार डाला और उसके कच्चे ही मांसको खाकर वह उसकी हड्डियोंको एक गड्डेमे गाड़ गया। सच है—

व्यसनेन युतो जीव· सत्सं पापपरो भवेत्।

— ब० नेमिदत्त

अर्थात्—व्यसनी मनुष्य नियमसे पापमें सदा तत्पर रहा करते हैं। दूसरे दिन जब राजाने बगीचेमे मेंढा नहीं देखा और उसके लिये बहुत खोज करनेपर भी जब उसका पता नहीं चला, तब उन्होंने उसका शोध लगानेको अपने बहुतसे गुप्तचर नियुक्त किये। एक गुप्तचर राजाके बागमें भी चला गया। वहॉ का बागमाली रातको सोते समय सेठ पुत्रके द्वारा मेंढेके मारे जानेका हाल अपनी स्त्रीसे कह रहा था, उसे गुप्तचरने सुन लिया। सुनकर उसने महाराजसे जाकर सब हाल कह दिया। राजाको इससे सेठ पुत्र पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होने कोतवालको बुलाकर आज्ञा की कि, पापी धर्मने एक तो जीवहिंसा की और दूसरे राजाज्ञा का उल्लंघन किया है, इसलिये उसे ले जाकर शूली चढ़ा दो। कोतवाल राजाज्ञाके अनुसार धर्मको शूलीके स्थानपर लिवा ले गया और नौकरोंको भेजकर उसने यमपाल चाण्डालको इसलिये बुलाया कि वह धर्मको शूली पर चढ़ा दे। क्योकि यह काम उसीके सुपुर्द था। पर यमपालने एक दिन सर्वौषधिऋद्धिधारी मुनिराजके द्वारा जिनधर्मका

पवित्र उपदेश सुनकर, जो कि दोनो भवोमे सुखका देनेवाला है, प्रतिज्ञा कि थी कि "मैं चतुर्दशीके दिन कभी जीवहिंसा नहीं करूँगा।" इसलिये उसने राज नौकरोको आते हुए देखकर अपने व्रतकी रक्षाके लिये अपनी स्त्रीसे कहा—प्रिये, किसीको मारनेके लिये मुझे बुलानेको राज-नौकर आ रहे हैं, सो तुम उनसे कह देना कि घरमे वे नहीं हैं, दूसरे ग्राम गये हुए है। इस प्रकार वह चांडाल अपनी प्रियाको समझाकर घरके एक कोनेमे छुप रहा। जब राज-नौकर उसके घरपर आये और उनसे चाण्डालप्रियाने अपने स्वामीके बाहर चले जानेका समाचार कहा, तब नौकरने बड़े खेदके साथ कहा—हाय! वह बड़ा अभागा है। देवने उसे धोका दिया। आज ही तो एक सेठ पुत्रके मारनेका मौका आया था और आज ही वह चल दिया! यदि वह आज सेठ पुत्रको मारता तो उसे उसके सब वस्त्राभूषण प्राप्त होते। वस्त्राभूषणका नाम सुनते ही चाण्डालिनीके मुँहमें पानी भर आया। वह अपने लोभके सामने अपने स्वामीका हानि-लाभ कुछ नहीं सोच सकी। उसने रोनेका ढोंग बनाकर और यह कहते हुए, कि हाय वे आज ही गाँवको चले गये, आती हुई लक्ष्मीको उन्होंने पाँवसे ठुकरा दी, हाथके इशारेसे घरके भीतर छुपे हुए अपने स्वामीको बता दिया। सच है —

> स्त्रीणां स्वभावतो माया किं पुनर्लोभकारणे।
> प्रज्वलन्नपि दुर्वाह्निः किं वाते वाति दारुणे॥

—ब्र० नेमिदत्त

अर्थात्—स्त्रियाँ एक तो वैसे ही मायाविनी होती हैं, और फिर लोभादिका कारण मिल जाय तब तो उनकी मायाका कहनाा ही क्या? जलती हुई अग्नि वैसे ही भयानक होती है और यदि ऊपरसे खूब हवा चल रही हो तब फिर उसकी भयानकताका क्या पूछना?

यह देख राज-नौकरोने उसे घरसे बाहर निकाला। निकलते ही निर्भय होकर उसने कहा—आज चतुर्दशी है और मुझे आज अहिंसाव्रत है, इसलिए मैं किसी तरह, चाहे मेरे प्राण ही क्यो न जाये कभी हिंसा नहीं करूँगा। यह सुन नौकर लोग उसे राजाके पास लिवा ले गये। वहाँ भी उसने वैसा ही कहा। ठीक है—

यस्य धर्मे सुविश्वास· क्वापि भोतिं न याति स ।

—ब्र० नेमिदत्त

अर्थात्—जिसका धर्मपर दृढ़ विश्वास है, उसे कहीं भी भय नहीं होता । राजा सेठ पुत्रके अपराधके कारण उसपर अत्यन्त गुस्सा हो ही रहे थे कि एक चाण्डालकी निर्भयपनेकी बातोने उन्हे और भी अधिक क्रोधी वना दिया । एक चाण्डालको राजाज्ञा का उल्लंघन करनेवाला और इतना अभिमानी देखकर उनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा । उन्होंने उसी समय कोलवालकी आज्ञा की कि जाओ, इन दोनोंको ले जाकर अपने मगरमच्छादि क्रूर जीवोसे भरे हुए तालाबमे डाल आओ । वही हुआ । दोनोंको कोतवालले तालाब में डलवा दिया । तालाबमें डालते ही पापी धर्मको तो जलजीवोंने खा लिया । रहा यमपाल, सो वह अपने जीवनकी कुछ परवा न कर अपने व्रतपालनमें निश्चल बना रहा । उसके उच्च भावो और व्रतके प्रभावसे देवोंने आकर उसकी रक्षा की । उन्होंने धर्मानुरागसे तालाब हीमें एक सिहासनपर यमपाल चाण्डालको बैठाया, उसका अभिषेक किया और उसे खूब स्वर्गीय वस्त्राभूषण प्रदान किये, खूब उसका आदर सम्मान किया । जब राजा प्रजाको यह हाल सुन पड़ा, तो उन्होंने भी उस चाण्डाल का बड़े आनन्द और हर्षके साथ सम्मान किया । उसे खूब धन दौलत दी । जिनधर्मका ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देखकर और-और भव्य पुरुषोंको उचित है कि वे स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले जिनधर्ममें अपनी बुद्धिको लगावें । स्वर्गके देवोंने भी एक अत्यन्त नीच चाण्डालका आदर किया, यह देखकर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वेश्योंको अपनी-अपनी जातिका कभी अभिमान नहीं करना चाहिये । क्योंकि पूजा जातिकी नहीं होती, किन्तु गुणोंकी होती है ।

यमपाल जातिका चाण्डाल था, पर उसके हृदयमें जिनधर्मकी पवित्र वासना थी, इसलिए देवोने उसका सम्मान किया, उसे रत्नादिकोके अलंकार प्रदान किये, अच्छे-अच्छे वस्त्र दिये, उसपर फूलोंकी वर्षा की । यह जिनभगवान्के उपदिष्ट धर्मका प्रभाव है, वे ही जिनेन्द्रदेव, जिन्हे कि स्वर्गके देव भी पूजते हैं, मुझे मोक्षश्री प्रदान करे । यह मेरी उनसे प्रार्थना है ।

इति आराधना कथाकोश प्रथम भाग

{दूसरा भाग}

२५. मृगसेन धीवरकी कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक श्री जिनेन्द्र भगवान्‌को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर मैं अहिंसाव्रतका फल पाने वाले एक धीवरकी कथा लिखता हूं ।

सब सन्देहको मिटानेवाली, प्रीतिपूर्वक आराधना करने वाले प्राणियों के लिये सब प्रकारके सुखोंको प्रदान करनेवाली, जिनेन्द्र भगवान्‌की वाणी संसारमें सदैव बनी रहे ।

संसाररूपी अथाह समुद्रसे भव्य पुरुषोंको पार करानेके लिए पुलके समान ज्ञानके सिन्धु मुनिराज निरन्तर मेरे हृदयमें विराजमान रहे ।

इस प्रकार पंचपरमेष्ठीका स्मरण और मंगल करके कर्मरूपी शत्रुओंको नष्ट करनेके लिए मैं अहिंसाव्रतकी पवित्र कथा लिखता है । जिस अहिंसाका नाम ही जीवोको अभय प्रदान करने वाला है, उसका पालन करना तो निस्सन्देह सुखका कारण है । अतः दयालु पुरुषोंको मन, वचन और कायसे संकल्पी हिंसाका परित्याग करना उचित है । बहुतसे लोग अपने पितरों आदिकी शान्तिके लिए श्राद्ध वगैरहमें हिंसा करते हैं, बहुतसे देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए उन्हें जीवोंकी बलि देते हैं और कितने ही महामारी, रोग आदिके मिट जानेके उद्देश्यसे जीवोंकी हिंसा करते हैं; परन्तु यह हिंसा सुखके लिए न होकर दुःखके लिए ही होती है । हिंसा द्वारा जो सुखकी कल्पना करते हैं, यह उनका अज्ञान ही है । पाप कर्म कभी सुखका कारण हो ही नहीं सकता । सुख है अहिंसाव्रतके पालन करने में । भव्य जन ! मैं आपको भव भ्रमणका नाश करनेवाला तथा अहिंसाव्रतका माहात्म्य प्रकट करनेवाली एक कथा सुनाता हूँ; आप ध्यानसे सुने ।

अपनी उत्तम सम्पत्तिसे स्वर्गको नीचा दिखानेवाले सुरम्य अवन्तिदेशके अन्तर्गत शिरीष नामके एक छोटेसे सुन्दर गॉवमे मृगसेन नामका एक धीवर रहा करता था । अपने कन्धो पर एक बड़ा भारी जाल लटकाए हुए एक दिन वह मछलियॉ पकड़नेके लिए शिप्रा नदीकी ओर जा रहा था । रास्तेमें उसे

यशोधर नामक मुनिराजके दर्शन हुए । उस समय अनेक राजा-महाराजा आदि उनके पवित्र चरणोंकी पर्युपासना कर रहे थे, मुनिराज जैन सिद्धान्तके मूल रहस्य स्याद्वादके बहुत अच्छे विद्वान् थे, जीवमात्र का उपकार करना ही एक मात्र उनका व्रत था, धर्मोपदेश रूपी अमृतसे सारे संसारको उन्होंने सन्तुष्ट कर दिया था, अपने वचनरूपी प्रखर किरणों तेजसे उन्होंने मिथ्यात्वरूपी गाढ़ान्धकारको नष्ट कर दिया था, उनके पास वस्त्र वगैरह कुछ नहीं थे, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्ररूपी इन तीन मौलिक रत्नोंसे वे अवश्य अलंकृत थे । मुनिराजको देखते ही उसके ऐसा पुण्यका उदय आया, जिससे हृदयमें कोमलताने अधिकार कर लिया । अपने कन्धों परसे जाल हटाकर वह मुनिराजके समीप पहुँचा, बहुत भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें प्रणाम कर उसने उनसे प्रार्थना की कि हे स्वामी ! कामरूपी हाथीको नष्ट करनेवाले हे केसरी !! मुझे भी कोई ऐसा व्रत दीजिए, जिससे मेरा जीवन सफल हो । ऐसी प्रार्थना कर विनय-विनीत मस्तकसे वह मुनिराजके चरणोंमें वैठ गया । मुनिराजने उसकी ओर देखकर विचार किया कि देखो ! कैसे आज इस महाहिंसकके परिणाम कोमल हो गये हैं और इसकी मनोवृत्ति व्रत लेनेकी हुई है । सत्य है—

युक्तं स्यात्प्राणिनां भावि शुभाशुभनिभं मनः ।

—ब्र० नेमिदत्त

अर्थात्—आगे जैसा अच्छा या बुरा होना होता है, जीवोंका मन भी उसी अनुसार पवित्र या अपवित्र बन जाता है अर्थात् जिसका भविष्यत् अच्छा होता है उसका मन पवित्र हो जाता है और जिसका बुरा होनहार होता है उसका मन भी बुरा हो जाता है । इसके बाद मुनिराजने अवधिज्ञान द्वारा मृगसेनके भावी जीवन पर जब विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि इसकी आयु अब बहुत कम रह गई है यह देख उन्होंने करुणाबुद्धिसे उसे समझाया कि हे भव्य ! मैं तुझे एक बात कहता हूँ, तू जब तक जीए तब तक उसका पालन करना । वह यह कि तेरे जालमें पहली बार जो मछली आये उसे तू छोड़ देना और इस तरह जब तक तेरे हाथसे मरे हुए जीवका मांस तुझे प्राप्त न हो, तब तक तू पापसे मुक्त ही रहेगा । इसके अतिरिक्त मैं तुझे

पचनमस्कार मत्र सिखाता हूँ जो प्राणी मात्रका हित करनेवाला है, उसका तू सुखमें, दुःखमे, सरोग या नीरोग अवस्थामें सदैव ध्यान करते रहना। मुनिराजके स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले इस प्रकारके वचनोंको सुनकर मृगसेन वहुत प्रसन्न हुआ और उसने यह व्रत स्वीकार कर लिया। जो भक्तिपूर्वक अपने गुरुओंके वचनोंको मानते हैं, उनपर विश्वास लाते हैं, उन्हे सव सुख मिलता है और वे परम्परासे मोक्ष भी प्राप्त करते हैं।

व्रत लेकर मृगसेन नदी पर गया। उसने नदीमें जाल डाला। भाग्यसे एक बड़ा भरी मत्स्य उसके जालमें फॅस गया। उसे देखकर धीवरने विचारा—हाय ! मैं निरन्तर ही तो महापाप करता हूँ और आज गुरु महाराजने मुझे व्रत दिया है, भाग्यसे आज ही इतना बडा मच्छ जालमें आ फॅसा। पर जो कुछ हो, मैं तो इसे कभी नहीं मारूँगा। यह सोचकर व्रती मृगसेनने अपने कपड़ेकी एक चिन्दी फाडकर उस मत्स्यके कानमें इसलिए बॉध दी कि यदि वही मच्छ दूसरी बार जालमे आजाय तो मालूम हो जाये। इसके बाद वह उसे बहुत दूर जाकर नदीमें छोड़ आया। सच है, मृत्यु पर्यन्त निर्विघ्न पालन किया हुआ व्रत सब प्रकारकी उत्तम सम्पत्तिको देनेवाला होता है।

वह फिर दूसरी ओर जाकर मछलियॉ पकड़ने लगा। पर भाग्य से इस बार भी वही मच्छ उसके जाल में आया। उसने उसे फिर छोड़ दिया। इस तरह उसने जितनी बार जाल डाला, उसमें वही-वही मत्स्य आया पर उससे वह क्षुब्ध नहीं हुआ अपितु अपने व्रत की रक्षाके लिए खूब दृढ़ हो गया। उसे वहॉ इतना समय हो गया कि सूर्य भी अस्त हो चला, पर उसके जाल में उस मत्स्य को छोड़कर और कोई मत्स्य नहीं आया। अन्तमें मृगसेन निरुपाय होकर घर की ओर लौट पड़ा। उसे अपने व्रत पर खूब श्रद्धा हो गई। वह रास्ते भर गुरु महाराज द्वारा सिखाए पचनमस्कार मंत्र का स्मरण करता हुआ चला आया। जब वह अपने घर के दरवाजे पर पहुॅचा तो उसकी स्त्री उसे खाली हाथ देखकर आग बबूला हो उठी उसने गुस्से से पूछा—रे मूर्ख ! घर पर खाली हाथ तो चला आया, पर बतला तो सही कि खायेगा क्या पत्थर ? इतना कहकर वह घर के भीतर चली गई और गुस्से मे उसने भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए। सच है—छोटे कुल शील की स्त्रियों का

अपने पति पर प्रेम, लाभ होते रहने पर ही अधिक होता है । अपनी स्त्रीका इस प्रकार दुर्व्यवहार देखकर बेचारा मृगसेन किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया । उसकी कुछ नहीं चली । उसे घर के बाहर ही रह जाना पड़ा । बाहर एक पुराना बड़ा भारी लकड़ा पड़ा हुआ था । मृगसेन निरुपाय होकर पंचनमस्कार मंत्र का ध्यान करता हुआ उसी पर सो गया । दिनभर के श्रम के कारण रात में वह तो भर नींद में सोया हुआ था कि उस लकड़े में से एक भयंकर और जहरीले सर्पने निकल कर उसे काट खाया । वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

प्रातःकाल होने पर जब उसकी पत्नी ने मृगसने की यह दुर्दशा देखी तो उसके दुःख का कोई ठिकाना नहीं रहा । वह रोने लगी, छाती कूटने लगी और अपने नीच कर्मका बार-बार पश्चात्ताप करने लगी । उसका दुःख बढ़ता ही गया । उसने भी यह प्रतिज्ञा ली कि जो व्रत मेरे स्वामी ने ग्रहण किया था वही मैं भी ग्रहण करती हूँ और निदान किया कि "ये ही मेरे अन्य जन्म में भी स्वामी हो ।" अनन्तर साहस करके वह भी अपने स्वामी के साथ अग्नि प्रवेश कर गई । इस प्रकार अपघातसे उसने अपनी जान गँवा दी ।

विशाला नामकी नगरी में विश्वम्भर राजा राज्य करते थे । उनकी प्रियाका नाम विश्वगुणा था । वहीं एक सेठ रहते थे । गुणपाल उनका नाम था । उनकी स्त्रीका नाम धनश्री था । धनश्री के सुबन्धु नामकी एक अतिशय सुन्दरी और गुणवती कन्या थी । पुण्योदय से मृगसेन धीवर का जीव धनश्री के गर्भ में आया ।

अपने नर्मधर्म नामक मंत्री के अत्यन्त आग्रह और प्रार्थना से राजा ने सेठ गुणपाल से आग्रह किया कि वह मंत्री नर्मधर्म के साथ अपनी पुत्री सुबन्धु का ब्याह कर दे । यह जानकर गुणपाल को बहुत दु:ख हुआ । उसके सामने एक अत्यन्त कठिन समस्या उत्पन्न हुई । उसने विचारा कि पापी राजा, मेरी प्यारी सुन्दरी सुबन्धुका, जो कि मेरे कुलरूगी बगीचेपर प्रकाश डालनेवाली है, नीच कर्म करनेवाले नर्मधर्मके साथ ब्याह कर देनेको कहता है । उसने इस समय मुझे बड़ा सकटमे डाल दिया । यदि सुबन्धुका नर्मधर्मके साथ ब्याह कर देता हूँ, तो मेरे कुलका क्षय होता है और साथ ही अपयश होता है और यदि नहीं करता हूँ, तो सर्वनाश होता है । राजा न जाने क्या करेगा ? प्राण भी बचे या नहीं बचे ? आखिर उसने निश्चय किया जो कुछ

हो, पर मैं ऐसे नीचोंके हाथ तो कभी अपनी प्यारी पुत्रीका जीवन नहीं सौंपूँगा—उसकी जिन्दगी बरबाद नहीं करूँगा। इसके बाद वह अपने श्रीदत्त मित्रके पास गया और उससे सब हाल कह कर तथा उसकी सम्मतिसे अपनी गर्भिणी स्त्रीको उसीके घरपर छोड़कर आप रातके समय अपना कुछ धन और पुत्रीको साथ लिए वहाँ गुपचुपसे निकल खड़ा हुआ। वह धीरे-धीरे कौशाम्बी आ पहुँचा। सच है, दुर्जनोके सम्बन्धसे देश भी छोड देना पड़ता है।

श्रीदत्तके घरके पास ही एक श्रावक रहता था। एक दिन उसके यहाँ पवित्र चारित्रके धारक शिवगुप्त और मुनिगुप्त नामके दो मुनिराज आहारके लिये आये। उन्हें श्रावक महाशयने अपने कल्याणकी इच्छासे विधिपूर्वक आहार दिया, जो कि सर्वोत्तम सम्पत्तिकी प्राप्तिका कारण है। मुनिराजको आहार देकर उसने बहुत पुण्य उत्पन्न किया, जो कि दु:ख दरिद्रता आदिका नाश करनेवाला है। मुनिराज आहारके बाद जब वनमें जाने लगे तब उनमेसे मुनिगुप्त की नजर धनश्रीपर पड़ी, जो कि श्रीदत्तके ऑगनमे खड़ी हुई थी। उस समय उसकी दशा अच्छी नहीं थी। बेचारी पति और पुत्री वियोगसे दुःखी थी, पराये घरपर रह कर अनेक दुःखोंको सहती थी, आभूषण वगैरह सब उसने उतार डालकर शरीरको शोभाहीन बना डाला था, कुकवि की रचनाके समान उसका सारा शरीर रुक्ष और श्रीहीन हो रहा था और इन सब दु:खोंके होनेपर भी वह गर्भिणी थी, इससे और अधिक दुर्व्यवस्थामें वह फॅसी थी। उसे इस हालतमें देखकर मुनिगुप्तने शिवगुप्त मुनिराजसे कहा—प्रभो, देखिये तो इस बेचारीकी कैसी दुर्दशा हो रही है, कैसे भयकर कष्टका इसे सामना करना पड़ा है ? जान पड़ता है इसके गर्भमे किसी अभागे जीवने जन्म लिया है, इसीसे इसकी यह दीन-हीन दशा हो रही है। सुनकर जैनसिद्धान्तके विद्वान् और अवधिज्ञानी श्री शिवगुप्त मुनि बोले—मुनिगुप्त, तुम यह न समझो कि इसके गर्भमे कोई अभागा आया है; किन्तु इतना अवश्य है कि इस समय उसकी अवस्था ठीक नहीं है और यह दुःखी है; परन्तु थोड़े ही दिनों के बाद इसके दिन फिरेगे और पुण्यका उदय आवेगा। इसके यहाँ जिसका जन्म होगा, वह बड़ा महात्मा, जिनधर्मका पूर्ण भक्त और राजसम्मान का पात्र होगा। होगा तो वह वैश्यवशमे पर उसका ब्याह इन्हीं विश्वभर राजाकी

पुत्रीके साथ होगा, राजवंश भी उसकी सेवा करेगा ।

मुनिराजकी भविष्य वाणी पापी श्रीदत्तने भी सुनी । वह था तो धनश्रीके पति गुणपालका मित्र, पर अपने एक जातीय बन्धुका उत्कर्ष होना उसे सह्य नहीं हुआ । उसका पापी हृदय मत्सरता के द्वेषमे अधीर हो उठा । उसने बालकको जन्मते ही मार डालने का निश्चय किया । अबसे वह बाहर कहीं न जाकर बगुलेकी तरह सीधा साधा बनकर घर हीमें रहने लगा । सच है—

कारणेन बिना वैरी दुर्जनः सुजनो भवेत् ।

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—दुर्जन-शत्रु बिना करणके भी सुजन—मित्र बना जाया करते हैं सो पहले तो श्रीदत्त बेचारी धनश्रीको कष्ट दिया करता था और अब उसके साथ बड़ी सज्जनता का बर्ताव करने लगा । धनश्री सेठानीने समय पाकर पुत्रको प्रसव किया । वास्तवमें बालक बड़ा भाग्यशाली हुआ । वह उत्पन्न होते ही ऐसा तेजस्वी जान पड़ता था, मानो पुण्यसमूह हो । धनश्री पुत्रकी प्रसव वेदनासे मूर्छित हो गई । उसे अचेत देखकर पापी श्रीदत्तने अपने मनमें सोचा—बालक प्रज्वलित अग्निकी तरह तेजस्वी है, अपनेको आश्रय देनवालेका ही क्षय करनेवाला होगा, इसलिये इसका जीता रहना ठीक नहीं । यह विचार कर उसने अपने घरकी बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा यह प्रगट करवा कर, कि बालक मरा हुआ पैदा हुआ था, बालकको एक भंगीके हाथ सौंप दिया और उससे कह दिया कि इसे ले जाकर ही मार डालना । उचित तो यह था कि—

शत्रुजोपि न हन्तव्यो बालक किं पुनर्वृथा ।
हा कष्टं किं न कुर्वन्ति दुर्जनाः फणिनो यथा ॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—शत्रुका भी यदि बच्चा हो, तो उसे नहीं मारना चाहिये, तब दूसरोंके बच्चोंके सम्बन्धमें तो क्या कहें ? परन्तु खेद है कि सर्पके समान दुष्ट पुरुष कोई भी बुरा काम करते नहीं हिचकते । चाण्डाल बच्चे को एकान्तमें मारनेको ले गया, पर जब उसने उजेलेमें उसे देखा तो उसकी सुन्दरताको देखकर उसे भी दया आ गई, करुणासे उसका हृदय भर आया । सो वह उसे न मारकर वहीं एक अच्छे स्थानपर रखकर अपने घर चला गया ।

श्रीदत्तकी एक बहिन थी। उसका ब्याह इन्द्रदत्त सेठके साथ हुआ था। भाग्य से उसके सन्तान नहीं हुई थी। बालकके पूर्व पुण्यके उदयसे इन्द्रदत्त माल बेचता हुआ इसी ओर आ निकला। जब वह गुवाल लोगोंके मोहल्लेमे आया तो उसने गुवालोको परस्पर बाते करते हुए सुना कि "एक बहुत सुन्दर बालकको न जाने कोई अमुक स्थानकी सिलापर लेटा गया है, वह बहुत तेजस्वी है, उसके चारो ओर अपनी गायोके बच्चे खेल रहे हैं और वह उनके बीचमे बड़े सुखसे खेल रहा है।" उनकी बाते सुनकर ही इन्द्रदत्त बालकके पास आया। वह एक दूसरे बाल सूर्यको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसके कोई सन्तान तो थी ही नहीं, इसलिए बच्चे को उठाकर वह अपने घर ले आया और अपनी प्रियासे बोला—प्यारी राधा ? तुम्हे इसकी खबर भी नहीं कि तुम्हारे गूढ़गर्भसे अपने कुलका प्रकाशक पुत्र हुआ है ? और देखो वह यह है इसे ले लो और पालो। आज अपना जीवन कृतार्थ हुआ। यह कहकर उसने बालकको अपनी प्रियाकी गोदमे रख दिया। बालककी खुशीके उपलक्षमे इन्द्रदत्तने खूब उत्सव किया। खूब दान किया। सच है—

प्राणिनां पूर्वपुण्यानामापदा सम्पदायते ।

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—पुण्यवानोंके लिये विपत्ति भी सम्पत्तिके रूपमे परिणत हो जाती है। पापी श्रीदत्तको यह हाल मालूम हो गया। सो वह इन्द्रदत्तके घर आया और मायाचारसे उसने अपने बहनोई से कहा—देखोजी, हमारा भानजा बड़ा तेजस्वी है, बड़ा भाग्यवान् है, इसलिए उसे हम अपने घरपर ही रक्खेगे। आप हमारी बहिन को भेज दीजिये। बेचारा इन्द्रदत्त उसके पापी हृदयकी बात नहीं जान पाया। इसलिए उसने अपने सीधे स्वभाव से अपनी प्रियाको पुत्र सहित उसके साथ कर दिया। बहुत ठीक लिखा है—

अहो दुष्टाशय प्राणी चित्तेऽन्यद्वचनेऽन्यथा ।
कायेनान्यत्करोत्येव परेषा वचन महत् ॥

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—जिन लोगोका हृदय दुष्ट होता है, उनके चित्तमे कुछ और रहता है, वचनो से वे कुछ और ही कहते और शरीरसे कुछ और ही करते

हैं । दूसरो को ठगना, उन्हें धोखा देना ही एक मात्र ऐसे पुरुषोका उद्देश्य रहता है । पापी श्रीदत्त भी एक ऐसा ही दुष्ट मनुष्य था । इसीलिए तो वह निरपराध बालकके खून का प्यासा हो उठा । उसने पहले की तरह फिर भी उसे मार डालने की इच्छा से एक चाण्डाल को बहुत कुछ लोभ देकर उसके हाथ सौंप दिया । चाण्डालने भी बालकको ले तो लिया पर जब उसने उसकी स्वर्गीय सुन्दरता देखी तो उसके हृदय में भी दया देवी आ विराजी । उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि कुछ हो, मैं कभी इस बच्चेको न मारूँगा और इसे बचाऊँगा । वह अपना विचार श्रीदत्तसे नहीं कहकर बच्चेको लिवा ले गया । कारण श्रीदत्तकी पापवासना उसे कभी जिन्दा रहने न देगी, यह उसे उसकी बातचीतसे मालूम हो गया था । चाण्डाल बच्चेको एक नदीके किनारेपर लिवा ले गया । वहीं एक सुन्दर गुहा थी, जिसके चारों ओर वृक्ष थे । वह बालकको उस गुहा में रखकर अपने घरपर लौट आया ।

संध्याका समय था । गुवाल लोग अपनी-अपनी गायोंको घरपर लौटाये ला रहे थे । उनमेंसे कुछ गाये इस गुहाकी ओर आ गई थीं, जहॉ गुणपालका पुत्र अपने पूर्वपुण्यके उदयसे रक्षा पा रहा था । धायके समान उन गायोंने आकर उस बच्चेको घेर लिया । मानों बच्चा प्रेमसे अपनी मॉकी ही गोदमे बैठा हो । बच्चे को देखकर गायोंके थनोंमेंसे दूध झरने लग गया । गुवाल लोग प्रसन्नमुख बच्चे को गायों घिरा हुआ और निर्भय खेलता हुआ देखकर बहुत आश्चर्य करने लगे । उन्होंने जाकर अपनी जातिके मुखिया गोविन्दसे यह सब हाल कह सुनाया । गोविन्दके कोई सन्तान नहीं थी, इसलिये वह दौड़ा गया और बालकको उठा लाकर उसने अपनी सुनन्दा नामकी प्रियाको सौंप दिया । उसका नाम उसने धनकीर्ति रखा । वहींपर बड़े यत्न और प्रेमसे उसका पालन व संरक्षण होने लगा । धनकीर्ति भी दिनोदिन बढ़ने लगा । वह ग्वालमहिलाओके नेत्ररूपी कुमुद पुष्पोको प्रफुल्लित करने वाला चन्द्रमा था । उसे देखकर उनके नेत्रोको बडी शान्ति मिलती थी । वह सब सामुद्रिक लक्षणोंसे युक्त था । उसे देखकर सबको बड़ा प्रेम होता था । वह अपनी रूप मधुरिमासे कामदेव जान पड़ता था, कान्ति चन्द्रमा और तेजसे एक दूसरा सूर्य । जैसे-जैसे उसकी सुन्दता

बढ़ती जाती थी, वैसे-वैसे ही उसमें अनेक उत्तम-उत्तम गुण भी स्थान पाते चले जाते थे ।

एक दिन पापी श्रीदत्त घीकी खरीद करता हुआ इधर आ गया । उसने धनकीर्तिको देखकर पहिचान लिया । अपना सन्देह मिटानेको और भी दूसरे लोगोसे उसने उसका हाल दर्याफ्त किया । उसे निश्चय हो गया कि यह गुणपाल हीका पुत्र है तब उसने फिर उसके मारनेका षड्यंत्र रचा । उसने गोविन्दसे कहा—भाई, मेरा एक बहुत जरूरी काम है, यदि तुम अपने पुत्र द्वारा उसे करा दो तो बड़ी कृपा हो । मैं अपने घरपर भेजनेके लिये एक पत्र लिखे देता हूँ, उसे यह पहुँचा आवे । बेचारे गोविन्दने कह दिया कि मुझे आपके कामसे कोई इन्कार नहीं है । आप लिख दीजिये, यह उसे दे आयगा । सच बात है—

अहो दुष्टस्य दुष्टत्वं लक्ष्यते केन वेगत· ।

—ब्रह्म० नेमिदत्त

अर्थात्—दुष्टोकी दुष्टताका पता जल्दीसे कोई नहीं पा सकता । पापी श्रीदत्तने पत्रमें लिखा—

"पुत्र महाबल,

जो तुम्हारे पास पत्र लेकर आ रहा है, वह अपने कुलका नाश करनेके लिए भयंकरतासे जलता हुआ मानो प्रलय कालकी अग्नि है, समर्थ होते ही यह अपना सर्वनाश कर देगा । इसलिए तुम्हे उचित है कि इसे गुप्तरीतिसे तलवार द्वारा वा मूसले से मार डालकर अपना काटा साफ कर दो । काम बडी सावधानीसे हो, जिसे कोई जान न पावे ।"

पत्रको अच्छी तरह बन्द करके उसने कुमार धनकीर्तिको सौंप दिया । धनकीर्तिने उसे अपने गलेमें पड़े हुए हारसे बॉध लिया और सेठकी आज्ञा लेकर उसी समय वह वहॉसे निडर होकर चल दिया । वह धीरे-धीरे उज्जयिनी थकावट मिटानेके लिए वह वहीं एक वृक्षकी ठंडी छायामे सो गया । उसे वहॉ नींद आ गई ।

इतने हीमे वहॉ एक अनंगसेना नामकी वेश्या फूल तोडनेके लिए आई । वह बहुत सुन्दरी थी अनेक तरहके मौलिक भूषण और वस्त्र वह पहरे

थी । उससे उसकी सुन्दरता भी बेहद बढ़ गई थी । वह अनेक विद्या, कलाओकी जाननेवाली और बड़ी विनोदिनी थी । उसने धनकीर्तिको एक वृक्षके नीचे सोता देखा । पूर्वजन्ममें अपना उपकार करनेके कारणसे उसपर उसका बहुत प्रेम हुआ । उसके वश होकर ही उसे न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई जो उसने उसके गलेमे बँधे हुए श्रीदत्तके कागजको खोल लिया । पर जब उसने उसे बाँचा तो उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना न रहा । एक निर्दोष कुमारके लिए श्रीदत्तका ऐसा घोर पैशाचिक अत्याचारका हाल पढ़कर उसका हृदय काँप उठा । वह उसकी रक्षाके लिए घबरा उठी । वह भी थी बड़ी बुद्धिमती सो उसे झट एक युक्ति सूझ गई । उसने उस लिखावट को बड़ी सावधानीसे मिटाकर उसकी जगह अपनी आँखोंमे अंजे हुए काजलको पत्तोंके रससे गीली की हुई सलाईसे निकाल-निकाल कर उसे द्वारा लिख दिया कि—

"प्रिये ! यदि तुम मुझे सच्चा अपना स्वामी समझती हो, और पुत्र महाबल ! तुम यदि वास्तवमे मुझे अपना पिता समझते हो तो इस पत्र लाने वालेके साथ श्रीमतीका ब्याह शीघ्र कर देना । अपनेको बड़े भाग्यसे ऐसे वरकी प्राप्ति हुई है । मैंने इसकी साखें वगैरह सब अच्छी तरह देख ली है । कहीं कोई बाधा आती है । इस कामके लिए तुम मेरी भी अपेक्षा नहीं करना । कारण, सम्भव है मुझे आनेमें कुछ विलम्ब हो जाय । फिर ऐसा योग मिलना कठिन है । वरके मान-सम्मानमें तुमलोग किसी प्रकारकी कमी मत रखना ।"

इस प्रकार पत्र लिखकर अनंगसेनाने पहलेकी तरह उसे धनकीर्तिके गलेमे बाँध दिया अथवा यों कह लीजिए कि उसने धनकीर्तिको मानों जीवन प्रदान किया । इसके बाद वह अपने घरपर लौट आई ।

अनंगसेनाके चले जानेके बाद धनकीर्तिकी भी नींद खुली । वह उठा और श्रीदत्त के घर पहुँचा । उसने पत्र निकाल कर श्रीदत्तकी स्त्रीके हाथमे सौंपा । पत्रको उसके पुत्र महाबल ने भी पढ़ा । पत्र पढ़कर उन्हे बहुत खुशी हुई । धनकीर्तिका उन्होने बहुत आदर-सम्मान किया तथा शुभ मुहूर्त्तमे श्रीमतीका ब्याह उसके साथ कर दिया । सच कहा है—

सम्भवेत्कृतपुण्याना महापायेपि सत्सुखम् ।

—ब्र० नेमिदत्त

अर्थात्—पुण्यवान् जीवोंको महासंकटके समय भी जीवनके नष्ट होनेके कारणोंके मिलने पर भी सुख प्राप्त होता है । यह हाल जब श्रीदत्तको ज्ञात हुआ, तो वह घबराकर उसी समय दौड़ा हुआ आया । उसने रास्तेमें ही धनकीर्तिको मार डालनेकी युक्ति सोचकर अपनी नगरीके बाहर पार्वतीके मन्दिरमे एक मनुष्यको इसलिए नियुक्त कर दिया कि मैं किसी बहानेसे धनकीर्तिको रातके समय यहाँ भेजूँगा, सो उसे तुम मार डालना । इसके बाद वह अपने घर आया और एकान्तमें अपने जमाईको बुलाकर उसने कहा—देखोजी, मेरी कुल परम्परामे एक रीति चली आ रही है, उसका पालन तुम्हें भी करना होगा । वह यह है कि नवविवाहित वर रात्रि आरम्भमें उड़दके आटेके बनाए हुए तोता, काक, मुर्गा आदि जानवरोको लाल वस्त्रसे ढककर और कंकण पहने हुए हाथमें रखकर बड़े आदरके साथ शहरके बाहर पार्वतीके मन्दिरमें ले जाय और शान्तिके लिए उनकी बलि दे ।

यह सुनकर धनकीर्ति बोला—जैसे आपकी आज्ञा । मुझे शिरोधार्य है इसके बाद वह बलि लेकर घरसे निकला । शहरके बाहर पहुँचते ही उसे उसका साला महाबल मिला । महाबलने उससे पूछा—क्योजी ! ऐसे अन्धकार में अकेले कहाँ जा रहे हो ? उत्तरमें धनकीर्तिने कहा—आपके पिताजीकी आज्ञासे मैं पार्वतीजीके मन्दिर बलि देनेके लिए जा रहा हूँ । यह सुनकर महाबल बोला—आप बलि मुझे दे दीजिए, मैं चला जाता हूँ । आपके वहाँ जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है । आप घर पधारिए । धनकीर्तिने कहा—देखिए, इससे आपके पिताजी बुरा मानेंगे । इसलिए आप मुझे हो जाने दीजिए । महाबलने कहा—नहीं, मुझे बलि देनेकी सब विधि वगैरह मालूम है, इसलिए मैं ही जाता हूँ—यह कहकर उसने धनकीत्तिको तोघर लौटा दिया और आप दुर्गाके मन्दिर जाकर कालके घरका पाहुना बना । सच है—

पुण्यवानोंके लिए कालरूपी अग्नि जल हो जाती हूँ, समुद्र स्थल हो जाता है, शत्रु मित्र बन जाता है, विष अमृतके रूपमें परिणत हो जाता है, विपत्ति सम्पत्ति हो जाती है और विघ्न डरके मारे नष्ट हो जाते हैं । इसलिए बुद्धिमानोंको सदा पुण्यकर्म करते रहना चाहिए । पुण्य उत्पन्न करनेके कारण ये हैं—भक्तिसे भगवान्की पूजा करना, पात्रोको दान देना, व्रत पालना,

उपवासादिके द्वारा इंद्रियोंको जीतना, ब्रह्मचर्य रखना, दुखियोंकी सहायता करना, विद्या पढ़ाना, पाठशाला खोलना अर्थात् अपनेसे जहाँतक बन पड़े तनसे, मनसे और धनसे दूसरोंकी भलाई करना ।

अपने पुत्रके मारे जानेकी जब श्रीदत्तको खबर हुई, तब वह बहुत दुखी हुआ । पर फिर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ । उसका हृदय जब प्रतिहिंसासे और अधिक जल उठा । उसने अपनी स्त्रीको एकान्तमें बुलाकर कहा—प्रिये, बतलाओ तो हमारे कुलरूपीवृक्षको जड़मूलसे उखाड़ फैंकनेवाले इस दुष्टोंकी हत्या कैसे हो ? कैसे यह मारा जा सके ? मैंने इसके मारनेको जितने उपाय किये, भाग्यसे वे सब व्यर्थ गये और उलटा उनसे मझे ही अत्यन्त हानि उठानी पड़ी । सो मेरी बुद्धि तो बड़े असमंजसमें फँस गई है देखो, कैसे अचंभेकी बात है जो इसके मारनेके लिए जितने उपाय किये, उन सबसे रक्षा पाकर और अपना ही बैरी बना हुआ यह अपने घरमें बैठा है ।

श्री दत्तकी स्त्रीने कहा—बात यह है कि अब आप बूढ़े हो गये हैं । आपकी बुद्धि अब काम नहीं देती । अब जरा आप चुप होकर बैठे रहें । मैं आपकी इच्छा बहुत जल्दी पूरी करूँगी । यह कहर उस पापिनीने दूसरे दिन विष मिले हुए लड्डू बनाये और अपने पुत्रीसे कहा—बेटी श्रीमती, देख मैं तो अब स्नान करनेको जाती हूँ और तू इतना ध्यान रखना कि ये जो उजले लड्डू हैं, उन्हे तो अपने स्वामीको परोसना और जो मैले हैं, उन्हे अपने पिताको परोसना । यह कहकर श्रीमतीको माँ नहानेको चली गई । श्रीमती अपने पिता और पतिको भोजन करानेको बैठी । बेचारी श्री मती भोलीभाली लड़की थी और न उसे अपनी माताका कूट-कपट ही मालूम था; इसलिए उसने अच्छे लड्डू अपने पिताके लिए ही परोसना उचित समझा, जिससे कि उसके पिताको अपने सामने श्रीमतीका बरताव बुरा न जान पड़े और यही एक कुलीन कन्याके लिए उचित भी था । क्योकि अपने मातापिता या बड़ोंके सामने ऐसा बेहयापन काम अच्छी स्त्रियाँ नहीं करती । इसीलिये जो लड्डू उसके पतिके लिए उसकी माँने बनाये थे, उन्हे उसने पिताकी थालीमे परोस दिया । सच है—"विचित्रा कर्मणां गतिः" अर्थात् कर्मोंकी गति विचित्र ही हुआ करती है ।

विष मिले हुए लड्डुओं के खाते ही श्रीदत्तने अपने किए कर्मका उपयुक्त प्रायश्चित पा लिया, वह तत्काल मृत्युको प्राप्त हुआ। ठीक ही कहा है कि पाप कर्म करनेवालोका कभी कल्याण नहीं होता।

श्रीमतीकी माँ जब नहाकर लौटी और उसने अपने स्वामीको इस प्रकार मरा पाया तो उसके दुःखका कोई पार नहीं रहा। वह बहुत विलाप करने लगी—परन्तु अब क्या हो सकता था ! जो दूसरोंके लिए कुआँ खोदते हैं, उसमे पहले वे स्वय ही गिरते हैं, यह ससारका नियम है। श्रीमतीकी माँ और पिता उसके उदाहरण है इसलिए जो अपना बुरा नहीं चाहते उन्हे दूसरोका बुरा करनेका कभी स्वप्नमे भी विचार नहीं करना चाहिए। अन्तमे श्रीमतीकी माताने अपनी पुत्रीसे कहा—हे पुत्री ! तेरे पिताने और मैंने निर्दय होकर अपने हाथो ही अपने कुलका सर्वनाश किया। हमने दूसरेका अनिष्ट करनेके जितने प्रयत्न किए वे सब व्यर्थ गए और अपने नीच कर्मोका फल भी हमे हाथो हाथ मिल गया। अन्तमे मैं तुझे आशीर्वाद देती हूँ कि तू और तेरे पति इस घरमें सुखशान्तिसे रहें जैसे इन्द्र अपनी प्रियाके साथ रहता है। इतना कहकर उसने भी जहरके लड्डुओंको खा लिया। देखते-देखते उसकी आत्मा भी शरीरको छोड़कर चली गई। ठीक है—दुर्बुद्धियोकी ऐसी ही गति हुआ करती है। जो लोग दुष्ट हृदय बनकर दूसरोका बुरा सोचते हैं, उनका बुरा करते हैं, वे स्वय अपना बुरा अन्तमे कुगतियोमे जाकर अनन्त दुःख उठाते हैं इस प्रकार धनकीर्ति पुण्यके प्रभावसे अनेक बड़ी-बड़ी आपत्तियोसे भी सुरक्षित रहकर सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगा।

जब महाराज विश्वम्भरको धनकीर्ति पुण्य, उसको प्रतिष्ठा तथा गुणशालीनताका परिचय मिला तो वे उससे बहुत खुश हुए और उन्होने अपनी राजकुमारीका विवाह भी शुभ दिन देखकर बड़े ठाटबाट सहित उसके साथ कर दिया। धनकीर्तिको उन्होने दहेजमे बहुत धन सम्पत्ति दी, उसका खूब सम्मान किया तथा 'राज्य सेठ' के पद पर भी उसे प्रतिष्ठित किया। इस पर किसीको आश्चर्य नही करना चाहिए क्योकि ससारमे ऐसी कोई शुभ वस्तु नहीं जो जिनधर्मके प्रभावसे प्राप्त न होती हो।

गुणपालको जब अपने पुत्रका हाल ज्ञात हुआ तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह उसी समय कौशाम्बीसे उज्जयिनी के लिए चला और बहुत शीघ्र अपने पुत्रसे आ मिला। सबका फिर पुण्यमिलाप हुआ। धनकीर्ति पुण्योदयसे प्राप्त हुए भोगोंको भोगता हुआ अपना समय सुखसे बिताने लगा। इससे कोई यह न समझ ले कि वह अब दिनरात विषयभोगोंमें ही फॅसा रहता था, नहीं; उसका अपने आत्मकल्याणकी ओर भी पूरा ध्यान था वह बड़ी सावधानीके साथ सुख देने वाले जिनधर्मकी सेवा करता था, भगवान् की प्रतिदिन पूजा करता था, पात्रों को दान देता था, दुःखी अनाथोंकी सहायता करता था और सदा स्वाध्यायाध्ययन करता था, मतलब यह कि धर्म-सेवा और परोपकार करना ही उसके जीवनका एक मात्र लक्ष्य हो गया था। पुण्यके उदयसे जो प्राप्त होना चाहिए वह सब धनकीर्तिको इस समय प्राप्त था इस प्रकार धनकीर्तिने बहुत दिनों तक खूब सुख भोगा और सबको प्रसन्न रखनेकी वह सदा चेष्टा करता रहा।

एक दिन धनकीर्तिका पिता गुणपाल सेठ अपनी स्त्री, पुत्र, मित्र, बन्धु बान्धवको साथ लिए यशोध्वज मुनिराजको वन्दना करनेको गया। भाग्यसे अनंगसेना भी इस समय पहुॅच गई संसारका उपकार करनेवाले उन मुनिराजकी सभी ने बड़ी भक्तिके साथ वन्दना की। इसके बाद गुणपालने मुनिराजसे पूछा—प्रभो, कृपाकर बतलाइए कि मेरे इस धनकीर्ति पुत्रने ऐसा कौन महापुण्य पूर्व जन्ममें किया है, जिससे इसने इस बालपनमे ही भयंकरसे भयंकर कष्टों पर विजय प्राप्त कर बहुत कीर्ति कमाई, खूब धन कमाया और अच्छे-अच्छे पवित्र काम किये, सुख भोगा और यह बड़ा ज्ञानी हुआ, दानी हुआ तथा दयालु हुआ। भगवन्, इन सब बातोंको मैं सुनना चाहता हूॅ।

करुणा समुद्र और चार ज्ञानके धारी यशोध्वज मुनिराजने, मृगसेन धीवरके अहिंसाव्रत ग्रहण करने, जालमे एक ही एक मच्छके बार-बार आने, घरपर सूने हाथ लौट आने, स्त्रीके नाराज होकर घरमें न आने देने, आदिकी सब कथा गुणपालसे कहकर कहा—वह मृगसेन तो अहिंसाव्रतके प्रभावसे यह धनकीर्त्ति हुआ, जोकि सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति का मालिक और महाभव्य है और मृगसनेकी जो घण्टा नामकी स्त्री थी, वह निदान करके इस जन्ममें भी

धनकीर्त्तिकी श्रीमती नामकी गुणवती स्त्री हुई है और जो मच्छ पॉच बार पकड़कर छोड़ दिया गया था, वह यह अनगसेना हुई है, जिसने कि धनकीर्त्तिको जीवदान देकर अत्यन्त उपकार किया है, सेठ महाशय, यह सब एक अहिंसाव्रतके धारण करनेका फल है और परमअहिंसामयी जिनधर्मके प्रसादसे सज्जनोको क्या प्राप्त नहीं होता । मुनिराजके द्वारा इस सुखदाई कथाको सुनकर सब ही बहुत प्रसन्न हुए जिनधर्म पर उनकी गाढ़ श्रद्धा हो गई । अपने पूर्व भवका हाल सुनकर धनकीर्त्ति, श्रीमती और अनगसेनाको जातिस्मरण हो गया । उससे उन्हे संसारकी क्षणस्थायी दशापर बड़ा वैराग्य हुआ । धर्माधर्मका फल भी उन्हे जान पड़ा । उनमें धनकीर्त्ति तो, जिसका कि सुयश सारे ससारमे विस्तृत है, यशोध्वज मुनिराजके पास ही एक दूसरे मोहपाशकी तरह जान पड़नेवाले अपने केशकलापको हाथोसे उखाड़ कर जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि संसारके जीवोका उद्धार करनेवाली है । साधु हो जानेके बाद धनकीर्त्तिने खूब निर्दोष तपस्या की अनेक जीवोंको कल्याणके मार्गपर लगाया, जिनधर्मकी प्रभावना की, पवित्र रत्नत्रय प्राप्त किया और अन्तमे समाधिसहित मरकर सर्वार्थसिद्धिका श्रेष्ठ सुख लाभ किया । ध
निकीर्त्ति आगे केवली होकर मुक्ति प्राप्त करेगा और ऋषियोने भी अहिंसाव्रतका फल लिखते समय धनकीर्त्तिकी प्रशंसामें लिखा है—' धनकीर्त्तिने पूर्व भवमे एक मच्छको पॉच बार छोड़ा था, उसके फलसे वह स्वर्गीयश्रीका स्वामी हुआ ।" इसलिए आत्महितकी इच्छा करनेवालोंको यह व्रत मन, वचन, कायकी पवित्रतापूर्वक निरन्तर पालते रहना चाहिए ।

धनकीर्त्ति दीक्षित हुआ देखकर श्रीमती और अनंगसेनाने भी हृदयसे विषयवासनोंको दूरकर अपने योग्य जिनदीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि सब दु·खोंकी नाश करनेवाली है । इसे के बाद अपनी शक्तिके अनुसार तपस्या कर उन दोनों ने भी मृत्युके अन्तमें स्वर्ग प्राप्त किया । सच है—जिनशासनकी आराधना कर किस किसने सुख प्राप्त न किया अर्थात् जिसने जिनधर्म ग्रहण किया उसे नियमसे सुख मिला है ।

इस प्रकार मुझ अल्पबुद्धिने धर्म-प्रेमके वश हो यह अहिंसाव्रतकी पवित्र कथा जैनशास्त्रके अनुसार लिखी है । यह सब सुखोंकी देनेवाली माता

है और विघ्नोंको नाश करनेवाली है। इसे आप लोग हृदयमें धारण करें। वह इसलिए कि इसके द्वारा आपको शन्ति प्राप्त होगी।

मूलसंघके प्रधान प्रवर्तक श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें मल्लिभूषण गुरु हुए। वे ज्ञानके समुद्र थे। उनके शिष्य श्रीसिंहनन्दी मुनि हुए। वे बड़े आध्यात्मिक विद्वान् थे। उन्हें अच्छे-अच्छे परमार्थवित्—अध्यात्मशास्त्रके जानकर विद्वान् नमस्कार करते थे। वे सिंहनन्दी मुनि आपके लिए संसार-समुद्रसे पार करनेवाले होकर संसारमें चिरकाल तक वढ़ें। उनका यशःशरीर वहुत समय तक प्रकाशित रहे।

अभेद्य कवच

अनुशासन एक दिशा-सकेत है, जो वायुयान को भटकाव से वचाता है
अनुशासन एक सिगनल है, जो रेल (वाष्पयान) को दुर्घटना से वचाता है
अनुशासन एक असंदिग्ध द्वीप है, जो अथाह जलराशि में घिरे हुए व्यक्ति को त्राण देता है
अनुशासन एक प्रज्वलित प्रदीप है, जो घने अधकारों में उजाला करता है
अनुशासन एक केपकुमारी अंतरद्वीप है, जिसमें करुणा, कोमलता, कठोरता का त्रिवेणी संगम है
अनुशासन एक सीप है जो भव्य मोतियों को चमक-दमक भीतर-ही-भीतर देता है
अनुशासन एक छेनी है, जो प्रस्तरों को तराश-तराशकर सुन्दर प्रतिमा का आकार देता है
अनुशासन एक जीवन-वीमा है, जो जीवन-संपत्ति को सुरक्षित रखता है
अनुशासन एक लक्ष्मण रेखा है, जो क्रूर प्रवृत्तियों को भीतर प्रविष्ट होने से रोकता है
अनुशासन एक कूलर है, जो उच्छृंखलता के उत्ताप को हर क्षण हरता है
अनुशासन एक फिल्टर है, जो अवगुणों के कचरें को साफ करता है
अनुशासन एक कोल्ड स्टोर है, जो चिरकाल तक सुरक्षा करता है, वाहरी आक्रमणों से वचाता है
अनुशासन एक फर्टिलाइजर (खाद) है, जो जीवन-खेती को लहराता है
अनुशासन एक जेनरेटर है, जो निष्प्राण को प्राणवान बनाता है
अनुशासन जिन्दगी है
अनुशासन सत्य-तथ्य की अवगति का परम पावन अनुष्ठान है
पावन अनुष्ठान ही परम अनुष्ठेय की निष्पत्ति का मंगलद्वार है।

२६. वसुराजाकी कथा

संसारके बन्धु और देवों द्वारा पूज्य श्रीजिनेन्द्रदेव को नमस्कार कर झूठ बोलनेसे नष्ट होनेवाले वसुराजाका चरित्र मैं लिखता हूँ।

स्वस्तिकावती नामकी एक सुन्दर नगरी थी। उसके राजाका नाम विश्वावसु था। विश्वावसुकी रानी श्रीमती थी। उसके एक वसु नामका पुत्र था।

वहीं एक क्षीरकदम्ब उपाध्याय रहता था। वह बड़ा सुचरित्र और सरल स्वभावी था। जिनभगवान्का वह भक्त था और होम, शान्तिविधान आदि जैन क्रियाओ द्वारा गृहस्थोंके लिए शान्ति-सुखार्थ अनुष्ठान करना उसका काम था। उसकी स्त्रीकानाम स्वस्तिमती था। उसे पर्वत नामका एक पुत्र था। भाग्यसे वह पापी और दुर्व्यसनी हुआ। कर्मोंकी कैसी विचित्र स्थिति है जो पिता तो कितना धर्मात्मा और सरल, उसका पुत्र दुराचारी। इसी समय एक विदेशी ब्राह्मण नारद, जो कि निरभिमानी और सच्चा जिनभक्त था, क्षीरकदम्बके पास पढ़नेके लिए आया। राजकुमार वसु, पर्वत और नारद ये तीनों एक साथ पढ़ने लगे। वसु और नारदकी बुद्धि अच्छी थी, सो वे थोड़े ही समयमें अच्छे विद्वान् हो गये। रहा पर्वत सो एक तो उसकी बुद्धि ही खराब, उसपर पापके उदयसे उसे कुछ नहीं आता जाता था। अपने पुत्रकी यह हालत देखकर उसकी माताने एक दिन अपने पतिसे गुस्सा होकर कहा—जान पड़ता है, आप बाहरके लड़कोंको तो अच्छी तरह पढ़ाते हैं और खास अपने पुत्र पर आपका ध्यान नहीं है, उसे आप अच्छी तरह नहीं पढ़ाते। इसीलिए उसे इतने दिन तक पढते रहने पर भी कुछ नहीं आया। क्षीरकदम्बने कहा—इसमे मेरा कुछ दोष नहीं है। मैं तो सबके साथ एक हीसा श्रम करता हूँ। तुम्हारा पुत्र ही मूर्ख है, पापी है, वह कुछ समझता ही नहीं। बोलो, अब इसके लिए मैं क्या करूँ ? स्वस्तिमतीको इस बात पर विश्वास हो, इसलिए उसने तीनो शिष्योको बुलाकर कहा—पुत्रों, देखो यह एक-एक पाई दी जाती है, इसे लेकर तुम बाजार जाओ; और अपने बुद्धिबलसे इसके द्वारा चने खा आओ और पाई पीछे वापिस भी लौटा लाओ। तीनो गये। उनमे पर्वत एक जगहसे चने मोल लेकर और वहीं खा पीकर सूने हाथ घर लौट आया। अब रहे

वसु और नारद, सो इन्होने पहले इधर-उधर घूमकर बेचा, जब उनकी पाई वसूल हो गई तब बाकी बचे चनोंको खाकर वे लौट आये । आकर उन्होंने गुरुजीकी अमानत उन्हें वापिस सौंप दी । इसके बाद क्षीरकदम्बने एक दिन तीनोंको आटेके बने हुए तीन बकरे देकर उनसे कहा—देखो, इन्हें ले जाकर और जहॉ कोई न देख पायेऐसे एकान्त स्थानमे इनके कानोंको छेद लाओ । गुरुकी आज्ञानुसार तीनो फिर इस नये कामके लिए गये । पर्वतने तो एक जंगलमें जाकर बकरेका कान छेद डाला । वसु और नारद बहुत जगह गये, सर्वत्र उन्होंने स्थान ढूँढ डाला, पर उन्हें कहीं उनके मनलायक स्थान नहीं मिला । अथवा यों कहिए कि उनके विचारानुसार एकान्त स्थान कोई था ही नहीं । वे जहॉ पहुॅचते और मनमें विचार करते वहीं उन्हें चन्द्र, सूर्य, तारा,देव व्यन्तर, पशु पक्षी और अवधिज्ञानी मुनि आदि जान पड़ते । वे उस समय यह विचार कर, कि ऐसा कोई स्थान ही नहीं है जहॉ कोई न देखता हो, वापिस घर लौट आये । उन्होंने उन बकरोके कानो को नहीं छेदा । आकर उन्होंने गुरुजीको नमस्कार किया और अपना सब हाल उनसे कह सुनाया । सच है—बुद्धि कर्मके अनुसार ही हुआ करती है । उनकी बुद्धिकी इस प्रकार चतुरता देखकर उपाध्यायजी ने अपनी प्रियासे कहा—क्यो देखी सबकी बुद्धि और चतुरता ? अब कहा, दोष मेरा या पर्वतके भाग्यका ?

एक दिनकी बात है कि वसुसे कोई ऐसा अपराध बन गया, जिससे उपाध्यायने उसे बहुत मारा । उस समय स्वस्तिमतीने बीचमे पड़कर वसुको बचा लिया । वसुने अपनी बचानेवाली गुरु मातासे कहा—माता, तुमने मुझे बचाया इससे मैं बड़ा उपकृत हुआ । कहो तुम्हें क्या चाहिए ? वही लाकर मैं तुम्हे प्रदान करूँ । स्वस्तिमतीने उत्तरमे राजकुमारसे कहा—पुत्र, इस समय तो मुझे कुछ आवश्यकता नहीं है, पर जब होगी तब मॉगूँगी । तू मेरे इस वरको अभी अपने ही पास रख ।

एक दिन क्षीरकदम्बके मनमें प्रकृतिकी शोभा देखनेके लिए उत्कंठा हुई । वह अपने साथ तीनों शिष्योंको भी इसलिए लिवा ले गया कि उन्हे वहीं पाठ भी पढा दूँगा । वह एक सुन्दर बगीचेमे पहुॅचा । वहॉ कोई अच्छा पवित्र स्थान देखकर वह अपने शिष्योको बृहदारण्यका पाठ पढ़ाने लगा । वहीं और

दो ऋद्धिधारी महामुनि स्वाध्याय कर रहे थे। उनमें से छोटे मुनिने क्षीरकदम्बको पाठ पढ़ाते देखकर बड़े मुनिराजसे कहा—प्रभो, देखिए कैसे पवित्र स्थानमे उपाध्याय अपने शिष्योको पढ़ा रहा है ! गुरुने कहा—अच्छा है, पर देखो, इनमेंसे दो तो पुण्यात्मा है और वे स्वर्गमे जायेंगे और दो पापके उदयसे नर्कोके दुःख सहेगे। सच है—

कर्मोके उदयसेजीवोको सुख या दुःख भोगना ही पड़ता है। मुनिके वचन क्षीरकदम्बने सुन लिये। वह अपने विद्यार्थियोको घर भेजकर मुनिराजके पास गया। उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—हे भगवन् हे जैनसिद्धान्तके उत्तम विद्वान्, कृपाकर मुझे कहिए कि हममेसे कौन दो तो स्वर्ग जाकर सुखी होंगे और कौन दो नर्क जायेंगे ? कामके शत्रु मुनिराजने क्षीरकदम्बसे कहा—भव्य, स्वर्ग जानेवालोमे एक तो तू जिनभक्त और दूसरा धर्मात्मा नारद है और वसु तथा पर्वत पापके उदयसे नर्क जायेगे। क्षीरकदम्ब मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर आया। उसे इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि उसका पुत्र नरकमे जायेगा। क्योकि मुनियोंका कहा अनन्तकालमे भी झूठा नहीं होता।

एक दिन कोई ऐसा कारण देख पड़ा, जिससे वसुके पिता विश्वावसु अपना राज-काज वसुको सौंपकर आप साधु हो गये। राज्य अब वसु करने लगा। एक दिन वसु वन-विहारके लिए उपवनमें गया हुआ था। वहाँ उसने आकाशसे लुढ़क कर गिरते हुए एक पक्षीको देखा। देखकर उसे आश्चर्य हुआ। उसने सोचना पक्षीके लुढ़कते हुए गिरनेका कोई कारण यहाँ अवश्य होना चाहिए। उसकी शोध लगानेको जिधरसे पक्षी गिरा था उधर ही लक्ष्य बॉधकर उसने बाण छोड़ा। उसका लक्ष्य व्यर्थ न गया। यद्यपि उसे यह नहीं जान पड़ा कि क्या गिरा, पर इतना उसे विश्वास हो गया कि उसके बाणके साथ ही कोई भारी वस्तु गिरी जरूर है। जिधरसे किसी वस्तुके गिरनेकी आवाज उसे सुनाई पड़ी थी वह उधर ही गया पर तब भी उसे कुछ नहीं देख पडा। यह देख उसने उस भागको हाथोसे टटोलना शुरू किया। हस्तस्पर्शसे उसे बहुत निर्मल खम्भा, जो कि स्फटिकमणिका बना था, जान पड़ा। वसुराजा उसे गुप्तरीतिसे अपने महल पर ले आया। वसुने उस खम्भेके चार पाये बनवायें और उन्हे अपने न्यायसिंहासनके लगवा दिये। उन पायोके

लगनेसे सिंहासन ऐसा जान पड़ने लगा मानों वह आकाशमें ठहरा हुअ हो। धूर्त वसु अब उसी पर बैठकर राज्यशासन करने लगा। उसने सब जग यह प्रगट कर दिया कि "राजा वसु बड़ा ही सत्यवादी है, उसकी सत्यता प्रभावसे उसका न्यायसिंहासन आकाशमें ठहरा हुआ है।" इस प्रकार कपटक आड़में वह सर्वसाधारणके बहुत ही आदरका पात्र हो गया। सच है–

मायावी पुरुष संसारमें क्या ठगाई नहीं करते ! इधर सम्यग्दृष्टि जिनभक्त क्षीरकदम्ब संसारसे विरक्त होकर तपस्वी हो गया और अपन शक्तिके अनुसार तपस्या कर अन्त में समाधिमरण द्वारा उसने स्वर्ग लाभ किया। पिताका उपाध्याय पद अब पर्वतको मिला। पर्वतको जितनी बुद्धि थी जितना ज्ञान था, उसके अनुकूल वह पिताके विद्यार्थियोंको पढ़ाने लगा। उस वृत्तिके द्वारा उसका निर्वाह होता था। क्षीरकदम्बके साधु हुए बाद ही नारद भ वहाँसे कहीं अन्यत्र चल दिया। वर्षों तक नारद विदेशोंमें घूमा। घूमते फिरत वह फिर भी एकवार स्वस्तिपुरीकी ओर आ निकला। वह अपने सहाध्याय और गुरुपुत्र पर्वतसे मिलनेको गया। पर्वत उस समय अपने शिष्योंको पढ़ रहा था। साधारण कुशल प्रश्नके बाद नारद वहीं बैठ गया और पर्वतका अ यापन कार्य देखने लगा। प्रकरण कर्मकाण्डका था। वहाँ एक श्रुति थी–"अज्जैर्यष्टव्यमिति।" दुराग्रही पापी पर्वतने उसका अर्थ किया वि "अजैश्छागैः प्रयष्टव्यमिति" अर्थात्– बकरोंकी बलि देकर होम करन चाहिए। उसमें बाधा देकर नारदने कहा–नहीं, इस श्रुतिका यह अर्थ नह है। गुरुजीने तो हमें इसका अर्थ बतलाया था कि "अजैस्त्रिवार्षिकैर्धान्यैः प्रयष्टव्यम्" अर्थात्–तीन वर्षके पुराने धानसे, जिसमें उत्पन्न होनेकी शक्ति न हो, होम करना चाहिए। पापी, तू यह क्या अनर्थ करता है जो उलटा ही अर्थ कर दिया ? उस पर पापी पर्वतने दुराग्रहके वश हो यही कहा कि नहीं, तुम्हारा कहना सर्वथा मिथ्या है। असलमें 'अज' शब्दका अर्थ बकरा ही होता है और उसीसे होम करना चाहिए। ठीक कहा है–

जिसे दुर्गतिमें जाना होता है, वही पुरुष जानकर भी ऐसा झूठ बोलता है।

तब दोनों में सच्चा कौन है, इसके निर्णयके लिए उन्होंने राजा

वसुको मध्यस्थ चुना। उन्होंने परस्परमे प्रतिज्ञा की कि जिसका कहना झूठ हो उसकी जबान काट दी जाय। पर्वतकी मॉको जब इस विवादका और परस्पर की प्रतिज्ञाका हाल मालूम हुआ तब उसने पर्वतको बुलाकर बहुत डॉटा और गुस्सेमे आकर कहा—पापी, तूने यह क्या अनर्थ किया ? क्यो उस श्रुतिका उलटा अर्थ किया ? तुझे नहीं मालूम कि तेरा पिता जैनधर्मका पूर्ण श्रद्धानी था और वह 'अजैर्यष्टव्यम', इसका अर्थ तीन वर्षके पुराने धानसे होम करनेको कहता था और स्वयं भी वह पुराने धान हीसे सदा होमादिक किया करता था। स्वस्तिमतीने उसे और भी बहुत फटकारा, पर उसका फल कुछ नहीं निकला। पर्वत अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ बना रहा। पुत्रका इस प्रकर दुराग्रह देखकर वह अधीर हो उठी। एक ओर पुत्रके अन्याय पक्षका समर्थन होकर सत्यकी हत्या होती है और दूसरी ओर पुत्र-प्रेम उसे अपने कर्त्तव्यसे विचलित करता है। अब वह क्या करे ? पुत्र-प्रेमसे फॅसकर सत्यकी हत्या करे या उसकी रक्षाकर अपना कर्त्तव्य पालन करे ? वह बड़े संकटमे पड़ी। आखिर दोनों शक्तियोंका युद्ध होकर पुत्र-प्रेमने विजय प्राप्तकर उसे अपने कर्त्तव्य पथसे गिरा दिया, सत्यकी हत्या करनेको उसे सन्नद्ध किया। वह उसी समय वसुके पास पहुॅची और उससे बोली—पुत्र, तुम्हें याद होगा कि मेरा एक वर तुमसे पाना बाकी है। आज उसकी मुझे जरूरत पड़ी है। इसलिए अपनी प्रतिज्ञाका निर्वाहकर मुझे कृतार्थ करो। बात यह है पर्वत और नारदका किसी विषय पर झगड़ा हो गया है। उसके निर्णयके लिए उन्होंने तुम्हे मध्यस्थ चुना है। इसलिये मैं तुम्हें कहनेको आई हूॅ कि तुम पर्वतके पक्षका समर्थन करना। सच है—

जो स्वय पापी होते हैं वे दूसरोंको भी पापी बना डालते हैं। जैसे सर्प स्वयं जहरीला होता है और जिसे काटता है उसे भी विषयुक्त कर देता है। पापियोंका यह स्वभाव ही होता है।

राजसभा लगी हुई थी। बड़े-बडे कर्मचारी यथास्थान बैठे थे। राजा वसु भी एक बहुत सुन्दर रत्न-जड़े सिंहासन पर बैठा हुआ था। इतने मे पर्वत और नारद अपना न्याय करानेके लिए राजसभामे आये। दोनोंने अपना-अपना कथन सुनाकर अन्तमें किसका कहना सत्य है और गुरुजीने अपनेको

"अजैर्यष्टव्यम्" इसका क्या अर्थ समझाया था, इसका खुलासा करनेका भार वसुपर छोड़ दिया । वसु उक्त वाक्यका ठीक अर्थ जानता था और यदि वह चाहता तो सत्यकी रक्षा कर सकता था, पर उसे अपनी गुराणीजीके माँगे हुए वरने सत्यमार्गसे ढकेल कर आग्रही और पक्षपाती बना दिया । मिथ्या आग्रहके वश हो उसने अपनी मानमर्यादा और प्रतिष्ठाकी कुछ परवा न कर नारदके विरुद्ध फैसला दिया । उसने कहा कि जो पर्वत कहता है वही सत्य है और गुरुजीने हमे ऐसा ही समझाया था कि "अजैर्यष्टव्यम्" इसका अर्थ बकरोंको मारकर उनसे होम करना चाहिये । प्रकृतिको उसका यह महा अन्याय सहन नहीं हुआ । उसका परिणाम यह हुआ कि राजा वसु जिस स्फटिकके सिंहासनपर बैठकर प्रतिदिन राजकार्य करता था और लोगोंको यह कहा करता था कि मेरे सत्यके प्रभाव से मेरा सिंहासन आकाशमें ठहरा हुआ है, वही सिंहासन वसुकी असत्यतासे टूट पडा और पृथ्वीमें घुस गया । उसके साथ ही वसु भी पृथ्वीमें जा धँसा । यह देख नारदने उसे समझाया—महाराज, अब भी सत्य-सत्य कह दीजिए, गुरुजीने जैसा अर्थ कहा था वह प्रगटकर दीजिए । अभी कुछ नहीं गया । सत्यव्रत आपकी इस सकटसे अवश्य रक्षा करेगा । कुगतिमें व्यर्थ अपने आत्माको न ले जाइए । अपनी इस दुर्दशापर भी वसुको दया नहीं आई वह और जोशमे आकर बोला—नहीं, जो पर्वत कहता है वही सत्य है । उसका इतना कहना था कि उसके पापके उदयने उसे पृथ्वितलमे पहुँचा दिया । वसु कालके सुपुर्द हुआ । मरकर वह सातवें नरकमें गया । सच है जिनका हृदय दुष्ट और पापी होता है उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और अन्त मे उन्हें कुगति मे जाना पड़ता है । इसलिए जो अच्छे पुरुष हैं और पापसे बचना चाहते हैं उन्हें प्राणोपर कष्ट आनेपर भी कभी झूठ न बोलना चाहिए । पर्वतकी यह दुष्टता देखकर प्रजाके लोगोंनेउसे गधेपर बैठा कर शहरसे निकाल बाहर किया और नारदका बहुत आदर-सत्कार किया ।

नारद वहीं रहने लगा । वह बडा बुद्धिमान् और धर्मात्मा था । सब शास्त्रोंमें उसकी गति थी । वह वहाँ रहकर लोगो को धर्मका उपदेश दिया करता, भगवान्की पूजा करता, पात्रोको दान देता । उसकी यह धर्मपरायणता देखकर वसुके बाद राज्य-सिहासनपर बैठनेवाला राजा उसपर बहुत खुश

हुआ । उस खुशीमे उसने नारदको गिरितट नामक नगरीका राज्य भेटमे दे दिया । नारदने बहुत समय तक उस राज्यका सुख भोगा । अन्त में संसारसे उदासीन होकर उसने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । मुनि होकर उसने अनेक जीवोको कल्याणके मार्गमे लगाया और तपस्या द्वारा पवित्र रत्नत्रयकी आराधनाकर आयुके अन्तमे वह सर्वार्थसिद्धि गया, जो कि सर्वोत्तम सुखका स्थान है। सच है, जैनधर्मकी कृपासे भव्य पुरुषों को क्या प्राप्त नहीं होता ?

निरभिमानी नारद अपने धर्मपर बड़ा दृढ़ था । उसने समय-समय पर और-धर्मवालोंके साथ शास्त्रार्थमें विजय प्राप्तकर जैनधर्मकी खूब प्रभावना की । वह जिनशासनरूप महान् समुद्रके बढ़ानेवाला चन्द्रमा था । ब्राह्मवंशका एक चमकता हुआ रत्न था । अपनी सत्यताके प्रभावसे उसने बहुत सिद्धि प्राप्त कर ली थी । अन्तमे वह तपस्याकर सर्वार्थसिद्धि गया । वह महात्मा नारद सबका कल्याण करे ।

- जिसने अनिश्चित बातो से अपने को मुक्त कर लिया है और सत्य अर्थात् आत्मा को पा लिया है, उसके लिए स्वर्ग पृथ्वी से भी अधिक समीप है ।
- वह पुरुष धन्य है जिसने गम्भीरतापूर्वक स्वाध्याय किया है और सत्य को पा लिया है। वह ऐसे मार्ग पर चलेगा जिससे उसे पुनः इस ससार मे न आना पड़े।
- काम, क्रोध और मोह ज्यो ज्यों मनुष्य को छोड़ते हैं, दुःख भी उनका अनुसरण करके धीरे-धीरे नष्ट हो जाते हैं ।
- मानव जाति एक शाश्वत रोग से, दुष्प्रभाव वाले विष से पीड़ित है और उसका नाम है मोह।

२७. श्रीभूति-पुरोहितकी कथा

जिन्हें स्वर्गके देवता बड़ी भक्तिके साथ पूजते हैं, उन सुखके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कारकर मैं श्रीभूति-पूरोहितका उपाख्यान कहता हूँ, जो चोरी करके दुर्गतिमे गया है ।

सिंहपुर नामका सुन्दर नगर था । उसका राजा सिंहसेन था । सिंहसेनकी रानीका राम रामदत्ता था । राजा बुद्धिमान् और धर्मपरायण था । रानी भी बड़ी चतुर थी । सब कामोंको वह उत्तमताके साथ करती थी । राजपुरोहित श्रीभूति था । उसने मायाचारीसे अपने सम्बन्धमें यह बात प्रसिद्ध कर रक्खी थी कि मैं बड़ा सत्य बोलनेवाला हूँ । बेचारे भोले लोग उस कपटीके विश्वासमें आकर अनेक बार ठगे जाते थे । पर उसके कपटका पता किसीको नहीं पड़ पाता था । ऐसे ही एक दिन एक विदेशी उसके चंगुलमे आ फॅसा । इसका नाम समुद्रदत्त था । यह पद्मखण्डपुरका रहनेवाला था । इसके पिता सुमित्र और माता सुमित्रा थीं । समुद्रदत्तकी इच्छा एक दिन व्यापारार्थ विदेश जानेकी हुई । इसके पास पॉच बहुत कीमती रत्न थे । पद्मखण्डपुरमें कोई ऐसा विश्वस्त पुरुष इसके ध्यानमें नहीं आया, जिसके पास यह अपने रत्नोंको रखकर निश्‍चित हो सकता था । इसने श्रीभूतिकी प्रसिद्धि सुन रक्खी थी । इसलिए उसके पास रत्न रखने विचारकर यह सिंहपुर आया । यहाँ श्रीभूतिसे मिलकर इसने अपना विचार उसे कह सुनाया । श्रीभूतिने इसके रत्नो का रखना स्वीकार कर लिया । समुद्रदत्तको इससे बड़ी खुशी हुई और साथ ही वह उन रत्नोंको श्रीभूतिको सौपकर आप रत्नद्वीपके लिए रवाना हो गया । वहॉ कई दिनों तक ठहरकर इसने बहुत ध
न कमाया । जब यह वापिस लौटकर जहाज द्वारा अपने देशकी ओर आ रहा थ तब पापकर्मके उदयसे इसका जहाज टकराकर फट गया । बहुतसे आदमी डूब मरे । बहुत ठीक लिखा है कि बिना पुण्यके कभी कोई कार्य सिद्ध नहीं होता । समुद्रदत्त इस समय भाग्यसे मरते-मरते बच गया । इसके हाथ जहाजका एक छोटा-सा टुकड़ा लग गया । यह उसपर बैठकर बड़ी कठिनताके साथ किसी तरह राम-राम करता किनारे आ लगा । यहॉसे यह सीधा श्रीभूति पुरोहितके पास पहुॅचा । श्रीभूति इसे दूरसे देखकर ही पहिचान गया । वह ध

ूर्त तो था ही, सो उसने अपने आसपास बैठे हुए लोगोसे कहा—देखिये, वह कोई दरिद्र भिखमंगा आ रहा है अब यहाँ आकर व्यर्थ सिर खाने लगेगा। जिनके पास थोड़ा बहुत पैसा होता है या जिनकी मान मर्यादा लोगोंमे अधिक होती है तो उन्हें इन भिखारियोंके मारे चैन नहीं। एक न एक हर समय सिरपर खड़ा ही रहता है। हम लोगोने जो सुना था कि कल एक जहाज फटकर डूब गया है, मालूम होता है यह उसी परका कोई यात्री है और इसका सब धन नष्ट हो जानेसे यह पागल हो गया जान पडता है। इसकी दुर्दशासे ज्ञात होता है कि यह इस समय बड़ा दुखी है और इसीसे सभव है कि यह मुझसे कोई बड़ी भारी याचना करे। श्रीभूति तो इस तरह लोगोको कह ही रहा था कि समुद्रदत्त उसके सामने जा खड़ा हुआ। श्रीभूतिको नमस्कार कर अपनी हालत सुनाना आरम्भ करता है कि इतनेमे श्रीभूति बोल उठा कि मुझे इतना समय नहीं कि मैं तुम्हारी सारी दु ख कथा सुनूँ। हॉ तुम्हारी इस हालतसे जान पड़ता है कि तुमपर कोई बड़ी भारी आफत आई है, अस्तु, मुझे तुम्हारे दु ख मे समवेदना है। अच्छा जाइए, मैं नौकरोसे कहे देता हूँ कि वे तुम्हें कुछ दिनोके लिए खानेका सामान दिलवा दे। यह कहकर ही उसने नौकरोकी ओर मुँह फेरा और आठ दिन तकका खानेका सामान समुद्रदत्तको दिलवा देनेके लिए उनसे कह दिया। बेचारा समुद्रदत्त तो श्रीभूतिकी बातें सुनकर हत-बुद्धि हो गया। उसे काटो तो खून नहीं। उसने घबराते-घबराते कहा—महाराज, आप यह क्या करते हैं ? मेरे जो आपके पास पॉच रत्न रक्खे हैं, मुझे तो वे ही दीजिए। मैं आपका सामान-वामान नहीं लेता।

श्रीभूतिने रत्नका नाम सुनते ही अपने चेहरेपरका भाव बदला और त्यौरी चढ़ाकर जोरके साथ कहा—रत्न! अरे दरिद्र! तेरे रत्न और मेरे पास ? यह तू क्या बक रहा है ? कह तो सही वास्तवमे तेरी मंशा क्या है ? क्या मुझे तू बदनाम करना चाहता है ? तू कौन, और कहॉका रहनेवाला है ? मैं तुझे जानता तक नहीं, फिर तेरे रत्न मेरे पास आये कहॉसे ? जा-जा, पागल तो नहीं हो गया है ? ठीक ध्यानसे विचार कर। किसी और के यहॉ रखकर उसके भ्रमसे मेरे पास आ गया जान पडता है। इसके बाद ही उसने लोगोंकी ओर नजर फेरकर कहा—देखिये साहब, मैंने कहा था न ? कि यह

मेरेसे कोई बडी भारी याचना न करे तो अच्छा । ठीक वही हुआ । बतलाइए, इस दरिद्रके पास रत्न आ कहाँसे सकते हैं ? धन नष्ट हो जाने से जान पड़ता है यह बहक गया है । यह कहकर श्रीभूतिने नौकरो द्वारा समुद्रदत्तको घर से बाहर निकलवा दिया । नीतिकारने ठीक लिखा है— जो लोग पापी होते हैं और जिन्हें दूसरोंके धनकी चाह होती है, वे दुष्ट पुरुष ऐसा कौन बुरा काम है जिसे लोभके वश हो न करते हों ? श्रीभूति ऐसे ही पापियोंमेंसे एक था, तब वह कैसे ऐसे निंद्य कर्मसे बचा रह सकता था ? पापी श्रीभूतिसे ठगा जाकर बेचारा समुद्रदत्त सचमुच पागल हो गया । वह श्रीभूतिके मकानसे निकलते ही यह चिल्लता हुआ, कि पापी श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता है, सारे शहरमें घूमने लगा । पर उसे एक भिखारीके वेशमें देखकर किसीने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया । उल्टा उसे ही सब पागल बताने लगे । समुद्रदत्त दिनभर तो इस तरह चिल्लाता हुआ सारे शहरमें घूमता-फिरता और जब रात होती तब राजमहलके पीछे एक वृक्षपर चढ़ जाता और सारी रात उसी तरह चिल्लया करता । ऐसा करते-करते उसे ठीक छह महिना बीत गये । समुद्रदत्त का इस तरह रोज-रोज चिल्लाना सुनकर एक दिन महारानी रामदत्ताने सोचा कि बात वास्तवमें क्या है, इसका जरूर पता लगाना चाहिए । तब एक दिन उसने अपने स्वामीसे कहा—प्राणनाथ, मैं रोज एक-गरीबकी पुकार सुनती हूँ । मैं तो यह समझती रही कि वह पागल हो गया है और इसीसे दिन-रात चिल्लाया करता है, कि श्रीभूति मेरे रत्न नहीं देता । पर प्रतिदिन उसके मुँहसे एक ही वाक्य सुनकर मेरे मनमें कुछ खटका पैदा होता है । इसलिए आप उसे बुलाकर पूछिये तो कि वास्तवमें रहस्य क्या है ? रानीके कहे अनुसार राजाने समुद्रदत्तको बुलाकर सब बातें पूछी । समुद्रदत्तने जो यथार्थ घटना थी, वह राजासे कह सुनाई । सुनकर राजाने रानीसे कहा कि इसके चेहरेपरसे तो इसकी बात ठीक जँचती है । पर इसका भेद खुलनेके लिए क्या उपाय है ? रानीसे थोड़ी देर तक विचारकर कहा—हॉ, इसकी आप चिन्ता न करें । मैं सब बातें जान लूँगी ।

दूसरे दिन रानीने पुरोहितजीको अपने अन्त:पुरमें बुलाया । आदर-सत्कार होनेके बाद रानीने उनसे कहा—मेरी इच्छा बहुत दिनोसे आपसे मिलनेकी थी,

पर कोई ठीक समय ही नहीं मिल पाता था। आज बड़ी खुशी हुई कि आपने यहाँ आनेकी कृपा की। इसके बाद रानीने पुरोहितजीसे कुछ इधर-उधरकी बाते करके उनसे भोजनका हाल पूछा। उनके भोजनका सब हाल जानकर उसने अपनी एक विश्वस्त दासीको बुलाया और उसे कुछ बाते समझा-बुझाकर पीछे चली जानेको कह दिया। दासीके जानेके बाद रानीने पुरोहितजीसे एक नई ही बातका जिकर उठाया। वह बोली—

पुरोहितजी, सुनती हूँ कि आप पासे खेलनेमे बडे चतुर और बुद्धिमान् है। मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा होती थी कि आपके साथ खेलकर मैं भी एक बार देखूँ कि आप किस चतुराई से खेलते हैं। यह कहकर रानीनेएक दासीको बुलाकर चौपड़के ले आनेकी आज्ञा की।

पुरोहितजी रानीकी बात सुनकर दंग रह गये। वे घबराकर बोले—हैं ! हैं। महारानीजी, यह आप क्या करती हैं ? मैं एक भिक्षुक ब्राह्मण और आपके साथ मेरी यह धृष्टता। यदि महाराज सुन पावें तो वे मेरी क्या गति बनावेंगे ?

रानीने कहा—पुरोहितजी, आप इतने घबराइए मत। मेरे साथ खेलनेमे आपको किसी प्रकारके गहरे विचारमे पड़नेकी कोई आवश्यकता नहीं। महाराज इस विषयमे आपसे कुछ नहीं कहेगे। आप डरिए मत।

बेचारे पुरोहितजी बड़े पशोपेशमे पड़े। रानीकी आज्ञा भी वे नही टाल सकते और इधर महाराजका उन्हे भय। वे तो इस उधेड़-बुनमे लगे हुए थे कि दासीने चौपड़ लाकर रानीके सामने रख दी। आखिर उन्हें खेलना ही पडा। रानीने पहली ही बाजीमें पुराहितजीकी अँगूठी, जिसपर कि उसका नाम खुदा हुआ था, जीत ली। दोनों फिर खेलने लगे। इतनेमे पहली दासीने आकर रानीसे कुछ कहा। रानीने अबकी बार पुरोहितजी जीती हुई अँगूठी चुपकेसे उसे देकर चली जानेको कह दिया। दासी घण्टे भर बाद फिर आई उसे कुछ निराशसी देखकर रानीने इशारेसे अपने कमरेके बाहर ही रहनेको कह दिया और आप अपने खेलमें लग गई अबकी बार उसने पुरोहितजीका जनेऊ जीत लिया और किसी बहानेसेउस दासीको बुलाकर चुपकेसे जनेऊ देकर भेज दिया। दासीके वापिस आने तक रानी और पुरोहितजीको खेलमें लगाये रही। इतनमें दासी भी आ गई। उसे प्रसन्न देखकर, रानीने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ

समझा । उसने उसी समय खेल बन्द किया और पुराहितजी की ।

अँगूठी और जनेऊ उन्हें वापिस देकर वह बोली—आप सचमुच खेलनेमे बड़े चतुर हैं । आपकी चतुरता देखकर मैं वहुत प्रसन्न हुई । आज मैंने सिर्फ इस चतुरताको देखनेके लिए ही आपको यह कष्ट दिया था । आप इसके लिए मुझे क्षमा करें । अब आप खुशीके साथ जा सकते हैं ।

बेचारे पुरोहितजी रानीके महलसे विदा हुए । उन्हें इसका कुछ भी पता नहीं पड़ा कि रानीने मेरी ऑखोंमें दिन दहाड़े धूल झोककर मुझे कैसा उल्लू बनाया है । बात असलमें यह थी कि रानीने पहले पुरोहितजीकी जीती हुई अँगूठी देकर दासीकोउनकी स्त्रीके पास समुद्रदत्तके रत्न लेनेको भेजा, पर जव पुरोहितजीकी स्त्रीने अँगूठी देखकर भी उसे रत्न नहीं दिये तव यज्ञोपवीत जीता और उसे दासीके हाथ देकर फिर भेजा । अबकी वार रानीका मनोरथ सिद्ध हुआ । पुरोहितजीकी स्त्रीने दासीकी बातोंसे डरकर झटपट रत्नोंको निकाल दासीके हवाले कर दिया । दासीने रत्न लाकर रानी को दे दिये । रानी प्रसन्न हुई । पुरोहितजी तो खेलते रहे और उधर उनका भाग्य फूट गया, इसकी उन्हें रत्तीभर भी खबर नहीं पड़ी ।

रानीने रत्नोंको ले जाकर महाराजके सामने रख दिया और साथ ही पुरोहितजीके महलसे रवाना होनेकी खबर दी । महाराजने उसी समय उनके गिरफ्तार करनेकी सिपाहियोंको आज्ञा की । बेचारे पुरोहितजी अभी महलके बाहर भी नहीं हुए थे कि सिपाहियोंने जाकर उनके हाथोंमें हथकड़ी डाल दी और उन्हें दरबारमें लाकर उपस्थित कर दिया ।

पुरोहितजी देखकर भौंचकसे रह गये । उनकी समझमें नहीं आया कि यह एकाएक क्या हो गया और कौन मैंने ऐसा भारी अपराध किया जिससे मुझे एक शब्द तक न बोलने देकर मेरी यह दशाकी गई । वे हतबुद्धि हो गये । उन्हें इस बातका और अधिक दुःख हुआ कि मैं एक राजपुरोहित, ऐसा वैसा गैर आदमी नहीं और मेरी यह दशा ? और वह बिना किसी अपराधके ? क्रोध, लज्जा और आत्मग्लानिसे उनकी एक विलक्षण ही दशा हो गई ।

रानीने जैसे ही रत्नोको महाराजके सामने रक्खा, महाराजने उसी

समय उन्हें अपने और बहुतसे रत्नोंमे मिलाकर समुद्रदत्तको बुलाया और उससे कहा—अच्छा, देखो तो इन रत्नोंमें तुम्हारे रत्न हैं क्या ? और हो तो उन्हे निकाल लो । महाराजकी आज्ञा पाकर समुद्रदत्तनेउन सब रत्नोमेंसे अपने रत्नोको पहिचानकर निकाल लिया । सच है, सज्जन पुरुष अपनी ही वस्तुको लेते हैं । दूसरोंकी वस्तु उन्हे विष समान जान पड़ती हैं । समुद्रदत्तने अपने रत्न पहिचान लिए, यह देख महाराज उसपर इतने प्रसन्न हुए कि उसे उन्होंने अपना राजसेठ बना लिया ।

महाराज तुरन्त ही दरबारमें आये । जैसे ही उनकी दृष्टि पुरोहितजी पर पड़ी, उन्होने बड़ी ग्लानिकी दृष्टिसे उनकी ओर देखकर गुस्सेके साथ कहा—पापी, ठग ! मैं नहीं जानता था कि तू हृदयका इतना काला होगया और ऊपरसे ऐसा ढोंगीका वेष लेकर मेरी गरीब और भोली प्रजाको इस तरह धोखेमें फँसायगा ? न मालूम तेरी इस कपटवृत्तिने मेरे कितने बन्धुओको घर-घरका भिखारी बनाया होगा ? ऐ, पापके पुतले, लोभके जहरीले सर्प, तुझे देखकर हृदय चाहता तो यह है कि तुझे इसकी कोई ऐसी भंयकर सजा दी जाए, जिससे तुझे भी इसका ठीक प्रायश्चित मिल जाय और सर्व साधारणको दुराचारियोके साथ मेरे कठिन शासनका ज्ञान हो जाय; उससे फिर कोई ऐसा अपराध करनेका साहस न करे । परन्तु तू ब्राह्मण है, इसलिए तेरे कुलके लिहाजसे तेरी सजाके विचारका भार मैं अपने मंत्री-मण्डल पर छोड़ता हूँ । यह कहकर ही राजाने अपने धर्माधिकारियोंकी ओर देखकर कहा—"इस पापीने एक विदेशी यात्रीके, जिसका कि नाम समुद्रदत्त है और वह यहीं बैठा हुआ भी है, कीमती पॉच रत्नोंको हड़प कर लिया है, जिनको कि यात्रीने समुद्र यात्रा करनेके पहले श्रीभूतिको एक विश्वस्त और राजप्रतिष्ठित समझकर धरोहरके रूपमे रक्खे थे । दैवकी विचित्र गतिसे यात्रासे लौटते समय यात्रीका जहाज एकाएक फट गया और साथ ही उसका सब माल असबाब भी डूब गया । यात्री किसी तरह बच गया । उसने जाकर पुरोहित श्रीभूतिसे अपनी धरोहर वापिस लौटा देनेके लिए प्रार्थना की । पुरोहितके मनमे पापका भूत सवार हुआ । बेचारे गरीब यात्रीको उसने धक्के देकर घरसे बाहर निकलवा दिया । यात्री अपनी इस हालतसे पागल-सा होकर सारे शहरमे यह पुकार

मचाता हुआ महिनों फिरा कि श्रीभूतिने मेरे रत्न चुरा लिये, पर उसपर किसीका ध्यान न जाकर उलटा सबने उसे ही पागल कह दिया। उसकी यह दशा देखकर महारानीको बड़ी दया आई। यात्री बुलाया जाकर उससे सब बातें दर्याफ्त की गई। बादमे महारानीने उपाय द्वारा वे रत्न अपने हस्तगत कर लिये। वे रत्न समुद्रदत्तके हैं या नहीं इसकी परीक्षा करनेके आशयसे उन पाँचो रत्नोको मैंने बहुतसे और रत्नोमे मिला दिया। पर आश्चर्य है कि यात्रीने अपने रत्नोंको पहिचान कर निकाल लिये। श्रीभूतिके जिम्में धरोहर हड़पकर जानेका गुरुत्तर अपराध है। इसके सिवा धोखेबाजी, ठगाई आदि और भी बहुतसे अपराध हैं। इसकी इसे क्या सजा दी जाय, इसका आप विचार करे।"

धर्माधिकारियो आपसमें सलाहकर कहा—महाराज, श्रीभूति पुरोहितका अपराध बड़ा भारी है। इसके लिए हम तीन प्रकारको सजायें नियत करते हैं। उनमेसे फिर जिसे यह पसन्द करे, स्वीकार करे। या तो इसका सर्वस्व हरण कर लिया जाकर इसे देश बाहर कर दिया जाय, या पहलवानोंकी बत्तीस मुक्कियाँ इस पर पडे, या तीन थाली मे भरे हुए गोबरको यह खा जाय। श्रीभूतिसे सजा पसन्द करनेको कहा गया। पहले उसने गोबर खाना चाहा, पर खाया नहीं गया, तब मुक्कियाँ खानेको कहा। मुक्कियाँ पड़ना शुरू हुई कोई दस पन्द्रह मुक्कियाँ पड़ी होगी कि पुरोहितजीकी अकल ठिकाने आ गई। आप एकदम चक्कर खाकर जमीन पर ऐसे गिरे कि पीछे उठे ही नहीं। महा आर्त्तध्यानसे उनकी मृत्यु हुई। वे दुर्गतिमें गये। धनमें अत्यन्त लम्पटताका उन्हें उपयुक्त प्रायश्चित्त मिला। इसलिये जो भव्य पुरुष हैं, उन्हें उचित है कि वे चोरीको अत्यन्त दुःखका कारण समझकर उसका परित्याग करे और अपनी बुद्धिको पवित्र जैनधर्मकी ओर लगावें, जो ऐसे महापापों से बचानेवाला है।

वे जिनभगवान्, जो सब सन्देहोंके नाश करनेवाले और स्वर्गके देवों और विद्याधरों द्वारा पूज्य हैं, वह जिनवाणी जो सब सुखीको खान है और मेरे गुरु श्रीप्रभाचन्द्र, ये सब मुझे मंगल प्रदान करें, मुझे कल्याणका मार्ग बतलावें।

---

२८. नीलीकी कथा

जिनभगवान्‌के चरणोंको, जोकि कल्याणके करनेवाले हैं, नमस्कार कर श्रीमती नीली सुन्दरीकी मैं कथा कहता हूँ। नीलीने चौथे अणुव्रतब्रह्मचर्यकी रक्षा कर प्रसिद्धि प्राप्त की है।

पवित्र भरतवर्षमें लाटदेश एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश था। जिनधर्मका वहाँ खूब प्रचार था। वहाँकी प्रजा अपने धर्मकर्म पर बड़ी दृढ़ थी। इससे इस देशकी शोभाको उस समय कोई देश नहीं पा सकता था। जिस समयकी यह कथा है, तब उसकी प्रधान राजधानी भृगुकच्छ नगर था। यह नगर बहुत सुन्दर और सब प्रकारकी योग्य और कीमती वस्तुओंसे पूर्ण था। इसका राजा तब वसुपाल था और वह जिससे अपनी प्रजा सुखी हो, धनी हो, सदाचारी हो, दयालु हो, इसके लिए कोई बात का कष्ट न हो इसलिए सदा प्रयत्नशील रहता था।

यहीं एक सेठ रहता था। उसका नाम था जिनदत्त। जिनदत्तकी शहरके सेठ साहूकारोमे बड़ी इज्जत थी। वह धर्मशील और जिनभगवान्‌का भक्त था। दान, पूजा, स्वाध्याय आदि पुण्यकर्मोंको वह सदा नियमानुसार किया करता था। उसकी धर्मप्रियाका नाम जिनदत्ता था। जैसा जिनदत्त धर्मात्मा और सदाचारी था, उसकी गुणवती साध्वी स्त्री भी उसीके अनुरूप थी और इसीसे इनके दिन बड़े ही सुखके साथ बीतते थे। अपने गार्हस्थ्य सुखको स्वर्ग सुखसे भी कहीं बढ़कर इन्होने बना लिया था। जिनदत्ता बड़ी उदार प्रकृतिकी स्त्री थी। वह जिसे दुखी देखती उसकी सब तरह सहायता करती और उनके साथ प्रेम करती। इसके सन्तानमें केवल एक पुत्री थी। उसका नाम नीली था। अपने माता-पिताके अनुरूप ही इसमें गुण और सदाचारकी सृष्टि हुई थी। जैसे सन्तोका स्वभाव पवित्र होता है, नीली भी उसी प्रकार बड़े पवित्र स्वभावकी थी।

इस नगरमे एक और वैश्य रहता था। उसका नाम समुद्रदत्त था। यह जैनी नहीं थी। इसकी बुद्धि बुरे उपदेशोको सुन-सुनकर बडी मठ्ठी हो गई थी। अपने हितकी ओर कभी इसकी दृष्टि नहीं जाती थी। इसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था। इसके एक पुत्र था। उसका नाम था सागरदत्त।

सागरदत्त एक दिन अचानक जिनमन्दिरमें पहुँच गया । इस समय नीली भगवान्‌की पूजाकर रही थी । वह एक तो स्वभावसे ही बड़ी सुन्दरी थी । इसपर उसने अच्छे-अच्छे रत्न, जड़े गहने ओर वहुमूल्य वस्त्र पहर रक्खे थे । इससे उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई थी । वह देखनेवालोंको ऐसी जान पड़ती थी, मानों कोई स्वर्गकी देव-बाला भगवान्‌की खड़ी-खड़ी पूजा कर रही है । सागरदत्त उसकी भुवनमोहिनी सुन्दरताको देखकर मुग्ध हो गया । कामनेउसके मनको बेचैन कर दिया । उसने पास ही खड़े हुए अपने मित्रसे कहा—यह है कौन ? मुझे तो नहीं जान पडता कि यह मध्यलोककी बालिका हो । या तो यह कोई स्वर्ग-वाला है या नागकुमारी अथवा विद्याधर कन्या; क्योंकि मनुष्योंमें इतना सुन्दर रूप होना असम्भव है ।

सागरदत्तके मित्र प्रियदत्तने नीलीका परिचय देते हुए कहा कि यह तुम्हारा भ्रम है, जो तुम ऐसा कहते हो कि ऐसी सुन्दरता मनुष्योंमें नहीं हो सकती । तुम जिसे स्वर्ग-बाला समझ रहे हो वह न स्वर्ग-वाला है, न नागकुमारी और न किसी विद्याधर वगैरहकी पुत्री है, किन्तु मनुष्यनी है और अपने इसी शहरमें रहनेवाले जिनदत्त सेठके कुलकी एकमात्र प्रकाश करनेवाली उसकी नीली नामकी कन्या है ।

अपने मित्र द्वारा नीलीका हाल जानकर सागरदत्त आश्चर्यके मारे दंग रह गया । साथ ही कामने उसे हृदयपर अपना पूरा अधिकार किया । वह घरपर आया सही, पर अपने मनको वह नीलीके पास ही छोड़ आया । अब वह दिन-रात नीलीकी चिन्तामें घुल-घुलकर दुबला होने लगा । खाना-पीना उसके लिए कोई आवश्यक काम नहीं रहा । सच है, जिस कामके वश होकर श्रीकृष्ण लक्ष्मी द्वारा, महादेव गगा द्वारा और ब्रह्मा उर्वशी द्वारा अपना प्रभुत्व, ईश्वरपना खो चुके तब बेचारे साधारण लोगोंकी तो कथा ही क्या कही जाय ?

सागरदत्तकी हालत उसके पिताको जान पड़ी । उसने एक दिन सागरदत्तसे कहा—देखो, जिनदत्त जैनी है, वह कभी अपनी कन्याको अजैनीके साथ नहीं ब्याहेगा । इसलिए तुम्हे यह उचित नहीं कि तुम अप्राप्य वस्तुके लिए इस प्रकार तडफ-तड़फकर अपनी जानको जोखिममे डालो । तुम्हे यह अनुचित विचार छोड़ देना चाहिए । यह कहकर समुद्रदत्तने पुत्रके उत्तर पानेकी

आशासे उसकी ओर देखा। पर जब सागरदत्त उसकी बातका कुछ भी जवाब न देकर नीची नजर किये ही बैठ रहा तब समुद्रदत्तको निराश हो जाना पड़ा। उसने समझ लिया कि इसके दो ही उपाय हैं। या तो पुत्रके जीवनकी आशासे हाथ धो बैठना या किसी तरह सेठकी लड़कीके साथ इसको ब्याह देना। पुत्रके जीनेकी आशाको छोड़ बैठनेकी अपेक्षा उसने किसी तरह नीलीके साथ उसका ब्याह कर देना ही अच्छा समझा। सच है, सन्तानका मोह मनुष्यसे सब कुछ करा सकता हैं इस सम्बन्धके लिए समुद्रदत्तके ध्यानमें एक युक्ति आई। वह यह कि इस दशामें उसने अपना और पुत्रका जैनी बन जाना बहुत ही अच्छा समझा और वे बन भी गये। अबसे वे मन्दिर जाने लगे, भगवान्‌की पूजा करने लगे, स्वाध्याय, व्रत, उपवास भी करने लगे। मतलब यह कि थोड़े ही दिनोंमें पिता-पुत्रने अपने जैनी हो जानेका लोगोंको विश्वास करा दिया और धीरे-धीरे जिनदत्तसे भी इन्होने अधिक परिचय बढ़ा लिया। बेचारा जिनदत्त सरल स्वभावका था और इसीलिए वह सब हीको अपना-सा ही सरल-स्वभावी समझता था। यही कारण हुआ कि समुद्रदत्तका चक्र उस पर चल गया। उसने सागरदत्तको अच्छा पढ़ा लिखा, खूबसूरत और अपनी पुत्रीके योग्य वर समझकर नीलीको उसके साथ ब्याह दिया। सागरदत्तका मनोरथ सिद्ध हुआ। उसे नया जीवन मिला। इसके बाद थोड़े दिनो तक तो पिता-पुत्रने और अपनेको ढोंगी वेषमें रक्खा, पर फिर कोई प्रसंग लाकर वे पीछे बुद्धधर्मके माननेवाले हो गये। सच है, मायाचारियों-पापियोंकी बुद्धि अच्छे धर्मपर स्थिर नहीं रहती। यह बात प्रसिद्ध है कि कुत्तेके पेटमें घी नहीं ठहरता।

जब इन पिता-पुत्रने जैनधर्म छोड़ा तब इन दुष्टोंने यहाँ तक अन्याय किया कि बेचारी नीलीका उसके पिताके घर जाना-आना भी बन्द कर दिया। सच है, पापी लोग क्या नहीं करते ! जब जिनदत्तको इनके मायाचारका यह हाल जान पड़ा तब उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ, बेहद दुःख हुआ वह सोचने लगा—क्यों मैंने अपनी प्यारी पुत्रीको अपने हाथोंसे कुए में ढकेल दिया ? क्यों मैंने उसे कालके हाथ सौंप दिया ? सच है दुर्जनोंकी सगतिसे दुःखके सिवा कुछ हाथ नहीं पड़ता। नीचे जलती हुई अग्नि भी ऊपरकी छतको काली कर देती है।

जिनदत्त जैसा कुछ किया उसका पश्चात्ताप उसे हुआ। पर इससे

क्या नीली दुखी हो ? उसका यह धर्म था क्या ? नहीं ! उसे अपने भाग्यके अनुसार जो पति मिला, उसे ही वह अपना देवता समझती थी और उसकी सेवामे कभी रत्तीभर भी कमी नहीं होने देती थी । उसका प्रेम पवित्र और आदर्श था । यही कारण था कि वह अपने प्राणनाथकी अत्यन्त प्रेमपात्र थी । विशेष इतना था कि नीलीने बुद्धधर्मके माननेवालोंके यहाँ आकर भी जिनधर्मको न छोड़ा था । वह बराबर भगवान्‌की पूजा, शास्त्रस्वाध्याय, व्रत, उपवास आदि पुण्यकर्म करती थी, धर्मात्माओंसे निष्कपट प्रेम करती थी और पात्रोंको दान देती थी । मतलब यह कि अपने धर्मकर्ममें उसे खूब श्रद्धा थी और भक्तिपूर्वक वह उसे पालती थी । पर खेद है कि समुद्रदत्तकी आँखोंमें नीलीका यह कार्य भी खटका करता था । उसकी इच्छा थी कि नीली भी हमारा ही धर्म पालने लगे और इसके लिए उसने यह सोचकर, कि बुद्ध साधुओंकी संगतिसे या दर्शनसे या उनके उपदेशसे यह अवश्य बुद्धधर्मको मानने लगेगी । एक दिन नीली से कहा—पुत्री, तू पात्रोंको तो सदा दान दिया ही करती है, तब एक दिन अपने धर्मके ही अनुसार बुद्धसाधुओंको भी तो दान दे ।

नीलीने श्वसुर की बात मान ली । पर उसे जिनधर्मके साथ उनकी यह ईर्षा ठीक नहीं लगी और इसीलिए उसने कोई ऐसा उपाय भी अपने मनमें सोच लिया, जिससे फिर कभी उससे ऐसा मिथ्या आग्रह किया जाकर उसके धर्मपालनमें किसी प्रकारकी बाधा न दी जाय । फिर कुछ दिनो बाद उसने मौका देखकर कुछ बुद्ध साधुओको भोजनके लिए बुलाया । वे आये । उनका आदर-सत्कार भी हुआ । वे एक अच्छे सुन्दर कमरेमें बैठाये गये । इधर नीलीने उनके जूतोंको एक दासी द्वारा मँगवा लिया और उनका खूब बारीक बूरा बनवाकर उसके द्वारा एक किस्मकी बहुत ही बढ़िया मिठाई तैयार करवाई । इसके बाद जब वे साधु भोजन करनेको बैठे तब और-ओर व्यंजन-मिठाईयोके साथ वह मिठाई भी उन्हें परोसी गई । सबने उसे बहुत पसन्द किया । भोजन समाप्त हुए बाद जब जानेकी तैयारी हुई, तब वे देखते हैं तो जोड़े नहीं हैं । उन्होंने पूछा—जोड़े कहाँ गये ? भीतरसे नीलीने आकर कहा—महाराज, सुनती हूँ, साधु लोग बड़े ज्ञानी होते हैं ? तब क्या आप अपने ही जूतोंका हाल नहीं जानते हैं ? और यदि आपको इतना ज्ञान नहीं तो

मैं बतला देती हूँ कि जूते आपके पेटमे हैं । विश्वासके लिए आप उल्टी कर देखे । नीलीकी बात सुनकर उन्हे बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होने उल्टी करके देखा तो उन्हे जूतोके छोटे-छोटे बहुतसे टुकड़े देख पड़े । इससे उन्हे बहुत लज्जित होकर अपने स्थान पर आना पड़ा ।

नीलीकी इस कारवाईसे, अपने गुरुओ के अपमानसे समुद्रदत्त, नीलीकी सासु, ननद आदिको बहुत ही गुस्सा आया । पर भूल उनकी जो नीली द्वारा उसके धर्मविरूद्ध कार्य उन्होने करवाना चाहा । इसलिए वे अपना मन मसोसकर रह गये, नीलीसे वे कुछ नहीं कह सके। पर नीलीकी ननदको इससे संतोष नहीं हुआ । उसने कोई ऐसा ही छल-कपटकर नीलीके माथे व्याभिचार का दोष माढ़ दिया । सच है, सत्पुरूषों पर किसी प्रकारका ऐब लगा देनेमें पापियोको तनिक भी भय नहीं रहता । बेचारी नीली अपने पर झूठ-मूठ महान् कलंक लगा सुनकर बड़ी दुखी हुई । उसे कलंकित होकर जीते रहनेसे मर जाना ही उत्तम जान पड़ा । वह उसी समय जिनमन्दिरमे गई और भगवान्‌के सामने खड़ी होकर उसने प्रतिज्ञा की, कि मैं इस कलंकसे मुक्त होकर ही भोजन करूँगी, इसके अतिरिक्त मुझे इस जीवनमे अन्नपानीका त्याग है । इस प्रकार वह संन्यास लेकर भगवान्‌के सामने खड़ी हुई उनका ध्यान करने लगी । इस समय उसकी ध्यान मुद्रा देखनेके योग्य थी । वह ऐसी जान पड़ती थी मानो सुमेरु पर्वतकी स्थिर और सुन्दर जैसी चूलिका हो । सच है, उत्तम पुरुषों को सुख या दु·खमें जिनेन्द्र भगवान् ही शरण होते हैं, जो अनेक प्रकारकी आपत्तियोंके नष्ट करनेवाले और इन्द्रादि देवों द्वारा पूज्य हैं ।

नीलीकी इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा और उसके निर्दोष शीलके प्रभावसे पुरदेवताका आसन हिल गया । वह रातके समय नीलीके पास आई और बोली—सतियोकी शिरोमणि, तुझे इस प्रकार निराहार रहकर प्राणोको कष्टमे डालना उचित नहीं । सुन, मैं आज शहरके बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोको तथा राजाको एक स्वप्न देकर शहरके सब दरवाजे बन्द कर दूँगी । वे तब खुलेगे जब कि उन्हे कोई शहरकी महासती अपने पॉवोसे छूएगी । सो जब तुझे राजकर्मचारी यहॉसे उठाकर ले जॉय तब तू उनका स्पर्श करना । तेरे पॉवके लगते ही दरवाजे खुल जायँगें और तू कलक मुक्त होगी । यह कहकर पुरदेवता

चली गई और सब दरवाजोंको बन्द कर उसने राजा वगैरहको स्वप्न दिया।

सबेरा हुआ। कोई घूमनेके लिए, कोई स्नानके लिए और कोई किसी कामके लिए शहर के बाहर जाने लगे। जाकर देखते हैं तो शहर बाहर होनेके सब दरवाजे बन्द हैं। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत कुछ कोशिशे की गई; पर एक भी दरवाजा नहीं खुला। सारे शहरमें शोर मच गया। बातकी बातमे राजाके पास खबर पहुँची। इस खबरके पहुँचते ही राजाको रातमे आये हुए स्वप्नकी याद हो उठी। उसी समय एक बड़ी भारी सभा बुलाई गई राजाने सबको अपने स्वप्नका हाल कह सुनाया। शहरके कुछ प्रतिष्ठित पुरुषोंने भी अपनेको ऐसा ही स्वप्न आया बतलाया। आखिर सबकी सम्मतिसे स्वप्नके अनुसार दरवाजोका खोलना निश्चित किया गया। शहरकी स्त्रियाँ दरवाजोंका स्पर्श करनेको भेजी गई। सबने उन्हें पाँवोंसे छुआ, पर दरवाजोंको कोई नहीं खोल सकी। तब किसीने, जो कि नीलीके संन्यासका हाल जानता था, नीलीको उठा ले जाकर उसके पावोंका स्पर्श करवाया। दरवाजे खुल गये। जैसे वैद्य सलाईके द्वारा आँखोंको खोल देता है उसी तरह नीलीने अपने चरणस्पर्शसे दरवाजोको खोल दिया। नीलीके शीलकी बहुत प्रशंसा हुई। नीली कलंक मुक्त हुई। उसके अखण्ड शीलप्रभावको देखकर लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा तथा शहर के और-और प्रतिष्ठित पुरुषोंने बहुमूल्य वस्त्राभूषणों द्वारा नीलीका खूब सत्कार किया और इन शब्दोमें उसकी प्रशंसा की "हे जिनभगवान्के चरणकमलों की भौंरी, तुम खूब फूलो फलो। माता, तुम्हारे शीलका महात्म्य कौन कह सकता है।" सती नीली अपने धर्मपर दृढ़ रही, उससे उसकी बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पुरुषोंने प्रशंसा की। इसलिए सर्वसाधारणको भी सती नीलीका पथ ग्रहण करना चाहिए।

जिनके वचन सारे संसारका उपकार करनेवाले हैं, जो स्वर्गके देवों और बड़े-बड़े राजा महाराजाओसे पूज्य हैं और जिनका उपदेश किया हुआ पवित्र शील—ब्रह्मचर्य स्वर्ग तथा परम्परा मोक्ष का देनेवाला है, वे जिनभगवान् संसारमें सदा काल रहे और उनके द्वारा कर्म-परवश जीवोंको कर्म पर विजय प्राप्त करनेका पवित्र उपदेश सदा मिलता रहे।

———

२९. कडारपिंगकी कथा

अर्हन्त, जिनवाणी और गुरुओको नमस्कार कर, कडारपिंगकी, जो कि स्वदारसन्तोषव्रत—ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट हुआ है, कथा लिखी जाती है। कापिल्य नामका एक प्रसिद्ध शहर था। उसके राजाका नाम नरसिह था। नरसिह बुद्धिमान् और धर्मात्मा थे। अपने राज्यका पालन वे नीतिके साथ करते थे। इसलिए प्रजा उन्हे बहुत चाहती थी।

राजमंत्री नाम सुमति था। इनके धनश्री स्त्री और कडारपिंग नामक एक पुत्र था। कडारपिंगका चाल-चलन अच्छा नहीं था। वह बड़ा कामी था। इसी नगरमे एक कुबेरदत्त सेठ रहता था। यह बडा धर्मात्मा और पूजा, प्रभावना करनेवाला था। इसकी स्त्री प्रियंगसुन्दरी सरल स्वभावकी, पुण्यवती और बहुत सुन्दरी थी।

एक दिन कडारपिंगने प्रियंसुन्दरीको कहीं जाते देख लिया। उसकी रूप-मधुरिमाको देखकर इसका मन बैचेन हो उठा। यह जिधर देखता उधर ही इसे प्रियंगसुन्दरी दिखने लगी। प्रियगुसुन्दरीके सिवा इसे और कोई वस्तु अच्छी न लगने लगी। कामने इसे आपेसे भुला दिया। बड़ी कठिनतासे उस दिन यह घरपर पहुँच पाया। इसे इस तरह बेचैन और भ्रम बुद्धि देखकर इसकी मॉको बडी चिन्ता हुई। उसने इससे पूछा—कडार, क्यों आज एकाएक तेरी यह दशा हो गई ? अभी तो तू घरसे अच्छी तरह गया था और थोडी ही देरमें तेरी यह हालत कैसे हुई ? बतला तो, हुआ क्या ? क्यो तेरा मन आज इतना खेदित हो रहा है ? कडारपिंगने कुछ न सोचा—विचारा, अथवा यो कह लीजिए कि सोच विचार करनेकी बुद्धि ही उसमे न थी। यही कारण था कि उसने, कौन पूछनेवाली है, इसका भी कुछ खयाल न कर कह दिया कि कुबेरदत्त सेठकी स्त्रीको मैं यदि किसी तरह प्राप्त कर सकूँ, तो मेरा जीना हो सकता है। सिवा इसके मेरी मृत्यु अवश्यभावी हैं। नीतिकार कहते हैं कि कामसे अन्धे हुए लोगोको धिक्कार है जो लज्जा और भय रहित होकर फिर अच्छे और बुरे कार्यको भी नहीं सोचते। बेचारी धनश्री पुत्रकी यह निर्लज्जता देखकर दग रह गई। वह इसका कुछ उत्तर न देकर सीधी अपने स्वामीके

पास गई और पुत्रकी सब हालत उसने उनसे कह सुनाई । सुमति एक राजमत्री था और बुद्धिमान था । उसे उचित था कि वह अपने पुत्रको पापकी ओरसे हटानेका यत्न करता, पर उसने इस डरसे, कि कहीं पुत्र मर न जाय, उलटा पापकार्यका सहायक बननेमे अपना हाथ बटाया । सच है, विनाशकाल ाब आता है तब बुद्धि भी विपरीत हो जाया करती है । ठीक यही हाल सुमतिका हुआ । वह पुत्रकी आशा पूरी करनेके लिए एक कपट-जाल रचकर राजाके पास गया और बोला—महाराज, रत्नद्वीपमें एक किंजल्क जातिके पक्षी होते हैं, वे जिस शहरमें रहते हैं वहाँ महामारी, दुर्भिक्ष रोग, अपमृत्यु आदि नहीं होते तथा उस शहर पर शत्रुओंका चक्र नहीं चल पाता, और न चोर वगैरह उसे किसी प्रकारकी हानि पहुँचा सकते हैं । और महाराज, उनकी प्राप्तिका भी उपाय सहज है । अपने शहरमें जो कुबेरदत्त सेठ हैं; उनका जाना आना प्राय· वहाँ हुआ करता है और वे हैं भी कार्यचतुर, इसलिए उन पक्षियोंके लानेको आप उन्हें आज्ञा कीजिये । अपने राजमंत्रीकी एक अभूतिपूर्व बात सुनकर राजा तो पक्षियोंको मँगानेको अकुला उठे । भला, ऐसी आश्चर्य उपजानेवाली वात सुनकर किसे ऐसी अपूर्व वस्तुकी चाह न होगी ? और इसीलिए महाराजने मंत्रीकी बातोपर कुछ विचार न किया । उन्होंने उसी समय कुबेरदत्तको बुलवाया और सब बात समझाकर उसे रत्नद्वीप जानेको कहा । बेचारा कुबेरदत्त इस कपट-जालको कुछ न समझ सका । वह राजाज्ञा पाकर घर पर आया और रत्नद्वीप जानेका हाल उससने अपनी विदुषी प्रियासे कहा । सुनते ही प्रियगसुन्दरीके मनमें कुछ खटका पैदा हुआ । उसने कहा—नाथ, जरूर कुछ दाल में काला है । आप ठगे गये हो । किंजल्क पक्षीकी बात बिल्कुल असंभव है । भला, कहीं पक्षियोंका भी ऐसा प्रभाव हुआ है ? तब क्या रत्नद्वीपमें कोई मरता ही न होगा ? बिल्कुल झूठ ! अपने राजा सरल स्वभावके हैं सो जान पड़ता है वे भी किसीके चक्रमें आ गये हैं । मुझे जान पड़ता है, यह कारस्तानी राजमंत्रीकी हुई है । उसका पुत्र कडारपिंग महा व्यभिचारी है । उसने मुझे एक दिन मन्दिर जाते समय देख लिया था । मे उसकी पापभरी दृष्टिको उसी समय पहचान गई थी मैं जितना ही ध्यानसे इस बात पर विचार करती हूँ तो अधिक-अधिक विश्वास होता जाता है कि इस

षड्यंत्रके रचनेसे मंत्री महाशयकी मंशा बहुत बुरी है । उन्होंने अपने पुत्रकी आशा पूरी करनेका और कोई उपाय न पाकर आपको विदेश भेजना चाहा है । इसलिए अब आप यह करे कि यहॉसे तो आप रवाना हो जायॅ, जिससे कि किसीको सन्देह न हो और रात होते ही जहाजको आगे जाने देकर आप वापिस लौट आइये । फिर देखिये कि क्या गुल खिलता है । यदि मेरा अनुमान ठीक निकले तब तो फिर आपके जाने की कोई आवश्यकता नहीं और नहीं तो दश-पन्द्रह दिन बाद चले जाइयेगा ।

प्रियंसुन्दरीकी बुद्धिमानी देखकर कुबेरदत्त बहुत खुश हुअ । उसने उसके कहे अनुसार ही किया । जहाज रवाना हो गया । जब रात हुई तब कुबेरदत्त चुपचाप घर आकर छुप रहा । सच है, कभी-कभी दुर्जनोकी सगतिसे सत्पुरुषोको भी वैसा ही हो जाना पड़ता है ।

जब यह खबर कडारपिंगके कानोमे पहुॅची कि कुबेरदत्त रतनद्वीपके लिए रवाना हो गया तो उसकी प्रसन्नताका कुछ ठिकाना न रहा । वह जिस दिनके लिए तरस रहा था, बेचैन हो रहा था वही दिन उसके लिए जब उपस्थित हो गया वह क्यों न प्रसन्न होगा ? प्रियगुसुन्दरीके रूपका भूखा और कामसे उन्मत्त वह पापी कडारपिंग बड़ी आशा और उत्सुकतासे कुबेरदत्तके घर पर आया । प्रियंगुसुन्दरीने इसके पहले ही उसके स्वागतकी तैयारीके लिए पाखाना जानेके कमरेको साफ-सुथरा करवाकर और उसमे बिना निवारका पलग बिछवाकर उस पर एक चादर डलवा दी थी । जैसे ही मन्द-मन्द मुस्काते हुए कुॅवर कडारपिंग आये, उन्हे प्रियंगुसुन्दरी उस कमरेमे लिवा ले गई और पलंगपर बैठनेका उनसे इशारा किया । कडारपिंग प्रियंगुसुन्दरीको अपना इस प्रकार स्वागत करते देखकर, जिसका कि उसे स्वप्नमे भी खयाल नहीं था, फूलकर कुप्पा हो गया । वह समझने लगा, स्वर्ग अब थोडा ही ऊॅचा रह गया है । पर उसे यह विचार भी न हुआ कि पापका फल बहुत बुरा होता है । खुशी में आकर प्रियंगुसुन्दरीके इशारेके साथ ही जैसे ही पलगपर बैठा कि धड़ामसे नीचे आ गिरा । जब वहॉकी भीषण दुर्गन्धिने उसकी नाकमे प्रवेश किया तब उसे भान हुआ कि मैं कैसे अच्छे स्थान पर आया हूॅ । वह अपनी करनी पर बहुत पछताया, उसने बहुत आर्जू-मिन्नत अपने छुटकारा

पानेके लिए की, पर उसकी इस आजिजी पर ध्यान देना प्रियंगुसुन्दरीको न भाया। उउसने पापकर्मका उपयुक्त प्रायश्चित दिये विना छोड़ना उचित न समझा। नारकी जैसे नरकोंमें पड़कर दुःख उठाते हैं, ठीक वैसे ही प राजमंत्रीका पुत्र अपनी सब मान-मर्यादा पर पानी फेरकर अपने किये कर्मों फल आज पाखानेमें पड़ा-पड़ा भोग रहा है। इस तरह कष्ट उठाते-उठाते छह महीने बीत गये। इतने में कुवेरदत्तका जहाज भी रत्नद्वीपसे ल आया। जहाजका आना सुनकर सारे शहरमें इस बातका शोर मच गया सेठ कुवेरदत्त किंजल्क पक्षी ले आये। इधर कुवेरदत्त कडारपिंगको बा निकालकर उसे अनेक प्रकारके पक्षियोंके पाँखोंसे खूब सजाया और का मुँह करके उसे एक विचित्र ही जीव बना दिया। इसके बाद उसने कडारपिंग हाथ-पाँव बाँध कर और उसे एक लोहेके पिंजरेमें बन्दकर राजाके सामने उपस्थित किया। पश्चात् कुवेरदत्तने मुसकुराते हुए यह कहकर, कि देव, आपका मँगाया किंजल्क पक्षी उपस्थित है, यथार्थ हाल राजासे कह दिया सच्चा हाल जानकर राजाको मंत्री पुत्रपर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उ समय उसे गधे पर बैठाकर और सारे शहरमें घुमा-फिराकर उसके म डालनेकी आज्ञा दे दी। वही किया भी गया। कडारपिंगको अपनी करनी फल मिल गया। वह बड़े खोटे परिणामोंसे मर कर नरक गया। सच परस्त्रीआसक्त पुरुषकी नियमसे दुर्गति होती है। इसके विपरीत जो भव्य-पु जिनभगवान्के उपदेश किये और सुखोंके देनेवाले शीलव्रतके पालनेका स यत्न करते हैं, वे पद-पद आदर-सत्कारके पात्र होते हैं। इसलिए उ पुरुषोंको सदा परस्त्री-त्यागव्रत ग्रहण किये रहना चाहिये।

भगवान् उपदेश किये हुए, देवों द्वारा प्रशंसित और स्वर्गमोक्षका सु देनेवाले पवित्र शीव्रतका जो मन, वचन, कायकी पवित्रताके साथ पालन करते वे स्वर्गोंका सुख भोगकर अन्तमें मोक्षके अनुपम सुखको प्राप्त करते हैं।

---

३०. देवरतिराजाकी कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है, उन जग पवित्र जिनभगवान्को नमस्कार कर देवरति नामक राजाका उपाख्यान लिखा जाता है, जो अयोध्याके स्वामी थे ।

अयोध्या नगरीके राजा देवरति थे । उनकी रानीका नाम रक्ता था । वह बहुत सुन्दरी थी राजा सदा उसीके नादमे लगे रहते थे । वे बड़े विषयी थे । शत्रु बाहरसे आकर राज्यपर आक्रमण करते, उसकी भी उन्हे कुछ परवाह नहीं थी । राज्यकी क्या दशा है, इसकी उन्होने कभी चिन्ता नहीं की । जो धर्म और अर्थ पुरुषार्थको छोड़कर अनीतिसे केवल कामका सेवन करते हैं, सदा विषयवासनाके ही दास बने रहते हैं, वे नियममे कष्टोंको उठाते हैं । देवरतिकी भी यही दशा हुई । राज्यकी ओरसे उनकी यह उदासीनता मत्रियोको बहुत बुरी लगी । उन्होने राजकामके सम्हालनेकी राजासे प्रार्थना की, पर उसका फल कुछ नहीं हुआ । यह देख मंत्रियोंने विचारकर देवरतिके पुत्र ? जयसेनको तो अपना राजा नियुक्त किया और देवरतिको उनकी रानीके साथ देश बाहर कर दिया । ऐसे काम को धिक्कार है, जिससे मान-मर्यादा धूलमे मिल जाय और अपनेको कष्ट सहना पड़े ।

देवरति अयोध्यासे निकल कर एक भयानक वनमें आये । रानीको भूख ने सताया, पास खानेको एक अन्नका कण तक नहीं । अब वे क्या करें ? इधर जैसे-जैसे समय बीतने लगा, रानी भूखसे बेचैन होने लगी । रानीकी दशा देवरतिसे नहीं देखी गई । और देख भी वे कैसे सकते थे । उसीके लिए तो अपना राजपाट तक उन्होंने छोड़ दिया था । आखिर उन्हे एक उपाय सूझा । उन्होने उसी समय अपनी जॉघ काटकर उसका मांस पकाया और रानीको खिलाकर उसकी भूख शान्त की । और प्यास मिटानेके लिए उन्होने अपनी भुजाओ का खून निकाला और उसे एक औषधि बता कर पिलाया । इसके बाद वे धीरे-धीरे यमुनाके किनारे पर आ पहुँचे । देवरतिने रानीको तो एक झाड़के नीचे बैठाया और भोजनसामग्री लेनेको पासके एक गॉवमें गये ।

यहॉ एक छोटा-सा पर बहुत ही सुन्दर बगीचा था । उससे एक कोई अपग मनुष्य चडस खींचता हुआ और गा रहा था । उसकी आवाज बडी

मधुर थी । इसलिए उसका गाना बहुत मनोहारी और सुननेवालोंको प्रिय लगता था । उसके गानेकी मधुर आवाज रक्तारानीके भी कानोसे टकराई । न जाने उसमें ऐसी कौन-सी मोहक-शक्ति थी, जो रानीको उसने उसी समय मोह लिया और ऐसा मोहा कि उसे अपने निजत्वसे भी भुला दिया । रानी सब लाज-शरम छोड़कर उस अपंगके पास गई और उससे अपनी पाप-वासना उसने प्रगट की । वह अपग कोई ऐसा सुन्दर न था, पर रानी तो उस पर जी जानसे न्यौछावर हो गई । सच है, "काम ने देखे जात कुजात । राजरानीकी पाप-वासना सुनकर वह घबराकर रानीसे बोला-मैं एक भिखारी और आप राजरानी तब मेरी आपकी जोड़ी कहाँ ? और मुझे आपके साथ देखकर क्या राजा साहब जीता छोड देगे ? मुझे आपके शूरवीर और तेजस्वी प्रियतमकी सूरत देखकर कँपनी छूटती है । आप मुझे क्षमा कीजिये । उत्तरमें रानी महाशयाने कहा—इसकी तुम चिन्ता न करो । मैं उन्हें तो अभी ही परलोक पहुँचाये देती हूँ । सच है, दुराचारिणी स्त्रियाँ क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालतीं । ये तो इधर बातें कर रहे थे कि राजा भी इतनेमें भोजन लेकर आ गये । उन्हें दूरसे देखते ही कुलटा रानीने मायाचारसे रोना आरम्भ किया । राजा उसकी यह दशा देखकर आश्चर्यमें आ गये । हाथके भोजनको एक ओर पटककर वे रानीके पास दौड़े आकर बोले—प्रिये, प्रिये, कहो ! जल्दी कहो !! क्या हुआ ? क्या किसीने तुम्हें कुछ कष्ट पहुँचाया ? तुम क्यों रो रही हो ? तुम्हारा आज अकस्मात् रोना देखकर मेरा सब धैर्य छूटा जाता है । बतलाओ, अपने रोनेका कारण, जल्दी बतलाओ ? रानी एक लम्बी आह भरकर बोली—प्राणनाथ, आपके रहते मुझे कौन कष्ट पहुँचा सकता है ? परन्तु मुझे किसीके कष्ट पहुँचानेसे भी जितना दुःख नहीं होता उससे कही बढ़कर आज अपनी इस दशाका दुःख है । नाथ, आप जानते हैं आज आपको जन्मगाँठका दिन है । पर अत्यन्त दुःख है कि पापी दैवने आज मुझे इस भिखारिणीकी दशामे पहुँचा दिया । मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं । बतलाइए, मैं आज ऐसे उत्सवके दिन आपको जन्मगाँठका क्या उत्सव मनाऊँ ? सच है नाथ, बिना पुण्यके जीवोंको अथाहशोक-सागरमें डूब जाना पड़ता है । रानीकी प्रेम-भरी बातें सुनकर राजाका गला भर आया, आँखोसे आँसू टपक

पड़े । उन्होंने बड़े प्रेमसे रानीके मुँहको चूमकर कहा—प्रिये, इसके लिये कोई चिन्ता की बात नहीं । कभी वह दिन भी आयगा जिस दिन तुम अपनी कामनाओको पूरी कर सकोगी । ओर न भी आये तो क्या ? जबकि तुम जैसी भाग्यशालिनी जिसकी प्रिया है उसे इस बातकी कुछ परवा भी नहीं है । जिसने अपनी प्रियाकी सेवाके लिए अपना राजपाट तक तुच्छ समझा उसे ऐसी-ऐसी छोटी बातोंका दु.ख नहीं होता । उसे यदि दु.ख होता है तो अपनी प्यारीको दुःखी देखकर ! प्रिये, इस शोकको छोड़ो । मेरे लिए तो तुम ही सब कुछ हो । हाय ! ऐसे निष्कपट प्रेमका बदला जान लेकर दिया जायगा, इस बात की खबर या सम्भावना बेचारे रतिदेवको स्वप्न मे भी नहीं थी । देवकी विचित्र गति है ।

राजाके इस हार्दिक और सच्चे प्रेमका पापिनी रानीके पत्थरके हृदयपर जारा भी असर न हुआ । वह ऊपरसे प्रेम बताकर बोली—अस्तु, नाथ, जो बात हो ही नहीं सकती उसके लिए पछताना तो व्यर्थ ही है । पर तब भी मैं अपने चित्तको सन्तोषित करनेको इस पवित्र फूलकी माला द्वारा नाम मात्रके ही लिए कुछ करती हूँ । यह कहकर रानीने अपने हाथमे जो फूल गूँथनेकी रस्सी थी, उससे राजाको बॉध दिया । बेचारा वह तब भी यही समझा कि रानी कोई जन्मगॉठकी विधि करती होगी और यही समझ उसने खूब मजबूत बॉध जाने पर भी चूँ तक नहीं किया । जब राजा बॉध दिया गया और उसके प्राण निकलनेका कोई भय नहीं रहा तब रानीने इशारेसे उस अपगको बुलाया और उसकी सहायतासे पास ही बहनेवाली यमुना नदीके किनारे पर ले जाकर बडे ऊँचेसे राजाको नदीमें ढकेल दिया और आप अब अपने दूसरे प्रियतमके पास रहकर अपनी नीच मनोवृत्तियोको सन्तुष्ट करने लगी । नीचता और कुलटापन की हद हो गई ।

पुण्यका जब उदय होता है तब कोई कितना ही कष्ट क्यो न दे या कैसी ही भयकर आपत्तिका क्यों न सामना करना पडे । पर तब भी वह रक्षा पा जाता है । देवरतिके भी कोई ऐसा पुण्ययोग था, जिससे रानीके नदीमें डाल देनेपर भी वह बच गया । कोई गहरी चोट उसके नहीं आई । वह नदीसे निकलकर आगे बढ़ा । धीरे-धीरे वह मगलपुर नामक शहरके निकट आ पहुँचा

देवरति कई दिनों तक बराबर चलते रहनेसे बहुत थक गया था, उसे बीच कोई अच्छी जगह विश्राम करनेको नहीं मिली थी, इसलिए अपनी थकाव मिटानेके लिए वह एक छायादार वृक्षके नीचे सो गया। मानो जैसे वह सु देनेवाले जैनधर्मकी छत्रछायामें ही सोया हो।

मगलपुरका राजा श्रीवर्धन था। उसके कोई सन्तान न थी। इ समय उसकी मृत्यु हो गई मंत्रियोंने यह विचार कर, कि पट्टहाथीको ए जलभरा घड़ा दिया जाकर वह छोड़ा जाया और वह जिसका अभिषेक क वही अपना राजा हो, एक हाथीको छोड़ा। दैवकी विचित्र लीला है, जो रा है, उसे वह रंक वना देता है और जो रंक है, उसे संसारका चक्रवर्ती सम्रा बना देता है। देवरतिका देव जव उसके विपरीत हुआ तव तो उसे उस पथ-पथका भिखारी वनाया, और अनुकूल होनेपर पीछे सव राज-योग मिल दिया। देवरति भरनींदमें झाड़के नीचे सो रहा था। हाथी उधर ही पहुँचा औ देवरतिका उसने अभिषेक कर दिया। देवरति वड़े आनन्द-उत्साहके सा शहरमें लाया जाकर राज्यसिहासनपर बैठाया गया। सच है, पुण्य जब पल्ले होता है तव आपत्तियाँ भी सुखके रूपमे परिणत हो जाती हैं। इसलि सुखकी चाह करनेवालोंको भगवान्के उपदेश किये हुए मार्ग द्वारा पुण्य-क करना चाहिए। भगवान्की पूजा, पात्रोंकोदान, व्रत, उपवास ये सव पुण्य-क हैं। इन्हें सदा करते रहना चाहिए।

देवरति फिर राजा हो गये। पर पहले और अवके राजापनमें बहु फर्क है। अव वे स्वयं सब राज-काज देखा करते हैं। पहलेसे अब उनक परिणतिमें भी वहुत भेद पड़ गया हैं। जो बाते पहले उन्हें बहुत प्यारी थ और जिनके लिए उन्होंने राज्य-भ्रष्ट होना तक स्वीकार कर लिया था, अव बातें उन्हें अत्यन्त अप्रिय हो उठीं। अब वे स्त्री नामसे घृणा करते हैं। वे ए कुल कलकिनीका वदला सारे संसारकी स्त्रियोंको कुल कलंकिनी कहकर ले हैं। वे अव गुणवती स्त्रियोंका भी मुँह देखना पसन्द नहीं करते। सच है, ज एकवार दुर्जनो द्वारा ठगा जाता है वह फिर अच्छे पुरुषोंके साथ भी व्यवहा करने लगता है। गरम दूधका जला हुआ छाछको भी फूँक-फूँककर पीता है देवरतिको भी अव विपरीत गति है। अब वे स्त्रियोंको नहीं चाहते। वे सवक

दान करते हैं, पर जो अपंग, लूला, लॅंगड़ा होता है, उसे वे एक अन्नका कण तक देना पाप समझते है ।

इधर रक्तारानीने बहुत दिनों तक तो यही रहकर मजामौज मारी और बाद वह उस अपंगको एक टोकरेमें रखकर देश-विदेश घूमने लगी । उस टोकरे को सिरपर रखे हुए वह जहॉं पहुॅंचती अपनेको महासती जाहिर करती और कहती कि माता-पिताने ज़िसके हाथ मुझे सौंपा वही मेरा प्राणनाथ है, देवता है । उसकी इस ठगाईसे बेचारे लोग ठगे जाकर उसे खूब रुपया पैसा देते । इसी तरह भिक्षा-वृत्ति करती-करती रक्तारानी मंगलपुरमे आ निकली । वहॉं भी लोगोंकी उसे सतीत्व बड़ी श्रद्धा हो गई । हॉं सच है, जिन स्त्रियोंने ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सरीखे देवताओंको भी ठग लिया, तब साधारण लोग उनके जालमें फॅंस जाये इसका आश्चर्य क्या ?

एक दिन ये दोनो गाते राजमहलके सामने आये । इनके सुन्दर गानेको सुनकर ड्यौढ़ीवानने राजासे प्रार्थना की—महाराज, सिहद्वार पर एक सती अपने अपंग पतिको टोकरेमें रखकर और उसे सिरपर उठाये खड़ी है । वे दोनों बड़ा ही सुन्दर गाना जानते हैं । महाराजका वे दर्शन करना चाहते हैं । आज्ञा हो तो मैं उन्हें भीतर आने दूॅं । इसके साथ ही सभामे बैठे हुए और प्रतिष्ठित कर्मचारियोंने भी उनके देखनेकी इच्छा जाहिर की । राजाने एक परदा डलवा कर उन्हें बुलवानेकी आज्ञा की ।

सती सिरपर टोकरा लिए भीतर आई । उसने कुछ गाया । उसके गानोको सुनकर सब मुग्ध हो गये और उसकी भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे । राजाने उसकी आवाज सुनकर उसे पहिचान लिया । उसने परदा हटवाकर कहा—अहा, सचमुचमे यह महासती है ! इसका सतीत्व मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूॅं । इसके बाद ही उन्होंने अपनी सारी कथा सभामें प्रगट कर दी । लोग सुनकर दॉंतोंतले अॅंगुली दबा गये । उसी समय महासती रक्ताको शहर बाहर करने का हुक्म हुआ । देवरतिको स्त्रियोंका चरित देखकर बड़ा वैराग्य हुआ । उन्होंने अपने पहले पुत्र जयसेनको अयोध्यासे बुलवाया और उसे ही इस राज्यका भी मालिक बनाकर आप श्रीयमधराचार्यके पास जिनदीक्षा ले गये, जो कि अनेक सुखोकी देनेवाली हैं । साधु होकर देवरतिने खूब

तपश्चर्या, बहुतोंको कल्याणका मार्ग बतलाया और अन्त समाधिसे शरीर त्याग कर वे स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंके धारक देव हुए ।

रक्तारानी सरीखी कुलटा स्त्रियोंका घृणित चरित देखकर और संसार, शरीर, भोगादिकोंको इन्द्र-धनुषकी तरह क्षणिक समझकर जिन देवरति राजाने जिनदीक्षा ग्रहण कर मुनिपद स्वीकार किया, वे गुणोंके खजाने मुनिराज मुझे मोक्ष लक्ष्मीका स्वामी बनावें ।

उपसर्गो की घाटियों में तो चारित्र का शुद्ध फूल खिलता है तूफानों से गुजरने पर ही नौका किनारे लगती है उपसर्ग और तूफान कसौटी है चारित्र की ।

मनुष्य ने वस्तु छोड़ दी है, उससे पैदा होने वाले दुःख से उसने अपने को मुक्त कर लिया है ।

त्याग से अनेकों प्रकार के सुख उत्पन्न होते हैं, इसलिए यदि तुम उन्हें अधिक समय तक भोगना चाहते हो तो शीघ्र त्याग करो ।

जो भोग पुर्नजन्म के चक्र को बन्द करना चाहते हैं, उनके लिए यह शरीर भी अनावश्यक है । फिर भला अन्य बन्धन कितने अनावश्यक न होंगे?

३१. गोपवतीकी कथा

ससार द्वारा वन्दना, स्तुति किये गये और सब सुखोको देनेवाले जिनभगवान्को नमस्कारकर गोपवतीकी कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर हृदयमे वैराग्य भावना जगती है ।

पलासगॉवमे सिहबल नामका एक साधारण गृहस्थ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम गोपवती था । गोपवती बड़े दुष्ट स्वभाव की स्त्री थी । उसकी दिन-रातकी खटपटसे बेचारा सिहबल तबाह हो गया । उसे पलभरके लिए भी गोपवतीके द्वारा कभी सुख नहीं मिला ।

गोपवतीसे तग आकर एक दिन सिहबल पास हीके एक पद्मिनीखेट नामके गॉवमे गया । वहॉ उसने अपनी पहली स्त्रीको बिना कुछ पूछे-ताछे गुप्त रीतिसे सिंहदेव चौधरीकी सुभद्रा नामकी लडकीसे, जो कि बहुत ही खूबसूरत थी । ब्याह कर लिया । किसी तरह यह बात गोपवती को मालूम हो गई । सुनते ही क्रोधके मारे वह आग-बबूला हो गई । उससे सिंहबलका यह अपराध नहीं सहा गया । वह उसे उसके अपराधकी योग्य सजा देनेकी फिराक मे लगी ।

एक दिन शामके कोई सात बजे होगे कि गोपवती अपने घरसे निकलकर पद्मिनीखेट गई । उस समय कोई ग्यारह बज गये होगे । गोपवती सीधी सिहसेनके घर पहुॅची । घरके लोगोने समझा कि कोई आवश्यक कामके लिए यहॉ आई होगी, सबेरा होने पर विशेष पूछ-ताछ करेगे । यह विचारकर वे सब सो गये । गोपवती भी तब लोगोंको दिखानेके लिए सो गई । पर जब सबको नींद आ गई, तब आप चुपकेसे उठी और जहॉ अपनी मॉके पास बेचारी सुभद्रा सोई थी, वहॉ पहुॅचकर उस पापिनीने सुभद्राका मस्तक काट लिया और उसे लेकर आप रात हीमे अपने घर पर आ गई । सबेरा होते ही यह हाल सिंहबलको मालूम हुआ । सुभद्राके मुर्दे को देखकर उसे बेहद दु ख हुआ । वह खिन्न मन होकर अपने घर आ गया । उसे आया देखकर गोपवती अब उसका बडा आदर-सत्कार करने लगी । बड़ा स्नेह प्रगट कर उसे भोजन कराने लगी । पर सिहबलके हृदय पर तो सुभद्राके मरण की बडी गहरी चोट

लगी थी, इसलिए उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और वह सदा उदास रहा करता था। और सच भी है, एक महा दुःखीको भोजन वगैरहमें क्या प्रीति होती होगी? सिंहवलकी सुभद्राके लिए वह दशा देख गोपवतीका क्रोध और भी वढ़ गया। एक दिन वेचारा सिंहवल उदास मनसे भोजन कर रहा था। यह देख गोपवतीने क्रोधसे सुभद्राका मस्तक लाकर थालीमें डाल दिया और वोली—हॉ, विना इसके देखे तुझे भोजन अच्छा नहीं लगता था; अव तो अच्छा लगेगा न? सुभद्राके सिरको देखकर सिंहवल कॉप गया। वह 'हाय! यह तो महाराक्षसी है' इस प्रकार जोरसे चिल्लाकर डरके मारे भागने लगा। इतनेमें राक्षसी गोपवती ने पास ही पड़े हुए भालेको उठाकर सिंहवलकी पीठमें इस जोरसे मारा कि वह उसी समय तड़फड़ा कर वहीं पर ढेर हो गया। गोपवतीके ऐसे घृणित चरितको देखकर वुद्धिमानोंको उचित है कि वे दुष्ट स्त्रियों पर कभी विश्वास न लावें।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् संसारमें सर्वश्रेष्ठ कहलावें जो कामरूपी हाथीके मारनेको सिंह हैं, संसारका भय मिटानेवाले हैं, शान्ति, स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले हैं और मोक्षरूपी रमणी-रत्नके स्वामी हैं। वे मुझे भी शान्ति प्रदान करें।

कामना एक बीज है जो प्रत्येक आत्मा को सर्वदा ही अनवरत कभी ना चुकने वाली जन्म मरण की फसल प्रदान करता है।

यदि तुम श्रेष्ठ बनना चाहते हो तो कामना से दूर रहो, क्योंकि कामना एक जाल और निराशामात्र है।

३२. वीरवतीका कथा

ससारके बन्धु, पवित्रता की मूर्ति और मुक्तिका स्वतंत्रताका सुख देनेवाले जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर वीरवतीका उपाख्यान लिखा जाता है, जो सत्पुरुषोके लिए वैराग्यका बढ़ानेवाला है ।

यहीं एक चोर रहता था । इसका नाम था गारक । किसी समय वीरवतीने इसे देखा । वह इसकी सुन्दरतापर मुग्ध हो गई । एक बार दत्त रत्नद्वीपसे धन कमाकर घरकी ओर रवाना हुआ । रास्तेमें इसकी सुसराल पड़ी । इसे अपनी प्रियतमासे मिले बहुत दिन हो गये थे, और यह उससे बहुत प्रेम भी करता था, इसलिए इसने सुसराल होकर घर जाना उचित समझा । यह रास्ते मे एक जंगलमे ठहरा । यहीं एक सहस्रभट नामके चोर ने इसे देखा । यहाँसे चलते समय दत्तके पीछे यह चोर भी विनोदसे हो लिया और साथ-साथ भूमिगृहमे आ पहुँचा ।

सुसरालमे दत्तका बहुत कुछ आदर-सत्कार हुआ । वीरवती भी बड़े प्रेमके साथ इससे मिली । पर उसका चित्त स्वभाव-प्रसन्न न होकर कुछ बनावटको लिए था । उसका मन किसी गहरी चोटसे जर्जरित है, इस बातको चतुर पुरुष उसके चेहरेके रंगढगसे बहुत जल्दी ताड़ सकता था । पर सरल-स्वभावी दत्त इसका रत्तीभर भी पता नहीं पा सका । कारण अपनी स्त्रीके सम्बन्धमे उसे स्वप्नमे भी किसी तरहका सन्देह न था । बात यह थी कि जिस चोरसे वीरवतीकी आशनाई थी, वह आज किसी बड़े भारी अपराधके कारण सूलीपर चढ़ाया जानेवाला था । वीरवतीको उसीका बड़ा रंज था और इसीसे उसका चित्त चल-विचल हो रहा था । रातके समय जब सब घरके लोग सो गये तब वीरवती अकेली उठी और हाथमे एक तलवार लिए वहीं पहुँची जहाँ अपराधी सूली पर चढाये जाते थे । इसे घरसे निकलते समय सहस्रभट चोरने देख लिया । वह यह देखनेके लिए कि इतनी रातमे यह अकेली कहाँ जाती है, उसके पीछे-पीछे हो लिया । वीरवतीको उसके पाँवोकी आवाजसे जान पडा कि उसके पीछे-पीछे कोई आ रहा है, पर रात अन्धेरी होनेसे वह उसे देख न सकी । तब उस दुष्टाने अपने हाथकी तलवारका एक वार पीछेकी ओर

किया । उससे बेचारे सहस्रभटकी अँगुलियाँ कट गईं । तलवारको झटका लगनेसे उसे और दृढ़ विश्वास हो गया कि कोई पीछे अवश्य आ रहा है । वह देखनेके लिए खड़ी हो गई, पर उसे कुछ सफलता प्राप्त न हुई । सहस्रभट कुछ ओर पीछे हट गया । वह फिर आगे बढ़ी । पास ही सूलीका स्थान उसे दिख पड़ा । वह पीछे आनेवालेकी बात भूलकर दौड़ी हुई अपने जारके पास पहुँची । उसे सूली पर चढ़ाये बहुत समय नहीं हुआ था, इसलिए उसकी अभी कुछ साँसेबाकी थीं । वीरवतीको देखते ही उसने कहा—प्रिये, यही मेरी ओर तुम्हारी अन्तिम भेंट है । मैं तुम्हारी ही आशा लगाये अब तक जी रहा हूँ, नहीं तो कभीका मरमिटा होता । अब देर न कर मुझ दुखीको अन्तिम प्रेमालिंगन दे, सुखी करो और आओ, अपने मुखका पान मेरे मुखमें देओ; जिससे मेरा जीवन जिसके लिए अब तक टिका है उस तुमसी सुन्दरीका आलिंगन कर शान्तिसे परमधाम सिधारे । हाय ! इस कामको धिक्कार है, जो मृत्युके मुखमें पड़ा हुआ भी उसे चाहता है ।

वीरवतीने अपने जारको सूलीपरसे उतारनेका कोई उपाय तत्काल न देखकर पासमें पड़े हुए कुछ मुर्दोको इकट्ठा किया और उन्हें ऊपर तले रखकर वह उनपर चढ़ी और अपना मुँह उसके मुँहके पास ले जाकर बोली—प्रियतम, लो अपनी इच्छा पूरी करो । गारकने वीरवतीके मुँहका पान लेनेके लिए उसके ओठोंको अपने मुँहमें लिया था कि कोई ऐसा धक्का लगा जिससे वीरवतीके पाँव के नीचेका मुर्दोका ढेर खिसक जानेसे वीरवतीनीचे आ गिरी ओर उसके ओठ काट लिया और साथ ही बड़े जोरसे वह रोने लगी । उसी समय अड़ोस-पड़ोस और घरके लोगोंने आकर दत्तको बाँध लिया । सच है, पापिनी, कुलटा और अपने वंशका नाश करनेवाली स्त्रियाँ क्या नीच कर्म नहीं कर सकतीं ?

सबेरा हुआ । दत्त राजाके सामने उपस्थित किया गया । उसका क्या अपराध है और वह सच है या झूठ, इसकी कुछ विशेष तलाश न की जाकर एकदम उसके मारनेका हुक्म दिया गया । पर यह सबको ध्यानमें रखना चाहिए कि जब पुण्यका उदय होता है तब मृत्युके समय भी रक्षा हो जाती है । पाठकों विनोदी सहस्रभटकी याद होगी । वह वीरवतीके अन्तिम कुकर्म

तक उसके आगे पीछे उपस्थित हो रहा है । उसने सच्ची घटना अपनी ऑखोंसे देखी है । वह इस समय यहीं उपस्थित था । राजाका दत्तके लिए मारनेका हुक्म सुनकर उससे न रहा गया । उसने अपनी कुछ परवा न कर सब सच्ची घटना राजासे कह सुनाई । राजा सुनकर दंग रह गया । उसने उसी समय अपने पहले हुक्मको रद्दकर निरपराध दत्तको रिहाई दी और वीरवतीको उसके अपराधकी उपयुक्त सजा दी । सच है पुण्यवानोंकी सभी रक्षा करते हैं ।

दुष्ट स्त्रियोंका ऐसा घृणित और कलंकित चरित देखकर सबको उचित है कि वे दुःख देनेवाले विषयोंसे अपनी सदा रक्षा करें ।

वे महात्मा धन्य है, जो भगवान्‌के उपदेश किये हुए पवित्र शीलव्रतसे विभूषित है, कामरूपी क्रूर हाथीको मारनेके लिए सिह हैं, विषयोको जिन्होंने जीत लिया है, ज्ञान, ध्यान, आत्मानुभवमें जो सदा मग्न हैं, विषयभोगोसे निरन्तर उदास हैं, भव्यरूपी कमलोको प्रफुल्लित करनेमें जो सूर्य हैं और ससार समुद्रसे पार करनेमें जो बड़े कर्मवीर खेवटिया हैं, वे सबका कल्याण करें ।

------

* जो व्यक्ति स्त्री के असीम मोह में पड़ा हुआ है, वह अपनी समृद्धिशाली अवस्था में भी लोगों में हास्यपद हो जायेगा और लज्जा से उसे अपना मुँह छिपाना पड़ेगा ।

* जिन लोगों के विचार महत्वपूर्ण कार्यो में रत हैं और जो सौभाग्य - लक्ष्मी के कृपापात्र हैं वे अपनी स्त्री के मोहजाल में फँसने की कुबुद्धि नहीं करते ।

३३. सुरत राजाकी कथा,

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनभगवान्के चरणोंको भक्ति सहित नमस्कार कर सुरत नामके राजाका हाल लिखा जाता है ।

सुरत अयोध्याके राजा थे । इनके पाँचसौ स्त्रियाँ थीं । उनमें पट्टरानीका पद महादेवी सतीको प्राप्त था । राजाका सती पर बहुत प्रेम था । वे रातदिन भोगोंमें ही आसक्त रहा करते थे, उन्हें राज-काजकी कुछ चिन्ता न थी । अन्तःपुरके पहरे पर रहनेवाले सिपाहीसे उन्होंने कह रक्खा था कि जब कोई खास मेरा कार्य हो या कभी कोई साधु-महात्मा यहाँ आवें तो मुझे उनकी सूचना देना । वैसे कभी कुछ कहनेको न आना ।

एक दिन पुण्योदयसे एक महिनाके उपवासे दमदत्त और धर्मरुचि मुनि आहारके लिए राजमहलमें आये । उन्हें देखकर द्वारपाल राजाके पास गया और नमस्कार कर उसने मुनियोंके आनेका हाल उनसे कहा । राजा इस समय अपनी प्राणप्रिया सतीके मुख-कमल पर तिलक रचना कर रहे थे । वे सतीसे बोले—प्रिये, जब तक कि तुम्हारा तिलक न सूखे, मैं अभी मुनिराजोंको आहार देकर बहुत जल्दी आया जाता हूँ । यह कहकर राजा चले आये । उन्होंने मुनिराजोंको भक्तिपूर्वक ऊँचे आसनपर बैठाकर नवधा भक्ति-सहित पवित्र आहार कराया, जो कि उत्तम सुखोंका देनेवाला है । सच है, दान, पूजा, व्रत, उपवासादिसे ही श्रावकोंकी शोभा है और जो इनसे रहित हैं वे फलरहित वृक्षकी तरह निरर्थक समझे जाते हैं । इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे पात्रदान, जिनपूजा, व्रत उपवासादिक सदा अपनी शक्तिके अनुसार करते रहें ।

इधर तो राजाने मुनियोंको दान देकर पुण्य उत्पन्न किया ओर उधर उनकी प्राणप्रिया अपने विषय सुखके अन्तराय करनेवाले मुनियोंका आना सुनकर बडी दुखी हुई । उसने अपना भला-बुरा कुछ न सोचकर मुनियोंकी निन्दा करना शुरू किया और खूब ही मनमानी उन्हे गालियाँ दीं । सन्तोंका यह कहना व्यर्थ नहीं है कि—“इस हाथ दे, उस हाथ ले” । सतीके लिए यह नीति चरितार्थ हुई । अपने बाँधे तीव्र पापकर्मोका फल उसे उसी समय मिल गया । रानीके कोढ़ निकल आया । सारा शरीर काला पड गया । उससे

दुर्गन्ध निकलने लगी । आचार्य कहते है—हलाहल विष खा लेना अच्छा है, जो एक ही जन्ममे कष्ट देता है, पर जन्म-जन्ममे दु:ख देनेवाली मुनि-निन्दा करना कभी अच्छा नहीं । क्योकि सन्त-महात्मा तो व्रत, उपवास, शील आदिसे भूषित होते हैं ओर सच्चे आत्महितका मार्ग बतानेवाले हैं; वे निन्दा करने योग्य कैसे हो ? और ये ही गुरु अज्ञानान्धकारको नष्ट करते हैं इसलिए दीपक हैं, सबका हित करते हैं, इसलिए बन्धु हैं, ओर ससाररूपी समुद्रसे पार कराते हैं, इसलिए कर्मशील खेवटिया हैं । अत: हर प्रयत्न द्वारा इनकी आराधना, सेवा शुश्रुषा करते रहना चाहिये ।

जब राजा मुनिराजोको आहार देकर निवृत्त हुए तब पीछे वे अपनी प्रियाके पास आ गये । आते ही जैसे उन्होने रानीका काला और दुर्गन्धमय शरीर देखा वे बड़े अचंभेमे पड गये । पूछने पर उन्हे उसका कारण मालूम हुआ । सुनकर वे बहुत खिन्न हुए । ससार, शरीर, भोग उन्हें अब अप्रिय जान पड़ने लगे । उन्हे अपनी रानीका मुनि-निन्दारूप घृणित कर्म देखकर बड़ा वैराग्य हुआ । वे उसी समय सब राज-पाट छोड़कर योगी बन गये और अपना तथा संसारका हित करनेमे उद्यमी बने ।

समय पाकर सतीकी मृत्यु हुई । अपने पापके फलसे वह ससाररूपी वनमे घूमने लगी । सो ठीक ही है, अपने किये पुण्य या पापका फल जीवो को भोगना ही पड़ता है । इस प्रकार ससारकी विचित्र स्थिति जानकर आत्महितके चाहनेवाले सत्पुरुषोको भगवान्के उपदेश किये पवित्र धर्मपर सदा विश्वास रखना चाहिए, जो कि स्वर्ग और मोक्षके सुखका प्रधान कारण है ।

----

* हम अतिथि-सेवा के माहात्म्य का वर्णन नहीं कर सकते कि उसमें कितना पुण्य है । क्योंकि अतिथि-सेवा का महत्त्व तो अतिथि की योग्यता पर निर्भर है ।

३४. विषयोंमें फँसे हुए संसारी जीवकी कथा

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कारकर संक्षेपसे संसारी जीवकी दशा दिखलाई जाती है, जो बहुत ही भयावनी है ।

कभी कोई मनुष्य एक भयंकर वनमे जा पहुँचा । वहॉ वह एक विकराल सिंहको देखकर डरके मारे भागा । भागते-भागते अचानक वह एक गहरे कुँएमें गिरा । गिरते हुए उसके हाथोंमें एक वृक्षकी जड़ें पड़ गई । उन्हें पकड़ कर वह लटक गया । वृक्ष पर शहदका एक छत्ता जमा था । सो इस मनुष्यके पीछे भागे आते हुए सिंहके धक्केसे वृक्ष हिल गया । वृक्षके हिल जानेसे मधुमक्खियॉ उड़ गई और छत्तेसे शहदकी बूँदें टप-टप टपककर उस मनुष्यके मुहँमें गिरने लगीं । इधर कुँएमें चार भयानक सर्प थे, सो वे उसे डसनेके लिए मुँह बाये हुए फुँकार करने लगे और जिन जड़ोंको यह अभागा मनुष्य पकड़े हुए था, उन्हें एक काला और एक धोला ऐसे दो चूहे काट रहे थे । इस प्रकारके भयानक कष्टमें वह फँसा था, फिर भी उससे छुटकारा पानेका कुछ यत्न न कर वह मूर्ख स्वादकी लोलुपतासे उन शहदकी बूँदोंके लोभको नहीं रोक सका, और उलटा अधिक-अधिक उनकी इच्छा करने लगा । इसी समय जाता हुआ कोई विद्याधर उस ओर आ निकला । उस मनुष्यकी ऐसी कष्टमय दशा देखकर उसे बड़ी दया आई विद्याधरने उससे कहा—भाई, आओ और इस वायुयानमें बैठो । मैं तुम्हें निकाले लेता हूँ । इसके उत्तरमें उस अभागे ने कहा—हाँ, जरा आप ठहरें, यह शहदकी बूँद गिर रही है, मैं इसे लेकर ही निकलता हूँ । वह बूँद गिर गई । विद्याधरने फिर उससे आनेको कहा । तब भी इसने वही उत्तर दिया कि हॉ यह बूँद आई जाती है, में अभी आया । गर्ज यह कि विद्याधर ने उसे बहुत समझाया, पर वह “हॉ इस गिरती हुई बूँदको लेकर आता हूँ,” इसी आशामें फँसा रहा । लाचार होकर बेचारे विद्याधरको लौट जाना पड़ा । सच है, विषयों द्वारा ठगे गये जीवोंकी अपने हितकी ओर कभी प्रीति नहीं होती ।

जैसे उस मनुष्यको उपकारी विद्याधरने कुँएसे निकालना चाहा, पर वह शहदकी लोलुपतासे अपने हितको नहीं जान सका, ठीक इसी तरह

विषयोंमे फॅसा हुआ जीव संसाररूप कुॅएमें कालरूपी सिंह द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट पा रहा है, उसकी वायुरूपी डालीको दिनरात रूपी दो धोले ओर काले चूहे काट रहे हैं, कुॅएके चार सर्परूपी चार गतियॉ इसे डसने के लिए मुॅह बाये खड़ी हैं और गुरु इसे हितका उपदेश दे रहे हैं; तब भी यह अपना हित न कर शहदकी बूॅदरूपी विषयोमे लुब्ध हो रहा है ओर उनकी ही अधिक-अधिक इच्छा करता जाता है । सच तो यह है कि अभी इसे दुर्गतियोका दु·ख बहुत भोगना है । इसीलिए सच्चे मार्गकी ओर इसकी दृष्टि नहीं जाती ।

इस प्रकार यह संसार रूपी भयंकर समुद्र अत्यन्त दुःखोका देनेवाला है और विषयभोग विष मिले भोजन या दुर्जनोंके समान कष्ट देनवाले हैं । इस प्रकार ससारकी स्थिति देखकर बुद्धिमानोको जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश किये हुए पवित्र धर्मको, जो कि अविनाशी, अनन्तसुखका देनेवाला है, स्थिर भावोके साथ हृदयमें धारण करना उचित है ।

------

* समय, देखने में भोला-भाला और निर्दोष मालूम होता है, परन्तु वास्तव में वह एक आरा है जो मनुष्य के जीवन को बराबर काट रहा है ।

* कल तो एक आदमी विद्यमान था और आज वह नहीं है संसार में यही बड़े अचरज की बात है ।

३५. चारुदत्त सेठकी कथा

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणकमलोंको नमस्कार कर चारुदत्त सेठकी कथा लिखी जाती है ।

जिस समयकी यह कथा है, तब चम्पापुरीका राजा शूरसेन था । राजा बड़ा बुद्धिमान् और प्रजाहितैषी था । उसके नीतिमय शासनको सारी प्रजा एक स्वरसे प्रशंसा करती थी । यहीं एक इज्जतदार भानुदत्त सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था । सुभद्राके कोई सन्तान नहीं हुई, इसलिए वह सन्तान प्राप्तिकी इच्छासे नाना प्रकारके देवी-देवताओंकी पूजा किया करती थी, अनेक प्रकारकी मान्यताएँ लिया करती थी; परन्तु तब भी उसका मनोरथ नहीं फला । सच तो है, कहीं कुदेवोंकी पूजा-स्तुतिसे कभी कार्य सिद्ध हुआ है क्या ? एक दिन जब वह भगवान्‌के दर्शन करनेको मन्दिर गई तब वहाँ उसने एक चारण मुनि देखे । उन्हें नमस्कार कर उसने पूछा—प्रभो, क्या मेरा मनोरथ भी कभी पूर्ण होगा ? मुनिराज उसके हृदयके भावोंको जानकर बोले—पुत्री, इस समय तू जिस इच्छासे दिनरात कुदेवोंकी पूजा-मानता किया करती है, वह ठीक नहीं है । उससे लाभकी जगह उलटी हानि हो रही है । तू इस प्रकारकी पूजा मानता द्वारा अपने सम्यक्त्वको नष्ट मत कर । तू विश्वास कर कि संसारमें अपने पुण्य-पापके सिवा और कोई देवी-देवता किसीको कुछ देने-लेनेमें समर्थ नहीं । अब तक तेरे पापका उदय था, इसलिए तेरी इच्छा पूरी न हो सकी । पर अब तेरे महान् पुण्यकर्मका उदय आवेगा, जिससे तुझे एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी । तू इसके लिए पुण्यके कारण पवित्र धर्मपर विश्वास कर ।

मुनिराज द्वारा अपना भविष्य सुनकर सुभद्राको बहुत खुशी हुई । वह उन्हें नमस्कार कर घर चली गई । अबसे उसने सब कुदेवोंकी पूजा-मानता करना छोड दिया । वह अब जिन भगवान्‌के पवित्र धर्मपर विश्वास कर दान, पूजा, व्रत वगैरह करने लगी । इस दशामें दिन बड़े सुखके साथ कटने लगे । इसी तरह कुछ दिन बीतने पर मुनिराजके कहे अनुसार उसके पुत्र हुआ । उसका नाम चारुदत्त रक्खा गया । वह जैसा-जैसा बड़ा होता गया, साथमें

उत्तम-उत्तम गुण भी उसे अपना स्थान बनाते गये । सच है, पुण्यवानोको अच्छी-अच्छी सब बाते अपने आप प्राप्त होती चली आती हैं ।

चारुदत्त बचपनही से पढने-लिखनेमे अधिक योग्य दिखा करता था । यही कारण था कि उसे चौबीस-पच्चीस वर्षका होने पर भी किसी प्रकारकी विषय-वासना छू तक न गई थी । उसे तो दिन-रात अपनी पुस्तकोंसे प्रेम था । उन्हींके अभ्यास, विचार, मनन, चिन्तनमें वह सदा मग्न रहा करता था और इसीसे बालपनसे ही व बहुधा करके विरक्त रहता था । उसकी इच्छा नहीं थी। कि वह ब्याह कर ससारके माया-जालमे अपनेको फॅसावे, पर उसके माता-पिताने उससे ब्याह करनेका बहुत आग्रह किया । उनकी आज्ञाके अनुरोधसे उसे अपने मामाकी गुणवती पुत्री मित्रवतीके साथ ब्याह करना पडा ।

ब्याह हो गया सही, पर तब भी चारुदत्त उसका रहस्य नहीं समझ पाया । और इसीलिए उसने कभी अपनी प्रियाका मुॅह तक नहीं देखा । पुत्रकी युवावस्थामे यह दशा देखकर उसकी मॉको बडी चिन्ता हुई । चारुदत्तकी विषयोकी ओर प्रवृत्ति हो, इसके लिए उसने चारुदत्तको ऐसे लोगोकी सगतिमें डाल दिया, जो व्याभिचारी थे । इससे उसकी मॉका अभिप्राय सफल अवश्य हुआ । चारुदत्त विषयोमे फॅस गया और खूब फॅस गया । पर अब वह वेश्याका ही प्रेमी बन गया । उसने तबसे घरका मुॅह तक नहीं देखा । उसे कोई लगभग बारह वर्ष वेश्याके यहॉ रहते हुए बीत गये । इस अरसे मे उसने अपने घरका सब धन भी गवा दिया । चम्पामें चारुदत्तका घर अच्छे धनिकोकी गिनतीमे था, पर अब वह एक साधारण स्थितिका रुपया आया करता था । पर अब रुपया खुट जानेसे उसकी स्त्रीका गहना चारुदत्तको अव दरिद्र हुआ समझकर एक दिन अपनी लडकीसे कहा—बेटी, अब इसके पास धन नहीं रहा, यह भिखारी हो चुका, इसलिए अब तुझे इसका साथ जल्दी छोड देना चाहिए । अपने लिए दरिद्र मनुष्य किस काम का । वही हुआ भी । वसन्तसेनाने उसे अपने घरसे निकाल बाहर किया । सच है, वेश्याओंकी प्रीति धनके साथ ही रहती है । जिसके पास जब तक पैसा रहता है उससे तभी तक प्रेम करती है । जहॉ धन नहीं वहॉ वेश्याका प्रेम भी नहीं । यह देख चारुदत्तको बहुत दुःख हुआ । अब उसे जान पडा कि विषय-भोगोंमें अत्यन्त

आसक्तिका कैसा भंयकर परिणाम होता है । वह अब एक पलभरके लिए भी वहाँ पर ठहरा और अपनी प्रियाके भूषण ले-लिवाकर विदेश चलता बना । उसे इस हालतमें माताको अपना कलंकित मुँह दिखलाना उचित नहीं जान पड़ा ।

यहाँसे चलकर चारुदत्त धीरे-धीरे उलूख देशके उशिरावर्त नामके शहरमें पहुँचा । चम्पासे जब यह रवाना हुआ तब साथमें इसका मामा भी हो गया था । उशिरावर्तमें इन्होंने कपासकी खरीद की । यहाँसे कपास लेकर ये दोनों तामलिप्ता नामक पुरी की ओर रवाना हुए । रास्तेमें ये एक भयंकर वनोंमें जा पहुँचे । कुछ विश्रामके लिए इन्होंने यहीं डेरा डाल दिया । इतनेमें एक महा आँधी आई । उससे परस्परकी रगड़से बाँसोंमें आग लग उठी । हवा चल ही रही थी, सो आगकी चिनगारियाँ उड़कर इनके कपास पर जा पड़ीं । देखते-देखते वह सब कपास भस्मीभूत हो गया । सच है, बिना पुण्यके कोई काम सिद्ध नहीं हो पाता है । इसलिए पुण्य कमानेके लिए भगवान्के उपदेश किये मार्गपर सबको चलना कर्त्तव्य है । इस हानिसे चारुदत्त बहुत ही दु:खी हो गया । वह यहाँसे किसी दूसरे देश की ओर जानेके लिए अपने मामासे सलाहकर समुद्रदत्त सेठके जहाज द्वारा पवनद्वीपमें पहुँचा । यहाँ इसके भाग्यका सितारा चमका । कुछ वर्ष यहाँ रहकर इसने बहुत धन कमाया । इसकी इच्छा अब देश लौट आनेकी हुई । अपनी माताके दर्शनोंके लिए इसका मन बड़ा अधीर हो उठा । इसने चलनेकी तैयारी कर जहाजमें अपना सब धन-असबाब लाद दिया ।

जहाज अनुकूल समय देख रवाना हुआ । जैसे-जैसे वह अपनी 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमिकी ओर शीघ्र गतिसे बढ़ा हुआ जा रहा था, चारुदत्त को उतनी ही उतनी अधिक प्रसन्नता होती जाती थी । पर यह कोई नहीं जानता कि मनुष्यका चाहा कुछ नहीं होता । होता वही है जो देवको मंजूर होता है । यही कारण हुआ कि चारुदत्तकी इच्छा पूरी न हो पाई और अचानक जहाज किसीसे टकराकर फट पड़ा । चारुदत्तका सब माल-असवाब समुद्रके विशाल उदरकी भेंट चढ़ा । वह पहले सा ही दरिद्र हो गया । पर चारुदत्तको दु:ख उठाते-उठाते बड़ी सहन-शक्ति प्राप्त हो गई थी । एक पर

एक आनेवाले दुःखोंने उसे निराशाके गहर गढ़ेसे निकाल कर पूर्ण आशावादी और कर्त्तव्यशील बना दिया था। इसलिए अबकी बार उसे अपनी हानिका कुछ विशेष दुःख नहीं हुआ। वह फिर धन कमानेके लिए विदेश चल पड़ा। उसने अबकी बार भी बहुत धन कमाया। घर लौटते समय फिर भी उसकी पहलेसी दशा हुई। इतनेमे ही उसके बुरे कर्मोका अन्त न हो गया; किन्तु ऐसी-ऐसी भयंकर घटनाओंका कोई सात बार उसे सामना करना पड़ा। इसने कष्ट पर कष्ट सहा, पर अपने कर्त्तव्यसे यह कभी विमुख नहीं हुआ। अबकी बार जहाजके फट जानेसे यह समुद्रमे गिर पड़ा। इस अपने जीवनका भी सन्देह हो गया था। इतनेमें भाग्यसे बहकर आता हुआ एक लकड़ेका तख्ता इसके हाथ पड़ गया। उसे पाकर इसके जी मे जी आया। किसी तरह यह उसकी सहायतासे समुद्र किनारे आ लगा। यहॉसे चलकर यह राजगृहमें पहुँचा। यहॉ इसे एक विष्णुमित्र नामका सन्यासी मिला। सन्यासीने इसके द्वारा कोई अपना काम निकलता देखकर पहले बड़ी सज्जनताका इसके साथ बरताव किया। चारुदत्तने यह समझकर कि यह कोई भला आदमी है, अपनी सब हालत उससे कह दी। चारुदत्तको धनार्थी समझकर विष्णुमित्र उससे बोला—मैं समझा, तुम धन कमानेको घर बाहर हुए हो। अच्छा हुआ तुमने अपना हाल सुना दिया। पर सिर्फ धनके लिए अब तुम्हें इतना कष्ट न उठाना पड़ेगा। आओ, मेरे साथ आओ, यहॉसे कुछ दूर पर जंगलमेंएक पर्वत है। उसकी तलहटीमे एक कुँआ है। वह रसायनसे भरा हुआ है। उससे सोंना बनाया जाता है। सो तुम उसमेसे कुछ थोडा-सा रस ले आओ। उससे तुम्हारी सब दरिद्रता नष्ट हो जायगी। चारुदत्त संन्यासीके पीछे-पीछे हो लिया। सच है, दुर्जनो द्वारा धनके लोभी कौन-कौन नहीं ठगे गये।

सन्यासी और उसके पीछे-पीछे चारुदत्त ये दोनो एक पर्वतके पास पहुँचे। संन्यासीने रस लानेकी सब बातें समझाकर चारुदत्तके हाथमे एक तूॅबी दी और एक सींके पर उसे बैठाकर कुएमें उतार दिया। चारुदत्त तूॅबीमें रस भरने लगा। इतनेमे वहॉ बैठे हुए एक मनुष्यने उसे रस भरनेसे रोका। चारुदत्त पहले तो डरा, पर जब उस मनुष्यने कहा तुम डरो मत, तब कुछ

सम्हलकर वह बोला—तुम कौन हो, और इस कुएमे कैसे आये ? कुएमें बैठा हुआ मनुष्य बोला, सुनिए, मैं उज्जयिनीमे रहता हूँ। मेरा नाम धनदत्त है। मैं किसी कारणसे सिंहलद्वीप गया था। वहाँसे लौटते समय तूफान पड़कर मेरा जहाज फट गया। धन-जनकी वहुत हानि हुई। मेरे हाथ एक लक्कडका पटिया लग जानेसे अथवा यों कहिए कि दैवकी दयासे मैं बच गया। समुद्रसे निकलकर मैं अपने शहरकी ओर जा रहा था कि रास्तेमे मुझे यही सन्यासी मिला। यह दुष्ट मुझे धोखा देकर यहाँ लाया। मैंने कुएमेसे इसे रस भरकर ला दिया। इस पापीने पहले तूँबी मेरे हाथसे ले ली और फिर आप रस्सी काटकर भाग गया। मैं आकर कुए में गिरा। भाग्यसे चोट तो अधिक न आई, पर दो-तीन दिन इसमें पडे रहनेसे मेरी तबियत बहुत बिगड़ गई और अव मेरे प्राण घट रहे है। उसकी हालत सुनकर चारुदत्तको बड़ी दया आई। पर वह ऐसी जगह मे फँस चुका था, जिससे उसके जिलाने का कुछ यत्न नहीं कर सकता था। चारुदत्तने उससे पूछा—तो मैं इस संन्यासीको रस भरकर न दूँ ? धनदत्तने कहा—नहीं, ऐसा मत करो; रस तो भरकर दे ही दो, अन्यथा यह ऊपरसे पत्थर वगैरह मारकर बड़ा कष्ट पहुँचायेगा। तब चारुदत्तने एक बार तो तूँबीको रससे भरकर सींकेमें रख दिया। संन्यासी ने उसे निकाल लिया। जब चारुदत्तको निकालनेके लिए उसने फिर सींका कुएँमें डाला। अबकी बार चारुदत्तने स्वयं सींके पर न बैठकर बडे-बड़े वजनदार पत्थरोंको उसमे रख दिया। संन्यासी उस पत्थर भरे सींके पर चारुदत्तको बैठा समझकर, जब सींका आधी दूर आया तब उसे काटकर आप चलता बना। चारुदत्तकी जान वच गई। उसने धनदत्तका मुझे जीवनदान दिया और इसके लिए मैं तुम्हारा जन्मजन्म में ऋणी रहूँगा। हाँ और यह तो कहिए कि इससे निकलने का भी कोई उपाय है क्या ? धनदत्त बोला—यहाँ रस पीनेको प्रतिदिन एक गो आया करती है। तव आज तो वह चली गई। कल सबेरे वह फिर आवेगी तुम उसकी पूँछ पकड़कर निकल जाना। इतना कहकर वह वोला—अव मुझसे बोला नहीं जाता। मेरे प्राण वडे संकटमें हैं। चारुदत्तको यह देख वड़ा दुःख हुआ कि वह अपने उपकारीकी कुछ सेवा नहीं कर पाया उससे और तो कुछ नहीं वना, पर इतना तो उसने तब भी किया कि

धनदत्तको पवित्र जिनधर्मका उपदेश देकर, जो कि उत्तम गतिका साधन है, पच नमस्कार मन्त्र सुनाया और साथ ही सन्यास भी लिवा दिया ।

सबेरा हुआ । सदाकी भॉति आज भी गो रस पीनेके लिए आई । रस पीकर जैसे ही वह जाने लगी, चारुदत्तने उसकी पूॅछ पकड ली । उसके सहारे वह बाहर निकल आया । यहॉसे इस जगलको लॉघकर यह एक रुद्रदत्तने चारुदत्तका सब हाल जानकर कहा—तो चलिए अब हम रत्नद्वीपमे चले । वहॉ अपना मनोरथ अवश्य पूरा होगा । धनकी आशासे ये दोनो अब रत्नद्वीप जानेको तैयार हुए । रत्नद्वीप जानेके लिए पहले एक पर्वतपर जाना पड़ता था और पर्वतपर जानेका जो रास्ता था, वह बहुत सॅकरा था । इसलिए पर्वतपर जानेके लिए इन्होंने दो बकरे खरीद लिये और उनपर सवार होकर ये रवाना हो गये । जब ये पर्वतपर कुशलपूर्वक यहॉपर इन दोनो बकरोको मारकर दो चमडेकी थैलियॉ बनानी चाहिए और उन्हे उलटकर उनके भीतर घुस दोनोका मुॅह सी लेना चाहिए । मांसके लोभसे यहॉ सदा ही भेरुण्ड-पक्षी आया करते हैं । सो वे अपनेको उठा ले जाकर उस पार रत्नद्वीप ले जायेगे । वहॉ जब वे हमे खाने लगे तब इन थैलियोको चीरकर हम बाहर हो जायेगे । मनुष्यको देखकर पक्षी उड़ जायेंगे और ऐसा करनेसे बहुत सीधी तरह अपना काम बन जायगा ।

चारुदत्तने रुददत्तकी पापमयी बात सुनकर उसे बहुत फटकारा और वह साफ इन्कार कर गया कि मुझे ऐसे पाप द्वारा प्राप्त किये धनकी जरूरत नहीं । सच है, दयावान् कभी ऐसा अनर्थ नहीं करते । रातको ये दोनों सो गये । चारुदत्तको स्वप्नमे भी ख्याल न था कि रुद्रदत्त सचमुच इतना नीच होगा और इसीलिए वह नि शक होकर सो गया था । जब चारुदत्तको खूब गाढी नींद आ गई तब पापी रुद्रदत्त चुपकेसे उठा और जहॉ बकरे बॅधे थे वहॉ गया । उसने रुद्रदत्तके हाथसे छुरी तो छुडाकर फेकी और उसे खूब ही सुनाई । सच है, कौन ऐसा पाप है, जिसे निद्रयी पुरुष नहीं करते ?

उस अधमरे बकरेको टगर-टगर देखते देखकर दयासे चारुदत्तका हृदय भर आया । उसकी ऑखोसे ऑसुओकी बूॅदे टपकने लगीं । पर वह उसके बचानेका प्रयत्न करनेके लिए लाचार था । इसलिए कि वह प्राय काटा

जा चुका था । उसकी शान्तके साथ मृत्यु होकर वह सुगति लाभ करे, इसके लिए चारुदत्तने इतना अवश्य किया कि उसे पंच नमस्कारमंत्र सुनाकर संन्यास दे दिया । जो धर्मात्मा जिनेन्द्र भगवान्के उपदेशका रहस्य समझनेवाले हैं, उनका जीवन सच पूछो तो केवल परोपकारके लिए ही होता है ।

चारुदत्तने बहुतेरा चाहा कि मैं पीछे लौट जाऊँ, पर वापिस लौटनेका उसके पास कोई उपाय न था । इसलिए अत्यन्त लाचारीकी दशामें उसे भी रुद्रदत्तकी तरह उस थैलीकी शरण लेनी पड़ी । उड़ते हुए भेरुण्ड पक्षी पर्वत पर दो मांस-पिण्ड पड़े देखकर आये और उन दोनोंको चोंचोंसे उठा चलते बने । रास्तेमें उनमें परस्पसर लड़ाई होने लगी । परिणाम यह निकला कि जिस थैलीमें रुद्रदत्त था, वह पक्षीकी चोंचसे छूट पड़ी । रुद्रदत्त समुद्रमें गिरकर मर गया । मरकर वह पापके फलसे कुगतिमें गया । ठीक भी है, पापियोंकी कभी अच्छी गति नहीं होती । चारुदत्तकी थैलीको जो पक्षी लिए था, उसने उसे रत्नद्वीपके एक सुन्दर पर्वतपर ले जाकर रख दिया । इसके बाद पक्षीने उसे चोंचसे चीरना शुरू किया । उसका कुछ भाग चीरते ही उसे चारुदत्त देख पड़ा । पक्षी उसी समय डरकर उड़ भागा । सच है, पुण्यवानोंका कभी-कभी तो दुष्ट भी हित करनेवाले हो जाते हैं । जैसे ही चारुदत्त थैलीके बाहर निकला कि धूप मे मेरू की तरह निश्चल खड़े देखकर चारुदत्त की उनपर बहुत श्रद्धा हो गई । चारुदत्त उनके पास गया और बड़ी भक्तिसे उसने उनके चरणोंमें अपना सिर नवाया । मुनिराजका ध्यान पूरा होते ही उन्होंने चारुदत्तसे कहा—चारुदत्त, क्यों तुम अच्छी तरह तो हो न ? मुनि द्वारा अपना नाम सुनकर चारुदत्तको कुछ सन्तोष तो इसलिए अवश्य हुआ कि एक अत्यन्त अपरिचित देशमें उसे कोई पहचानता भी है, पर इसके साथ ही उसके आश्चर्यका भी कुछ ठिकाना न रहा । वह बड़े विचारमें पड़ गया कि मैंने तो कभी इन्हे कहीं देखा नहीं, फिर इन्होंने ही मुझे कहाँ देखा था ! अस्तु, जो हो, इन्हींसे पूछता हूँ कि ये मुझे कहाँसे जानते हैं । वह मुनिराजसे बोला—प्रभो, मालूम होता है आपने मुझे कहीं देखा है, बतलाइए तो आपको मैं कहाँ मिला था ? मुनि बोले—"सुनो, मैं एक विद्याधर हूँ ! मेरा नाम अमितगति है । एक दिन मैं चम्पापुरीके बगीचेमें अपनी प्रियाके साथ सैर करनेको गया हुआ था ।

इसी समय एक धूमसिंह नामका विद्याधर वहाँ आ गया। मेरी सुन्दर स्त्रीको देखकर उस पापीकी नियम डगमगी। कामसे अन्धे हुए उस पापीने अपनी विद्याके बलसे मुझे एक वृक्षमे कील दिया और मेरी प्यारीको विमानमे बैठाकर मेरे देखते-देखते आकाश मार्गसे चल दिया। उस समय मेरे कोई ऐसा पुण्यकर्मका उदय आया सो तुम उधर आ निकले। तुम्हें दयावान समझकर मैंने तुमसे इशारा करके कहा—वे औषधियाँ रक्खी हैं, उन्हें पीसकर मेरे शरीर पर लेप दीजिए। आपने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर वैसा ही किया। उससे दुष्ट विद्याओका प्रभाव नष्ट हुआ और मैं उन विद्याओंके पंजेसे छूट गया। जैसे गुरुके उपदेशसे जीव, माया, मिथ्याकी कीलसे छूट जाता है। मैं उसी समय दौड़ा हुआ कैलास पर्वतपर पहुँचा और धूमसिंहको उसके कर्मका उचित प्रायश्चित्त देकर उससे अपनी प्रियाको छुड़ा लाया। फिर मैंने आपसे कुछ प्रार्थना की कि आप जो इच्छा हो वह मुझसे माँगे, पर आप मुझसे कुछ भी लेनेके लिए तैयार नहीं हुए। सच तो यह है कि महात्मा लोग दूसरोका भला किसी प्रकारकी आशासे करते ही नहीं। इसके बाद मैं आपसे विदा होकर अपने नगरमें आ गया। मैंने इसके पश्चात् कुछ वर्षोतक और राज्य किया, राज्यश्रीका खूब आनन्द लूटा। बाद आत्मकल्याणकी इच्छा से पुत्रोंको राज्य सौंपकर मैं दीक्षा ले गया, जो कि संसारका भ्रमण मिटानेवाली है। चारणऋद्धिके प्रभावसे मैं यहाँ आकर तपस्या कर रहा हूँ। मेरा तुम्हारे साथ पुराना परिचय है, इसीलिए मैं तुम्हें पहचानता हूँ।" सुनकर चारुदत्त बहुत खुश हुआ। वह जब तक वहाँ बैठा रहा, इसी बीचमे इन मुनिराजके दो पुत्र इनकी पूजा करनेको वहाँ आये। मुनिराजने चारुदत्तका कुछ हाल उन्हें सुनाकर उसका उनसे परिचय कराया। परस्परमें मिलकर इन सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। थोड़े ही समयके परिचयसे इनमे अत्यन्त प्रेम बढ गया।

इसी समय एक बहुत खूबसूरत युवाने यहाँ आया। सबकी दृष्टि उसके दिव्य तेजकी ओर जा-लगी। उस युवाने सबसे पहले चारुदत्तको प्रणाम किया। यह देख चारुदत्तने उसे ऐसा करनेसे रोककर कहा—तुम्हे पहले गुरु महाराजको नमस्कार करना उचित है। आगत युवाने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं बकरा था। पापी रुद्रदत्त जब मेरा आधा गला काट चुका होगा कि

उसी समय मेरे भाग्यसे आपकी नींद खुल गई। आपने आकर मुझे नमस्कार मत्र सुनाया और साथ ही संन्यास दे दिया। मैं शान्ति भावोंसे मरकर मंत्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। इसलिए मेरे गुरु तो आप ही हैं—आप ही ने मुझे सन्मार्ग वतलाया है। इसके वाद सौधर्म-देव धर्म-प्रेमसे वहुत सुन्दर-सुन्दर और मूल्यवान् दिव्य वस्त्राभरण चारुदत्तको भेटकर और उसे नमस्कारकर स्वर्ग चला गया। सच है, जो परोपकारी हैं उनका सव ही वड़ी भक्ति के साथ आदर सत्कार करते हैं।

इधर वे विद्याधर सिहयश और वराहग्रीव मुनिराजको नमस्कार कर चारुदत्तसे बोले—चलिए हम आपको आपकी जन्मभूमि चम्पापुरीमें पहुँचा आवें। इससे चारुदत्तको वडी प्रसन्नता हुई और वह जानेको सहमत हो गया। चारुदत्तने इसके लिए उनसे वड़ी कृतज्ञता प्रगट की। उन्होंने चारुदत्तको उसके सव माल-असवाव सहित वहुत जल्दी विमान द्वारा चम्पापुरीमें ला रक्खा। इसके वाद वे उसे नमस्कारकर और आज्ञा लेकर अपने स्थान लौट गये। सच है, पुण्यसे संसारमें क्या नहीं होता! ओर पुण्यप्राप्तिके लिए जिनभगवान्के द्वारा उपदेश किये दान, पूजा, व्रत शीलरूप चार प्रकार पवित्र धर्मका सदा पालन करते रहना चाहिये।

अचानक अपने प्रिय पुत्रके आजाने से चारुदत्त के माता-पिताको वड़ी खुशी हुई। उन्होंने वारवार उसे छातीसे लगाकर वर्षासे वियोगाग्निसे जलते हुए अपने हृदयको ठडा किया। चारुदत्तकी प्रिया मित्रवतीके नेत्रोंसे दिनरात वहती हुई वियोग-दु खाश्रुओंकी धारा और आज प्रियको देखकर वहनेवाली आनन्दाश्रुओंकी धारा अपूर्व समागम हुआ। उसे जो सुख आज मिला, उसकी समानतामें स्वर्गका दिव्य सुख तुच्छ है। वातकी वातमें चारुदत्तके आनेके समाचार सारी पुरीमें पहुँच गये। और उससे सभीको आनन्द हुआ।

चारुदत्त एक समय बडा धनी था। अपने कुकर्मोंसे वह पथ-पथका भिखारी बना। पर जवसे उसे अपनी दशाका ज्ञान हुआ तवसे उसने केवल कर्त्तव्यको ही अपना लक्ष्य वनाया और फिर कर्मशील वनकर उसने कठिनसे कठिन काम किया। उसमें कई वार उसे असफलता भी प्राप्त हुई, पर वह निराश नहीं हुआ और काम करता ही चला गया। अपने उद्योगसे उसके

भाग्यका सितारा फिर चमक उठा और वह आज पूर्ण तेज प्रकाश कर रहा है। इसके बाद चारुदत्तने बहुत वर्षो तक खूब सुख भोखा और जिनधर्मकी भी भक्तिके साथ उपासना की। अन्तमे उदासीन होकर वह अपनी जगह पर अपने सुन्दर नामके पुत्रको नियुक्त कर आप दीक्षा ले गया। मुनि होकर उसने खूब तप किया और आयुके अन्त मे सन्यास सहित मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग लाभ किया। स्वर्गमे वह सुखके साथ रहता है, अनेक प्रकारके उत्तमसे उत्तम भोगोको भोगता है, सुमेरु और कैलाशपर्वत आदि स्थानोके जिनमन्दिरोकी यात्रा करता है, विदेहक्षेत्रमे जाकर साक्षात् तीर्थकर केवली भगवान्की स्तुति-पूजा करता है और उनका सुख देनेवाला पवित्र धर्मोदेश सुनता है। मतलब यह कि उसका प्रायः समय धर्मसाधन हीमे बीतता है। और इसी जिनभगवान्के उपदेश किये निर्मल धर्मकी इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं, यही धर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है। इसलिए यदि तुम्हें श्रेष्ठ सुखकी चाह है तो तुम भी इसी धर्मका आश्रय लो।

---

* यह मत सोचो कि मैं धीरे धीरे धर्म-मार्ग का अवलम्बन करूंगा, किन्तु अभी बिना विलम्ब किये ही शुभ कर्म करना प्रारम्भ कर दो क्योंकि धर्म ही वह वस्तु है जो मृत्यु के समय तुम्हारा साथ देने वाला अमर मित्र सिद्ध होगा।

* केवल धर्मजनित सुख ही वास्तविक सुख है, शेष सब तो पीड़ा और लज्जा मात्र है।

* ईर्ष्या, लालच, क्रोध, और अप्रिय वचन; इन सबसे दूर रहो, धर्म-प्राप्ति का यही मार्ग है।

३६. पाराशर मुनिकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर अन्यमतोंकी असत्यकल्पनाओंका सत्पुरुषोंको ज्ञान हो, इसलिए उन्हींके शास्त्रोंमें लिखी हुई पाराशर नामक एक तपस्वीकी कथा यहाँ लिखी जाती है ।

हस्तिनापुरमें गंगभट नामका एक धीवर रहा करता था । एक दिन वह पाप-बुद्धि एक बडी भारी मछलीको नदीसे पकड़कर लाया । घर लाकर उस मछलीको जब उसने चीरा तो उसमेंसे एक सुन्दर कन्या निकली । उसके शरीरसे बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी । उस धीवरने उसका नाम सत्यवती रक्खा । वही उसका पालन पोषण भी करने लगा । पर सच पूछो तो यह बात सर्वथा असंभव है । कहीं मछलीसे भी कन्या पैदा हुई है ? खेद है कि लोग आँख वन्द किये ऐसी-ऐसी बातों पर भी अन्धश्रद्धा किये चले आते हैं ।

जब सत्यवती बड़ी हो गई तो एक दिनकी बात है कि गंगभट सत्यवतीको नदी किनारे नाव पर बैठाकर आप किसी कामके लिए घरपर आ गया । इतनेमें रास्तेका थका हुआ एक पाराशर नाम का मुनि, जहाँ सत्यवती नाव लिए बैठी हुई थी, वहाँ आया । वह सत्यवतीसे बोला—लड़की मुझे नदी पार जाना है, तू अपनी नाव पर बैठाकर पार उतार दे तो बहुत अच्छा हो । भोली सत्यवतीने उसका कहा मान लिया और नावमें उसे अच्छी तरह बैठाकर वह नाव खेने लगी । सत्यवती खूबसूरत तो थी ही और इस पर वह अब तेरह चौदह वर्षकी हो चुकी थी; इसलिए उसकी खिलती हुई नई जवानी थी । उसकी मनोहारी मधुर सुन्दरताने तपस्वीके तपको डगमगा दिया । वह काम वासनाका गुलाम हुआ । उसने अपनी पापमयी मनोवृत्तिको सत्यवती पर प्रगट किया । सत्यवती सुनकर लजा गई, और डरी भी । वह बोली—महाराज, आप साधु-सन्त, सदा गंगास्नान करनेवाले और [illegible] तथा दया करनेमें समर्थ और मैं नीच जातिकी लड़की, इस पर भी मेरा शरीर दुर्गन्धमय, फिर मैं आप सरीखोंके योग्य कैसे हो सकती हूँ ? पाराशरको इस भोली लड़कीके निष्कपट हृदयकी बात पर भी कुछ शर्म नहीं आई और कामियोंको शर्म होती भी कहाँ ? उसने सत्यवतीसे कहा—तू इसकी कुछ चिन्ता न कर । मैं

रा शरीर अभी सुगन्धमय बनाये देता हूँ । यह कहकर पाराशरने अपने ैद्याबलसे उसके शरीरको देखते-देखते सुगन्धमय कर दिया । उसके प्रभावको खकर सत्यवतीको राजी हो जाना पड़ा । कामी पाराशरने अपनी वासना ावमे ही मिटाना चाही, तब सत्यवती बोली—आपको इसका खयाल नहीं कि ब लोग देखकर क्या कहेगे ? तब पाराशरने आकाशको धुँधला कर, जेससे कोई देख न सके ,और अपनी इच्छा—इसके बाद उसने नदीके ीचमे ही एक छोटा-सा गॉव बसाया और सत्यवतीके साथ ब्याह कर आप हीं रहने लगा ।

एक दिन पाराशर अपनी वासनाओंकी तृप्ति कर रहा था कि उस मय सत्यवतीके एक व्यास नामका पुत्र हुआ । उसके सिरपर जटाएँ थीं, वह ज्ञोपवीत पहरे हुआ था और उससे उत्पन्न होते ही अपने पिताको नमस्कार केया । पर लोगोंका यह कहना उन्मत्त पुरुषके सरीखा है और न किसी ान-नेत्रवालेकी समझमे ये बातें आवेगी ही । क्योकि वे समझते हैं कि मझदार कभी ऐसी असभव बाते नहीं कहते; किन्तु भक्तिके आवेशमे आकर ातत्त्व पर विश्वास लानेवालोने ऐसा लिख दिया है । इसलिए बुद्धिमानोको चित है कि वे उन विद्वानोंकी संगति करे जो जैनधर्मका रहस्य समझने वाले ं, और जैनधर्मसे ही प्रेम करे और और उसीके शास्त्रोका भक्ति और श्रद्धाके ाथ अध्ययन करे, उनमें अपनी पवित्र बुद्धिको लगावे, इसीसे उन्हे सच्चा ुख प्राप्त होगा ।

------

* जो लोग यह नहीं चाहते कि दूसरे आदमी उन पर हंसे, वे पहले अच्छी तरह से विचार किये बिना कोई काम प्रारम्भ नहीं करते ।

* उद्योगशीलता ही वैभव की माता है, जबकि आलस्य दरिद्रय और दुर्बलता का जनक है ।

३७. सात्यकि और रुद्रकी कथा

केवलज्ञान ही जिनका नेत्र है, ऐसे जिनभगवान्‌को नमस्कार कर शास्त्रोके अनुसार सात्यकि और रुद्रकी कथा लिखी जाती है ।

गन्धार देशमें महेश्वरपुर एक सुन्दर शहर था । उसके राजा सत्यन्धर थे । सत्यन्धरको प्रियाका नाम सत्यवती था । इनके एक पुत्र हुआ उसका नाम सात्यकि था । सात्यकिने राजविद्यामें अच्छा कुशलता प्राप्त की थी और ठीक भी है, राजा बिना राजविद्याके शोभा भी नहीं पाता ।

इस समय सिन्धुदेशको विशाला नगरीका राजा चेटक था । चेटक जैनधर्मका पालक ओर जिनेन्द्र भगवान् सच्चा भक्त था, इसकी रानी का नाम सुभद्रा था । सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और धर्मात्मा थी । इसके सात कन्याएँ थीं । उनके नाम थे—पवित्रा, मृगावती, सुप्रभा, प्रभावती चेलिनी, ज्येष्ठा और चन्दना ।

सम्राट् श्रेणिकने चेटकसे चेलिनीके लिए मॅगनी की थी, पर चेटकने उनकी आयु अधिक देखकर लडकी देनेसे इन्कार कर दिया । इससे श्रेणिकको बहुत बुरा लगा । अपने पिताके दु खका कारण जानकर अभयकुमार उनका एक बहुत ही बढ़िया चित्र बनवा कर विशाला पहुँचा । उसने वह चित्र चेलिनीको बतलाकर उसे श्रेणिक पर मुग्ध कर लिया । पर चेलिनीके पिताको उसका ब्याह श्रेणिकसे करना सम्मत नहीं किया था । इसलिए अभयकुमारने गुप्त मार्गसे चेलिनीको ले जानेका विचार किया । जब चेलिनी उसके साथ जानेको तैयार हुई तब ज्येष्ठाने उससे अपनेको भी ले चलनेके लिए कहा । चेलिनी सहमत तो हो गई, पर उसे उसका चलना इष्ट नहीं था; इसलिए जब ये दोनो बहिने थोड़ी दूर गई होगी कि धूर्त्ता चेलिनीने ज्येष्ठासे कहा— बहिन, मै अपने आभूषण तो सब महल ही में भूल आई हूँ । तू जाकर उन्हे ले आ न ? मैं तब तक यहीं खडी हूँ । बेचारी भोली ज्येष्ठा उसके झाँसेमे आकर चली गई । वह थोड़ी दूर ही पहुँची होगी कि इसने इधर आगेका रास्ता पकडा और जब तक ज्येष्ठा सकेत स्थानपर आती है तब तक यह बहुत दूर आगे बढ़

आई । अपनी बहिनकी इस कुटिलता या धोखेबाजीसे ज्येष्ठाको बेहद दु·ख हुआ । और इसी दु·खके मारे वह यशस्वती आर्यिकाके पास दीक्षा ले गई । ज्येष्ठाकी सगाई सत्यन्धरके पुत्र सात्यकिसे हो चुकी थी । पर जब सात्यकिने उसका दीक्षा ले लेना सुना तो वह भी विरक्त होकर समाधिगुप्त मुनि द्वारा दीक्षा लेकर मुनि बन गया ।

एक दिन यशस्वती, ज्येष्ठा आदि आर्यिकाऍ श्रीवर्द्धमान भगवान्‌की वन्दना करनेको चलीं । वे सब एक वनमें पहुॅचीं होगी कि पानी बरसने लगा, और खूब बरसा । इससे इस आर्यिका सघको बड़ा कष्ट हुआ । कोई किधर और कोई किधर, इस तरह उनका सब सघ तितिर-बितर हो गया । ज्येष्ठा एक कालगुहा नामकी गुफामे पहुॅची । वह उसे एकान्त समझकर शरीरसे भीगे वस्त्रोको उतार कर उन्हे निचोडने लगी । भाग्यसे सात्यकि मुनि भी इसी गुफामे ध्यान कर रहे थे । सो उन्होंने ज्येष्ठा आर्यिकाका खुला शरीर देख लिया । देखते ही विकारभावोसे उनका मन भ्रष्ट हुआ और उन्होंने शीलरूपी मौलिक रत्नको आर्यिकाके शरीररूपी अग्निमे झोक दिया । सच है, कामसे अन्धा बना मनुष्य क्या नहीं कर डालता ।

गुराणी यशस्वती ज्येष्ठाकी चेष्टा वगैरहसे उसकी दशा जान गई । ओर इस भयसे कि धर्मका अपवाद न हो, वह ज्येष्ठा को चेलिनी के पास रख आई । चेलिनीने उसे अपने यहॉ गुप्त रीतिसे रख लिया । सो ठीक ही है, सम्यग्दृष्टि निन्दा आदिसे शासन की सदा रक्षा करते हैं ।

नौ महिने होनेपर ज्येष्ठाके पुत्र हुआ । पर श्रेणिकने इस रूपमे प्रगट किया कि चेलिनीके पुत्र हुआ । ज्येष्ठा उसे वहीं रखकर आप पीछी आर्यिकाके सघमे चली आई और प्रायश्चित्त लेकर तपस्विनी हो गई । इसका लड़का श्रेणिकके यहीं पलने लगा । बडा होने पर वह और लडकोके साथ खेलनेको जाने लगा । पर संगति इसकी अच्छे लडकोको रुद्रता के साथ मारने-पीटने लगा । इसकी शिकायत महारानीके पास आने लगी । महारानीको इस पर बडा गुस्सा आया । उसने इसका ऐसा रौद्र स्वभाव देखकर नाम भी इसका रुद्र रख दिया । सो ठीक ही है जो वृक्ष जडसे ही खराब होता है तब उसके

फलोंमें मीठापन आ भी कहाँसे सकता है । इसी तरह रुद्रसे एक दिन और कोई अपराध बन पड़ा । सो चलिनीने अधिक गुस्सेमें आकर यह कह डाला कि किसने तो इस दुष्टको जना और किसे यह कष्ट देता है । चेलिनीके मुँहसे, जिसे कि यह अपनी माता समझता था, ऐसी अचम्भा पैदा करनेवाली बात सुनकर बड़े गहरे विचारमें पड़ गया । इसने सोचा कि इसमें कोई कारण जरूर होना चाहिए । यह सोचकर यह श्रेणिकके पास पहुँचा और उनस इसने आग्रहके साथ पूछा—पिताजी, सच बतलाइए, मेरे वास्तवमें पिता कौन हैं और कहाँ हैं ? श्रेणिकने इस बातके बतानेको बहुत आनाकानी की । पर जब रुद्रको इससे बड़ा वैराग्य हुआ और वह अपने पिताके पास जाकर मुनि हो गया ।

एक दिन रुद्र ग्यारह अंग और दश पूर्वका बड़े ऊँचेसे पाठ कर रहा था । उस समय श्रुतज्ञानके माहात्म्यसे पाँचसौ तो बड़ी-बड़ी विद्याएँ और सात सौ छोटी-छोटी विद्याएँ सिद्ध होकर आई । उन्होने अपनेको स्वीकार करनेकी रुद्रसे प्रार्थना की । रुद्रने लोभके वश हो उन्हें स्वीकार तो कर लिया, पर लोभ आगे होनेवाले सुख और कल्याणके नाशका कारण होता है, इसका उसने कुछ विचार न किया ।

इस समय सात्यकि मुनि गोकर्ण पर्वतकी ऊँची चोटी पर प्राय: ध्यान किया करते थे । समय गर्मीका था । उनकी वन्दनाको अनेक धर्मात्मा भव्य-पुरुष आया जाया करते थे । पर जबसे रुद्रको विद्याएँ सिद्ध हुई, तबसे वह मुनि-वन्दनाके लिए आनेवाले धर्मात्मा भव्य-पुरुषोंको अपने विद्याबलसे सिंह, व्याघ्र, गेंडा, चीता आदि हिंस्र और भंयकर पशुओं द्वारा डराकर पर्वत पर न जाने देता था । सात्यकि मुनिको जब यह हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने इसे समझाया और ऐसे दुष्ट कार्य करनेसे रोका । पर इसने उनका कहा नहीं माना और अधिक-अधिक यह लोगोको कष्ट देने लगा । सात्यकिने तब कहा—तेरे इस पाप का फल बहुत बुरा होगा ।

तेरी तपस्या नष्ट होगी । तू स्त्रियों द्वारा तपभ्रष्टा होकर आखिर मृत्यु का ग्रास बनेगा । इसलिए अभी तुझे सम्हल जाना चाहिए । जिससे कुगतियोके दु:ख न भोगना पड़े । रुद्र पर उनके इस कहनेका कुछ असर न

हुआ । वह और अपनी दुष्टता करता ही चला गया । सच है, पापियोके हृदयमे गुरुओका अच्छा उपदेश कभी नहीं ठहरता ।

एक दिन रुद्रमुनि प्रकृतिके दृश्योसे अपूर्व मनोहरता धारण किये हुए कैलास पर्वत पर गया और वहाँ तापन योग द्वारा तप करने लगा । इसके बीचमे एक और कथा है, जिसका इसीसे सम्बन्ध है । विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें मेघनिबद्ध, मेघनिचय और मेघनिदान ऐसे तीन सुन्दर शहर है । उनका राजा था कनकरथ । कनकरथकी रानीका नाम मनोहरा था । इसके दो पुत्र हुए । एक देवदारु और दूसरा विद्युज्जिह्व । ये दोनो भाई खूबसूरत भी थे और विद्वान भी थे । इन्हें योग्य देखकर इनका पिता कनकरथ राज्यशासनका भार बड़े पुत्र देवदारुको सौंप आप गणधर मुनिराजके पास दीक्षा लेकर योगी बन गया । सबको कल्याणके मार्ग पर लगाना ही एक मात्र अब इसका कर्त्तव्य हो गया ।

दोनो भाईयो की कुछ दिनोंतक तो पटी, पर बादमें किसी कारणको लेकर बिगड़ पड़ी । उसका फल यह निकला कि छोटे भाईने राज्यके लोभ मे फॅसकर और अपने बड़े भाईके विरुद्ध षड्यंत्र रच उसे राज्यसे निकाल दिया । देवदारुको अपने मानभगका बड़ा दुःख हुआ । वह वहॉसे चलकर कैलास पर आया यहीं पर रहने भी लगा । सच है, घरेलू झगड़ों से कौन नष्ट नहीं हो जाता । देवदारुके आठ कन्याएँ थीं और सब ही बड़ी सुन्दर थीं । सो एक दिन ये सब बहिने मिलकर तालाब पर स्नान करनको आई । अपने सब कपडे उतारकर ये नहानेको जलमें घुसीं । रुद्र मुनिने इन्हे खुले शरीर देखा । देखते ही वह कामसे पीड़ा जाकर इन पर मोहित हो गया । उसने अपनी विद्या द्वारा उनके सब कपड़े चुरा मॅगाये । कन्याएँ जब नहाकर जल बाहर हुई तब उन्होने देखा कपड़े वहॉ नहीं; उन्हे बड़ा ही आश्चर्य हुआ । वे खड़ी-खड़ी बेचारी लज्जाके मारे सिकुड़ने लगीं और व्याकुल भी वे अत्यन्त हुई । इतनेमे उनकी नजर रुद्रमुनि पर पड़ी । उन्होने मुनिके पास जाकर बडे सकोचके साथ पूछा—प्रभो, हमारे वस्त्रोको यहॉसे कौन ले गया ? कृपाकर हमें बतलाइए । सच है, पापके उदय से आपत्ति आ पड़ने पर लज्जा संकोच सब जाता रहता है । पापी रुद्र मुनिने निर्लज्ज होकर उन कन्याओसे कहा—हॉ मैं तुम्हारे वस्त्र

वगैरह सब बता सकता हूँ, पर इस शर्त पर कि यदि तुम मुझे चाहने लगो। कन्याओने तब कहा—हम अभी अबोध ठहरीं, इसलिये हमे इस बात पर विचार करनेका कोई अधिकर नहीं। हमारे पिताजी यदि इस बातको स्वीकार कर ले तो फिर हमे कोई उजर नहीं रहेगा। कुलबालिकाओं का यह उत्तर देना उचित ही था। उनका उत्तर सुनकर मुनि ने उन्हें उनके वस्त्र वगैरह दे दिये। उन बालिकाओ ने घर आकर यह सब घटना अपने पितासे कह सुनाई। देवदारुने तब अपने एक विश्वस्त कर्मचारीको मुनिके पास कुछ बाते समझाकर भेजा। उसने जाकर देवदारुकी ओरसे कहा—आपकी इच्छा देवदारु महाराजको जान पड़ी। उसके उत्तरमें उन्होने यह कहा है कि हॉ मैं अपनी लड़कियोको आपको अर्पण कर सकता हूँ, पर इस शर्त पर कि "आप विद्युज्जिह्वको मारकर मेरा राज्य पीछा मुझे दिलवा दे।" रुद्रने यह स्वीकार किया। सब है, कामी पुरुष कौन पाप नहीं करता। रुद्रको अपनी इच्छाके अनुकूल देख देवदारु उसे अपने घर पर लिवा लाया। और बहुत ठीक है, राज्य-भ्रष्ट राजा राज्यप्राप्तिके लिये क्या काम नहीं करता।

इसके बाद रुद्र विजयार्द्ध पर्वत पर गया और विद्याओंकी सहायतासे उसने विद्युज्जिह्वको मारकर उसी समय देवदारुने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। अपनी सब लड़कियों का ब्याह आनन्द-उत्सवके साथ उसने रुद्रसे कर दिया। इसके सिवा उसने ओर भी बहुतसी कन्याओको उसके साथ ब्याह दिया। रुद्र तब बहुत ही कामी हो गया। उसके इस प्रकार तीव्र कामसेवनका नतीजा यह हुआ कि सैकड़ो बेचारी राजबालिकाएँ अकाल हीमे मर गई। पर यह पापी तब भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसने अबकी बार पार्वतीके साथ ब्याह किया। उसके द्वारा इसकी कुछ तृप्ति जरूर हुई।

कामी होनेके सिवा इसे अपनी विद्याओंका भी बड़ा घमंड हो गया था। इसने सब राजाओको विद्यावलसे बड़ा कष्ट रक्खा था, बिना ही कारण यह सबको तंग किया करता था। और सच भी है दुष्टसे किसे शान्ति मिल सकती है। इसके द्वारा बहुत तग आकर पार्वतीके पिता तथा और भी बहुतसे राजाओंने मिलकर इसे मार डालनेका विचार किया। पर इसके पास था विद्याओंका बल, सो उसके सामने होनेकी किसीकी हिम्मत न पडती भी तो वे

कुछ कर नहीं सकते थे । तब उन्होने इस बातका शोध लगाया कि विद्याएँ इससे किस समय अलग रहती हैं । इस उपायसे उन्हे सफलता प्राप्त हुई । उन्हे यह ज्ञात हो गया कि कामसेवनके समय सब विद्याएँ रुद्रसे पृथक् हो जाती हैं । सो मौका देखकर पार्वतीके पिता वगैरह ने खड्ग द्वारा रुद्रको सखक मार डाला । सच है, पापियो के मित्र भी शत्रु हो जाया करते हैं ।

विद्याएँ अपने स्वामीकी मृत्यु देखकर बडी दुखी हुई और साथ ही उन्हे क्रोध भी अत्यन्त आया । उन्होंने तब प्रजाको दु ख देना शुरू किया और अनेक प्रकारकी बीमारियाँ प्रजामें फैला दीं । उसके बेचारी गरीब प्रजा त्राह-त्राह कर उठी । इसी समय एक ज्ञानी मुनि इस ओर आ निकले । प्रजाके कुछ लोगोने जाकर मुनिसे इस उपद्रवका कारण और उपाय पूछा । मुनिने सब कथा कहकर कहा—जिस अवस्थामे रुद्र मारा गया है, उसकी एकबार स्थापना करके उससे क्षमा कराओ । वैसा ही किया गया । प्रजाका उपद्रव शान्त हुआ, पर तब भी लोगोकी मूर्खता देखों जो एक बार कोई काम किसी कारणको लेकर किया गया सो उसे अब तक भी गडरिया प्रवाहकी तरह करते चले आते हैं और देवताके रूपमें उसकी सेवा-पूजा करते हैं । पर यह ठीह नहीं । सच्चा देव वही हो सकता है जिसमे राग, द्वेष नहीं, जो सबका जानने और देखनेवाला है और जिसे स्वर्ग के देव, चक्रवर्ती, विद्याधर, राजा, महाराजा आदि सभी बड़े-बडे लोग मस्तक झुकाते हैं और ऐसे देव एक अर्हन्त भगवान् ही हैं ।

वे जिन भगवान् मुझे शान्ति दे, जो अनन्त उत्तम-उत्तम गुणोके धारक हैं, सब सुखोके देनेवाले हैं, दु ख, शोक, सन्तापके नाश करनेवाले हैं, केवलज्ञानके रूपमे जो ससारका आताप हर कर उसे शीतलता देनेवाले चन्द्रमा हैं और तीनो लोकोके स्वामियो द्वारा जो भक्तिपूर्वक पूजे जाते हैं ।

————

३९. परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा

धन, धान्य, दास, दासी, सोना, चाँदी आदि जो संसारके जीवोंको तृष्णाके जालमें फँसाकर कष्ट पर कष्ट देनेवाले हैं, ऐसे परिग्रहसे माया, ममता छोड़ने वाले जो साधु-सन्त हैं, उनसे भी जो ऊँचे हैं, जिनके त्यागसे आगे त्यागकी कोई सीमा नहीं, ऐसे सर्वश्रेष्ठ जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर परिग्रहसे डरे हुए दो भाइयोंकी कथा लिखी जाती है ।

दशार्ण देशमें बहुत सुन्दर एकरथ नामका एक शहर था । उसमें धनदत्त नामका सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता था । इसके धनदेव और धनमित्र ऐसे दो पुत्र और धनमित्रा नामकी एक सुन्दर लड़की थी ।

धनदत्तकी मृत्युके बाद इन दोनों भाइयोंके कोई ऐसा पापकर्मका उदय आया, जिससे इनका सब धन नष्ट हो गया, ये महा दरिद्र बन गये । 'कुछ सहायता मिलेगी' इस आशासे ये दोनो भाई अपने मामाके यहाँ कौशाम्बी गये और इन्होने बड़े दुःखके साथ पिताकी मृत्युका हाल मामाको सुनाया । मामा भी इनकी हालत देखकर बड़ा दुःखी हुआ । उसने अनेक प्रकार समझा-बुझाकर इन्हें धीरज दिया और साथ ही आठ कीमती रत्न दिये, जिससे कि ये अपना संसार चला सकें । सच है, यही बन्धुपना है, यही दयालुपना है और यही गम्भीरता है जो अपने धन द्वारा याचकोंकी आशा पूरी की जाय ।

दोनो भाई रत्नोंको लेकर पीछे अपने घरकी ओर रवाना हुए । रास्तेमें आते-आते इन दोनोंकी नियत उन रत्नोंके लोभसे बिगड़ी । दोनों हीके मनमें परस्परके मार डालनेकी इच्छा हुई । इतनेमें गाँव पास आ जानेसे इन्हें सुबुद्धि सूझ गई । दोनोंने अपने-अपने नीच विचारों पर बड़ा ही पश्चात्ताप किया और परस्परमें अपना विचार प्रगट कर मनका मैल निकाल डाला । ऐसे पाप विचारोंके मूल कारण इन्हें वे रत्न ही जान पड़े । इसीलिए उन रत्नोंको वेत्रवती नदीमें फेंककर ये अपने घर पर चले आये । उन रत्नोंको मांस समझकर एक मछली निगल गई । यही मछली एक धीवरके जालमें आ फँसी । धीवरने मछलीको मारा । उसमेसे वे रत्न निकले । धीवरने उन्हें बाजारमें बेच दिया ।

धीरे-धीरे कर्मयोगसे वे ही रत्न इन दोनो भाईयोकी मॉके हाथ पड़े । माताने उनके लोभसे अपने लड़के-लडकीको ही मार डालना चाहा । परन्तु तत्काल सुबुद्धि उपज जानेसे उसने बहुत पश्चात्ताप किया और रत्नोको अपनी लडकीको दे दिये । धनमित्राकी भी यही दशा हुई । उसकी भी लोभके मारे नियत बिगड़ गई । उसने माता, भाई आदिकी जान लेनी चाही । सच है, ससारमे सबसे बड़ा भारी पापका मूल लोभ है । अन्तमे धनमित्राको भी अपने विचार पर बड़ी घृणा हुई और उसने फिर उन रत्नोको अपने भाईयोके हाथ दे दिया । वे उन्हे पहिचान गये । उन्हे रत्नोंके प्राप्त होनेका हाल जानकर बड़ा ही वैराग्य हुआ । उसी समय वे ससारकी सब माया-ममता छोड़कर, जो कि महा दुःखका कारण है, दमधर मुनिके पास दीक्षा ले गये । इन्हे साधु, हुए देखकर इनकी माता और बहिन भी आर्यिका हो गई । आगे चलकर ये दोनो भाई बडे तपस्वी महात्मा हुए । अपना ओर दूसरोंका ससारके दु·खोसे उद्धार करना ही एक मात्र इनका कर्त्तव्य हो गया । स्वर्गके देवता और प्राय· सब ही बडे-बड़े राजा-महाराजा इनकी सेवा पूजा करनेको आने लगे ।

यह लोभ ससारके दु खोका मूल कारण और अनेक कष्टोका देनेवाला है, जो माता, पिता, भाई, बहिन, बन्धु, बान्धव आदिके परस्पर मे ठगने और बुरे विचारोके उत्पन्न करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हे चाहिए कि वे इस पापके बाप लोभको मनसा, वाचा, कर्मणा छोडकर ससारका हित करनेवाले और स्वर्ग तथा मोक्षका सुख देनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये परम पवित्र धर्ममे अपने मनको दृढ करनेका यत्न करे ।

-----

४०. धनसे डरे हुए सागरदत्तकी कथा

केवलज्ञानरूपी उज्जवल नेत्र द्वारा तीनोंको देखने और जानने वाले ऐसे जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर धनके लोभसे डरकर मुनि हो जानेवाले सागरदत्तकी कथा लिखी जाती है ।

किसी समय धनमित्र, धनदत्त आदि बहुतसे सेठोंके पुत्र व्यापारके लिए कौशाम्बीसे चलकर राजगृहकी ओर रवाना हुए । रास्तेमें एक गहन वनमें चोरोंने इन्हें लूट-लिया । इनका सब माल-असबाब छीन-छानकर वे चलते हुए । सच है, जिनके पल्लेमें कुछ पुण्य नहीं होता वे कोई भी काम करें, उन्हें नुकसान ही उठाना पड़ता है ।

उधर धन पाकर चोरोंकी नियत बिगड़ी । सब परस्परमें यह चाहने लगे कि धन मेरे ही हाथ पड़े और किसीको कुछ न मिले । और इसी लालसासे एक-एकके विरुद्ध जान लेनेकी कोशिश करने लगे । रातको जब वे सब खानेको बैठे तो किसीने भोजनमें विष मिला दिया और उसे खाकर सबके सब परलोक सिधार गये । यहाँतक कि जिसने विष मिलाया था, वह भी भ्रमसे उसे खाकर मर गया । उनमे एक सागरदत्त नामक वैश्यपुत्र बच गया । वह इसलिये कि उसे रात्रिमें न खाने-पीनेकी प्रतिज्ञा थी । धनके लोभमे फँसनेसे एक साथ सबको मरा देखकर सागरदत्तको बडा वैराग्य हुआ । वह उस धनको वहीं छोड़-छाड़कर चल दिया और एक साधुके पास जाकर आप मुनि बन गया ।

रात्रिभुक्तत्यागव्रती सागरदत्तने संसारकी सब लीलाओंको दुःखकी कारण और जीवनको बिजलीकी तरह जानकर पलभरमें नाश होनेवाला सब धन वहीं पर पड़ा छोड़कर आप एक ऊँचे आचरणका धारक साधु हो गया । वह सागरदत्त मुनि आप सज्जनो का कल्याण करे ।

———

४१. धनके लोभसे भ्रमसे पड़े कुबेरदत्तकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्‌को, जो कि सारे स[illegible] द्वारा पूज्य हैं, और सबसे उत्तम गिनी जानेवाली जिनवाणी तथा गुरुओको भक्तिपूर्वक नमस्कार कर परिग्रहके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

मणिवत देशमे मणिवत नामका ही एक शहर था । उसके राजाका नाम भी मणिवत था । मणिवतकी रानी पृथिवीमति थी । इसके मणिचन्द्र नामका एक पुत्र था । मणिवत विद्वान्, बुद्धिवान् और अच्छा शूरवीर था । राजकाजमें उसकी बहुत अच्छी गति थी ।

राजा पुण्योदयसे राजकाज योग्यताके साथ चलाते हुए सुखसे अपना समय बिताते थे । धर्म पर उनकी पूरी श्रद्धा थी वे सुपात्रोको प्रतिदिन दान देते, भगवान् की पूजा करते और दूसरोंकी भलाई करनेमे भरसक यत्न करते । एक दिन रानी पृथिवीमति महाराजके बालोंको सॅवार रही थीं कि उनकी नजर एक सफेद बाल पर पड़ी । रानीने उसे निकालकर राजाके हाथमे रख दिया । राजा उस सफेद बालको कालका भेजा दूत समझ कर संसार और विषयभोगोंसे बड़े विरक्त हो गये । उन्होने अपने मणिचन्द्र पुत्रको राज्यका सब कारबार सौंप दिया और आप भगवान्‌की पूजा, अभिषेक कर तथा याचकोको दाना दे जगलकी ओर रवाना हो गये और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगे । वे अब दिनोदिन आत्माको पवित्र बनाते हुए परमात्म-स्मरणमे लीन रहने लगे ।

मणिवत मुनि नाना देशोंमे धर्मोपदेश करते हुए एक दिन उज्जैनके बाहर मसानमे आये । रातके समय वे मृतक शय्या द्वारा ध्यान करते हुए शान्तिके लिए परमात्माका स्मरण-चिन्तन कर रहे थे । इतनेमे वहॉ एक कापालिक वैतालीविद्या साधनेके लिए आया । उसे चूल्हा बनानेके लिए तीन मुर्दोंकी जरूरत पडी । सो एक तो उसने मुनिको समझ लिया और दो मुर्दोंको वह और घसीट लाया । उन तीनोके सिरका चूल्हा बनाकर उस पर उसने एक कपाल रक्खा और आग सुलगाकर कुछ नैवेद्य पकाने लगा । थोडी देर बाद जब आग जोरसे चेती और मुनिकी नसे जलने लर्गी तब एकदम मुनिका हाथ ऊपरकी ओर उठ जानेसे सिरपरका कपाल गिर पडा । कापालिक

उससे डरकर भागकर खड़ा हुआ । मुनिराज मेरु समान वैसेके वैसे ही अचल बने रहे । सबेरा होने पर किसी आते-जाते मनुष्यने मुनिकी यह दशा देख जिनदत्तको यह हाल कह सुनाया । जिनदत्त उसी समय दौड़ा-दौड़ा मसानमें गया । मुनिकी दशा देखकर उसे बेहद दुःख हुआ । मुनिको अपने घर पर लाकर उसने एक प्रसिद्ध वैद्यसे उनके इलाजके लिए पूछा । वैद्य महाशयने कहा—सोमशर्मा भट्टके यहाँ लक्षपाक नामका बहुत ही उम्दा तैल है, उसे लाकर लगाओ । उससे बहुत जल्दी आराम होगा, आगका जला उससे फौरन आराम होता है । सेठ सोमशर्माके घर दौड़ा हुआ गया । घर पर भट्ट महाशय नहीं थे, इसलिए उसने उनकी तुकारी नामकी स्त्रीसे तैलके लिए प्रार्थना की । तैलके कई घड़े उसके यहाँ भरे रक्खे थे । तुकारीने उनमें से एक घड़ा ले जानेको जिनदत्तसे कहा । जिनदत्त ऊपर जाकर एक घड़ा उठाकर लाने लगा । भाग्यसे सीढ़ियाँ उतरते समय पाँव फिसल जानेसे घड़ेके फूट जानेका हाल तुकारीसे कहा । तब तुकारीने दूसरा घड़ा ले आनेको कहा । उसे पहले घड़ेके फूट जानेका कुछ भी खयाल नहीं हुआ । सच है, सज्जनोका हृदय समुद्रसे भी कहीं अधिक गम्भीर हुआ करता है । जिनदत्त दूसरा घड़ा लेकर आ रहा था । अबकी वार तैलसे चिकनी जगह पर पाँव पड़ जानेसे फिर भी वह फिसल गया और घड़ा फूटकर उसका सब तैल वह गया । इसी तरह तीसरा घड़ा भी फूट गया । अब तो जिनदत्तके देवता कूँच कर गये । भयके मारे वह थर-थर काँपने लगा । उसकी यह दशा देखकर तुकारीने उससे कहा कि घबराने और डरनेकी कोई बात नहीं । तुमने कोई जानकर थोड़े ही फोड़े हैं । तुम किसी तरहकी चिन्ता-फिकर मत करो । जब तक तुम्हे जरूरत पड़े तुम प्रसन्नताके साथ तैल ले जाया करो देनेसे मुझे कोई उजर न होगा । कोई कैसा ही सहनशील क्यों न हो, पर ऐसे मौके पर उसे भी गुस्सा आये बिना नहीं रहता । फिर इस स्त्रीमें इतनी क्षमा कहाँसे आई ? इसका जिनदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ । जिनदत्तने तुकारीसे पूछा भी, कि माँ मैंने तुम्हारा इतना भारी अपराध किया, उस पर भी तुमकों रत्तीभर क्रोध नहीं आया, इसका क्या कारण है ? तुकारीने कहा—भाई, क्रोध करनेका फल जैसा चाहिए वैसा मैं भुगत चुकी हूँ । इसलिए क्रोधके नामसे ही मेरा जी काँप उठता है । यह सुनकर जिनदत्त का तुक

और बढ़ा, तब उसने पूछा यह कैसे ? तुकारी कहने लगी—

"चन्दनपुरमे शिवशर्मा ब्राह्मण रहता है। वह धनवान् और राजाका आदरपात्र है। उसकी स्त्रीका नाम कमलश्री है। उसके कोई आठ तो पुत्र और एक लड़की है। लड़कीका नाम भट्टा है और वह मैं ही हूँ। मैं थी बड़ी सुन्दरी पर मुझमे एक बड़ा दुर्गुण था। वह यह कि मैं अत्यन्त मानिनी थी। मैं बोलनेमे बड़ी ही तेज थी और इसीलिए मेरे भयका सिक्का लोगोंके मन पर ऐसा जमा हुआ था कि किसीकी हिम्मत मुझे "तू" कहकर पुकारनेकी नहीं होती थी। मुझे ऐसी अभिमानिनी देखकर मेरे पिताने एकबार शहरमें डौंडी पिटवा दी कि मेरी बेटीको कोई "तू" कहकर न पुकारे। क्योंकि जहाँ मुझसे किसीने 'तू' कहा कि मैं उससे लड़ने-झगड़नेको तैयार ही रहा करती थी और फिर जहाँतक मुझमे शक्ति जोर होता मैं उसकी हजारो पीढ़ियोंको एक पलभरमें अपने सामने ला खड़ा करती और पिताजी इस लड़ाई-झगड़ेसे सौ हाथ दूर भागनेकी कोशिश करते। जो हो, पिताजीने तो अच्छा ही काम किया था, पर मेरे खोटे भाग्यसे उनका डौंडी पिटवाना मेरे लिए बहुत ही बुरा हुआ। उस दिनसे मेरा नामही 'तुकारी' पड़ गया और सब ही मुझे इस ससनामसे पुकार-पुकार कर चिढ़ाने लगे। सच है, अधिक मान भी कभी अच्छा नहीं होता। और इसी चिड़के मारे मुझसे कोई ब्याह करने तकके लिए तैयार न होता था। मेरे भाग्यसे इन सोमशर्माजीने इस बातकी प्रतिज्ञा की कि मैं कभी इसे 'तू' कहकर न पुकारूँगा। तब इनके साथ मेरा ब्याह हो गया। मैं बड़े उत्साहके साथ उज्जैनमे लाई गई। सच कहूँगी कि इस घरमे आकर मैं बड़े सुखसे रही। भगवान् की कृपासे घर सब तरह हरा भरा है। धन सम्पत्ति भी मनमानी है।

पर 'पड़ा स्वभाव जाय जीवसे' इस कहावतके अनुसार मेरा स्वभाव भी सहजमे थोड़े ही मिट जानेवाला था। सो एक दिनकी बात है कि मेरे स्वामी नाटक देखने गये। नाटक देखकर आते हुए उन्हें बहुत देर लग गई। उनकी इस देरी से मुझे अत्यन्त गुस्सा आया। मैंने निश्चय कर लिया कि आज जो कुछ भी हो, मैं दरवाजा नहीं खोलूँगी और मैं सो गई। थोड़ी देर बाद वे आये ओर दरवाजे पर खड़े रहकर बार-बार मुझे पुकारने लगे। मैं

चुप्पी साधे पड़ी रही, पर मैंने किवाड़ न खोले । बाहरसे चिल्लाते-चिल्लाते वे थक गये, पर उसका मुझ पर कुछ असर न हुआ । आखिर उन्हें भी बड़ा क्रोध हो अया । क्रोधमें आकर वे अपनी प्रतिज्ञा तक भूल बैठे । सो उन्होंने मुझे 'तू' कहकर पुकार लिया । बस, उनका 'तू' कहना था कि मैं सिरसे पॉवतक जल उठी और क्रोधसे अन्धी बनकर किवाड़ खोलती हुई घरसे निकल भागी । मुझे उस समय कुछ न सूझा कि मैं कहॉ जा रही हूँ । मैं शहर के बाहर होकर जंगलकी ओर चल धरी । रास्तेमें चोरोने मुझे देख लिया । उन्होंने मेरे सब गहने-दागीने और वस्त्र छीन-छानकर विजयसेन नामके एक भीलको सौंप दिया । मुझे खूबसूरत देखकर इस पापीने मेरा धर्म बिगाड़ना चाहा, पर उस समय मेरे भाग्यसे किसी दिव्य स्त्रीने आकर मुझे बचाया, मेरे धर्मकी उसने रक्षा की । भीलने उस दिव्य स्त्रीसे डरकर मुझे एक सेठके हाथ मे सौंप दिया । उसकी नियत भी मुझ पर बिगड़ी । मैंने उसे खूब ही आड़े हाथो लिया । इससे वह मेरा कर तो कुछ न सका, पर गुस्सेमें आकर उस नीच ने मुझे एक ऐसे मनुष्यके हाथ सौंप दिया जो जीवोके खूनसे रँगकर कम्बल बनाया करता था । वह मेरे शरीर पर जौंके लगा-लगाकर मेरा रोज-रोज बहुत सा खून निकाल लेता था और उसमे फिर कम्बलको रँगा करता था । सच है, एक तो वैसे ही पाप कर्मका उदय और उस पर ऐसा क्रोध, तब उससे मुझ सरीखी हत-भागिनियोको यदि पद-पद पर कष्ट उठाना पड़े तो उसमे आश्चर्य ही क्या ?

इसी समय उज्जैनके राजाने मेरे भाईको यहॉके राजा पारसके पास किसी कार्यके लिये भेजा । मेरा भाई अपना काम पूराकर पीछा उज्जैन की ओर जा रहा था कि अचानक मेरी उसकी भेंट हो गई । मैंने अपने केर्मो पर बड़ा पश्चात्ताप किया । जब मैंने अपना सब हाल उससे कहा तो उसे भी बहुत दु·ख हुआ । उसने मुझे धीरज दिया । इसके बाद वह उसी समय राजाके पास गया और सब हाल उनसे कहकर उस कम्बल बनानेवाले पापीसे उसने मेरा पजा छुडाया । वहॉसे लाकर बडी आर्जूभिन्नताके साथ उसने फिर मुझे अपने स्वामीके घर ला रक्खा । सच है, सच्चे बन्धु वे ही हैं जो कष्टके समय काम आवे । यह तो तुम्हे मालूम ही है कि मेरे शरीरका प्राय· खून निकल

चुका था ।। इसी कारण घर पर आते ही मुझे लकवा मार गया । तब वैद्यने यह लक्षपाक तैल बनाकर मुझे जिलाया । इसके बाद मैंने एक वीतरागी साधु द्वारा धर्मोपदेश सुनकर सर्वश्रेष्ठ और सुख देनेवाला सम्यक्त्व व्रत ग्रहण किया । और साथ ही यह प्रतिज्ञा की कि आजसे मैं किसी पर क्रोध नहीं करूँगी ।" अब आप जाइए और इस तैल द्वारा मुनिराजकी सेवा कीजिए । अधिक देरी करना उचित नहीं है ।

जिनदत्तका एक लड़का था, नाम इसका कुबेरदत्त था । इसका चाल-चलन अच्छा न देखकर जिनदत्तने इसके डरसे कीमती रत्नोंका भरा अपना घड़ा जहाँ मुनि सोया करते थे वहाँ खोद कर गाड़ दिया । जिनदत्तने यह कार्य किया । तो था बड़ी दुपका-चोरी से, पर कुबेरदत्तको इसका पता पड गया । उसने अपने पिताका सब कर्म देख लिया था, परन्तु तब भी वे चुपचाप रहे और उन्होने किसीसे कुछ नहीं कहा । और कहते भी कहाँसे जब कि उनका यह मार्ग ही नहीं है ।

जब योग पूरा हुआ तब मुनिराज जिनदत्तको सुख-साता पूछकर वहाँसे बिहार कर गये । शहर बाहर जाकर वे ध्यान करने बैठे । इधर मुनिराजके चले जानेके बाद सेठने वह रत्नोको घडा घर ले जानेके लिए जमीन खोद कर देखा तो वहाँ घड़ा नहीं । घड़ेको एकाएक गायब हो जानेका उसे बडा अचभा हुआ और साथ ही उसका मन व्याकुल भी हुआ । उसने सोचा कि घड़ेका हाल केवल मुनि ही जानते थे, फिर बड़े अचभेकी बात है कि उनके रहते यहाँसे घड़ा गायब हो जाय ? उसे घड़ा गायब करनेका मुनिपर कुछ सन्देह हुआ । तब वह मुनिके पास गया और उनसे उसने प्रार्थना की कि प्रभो, आप पर मेरा बड़ा ही प्रेम है, आप जबसे चले आये हैं तबसे मुझे सुहाता ही नहीं, इसलिए चलकर आप कुछ दिनोतक और वहीं ठहरे तो बड़ी कृपा हो । इस प्रकार मायाचारीसे जिनदत्त मुनिराजको पीछा अपने मन्दिर पर लौटा लाया । इसके बाद उसने कहा, स्वामी, कोई ऐसी धर्म-कथा सुनाइए, जिससे मनोरंजन हो । तब मुनि बोले—हम तो रोज ही सुनाया करते हैं, आज तुम ही कोई ऐसी कथा कहो । तुम्हे इतने दिन शास्त्र पढ़ते हो गये, देखे तुम्हे उनका सार कैसा याद रहता है ? तब जिनदत्त अपने भीतरी

कपट-भावों को प्रकट करनेके लिये एक ऐसी ही कथा सुनाने लगा। वह बोला—

"एक दिन पद्मरथपुरके राजा वसुपालने अयोध्याके महाराज जितशत्रुके पास किसी कामके लिए अपना एक दूत भेजा। एक तो गर्मीका समय और ऊपरसे चलनेकी थकावट सो इसे बड़े जोरकी प्यास लग आई। पानी इसे कहीं न हीं मिला। आते-आते यह एक घने वनमें आकर वृक्षके नीचे गिर पड़ा। इसके प्राण कण्ठगत हो गये। इसको यह दशा देखकर एक बन्दर दौड़ा-दौड़ा तालाब पर गया और उसमें डूबकर यह उस वृक्षके नीचे पड़े पथिकके पास आया। आते ही इसने अपने शरीरको उस पर झिड़का दिया। जब जल उस पर गिरा और उसकी आँखें खुलीं तब बन्दर आगे होकर उसे इशारेसे तालाबके पास ले गया। जल पीकर इसे बहुत शान्ति मिली। अब इसे आगेके लिए जलकी चिन्ता हुई। पर इसके पास कोई बरतन वगैरह न होनेसे यह जल ले जा नहीं सकता था। तब इसे एक युक्ति सूझी। इसने उस बेचारे जीवदान देनेवाले बन्दरको बन्दूकसे मारकर उसके चमड़ेकी थैली बनाई और उसमें पानी भर चल दिया।" अच्छा प्रभो, अब आप बतलाइए कि उस नीच, निर्दयी, अधर्मीको अपने उपकारी बन्दरको मार डालना क्या उचित था ? मुनि बोले तुम ठीक कहते हो। उस दूतका यह अत्यन्त कृतघ्नता भरा नीच काम था। इसके बाद अपनेको निर्दोष सिद्ध करनेके लिए मुनिराजने भी एक कथा कहना आरम्भ किया। वे कहने लगे—

"कौशाम्बीमें किसी समय एक शिवशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीका नाम कपिला था। इसके कोई लड़का नहीं था। एक दिन शिवशर्मा किसी दूसरे गाँवसे अपने शहरकी ओर लौट रहा था। रास्तेमे एक जंगलमें उसने एक नेवलाके बच्चेको देखा। शिवशर्माने उसे घर उठा लाकर अपनी प्रियासे कहा—ब्राह्मणीजी आज मैं तुम्हारे लिए एक लड़का लाया हूँ। यह कहकर उसने नेवलेको कपिलाकी गोदमें रख दिया। सच है, मोहसे अन्धे हुए मनुष्य क्या नहीं करते ? ब्राह्मणीने उसे ले लिया और पाल-पोस कर उसे कुछ सिखा-विखा भी दिया। नेवलेमें जितना ज्ञान और जितनी शक्ति थी वह उसके अनुसार ब्राह्मणीका बताये कुछ काम भी कर दिया करता था।

भाग्यसे अब ब्राह्मणीके भी एक पुत्र हो गया । सो एक दिन ब्राह्मणी बच्चेको पालनेमें सुलाकर आप धान खॉडनेको चली गई ओर जाते समय पुत्ररक्षाका भार वह नेवलेको सौंपती गई । इतनमें एक सर्पने आकर उस बच्चेको काट लिया बच्चा मर गया । क्रोधमे आकर नेवलेने सर्प के टुकड़े-टुकड़े कर डाले । इसके बाद वह खूनभरे मुँहसे ही कपिलाके पास गया । कपिला उसे खूनसे लथ-पथ भरा देखकर कॉप गई उसने समझा कि इसने मेरे बच्चे को खा लिया । उसे अत्यन्त क्रोध आया । क्रोधके वेगमे उसने न कुछ सोचा-विचारा और न जाकर देखा ही कि असलमें बात क्या है, किन्तु एक साथ ही पासमे पड़े हुए मूसलेको उठा कर नेवले पर दे मारा । नेवला तड़फड़ा कर मर गया । अब वह दौड़ी हुई बच्चेके पास गई । देखती है तो वहॉ एक काला भुजंग सर्प मरा हुआ पड़ा है । फिर उसे बहुत पछतावा हुआ । ऐसे मूर्खोको धिक्कार है जो बिना विचारे जल्दीमे आकर हर एक काम कर बैठते हैं ।" अच्छा सेठ महाशय, कहिए तो सर्पके अपराध पर बेचारे नेवलेको इस प्रकार निर्दयतासे मार देना ब्राह्मणीको योग्य था क्या ? जिनदत्तने कहा—नहीं । यह उसकी बड़ी गलती हुई । यह कहकर उसने फिर एक कथा कहना आरम्भ की—

"बनारसके राजा जितशत्रुके यहॉ धनदत्त राज्यवैद्य था । इसकी स्त्रीका नाम धनदत्ता था । वैद्य महाशयके धनमित्र और धनचन्द्र नामके दो लड़के थे । लाड़-प्यारमें रहकर इन्होंने अपनी कुलविद्याा भी न पढ़ पाई । कुछ दिनो बाद वैद्यराज काल कर गये । राजाने इन दोनों भाइयोंको मूर्ख देख इनके पिताकी जीविका पर किसी दूसरेको नियुक्त कर दिया । तब इनकी बुद्धि ठिकाने आई । ये दोनों भाई अब वैद्यशास्त्र पढ़नेकी इच्छासे चम्पापुरीमे शिवभूति वैद्यके पास गये । इन्होंने वैद्यसे अपनी सब हालत कहकर उनसे वैद्यक पढ़नेकी इच्छा जाहिर की । शिवभूति बड़ा दयावान् और परोपकारी था, इसलिए उसने इन दोनो भाइयोको अपने ही पास रखकर पढ़ाया । और कुछ ही वर्षोमें इन्हें अच्छा होशियार कर दिया । दोनो भाई गुरु महाशयके अत्यन्त कृतज्ञ होकर पीछे बनारसकी ओर रवाना हुए । रास्तेमे आते हुए इन्होने जंगलमे ऑखकी पीडासे दुखी एक सिहको देखा । धनचन्द्रको उस पर दया आई । अपने बड़े

भाईके बहुत कुछ मना करने पर भी धनचन्द्रने सिंहकी आँखोंका इलाज किया। उससे सिंहको आराम हो गया। आँख खोलते ही उसने धनचन्द्रको अपने पास खडा पाया। वह अपने जन्म स्वभावको न छोड़कर क्रूरताके साथ उसे खा गया।" मुनिराज उस दुष्ट सिंहका बेचारे वैद्यको खा जाना क्या अच्छा काम हुआ ? मुनिने 'नहीं' कहकर एक और कथा कहना शुरू की।

"चम्पापुरीमे सोमशर्मा ब्राह्मणकी दो स्त्रियॉ थीं। एकका नाम सोमिल्या और दूसरीका सोमशर्मा था। सोमिल्या बॉझ थी और सोमशर्माके एक लडका था। यहीं एक बैल रहता था। लोग उसे 'भद्र' नामसे बुलाया करते थे। बेचारा बडा सीधा था। कभी किसीको मारता नहीं था। वह सबके घर पर घूमा-फिरा करता था। उसे इस तरह जहॉ थोड़ी बहुत घास खानेको मिलती वह उसे ही खाकर रह जाता था। एक दिन उस बॉझ पापिनीने डाहके मारे अपनी सौतके बच्चेको निर्दयतासे मार कर उसका अपराध बेचारे बैल पर लगा दिया। उसे ब्राह्मण बालकका मारनेवाला समझ कर सब लोगोंने घास खिलाना छोड दिया और शहरसे निकाल बाहर कर दिया। बेचारा भूख-प्यासके मारे बडा दु:ख पाने लगा। बहुत ही दुबला पतला हो गया। पर तब भी किसीने उसे शहर भीतर नहीं घुसने दिया। एक दिन जिनदत्त सेठकी स्त्री पर व्यभिचारका अपराध लगा। वह अपनी निर्दोषता बतलाने के लिए चौराहे पर जाकर खडी हुई, जहॉ बहुतसे मनुष्य इकट्‌ठे हो रहे थे। उसने कोई भंयकर दिव्य लेनेके इरादेसे एक लोहेके टुकडेको अग्निमे खूब तपाकर लाल सुर्ख किया। इस मौकेको अपने लिए बहुत अच्छा समझ उस बैलने झट वहॉ पहुँच कर जलते हुए उस लोहेके टुकडेको मुँहसे उठा लिया।" अच्छा यह भयकर दृश्य देखकर सब लोगोने उसे निर्दोष समझ लिया।" अच्छा सेठ महाशय, बतलाइए तो क्या उन मूर्ख लोगोंको बिना समझे-बूझे एक निरपराध पशु पर दोष लगाना ठीक था क्या ? जिनदत्तने 'नहीं' कहकर फिर एक कथा छेड़ी। वह बोला—

"गंगा के किनारे कीचड मे एकबार एक हाथीका बच्चा फॅस गया। विश्वभूति तापसने उसे तड़फते हुए देखा। वह कीचड़से उस हाथीके बच्चेको निकालकर अपने आश्रममे लिवा ले आया। उसने उसे बड़ी सावधानीके साथ

पाला-पोसा भी । धीरे-धीरे वह बड़ा होकर एक महान् हाथीके रूपमें आ गया । श्रेणिकने इसकी प्रशंसा सुनकर इसे अपने यहॉ रख लिया । हाथी जब तक तापसके यहॉ रहा तब तक बड़ी स्वतंत्रतासे रहा । वहॉ इसे कभी अकुश वगेरहका कष्ट नहीं सहना पडा । पर जब यह श्रेणिकके यहॉ पहुॅचा तबसे इसे बन्धन, अकुश आदिका बहुत कष्ट सहना पड़ता था । इस दु:खके मारे एक दिन यह सांकल तोड़-ताड़ कर तापसके आश्रममे भाग आया । इसके पीछे-पीछे राजाके नौकर भी इसे पकड़नेको आये । तापसी मीठे-मीठे शब्दोसे हाथीको समझा कर उसे नौकरोके सुपुर्द करने लगा । हाथीको इससे अत्यन्त गुस्सा आया । सो इसने उस बेचारे तापसकी ही जान ले ली ।" तो क्या मुनिराज, हाथीको यह उचित था, कि वह अपनेको बचानेवालेको ही मार डाले ? इसके उत्तरमे मुनि 'ना' कहकर और एक कथा कहने लगे । उन्होंने कहा—

"हस्तिनागपुर पूरब दिशामे विश्वसने राजाका बनाया आमोका एक बगीचा था । उसमे आम खूब लग रहे थे । एक दिन एक चील मरे सॉपको चोंचमे लिए आमके झाड़पर बैठ गई । उस समय सॉपके जहरसे एक आम पक गया, पीला-सा पड़ गया । मालीने उस पके फलको ले जाकर राजाको भेट किया । राजाने उसे "प्रेमोपहार" के रूपमें अपनी प्रिय रानी धर्मसेनाको दिया । रानी उसे खाते ही मर गई । राजाको बड़ा गुस्सा आया ओर उसने एक फलके बदले सारे बगीचेको ही कटवा डाला । मुनिराजने कहा, तो क्या सेठ महाशय, राजाका यह काम ठीक हुआ । सेठने भी 'ना' कहकर और एक कथा कहना शुरू की । वह बोला—

"एक मनुष्य जगलसे चला जा रहा था । रास्तेमें वह सिहको देखकर डरके मारे एक वृक्ष पर चढ़ गया । जब सिह चला गया, तब यह नीचे उतरा और जाने लगा । रास्तेमे इसे राजाके बहुतसे आदमी मिले, जो कि भेरीके लिए अच्छे और बडे झाडको तलाशमें आये थे । सो इस दुष्ट मनुष्यने वह वृक्ष इन लोगोंको बता दिया, जिस पर चढ़कर कि इसने अपनी जान बचाई थी । राजाके आदमी उस घनी छायावाले सुन्दर वृक्षको काटकर ले गये ।" मुनिराज, जिसने बन्धुकी तरह अपनी रक्षा की, मरनेसे बचाया, उस वृक्षके लिए इस दुष्टको ऐसा करना योग्य था क्या ? मुनिराजने 'नहीं' कहकर और

एक कथा कही । वे बोले—

"गन्धर्वसेन राजाकी कौशाम्बी नगरीमें एक अंगारदेव सुनार रहता था । जातिका यह ऊँच था । यह रत्नोंकी जड़ाईका काम बहुत ही बढ़िया करता था । एक दिन अंगारदेव राजमुकुटके एक बहुमूल्य मणिको उजाल रहा था । इसी समय उसके घर पर मेदज नामके एक मुनि आहार के लिए आये । वह मुनिको एक ऊँची जगह बैठाकर और उनके सामने उस मणिको रखकर आप भीतर स्त्रीके पास चला गया । इधर मणिको मॉसके भ्रमसे कूँज पक्षी निगल गया । जब सुनार सब विधि ठीक-ठाककर पीछा आया तो देखता है वहाँ मणि नहीं । मणि न देखकर उसके तो होश उड़ गये । उसने मुनिराजसे पूछा— मुनिराज, मणिको मैं आपके पास अभी रखकर गया हूँ, इतनेमें वह कहाँ चला गया ? कृपा करके बतलाइये । मुनि चुप रहे । उन्हें चुप्पी साधे देखकर अगारदेवका उन्हीं पर कुछ शक गया । उसने फिर पूछा—स्वामी, मणिका क्या हुआ ? जल्दी कहिये । राजाको मालूम हो जानेसे वह मेरा और मेरे बाल-बच्चों-तक का बुरा हाल कर डालेगा । मुनि तब भी चुप ही रहे । अब तो अंगारदेवसे न रहा गया । क्रोधसे उसका चेहरा लाल सुर्ख पड़ गया । उसने जान लिया कि मणिको इसीने चुराया है । सो मुनिको बॉधकर उसने उनपर लकड़ेकी मार मारना शुरू की । उन्हें खूब मारा-पीटा सही, पर तब भी मुनि उसी तरह स्थिर बने रहे । ऐसे धनको, ऐसी मूर्खताको धिक्कार है जिससे मनुष्य कुछ भी सोच-समझ नहीं पाता और हर एक कामको जोशमें आकर कर डालता है । अंगारदेव मुनिको लकड़ेसे पीट रहा था तब एक चोट कूँज पक्षीके गले पर भी जाकर लगी । उससे वह मणि बाहर आ गिरा । मणि को देखते ही अंगारदेव आत्मग्लानि, लज्जा और पश्चात्तापके मारे अधमरा-सा हो गया । उसे काटो तो खून नहीं । वह मुनिके पॉवोमें गिर पड़ा और रो-रोकर उनसे क्षमा करने लगा ।" इतना कह कर मुनिराज बोले—क्यों सेठ महाशय, अब समझे ? मेदज मुनिको उस मणिका हाल मालूम था, पर तब भी दयाके वश हो उन्होने पक्षीका मणि निगल जाना न बतलाया । इसलिए कि पक्षीकी जान न जाय और न मुनियोंका ऐसा मार्ग ही है । इसी तरह मैं भी यद्यपि तुम्हारे घड़ेका हाल जानता हूँ, तथापि कह नहीं सकता ।

इसलिए कि संयमीका यह मार्ग नहीं है कि वे किसीको कष्ट पहुँचावे । अब जैसा तुम जानते हो और जो तुम्हारे मनमें ही उसे करो । मुझे उसकी परवा नहीं ।

घड़ेका छुपानेवाला कुबेरदत्त अपने पिता ओर मुनिका यह परस्परका कथोपकथन छुपा सुन रहा था । मुनिका अन्तिम निश्चय सुन उसकी उनपर बड़ी भक्ति हो गई । वह दौड़ा जाकर झटसे घड़ेको निकाल लाया और अपने पिताके सामने उसे रखकर जरा गुस्सेसे बोला—हॉ देखता हूँ आप मुनिराज पर अब कितना उपसर्ग करते हैं ? यह देखकर जिनदत्त बड़ा शरमिन्दा हुआ । उसने अपने भ्रम भरे विचारो पर बडा ही पछतावा किया । अन्तमे दोनो पिता-पुत्रोने उन मेरुके समान स्थिर ओर तपके खजाने मुनिराजके पॉवोमें पड़कर अपने अपराधकी क्षमा कराई और ससारसे उदासीन होकर उन्हींके पास उन्होने दीक्षा भी ले ली, जो कि मोक्ष-सुखकी देनेवाली है । दोनो पिता पुत्र मुनि होकर अपना कल्याण करने लगे और दूसरोंको भी आत्मकल्याणका मार्ग बतलाने लगे ।

वे साधुरत्न मुझे सुख शान्ति दे, जो भगवान्‌के उपदेश किये सम्यग्ज्ञानके उमड़े हुए समुद्र हैं, सम्यक्त्वरूपी रत्नोको धारण किये हैं, और पवित्र शील जिसकी लहरें हैं । ऐसे मुनिराजोंको मे भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

मूलसंघ मुख्य चलानेवाले श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामे भट्टारक मल्लिभूषण हुये हें । वे मेरे गुरु हैं, रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्रको धारण किये हैं गुणोकी खान हैं । वे आप लोगोंका कल्याण करे ।

-----

४२. पिण्याकगन्धकी कथा

सुख देनवाले और सारे-संसारके प्रभु श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धनलोभी पिण्याकगन्धकी कथा लिखी जाती है ।

रत्नप्रभु कांपिल्य नगरके राजा थे । उनकी रानी विद्युत्प्रभा थी । वह सुन्दर और गुणवती थी । यहीं एक जिनदत्त सेठ रहता था । जिनधर्म पर इसकी गाढ़ श्रद्धा थी । अपने योग्य आचार-विचार इसके वहुत अच्छे थे । राजदरवारमें भी इसकी अच्छी पूछ थी, मान-मर्यादा थी । यहीं एक ओर सेठ था । इसका नाम पिण्याकगन्ध था । इसके पास कई करोड़का धन था, पर तव भी यह मूर्ख बड़ा ही लोभी था, कृपण था । यह न किसीको कभी एक कौड़ी देता ओर न स्वय आप ही अपने धनको खाने-पीने पहरनेमें खर्च करता; और खाया करता था खल । इसके पास सव सुखकी सामग्री थी, पर अपने पापके उदयसे या यो कहो कि अपनी ही कंजूसीसे यह सदा ही दुःख भोगा करता था । इसकी स्रीका नाम सुन्दरी था । इसके एक विष्णुदत्त नामका लड़का था ।

एक दिन राजाके तालावको खोदते वक्त उडु नामके एक मजूरको सोनेके सलाइयोंकी भरी हुई लोहेकी सन्दूक मिल गई । यह सन्दूक यहाॅ कोई हजारों वर्षोंसे गडी हुई होगी । यही कारण था कि उसे खूव ही कीट खा गया था । उसके भीतरकी सलाइयोंकी यही दशा थी । उन पर भी वहुत मैल जमा हो गया । मैलसे यह नहीं जान पड़ता था कि वे सोनेकी हैं उडुने उसमेंसे एक सलाई लाकर जिनदत्त सेठको लोहेके भाव बेचा । सेठने उस समय तो उसे ले लिया, पर जव वह ध्यानसे धो-धाकर देखी गई तो जान पड़ा कि वह एक सोनेकी सलाई है । सेठने उसे चोरीका माल समझ अपने घरमें उसका रखना उचित नहीं समझा । उसने उसकी एक जिनप्रतिमा वनवा ली ओर प्रतिष्ठा कराकर उसे मंदिर में विराजमान कर दिया । सच है, धर्मात्मा पुरुप पापसे वडे डरते हैं । कुछ दिनों वाद उडु फिर एक सलाई लिए जिनदत्तके पास आया । पर अवकी वार सेठने उसे नहीं खरीदा । इसलिए कि वह धन दूसरेका है । तव उडुने उसे पिण्याकगन्धको वेच दिया । पिण्याकगन्धको भी मालूम हो गया कि वह सलाई सोनेकी है, पर तव भी लोभमे आकर उसने उडुसे कहा कि यदि

तेरे पास ऐसी सलाइयॉ और हो तो उन्हे यहॉ दे जाया करना । मुझे इन दिनो लोहेकी कुछ अधिक जरूरत है । मतलब यह कि पिण्याकगन्धने उडुसे कोई अट्ठानवे सलाइयॉ खरीद कर लीं । बेचारे उडुको उसकी सच्ची कीमत ही मालूम न थी, इसलिए उसने सबकी सब सलाइयॉ लोहेके भाव बेच दीं ।

एक दिन पिण्याकगन्ध अपनी बहिनके विशेष कहने-सुननेसे अपने भानजेके ब्याहमे दूसरे गॉव जाने लगा । जाते समय धनके लोभसे पुत्रको वह सलाई बतालकर कह गया कि इसी आकार-प्रकारका लोहा कोई बेचने अपने यहॉ आवे तो तू उसे मोल ले लिया करना । पिण्याकगन्धके पापका घड़ा अब बहुत भर चुका था । अब उसके फूटनेकी तैयारी थी इसीलिए तो वह पापकर्मकी जबरदस्तीसे दूसरे गॉव भेजा गया ।

उडुके पास अब केवल एक ही सलाई बची थी । वह उसे भी बेचनेको पिण्याकगन्धके पास आया । पर पिण्याकगन्ध तो वहॉ था नहीं, तब वह उसके लड़के विष्णुदत्तके हाथ सलाई देकर बोला—आपके पिताजीने ऐसी बहुतेरी सलाइयॉ मुझसे मोल ली है । अब यह केवल एक ही बची है । इसे आप लेकर मुझके इसकी कीमत दे दीजिये । विष्णुदत्तने उसे यह कहकर टाल दिया, कि मैं इसे लेकर क्या करूँगा ? मुझे जरूरत नहीं । तुम पीछे इसे ले जाओ । इस समय एक सिपाहीने उडू को देख लिया । उसने खोदने के लिए वह सलाई उससे छुड़ा ली । एक दिन वह सिपाही जमीन खोद रहा था । उससे सलाई पर जमा हुआ कीट साफ हो जानेसे कुछ लिखा हुआ उसे देख पड़ा । लिखा यह था कि "सोनेकी सौ सलाइयॉ सन्दूकमे हैं । यह लिखा देखकर सिपाहीने उडुको पकड लाकर उससे सन्दूककी बाबत पूछा । उडुने सब बाते ठीक-ठाक बतला दीं । सिपाही उडुको राजा के पास ले गया । राजाके पूछने पर उसने कहा कि मैने ऐसी अट्ठानवे सलाइयॉ तो पिण्याकगन्ध सेठको बेची हैं ओर एक जिनदत्त सेठको । राजाने पहले जिनदत्तको बुलाकर सलाई मोल लेनेके बाबत पूछा । जिनदत्तने कहा—महाराज, मैंने एक सलाई खरीदी तो जरूर है, पर जब मुझे यह मालूम पड़ा कि वह सोनेकी है तो मैंने उसकी जिनप्रतिमा बनवा ली । प्रतिमा मन्दिरमे मौजूद है । राजा प्रतिमाको देखकर बहुत खुश हुआ । उसने जिनदत्त इस सच्चाई पर

उसका बहुत मान किया, उसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण दिये । सच है, गुणोंकी पूजा सब जगह हुआ करती है ।

इसके बाद राजाने पिण्याकगन्धको बुलवाया । पर वह घर पर न होकर गाँव गया हुआ था । राजाको उसके न मिलनेसे और निश्चय हो गया कि उसने अवश्य राजधन धोखा देकर ठग लिया है । राजाने उसी समय उसका घर जब्त करवा कर उसके कुटुम्बको कैदखाने में डाल दिया । इसलिए कि उसने पूछ-ताछ करने पर भी सलाइयोंका हाल नहीं बताया था । सच है, जो आशाके चक्करमे पड़कर दूसरोंका धन मारते हैं, वे अपने हाथों ही अपना सर्वनाश करते हैं ।

उधर ब्याह हो जानेके बाद पिण्याकगंध घरकी ओर वापिस आ रहा था । रास्तेमें ही उसे अपने इस धन-जनकी दुर्दशाका मूल कारण अपने पॉवोंको ठहराया । इसलिए कि वह उन्हींके द्वारा दूसरे गॉव गया था । पॉवों पर उसे बड़ा गुस्सा आया और इसीलिए उसने बड़ा भारी पत्थर लेकर उससे अपने दोनों पॉवोंको तोड़ लिया । मृत्यु उसके सिर पर खड़ी ही थी । वह लोभी आर्त्तध्यान, बुरे भावोंसे मरकर नरक गया । यह कथा शिक्षा देती है जो समझदार है उन्हें चाहिये कि वे अनीतिके कारण और पापको बढ़ानेवाले इस लोभका दूर हीसे छोड़नेका यत्न करें ।

वे कर्मोको जीतनेवाले जिन भगवान् संसारमें सदा काल रहें जो संसारके पदार्थोको दिखलानेके लिये दीपकके समान हैं, सब दोषोंसे रहित हैं, भव्य-जनोंको स्वर्गमोक्षका सुख देनेवाले हैं, जिनके वचन अत्यन्त हो निर्मल या निर्दोष हैं, जो गुणोंके समुद्र हैं, देवों द्वारा पूज्य हैं और सत्पुरुषोंके लिए ज्ञानके समुद्र हैं ।

-----

४३. लुब्धक सेठकी कथा

केवलज्ञानकी शोभाको प्राप्त हुए और तीनो जगत्के गुरु ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर लुब्धक सेठकी कथा लिखी जाती है ।

राजा अभयवाहन चम्पापुरीके राजा हैं इनकी रानी पुण्डरोका है । नेत्र इसके ठीक पुण्डरोक कमल जैसे हैं । चम्पापुरीमे लुब्धक नामका एक सेठ रहता है । इसकी स्त्रीका नाम नागवसु हैं । लुब्धकके दो पुत्र हैं । इनके नाम गरुड़दत्त ओर नागदत्त हैं । दोनों भाई सदा हँस-मुख रहते हैं ।

लुब्धकके पास बहुत धन था । उसने बहुत कुछ खर्च करके यक्ष, पक्षी, हाथी, ऊँट, घोड़ा, सिह, हरिण आदि पशुओकी एक-एक जोड़ी सोनेकी बनवाई थी । इनके सींग, पूँछ, खूर आदिमे अच्छे-अच्छे बहुमूल्य हीरा, मोती, मणिक आदि रत्नोको जड़ाकर लुब्धकने देखनेवालोके लिए एक नया ही आविष्कार कर दिया था । जो इन जोड़ियो देखता वह बहुत खुश होता और लुब्धककी तारीफ किये बिना नहीं रहता । स्वय लुब्धक भी अपनी इस जगमगाती प्रदर्शनीको देखकर अपनेको बड़ा धन्य मानता था । इसके सिवा लुब्धकको थोड़ा-सा दुःख इस बातका था कि उसने एक बैलकी जोडी बनवाना शुरू की थी और एक बैल बन भी चुका था, पर फिर सोना न रहनेके कारण वह दूसरा बैल नहीं बनवा सका । बस, इसीकी उसे एक चिन्ता थीं । पर यह प्रसन्नताकी बात है कि वह सदा चिन्तासे घिरा न रहकर इसी कमीको पूरा करनेके यत्नमे लगा रहता था ।

एकबार सात दिन बराबर पानीकी झड़ी लगी रही । नदी-नाले सब पूर आ गये । पर कर्मवीर लुब्धक ऐसे समय भी अपने दूसरे बैलके लिए लकड़ी लेनेको स्वयं नदी पर गया और बहती नदीमेंसे बहुत-सी लकडी निकालकर उसने उकसी गठरी बाँधी और उसे आप ही अपने सिर पर लादे लाने लगा । सच है, ऐसे लोभियोकी तृष्णा कहीं कभी किसीसे मिटी है ? नहीं ।

इस समय रानी पुण्डरीका अपने महल पर बैठी हुई प्रकृतिकी शोभाको देख रही थी । महाराज अभयवाहन भी इस समय यहीं पर थे । लुब्धकको सिर पर एक बड़ा भारी काठका भार लादकर लाते देख रानीने अभयवाहनसे

कहा—प्राणनाथ, जान पड़ता है आपके राजमें यह कोई बड़ा ही दरिद्री है। देखिए, बेचारा सिर पर लकड़ियोंका कितना भारी गट्ठा लादे हुए आ रहा है। दया करके इसे कुछ आप सहायता दीजिए, जिससे इसका कष्ट दूर हो जाय। यह उचित ही है कि दयावानोंकी बुद्धि दूसरो पर दया करनेकी होती है। राजाने उसी समय नौकरोंको भेजकर लुब्धकको अपने पास बुलवाया। लुब्धकके आने पर राजाने उससे कहा—जान पड़ता है तुम्हारे घरकी हालत अच्छी नहीं है। इसका मुझे खेद है कि इतने दिनोसे मेरा तुम्हारी ओर ध्यान न गया। अस्तु, तुम्हे जितने रुपये पैसेकी जरूरत हो, तुम खजाने से ले जाओ। मैं तुम्हें अपनी सहीका एक पत्र लिख देता हूँ। यह कहकर राजा पत्र लिखनेको तैयार हुए कि लुब्धकने उनसे कहा—महाराज, मुझे और कुछ न चाहिए; किन्तु एक बैलकी जरूरत है। कारण मेरे पास एक बैल तो है, पर उसकी जोड़ी मुझे मिलाना है। राजाने कहा—अच्छी बात है तो, जाओ। राजाके जितने बैल थे उन सबको देख आकर लुब्धकने राजासे कहा—महाराज, उन बैलोंमें मेरे बैल सरीखा तो एक भी बैल मुझे नहीं देख पड़ा। सुनकर राजाको बडा अचम्भा हुआ। उन्होने लुब्धकसे कहा—भाई, तुम्हारा बैल कैसा है, यह मैं नही समझा। क्या तुम मुझे अपना बैल दिखाओगे ? लुब्धक बडी खुशीके साथ अपना बैल दिखाना स्वीकार कर महाराजको अपने घर पर लिवा ले गया। राजाको उस सोनेके बने बैलको देखकर बड़ा अचम्भा हुआ। जिसे उन्होने एक महा दरिद्री समझा था, वही इतना बड़ा धनी है, यह देखकर किसे अचम्भा न होगा।

लुब्धककी स्त्री नागवसु अपने घर पर महाराजको आये देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने महाराजकी भेंटके लिए सोनेका थाल बहुमूल्य सुन्दर-सुन्दर रत्नोंसे सजाया और उसे अपने स्वामीके हाथमे देकर कहा—इस थालको महाराजको भेट कीजिए। रत्नोके थालको देखकर लुब्धककी तो छाती बैठ गई, पर पास ही महाराजके होनेसे उसे वह थाल हाथों में लेना पडा। जैसे ही थालको उसने हाथोमे लिया उसके दोनो हाथ थर-थर धूजने लगे और ज्यो ही उसने थाल देनेको महाराजके पास हाथ बढ़ाया तो लोभके मारे इसकी अगुलियाँ महाराजको साँपके फणकी तरह देख पड़ीं। सच है, जिस पापीने

कभी किसीको एक कौड़ी तक नहीं दी, उसका मन क्या दूसरेकी प्रेरणासे भी कभी दानकी ओर झुक सकता है ? नहीं । राजाको उसके ऐसे बुरे बरताव पर बड़ी नफारत हुई । फिर एक पल भर भी उन्हे वहाँ ठहरना अच्छा न लगा । वे उसका नाम 'फणहस्त' रखकर अपने महल पर आ गये ।

लुब्धककी दूसरा बैल बनानेकी उच्चाकाक्षा अभी पूरी नहीं हुई । वह उसके लिए धन कमानेको सिंहलद्वीप गया । लगभग चार करोड़का धन उसने वहाँ रहकर कमाया भी । जब वह अपना धन, माल-असबाब जहाज पर लाद कर लौटा तो रास्तेमें आते-आते कर्मयोगसे हवा उलटी वह चली । समुद्रमे तूफान पर तूफान आने लगे । एक जोर की आँधी आई । उसने जहाजको एक ऐसा जोरका धक्का मारा कि जहाज उलट कर देखते-देखते समुद्रके विशाल गर्भमे समा गया । लुब्धक, उसका धन-असबाब, इसके सिवा और भी बहुत-से लोग जहाज के संगी हुए । लुब्धक आर्त्तध्यानसे मरकर अपने धनका रक्षक साँप हुआ । तब भी उसमेसे एक कोड़ी भी किसीको नहीं उठाने देता था ।

एक सर्पको अपने धन पर बैठा देखकर लुब्धकके बड़े लडके गरुड़दत्तको बहुत क्रोध आया और इसीलिए उसने उसे उठाकर मार डाला । यहाँसे वह बड़े बुरे भावोंसे मरकर चौथे नरक गया, जहाँ कि पापकर्मोका बड़ा ही दुस्सह फल भोगना पड़ता है । इस प्रकार धर्मरहित जीव क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके वश होकर पापके उदयसे इस दु खोके समुद्र संसारमे अनन्त कालतक दुःख-कष्ट उठाया करता है । इसलिए जो सुख चाहते हैं, जिन्हे सुख प्यारा है, उन्हें चाहिए कि वे इन क्रोध, लोभ, मान, मायादिको ससारमे दु·ख देनेवाले मूल कारण समझ कर इनका मन, वचन और शरीर से त्यागकरे और साथ ही जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये धर्मको भक्ति और शक्तिके अनुसार ग्रहण करे, जो परम शान्ति-मोक्षका प्राप्त करानेवाला है ।

-----

४४. वशिष्ठ तापसी की कथा

भूख, प्यास, रोग, शोक, जनम, मरण, भय, माया, चिन्ता, मोह, राग, द्वेष आदि अठारह दोषोंसे जो रहित हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर वशिष्ठ तापसी की कथा लिखी जाती है ।

उग्रसेन मथुराके राजा थे । उनकी रानीका नाम रेवती था । रेवती अपने स्वामीकी वड़ी प्यारी थी । यहीं एक जिनदत्त सेठ रहता था । जिनदत्तके यहॉ प्रियंगुलता नामकी एक नौकरानी थी ।

मथुरामें यमुना किनारे पर वशिष्ठ नामका एक तापसी रहता था । वह रोज नहा-धोकर पण्चाग्नि तप किया करता था । लोग उसे वड़ा भारी तपस्वी समझ कर उसकी खूव सेवा-भक्ति करते थे । सो ठीक ही है, असमझ लोग प्रायः देखा-देखी हर एक काम करने लग जाते हैं । यहॉ तक कि शहरकी दासियॉ पानी भरनेको कुए पर जव आतीं तो वे भी तापस महाराजकी वड़ी भक्तिसे प्रदक्षिणा करतीं, उनके पॉवों पड़तीं और उनकी सेवा-सुश्रूषा कर फिर वे घर जातीं । प्रायः सभीका हाल था । पर हॉ प्रियंगुलता इससे वरी थी । उसे ये वातें बिलकुल नहीं रुचतीं थीं । इसलिए कि वह वचपनसे ही जैनीके यहॉ काम करती रही । उसके साथकी और-और स्त्रियोंको प्रियंगुलताका यह हठ अच्छा नहीं जान पड़ा और इसीलिए मौका पाकर वे एक दिन प्रियंगुलताको उस तापसीके पास जबरदस्ती लिवा ले गईं ओर इच्छा न रहते भी उन्होंने उसका सिर तापसीके पॉवों पर रख दिया । अब तो प्रियंगुलतासे न रहा गया । उसने गुस्सा होकर साफ-साफ कह दिया कि यदि इस ढोंगीके ही मैं हाथ जोडूँ, तब फिर मुझे एक धीवर (भोई) के ही क्यों न हाथ जोड़ना चाहिए ? इससे तो वह बहुत अच्छा है । एक दासीके द्वारा अपनी निन्दा सुनकर तापसीजीको बड़ा गुस्सा आया । वे उन दासियों पर भी बहुत बिगड़े, जिन्होंने जवरदस्ती प्रियंगुलताको उनके पॉवों पर पटका था । दासियॉ तो तापसीजीकी लाल-पीली ऑखें देखकर उसी समय वहॉसे नौ-दो-ग्यारह हो गई । पर तापस महाराजकी क्रोधाग्नि तब भी न बुझी ।

उसने उग्रसेन महाराजके पास पहुँचकर शिकायत की कि प्रभो, जिनदत्त सेठने मुझे धीवर बतलाकर मेरा बडा अपमान किया। उसे एक साधुकी इस तरह बुराई करनेका क्या अधिकार था ? उग्रसेनको भी एक दूसरे धर्मके साधु की बुराई करना अच्छा नहीं जान पड़ा। उन्होंने जिनदत्तको बुलाकर पूछा, जिनदत्तने कहा—महाराज यदि यह तपस्या करता है तो यह तापसी है ही, इसमें विवाद किसकी है। पर मैंने तो इसे धीवर नहीं बतलाया। और सचमुच जिनदत्तको इन्कार करते देख तापसी घबराया। तब उसने अपनी सच्चाई बतलानेके लिए कहा— ना प्रभो, जिनदत्तकी दासीने ऐसा कहा था तापसीकी बात पर महाराजको कुछ हँसी-सी आ गई। उन्होंन तब प्रियगुलताको बुलवाया। वह आई। उसे देखते ही तापसीके क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा। वह कुछ न सोचकर एक साथ ही प्रियगुलता पर बिगड़ खड़ा हुआ। और गाली देते हुए उसने कहा—रॉड़ तूने मुझे धीवर बतलाया है, तेरे इस अपराधकी सजा तो तुझे महाराज देगे ही। पर देख, मैं धीवर नहीं हूँ, किन्तु केवल हवाके आधार पर जीवन रखनेवाला एक परम तपस्वी हूँ। बतला तो, तूने मुझे क्या समझ कर धीवर कहा ? प्रियंगुलता ने तब निर्भय होकर कहा—हॉ, बतलाऊँ कि मैंने तुझे क्यो मल्लाह बतलाया था ? ले सुन, जबकि तू रोज-रोज मच्छियॉ मारा करता है तब तू मल्लाह तो है ही ! तुझे ऐसी दशा से कौन समझदार तापसी कहेगा ? तू यह कहे कि इसके लिए सुबूत क्या ? तू जैनीके यहॉ रहती है, इसलिए दूसरे धर्मोकी या उनके साधु-सन्तोकी बुराई करना तो तेरा स्वभाव होना ही चाहिये। पर सुन, मैं तुझे आज यह बतला देना चाहती हूँ कि जैनधर्म सत्यका पक्षपाती है। उसमे सच्चे साधु-सन्त ही पुजते हैं। तेरेसे ढौंगी, बेचारे भोले लोगोको धोखा देनेवालोकी उसके सामने दाल नहीं गल पाती। ऐसा ही ढौंगी देखकर तुझे मैंने मल्लाह बतलाया और न मैं तुझमे मछली मारनेवाले मल्लाहोसे कोई अधिक बात ही पाती हूँ। तब बतला मैंने इसमे कौन तेरी बुराई की ? अच्छा, यदि तू मल्लाह नहीं है तो जरा अपनी इन जटाओको तो झाड़ दे अब तो तापस महाराज बडे घबराये और उन्होने बाते बनाकर इस बातको ही उड़ा देना चाहा। पर प्रियंगुलता ऐसे कैसे रास्ते पर आ जानेवाली थी। उसने तापसीसे जटा झडवा

कर ही छोड़ा । जटा झाडने पर सचमुच छोटी-छोटी मछलियाँ उसमेंसे गिरीं । सब देखकर दंग रह गये । उग्रसेनने तब जैनधर्मकी खूब तारीफ कर तापसीसे कहा—महाराज, जाइए-जाइए आपके इस भेषसे पूरा पड़े । मेरी प्रजाको आपसे हृदयके मैले साधुओंकी जरूरत नहीं । तापसीको भरी सभामें अपमानित होनेसे बहुत ही नीचा देखना पड़ा । वह अपना-सा मुँह लिये वहाँसे अपने आश्रममें आया पर लज्जा, अपमान, आत्मग्लानिसे वह मरा जाता था । जो उसे देख पाता वही उसकी ओर अँगुली उठाकर बतलाने लगता । तब इसने यहाँका रहना छोड देना ही अच्छा समझ कूच कर दिया । यहाँसे यह गंगा और गंधवतीके मिलाप होनेकी जगह आया और वहीं आश्रम बनाकर रहने लगा । एक दिन जैनतत्त्वके परम जानकार वीरभद्राचार्य अपने संघको लिए इस ओर आ गये । वशिष्ठ-तापसको पंचाग्नि तप करते देख एक मुनिने अपने गुरुसे कहा—महाराज, यह तापसी तो बड़ा ही कठिन और असह्य तप करता है । आचार्य बोले—हाँ यह ठीक है कि ऐसे तपमे भी शरीरको वेहद कष्ट विना दिये काम नहीं चलता, पर अज्ञानियोंका तप कोई प्रशसा के लायक नहीं । भला, जिनके मनमे दया नहीं, जो ससारकी सब माया, ममता और आरम्भ-सारम्भ छोड-छाड़कर योगी हुए ओर फिर वे ऐसा दयाहीन, (जिसमे हजारो लाखो जीव रोज-रोज जलते है) तप करे तो इससे ओर अधिक दु·खकी बात कौन होगी । वशिष्ठके कानोमे भी यह आवाज गई । वह गुस्सा होकर आचार्यके पास आया और बोला—आपने मुझे अज्ञानी कहा, यह क्यो ? मुझमे आपने क्या अज्ञानता देखी, बतलाइए ? आचार्यने कहा—भाई, गुस्सा मत हो । तुम्हें लक्षकर तो मैंने कोई बात नहीं कही हैं । फिर क्यों इतना गुस्सा करते हो ? मेरी धारणा तो ऐसे तप करनेवाले सभी तापसोंके सम्बन्धमें है कि वे वेचारे अज्ञानसे ठगे जाकर ही ऐसे हिंसामय तपको तप समझते हैं । यह तप नहीं है, किन्तु जीवोका होम करना है । और जो तुम यह कहते हो, कि मुझे आपने अज्ञानी क्यो बतलाया, तो अच्छा एक बात तुमं ही वतलाओ कि तुम्हारे गुरु, जो सदा ऐसा तप किया करते थे, मरकर तपके फलसे कहाँ पैदा हुए हैं ? तापस बोला—हाँ, क्यों नहीं कहूँगा ? मेरे गुरुजी स्वर्गमे गये हैं । वीरभद्राचार्यने कहा—नहीं तुम्हे इसकी मालूम ही

नहीं हो सकती । सुनो, मैं बतलाता हूँ कि तुम्हारे गुरुकी मरे बाद क्या दशा हुई, आचार्यने अवधिज्ञान जोड़कर कहा—तुम्हारे गुरु स्वर्गमे नहीं गये, किन्तु सॉप हुये हैं और इस लकड़े के साथ-साथ जल रहे हैं । तापसको विश्वास नही हुआ, बल्कि उसे गुस्सा भी आया कि इन्होने क्यो मेरे गुरुको सॉप हुआ बतलाकर उनकी बुराई की । पर आचार्यकी बात सच है या झूठ इसकी परीक्षा कर देखनेके लिये यही उपाय था कि वह उस लकड़ेको चीरकर देखे । तापसीने वैसा ही किया । लकड़ेको चीरा । वीरभद्राचार्यका कहा सत्य हुआ । सर्प उसमेंसे निकला । देखते ही तापसको बड़ा अचम्भा हुआ । उसका सब अभिमान चूर-चूर हो गया । उसकी आचार्य पर बहुत ही श्रद्धा हो गई । उसमे जैनधर्मका उपदेश सुना । सुनकर उसके हियेकी ऑखे, जो इतने दिनोसे बन्द थीं, एकदम खुल गई । हृदयमें पवित्रताका स्त्रोत फूट निकला । बहुत दिनोका कूट-कपट, मायाचार रूपी मैलापन देखते-देखते न जाने कहाँ बहकर चला गया । वह उसी समय वीरभद्राचार्यसे मुनि दीक्षा लेकर अबसे सच्चा तापसी बन गया ।

यहाँ घूमते-फिरते और धर्मोपदेश करते वशिष्ठ मुनि एकबार मथुराकी ओर फिर आये । तपस्याके लिए इन्होने गोवर्द्धन पर्वत बहुत पसन्द किया । वहीं ये तपस्या किया करते थे । एकबार इन्होंने महीना भरके उपवास किये । तपके प्रभावसे इन्हे कई विद्याएँ सिद्ध हो गई । विद्याओने आकर इनसे कहा—प्रभो, हम आपकी दासियाँ हैं । आप हमे कोई काम बतलाइए । वशिष्ठने कहा—अच्छा, इस समय तो मुझे कोई काम नहीं, पर जब होगा तब मैं तुम्हें याद करूँगा । उस समय तुम उपस्थित होना । इसलिए इस समय तुम जाओ । जिन्होंने ससारकी सब माया, ममता छोड रक्खी है, सच पूछो तो उनके लिए ऐसी ऋद्धि-सिद्धिकी कोई जरूरत नहीं । पर वशिष्ठ मुनिने लोभमे पड़कर विद्याओको अपनी आज्ञामे रहने को कह दिया । पर यह उनके पदस्थ योग्य न था ।

महीना भरके उपवासे वशिष्ठ मुनि पारणा कोशहरमे आये । उग्रसनेको उनके उपवास करनेकी पहले हीसे मालूम थी । इसलिए तभीसे उन्होने भक्तिके वश हो सारे शहरमे डौंडी पिटवा दी थी कि तपस्वी वशिष्ठ मुनिको मे ही

पारणा कराऊँगा उन्हे आहार दूँगा, और कोई न दे । सच है, कभी-कभी मूर्खता की हुई भक्ति भी दु खकी कारण बन जाया करती है । वशिष्ठ मुनिके प्रति उग्रसेन राजाकी थी तो भक्ति, पर उसमे स्वार्थका भाग होनेसे उसका उलटा परिणाम हो गया । बात यह हुई कि जब वशिष्ठ मुनि पारणाके लिए आये, तब अचानक राजाका खास हाथी उन्मत्त हो गया । वह सॉकल तुड़ाकर भाग खड़ा हुआ और लोगोको कष्ट देने लगा । राजा उसके पकड़वानेका प्रबन्ध करनेमें लग गये । उन्हें मुनिके पारणेकी बात याद न रही । सो मुनि शहरमें इधर-उधर घूम-घामकर वापिस वनमे लौट गये । शहरके और किसी गृहस्थने उन्हे इसलिए आहार न दिया कि राजाने उन्हें सख्त मना कर दिया था । दूसरे दिन कर्मसयोगसे शहरके किसी मुहल्ले मे भयंकर आग लग आई, सो राजा इसके मारे व्याकुल हो उठे । मुनि आज भी सब शहरमे तथा राजमहलमें भिक्षाके लिए चक्कर लगाकर लौट गये । उन्हे कही आहार न मिला । तीसरे दिन जरासन्ध राजाका किसी विषयको लिए आज्ञापत्र आ गया, सो आज इसकी चिन्ताके मारे उन्हे स्मरण न आया । सच है, अज्ञानसे किया काम कभी सिद्ध नहीं हो पाता । मुनि आज भी अन्तराय कर लौट गये । शहर बाहर पहुँचते न पहुँचते वे गश खाकर जमीन पर गिर पड़े । मुनिकी यह दशा देखकर एक बुढ़ियाने गुस्सा होकर कहा—यहॉका राजा बडा ही दुष्ट है । न तो मुनिको आप ही आहार देता है और न दूसरोको देने देता है । हाय ! एक निपराध तपस्वीकी उसने व्यर्थ ही जान ले ली । बुढ़ियाकी बातें मुनिने सुन लीं । राजाकी इस नीचता पर उन्हे अत्यन्त क्रोध आया । वे उठकर सीधे पर्वत पर गये । उन्होने विद्याओंको बुलाकर कहा—मथुराका राजा बड़ा ही पापी है, तुम जाकर फौरन ही मार डालो । मुनिको इस प्रकार क्रोधकी आग उगलते देख विद्याओंने कहा—प्रभो, आपको कहनेका हमे कोई अधिकार नहीं, पर तब भी आपके अच्छेके लिहाजसे और धर्म पर कोई कलंक न लगे किएक जैनमुनिने ऐसा अन्याय किया, हम नि.संकोच होकर कहेगे कि इस वेषके लिए आपकी यह आज्ञा सर्वथा अनुचित है और इसीलिए हम उसका साथ देनेके लिए भी हिचकती हैं । आप क्षमाके सागर हैं, आपके लिए शत्रु और मित्र एक जैसे हैं । मुनि पर देवियोकी इस शिक्षाका कुछ असर नहीं हुआ । उन्होंने यह कहते

हुए प्राण छोड़ दिये कि अच्छा, तुम मेरी आज्ञाका दूसरे जन्ममे तो पालन करना ही । मैं दानमे विघ्न करनेवाले इस उग्रसेन राजाको मारकर अपना बदला अवश्य चुकाऊँगा । मुनिने तपस्या नाश करनेवाले निदानको—तपका फल परजन्ममे मुझे इस प्रकार मिले, ऐसे सकल्पको करके रेवतीके गर्भमे जन्म लिया । सच है, क्रोध सब कामोको नष्ट करनेवाला और पापका मूल कारण है । एक दिन रेवतीको दुर्बल देखकर उग्रसेनने उससे पूछा—प्रिये, दिनोदिनो तुम ऐसी दुबली क्यों होती जाती हो ? मुझे चिन्तातुर देख बड़ा खेद होता है । रेवतीने कहा—नाथ, क्या कहूँ, कहते हृदय कॉपता है । नहीं जान पड़ता कि होनहार कैसी है ? स्वामी, मुझे बड़ा ही भयकर दोहला हुआ है । मैं नहीं कह सकती कि अपने यहॉ अबकी बार किस अभागेने जन्म लिया है । नाथ, कहते हुए आत्मग्लानिसे मेरा हृदय फटा पड़ता है । मैं उसे कहकर आपको और अधिक चिन्तामे डालना नहीं चाहती । उग्रसेनको अधिकाधिक आश्चर्य और उत्कण्ठा बढ़ी । उन्होंने बड़े हठके साथ पूछा—आखिर रानीको कहनी ही पडी । वह बोली—अच्छा नाथ, यदि आपका आग्रह ही है तो सुनिए, जी कड़ा करके कहती हूँ । मेरी अत्यन्त इच्छा होती है कि "मैं आपका पेट चीरकर खून पान करूँ ।" मुझे नहीं जान पडता कि ऐसा दुष्ट दोहला क्यो होता है ? भगवान् जाने । यह प्रसिद्ध है कि जैसा गर्भमे बालक आता है, दोहला भी वैसा ही होता है । सुनकर उग्रसेनको भी चिन्ता हुई, पर उसके लिए इलाज क्या था, उन्होने सोचा, दौहला बुरा या भला, इसका निश्चय होना तो अभी असंभव है । पर उसके अनुसार रानीकी इच्छा तो पूरी होनी ही चाहिए । तब इसके लिए उन्होने यह युक्ति की कि अपने आकारका एक पुतला बनवाकर उसमें कृत्रिम खून भरवाया और रानीको उसकी इच्छा पूरी करनेके लिए उन्होने कहा । रानीने अपनी इच्छा पूरी करनेके लिए उस पापकर्मको किया । वह सन्तुष्ट हुई ।

थोड़े दिनों बाद रेवतीने एक पुत्र जना । वह देखनेमें बड़ा भयकर था । उसकी ऑखोसे क्रूरता टपकी पडती थी । उग्रसेन ने उसके मुँहकी ओर देखा तो वह मुट्ठी बॉधे बडी क्रूर दृष्टिसे उनको ओर देखने लगा । उन्हें विश्वास हो गया कि जैसे बॉसोकी रगडसे उत्पन्न हुआ आग सारे वनको जलाकर

खाक कर देती है ठीक इसी तरहसे कुलमे उत्पन्न हुई दुष्ट पुत्र भी सारे कुलको जड़मूलसे उखाड़ फैंक देता है । मुझे इस लड़केकी क्रूरताको देखकर भी यही निश्चय होता है कि अब इस कुलके भी दिन अच्छे नहीं है । यद्यपि अच्छा-बुरा होना दैवाधीन है, तथापि मुझे अपने कुलकी रक्षाके निमित्त कुछ यत्न करना ही चाहिए । हाथ पर हाथ रखे बैठे रहनेसे काम नहीं चलेगा । यह सोचकर उग्रसेनने एक छोटा-सा सुन्दर सन्दूक मँगवाया और उस बालकको अपने नामकी एक अँगूठी पहनाकर हिफाजतके साथ उस सन्दूकमें रख दिया । इसके बाद सन्दूकको उन्होने यमुना नदीमें छुड़वा दिया । सच है, दुष्ठ किसीको भी प्रिय नहीं लगता ।

कौशाम्बी गंगाभद्र नामका एक माली रहता था । उसकी स्त्रीका नाम राजोदरी था । एक दिन वह जल भरनेको नदी पर आई हुई थी । तव नदीमे बहती हुई एक सन्दूक उसकी नजर पड़ी । वह उसे वाहर निकाल अपने घर ले आई । सन्दूकको राजोदरीने खोला । उसमेंसे एक बालक निकला । राजेदरी उस बालकको पाकर बडी खुश हुई । कारण कि उसके कोई लडका बाला नहीं था । उसने बड़े प्रेमसे इसे पाला-पोसा । यह बालक कॉसेकी सन्दूकमें निकला था, इसलिए राजोदरीने इसका नाम भी 'कंस' रख दिया ।

कंसका स्वभाव अच्छा न होकर क्रूरता लिए हुए था । यह अपने साथके बालकोंको बड़ा मारा-पीटा करता और बात-बात पर उन्हें तंग किया करता था । इसके अडोस-पड़ोसके लोग बड़े ही दुखी रहा करते थे । राजोदरीके पास दिनभरमे कसकी कोई पचासों शिकायतें आया करती थीं । उसे बेचारीने बहुत दिनतक तो उसका उत्पात-उपद्रव सहा, पर फिर उससे भी यह दिन रातका झगड़ा-टंटा न सहा गया । सो उसने कंसको घरसे निकाल दिया । सच है, पापी पुरुषोसे किसे भी कभी सुख नहीं मिलता । कंस अब सौरीपुर पहुँचा । यहॉ यह वसुदेवका शिष्य बनकर शास्त्रभ्यास करने लगा । थोड़े दिनोमे यह साधारण अच्छा लिख-पढ़ गया । वसुदेवकी इस पर अच्छी कृपा हो गई । इस कथाके साथ एक और कथा का सम्बन्ध है, इसलिए वह कथा यहाँ लिखी जाती है—

सिहरथ नामका एक राजा जरासन्धका शत्रु था । जरासन्धने इसे पकड़ लानेका बड़ा यत्न किया, पर किसी तरह यह इसके काबूमे नही आता था । तब जरासन्धने सारे शहरमे डौंडी पिटवाई कि वीर-शिरोमणि सिहरथको पकड़कर मेरे सामने लाकर उपस्थित करेगा, उसे मैं अपनी जीवजसा लड़की को ब्याह दूँगा और अपने देशका कुछ हिस्सा भी मैं उसे दूँगा । इसके लिए वसुदेव तैयार हुआ । वह अपने बड़े भाईकी आज्ञासे सब सेनाको साथ लिए सिहरथके ऊपर जा चढा । उसने जाते ही सिहरथकी राजधानी पोदनपुरके चारो ओर घेरा डाल दिया । और आप एक व्यापारीके वेषमे राजधानीके भीतर घुसा । कुछ खास-खास लोगोको धनका खूब लोभ देकर उसने उन्हें फोड लिया । हाथीके महावत, रथके सारथी आदिको उसे पैसेका गुलाम बनाकर अपनी मुट्ठीमे कर लिया । सिहरथको इसका समाचार लगते ही उसने भी उसी समय रणभेरी बजवाई और बड़ी वीरताके साथ वह लड़नेके लिए अपने शहरसे बाहर हुआ । दोनों ओरसे युद्ध झुझारु बाजे बजने लगे । उनकी गम्भीर आवाज अनन्त आकाशको भेदती हुई स्वर्गोके द्वारोंसे जाकर टकराई । सुखी देवोका आसन हिल गया । अमरागनाओने समझा कि हमारे यहॉ मेहमान आते हैं, सो वे उनके सत्कारके लिए हाथोमे कल्पवृक्षोके फूलोकी मनोहर मालाएँ ले-लेकर स्वर्गोके द्वारा पर उनकी अगवानीके लिए आ डटीं । स्वर्गोके दरवाजे उनसे ऐसे खिल उठे मानों चन्द्रमाओंकी प्रदर्शनी की गई हैं । थोडी ही देरमे दोनों ओरसे युद्ध छिड गया । खूब मारकाट हुई । खूनकी नदी बहने लगी । मृतकोंके सिर और धड़ उसमे तैरने लगे । दोनों ओरकी वीर सेनाने अपने-अपने स्वामीके नमक का जी खोलकर परिचय कराया । जिसे न्यायकी जीत कहते हैं, वह किसीको प्राप्त न हुई । पर वसुदेवने जो पोदनपुरके कुछ लोगोको अपने मुट्ठीमे कर लिया था, उन स्वार्थियो, विश्वासघातियोने अन्तमे अपने मालिक को दगा दे दिया । सिंहरथको उन्होने वसुदेवके हाथ पकडवा दिया । सिहरथका रथ मौकेके समय बेकार हो गया । उसी समय वसुदेवने उसे घेरकर कससे कहा—जो कि उसके रथका सारथी था, कस, देखते क्या हो ? उतर कर शत्रुको बॉध लो । कसने गुस्सेके साथ रथसे उतर कर सिहरथको बॉध लिया और रथमे रखकर उसी समय वे वहॉसे

चल दिये । सच है, अग्नि एक तो वैसे ही तपी हुई होती है और ऊपरसे यदि वायु बहने लगे तब तो उसके तपने का पूछना ही क्या ? सिहरथ को बॉध लाकर वसुदेवने जरासन्धके सामने उसे रख दिया । देखकर जरासन्ध बहुत ही प्रसन्न हुआ । अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनके लिए उसने वसुदेवसे कहा—मैं आपका बहुत की कृतज्ञ हूॅ । अब आप कृपाकर मेरी कुमारीका पाणिग्रहण कर मेरी इच्छा पूरी कीजिये । और मेरे देशके जिस प्रदेशको आप पसन्द करे मैं उसे भी देनेको तैयार हूॅ । वसुदेवने कहा—प्रभो, आपकी इस कृपा का मैं पात्र नहीं । कारण मैंने सिहरथ को नहीं बॉधा है । इसे बॉधा है मेरे प्रिय शिष्य इस कंसने, सो आप जो कुछ देना चाहे इसे देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए । जरासन्धने कसकी ओर देखकर उससे पूछा—भाई, तुम्हारी जाति-कुल क्या है ? कंसको अपने विषयमे जो बात ज्ञात थी, उसने वही स्पष्ठ बतला दी कि प्रभो, मैं तो एक मालिन का लड़का हूॅ । जरासन्धको कसंकी सुन्दंरता और तेजस्विता देखकर यह विश्वास नहीं हुआ कि वह सचमुच ही एक मालिन का लड़का होगा । इसका निश्चय करनेके लिए जरासन्धने उसकी मॉको बुलवाया । यह ठीक है कि राजा लोग प्राय· बुद्धिमान् और चतुर हुआ करते हैं । कसकी मॉको जब यह खबर मिली कि उसे राजदरबारमे बुलाया है, तब तो उसकी छाती धड़करने लग गई । वह कसकी शैतानीका हाल तो जानती ही थी, सो उसने सोचना कि जरूर कंसने कोई बड़ा भारी गुनाह किया है और इसीसे वह पकडा गया है । अब उसके साथ मेरी भी आफत आई । वह घबराई और पछताने लगी कि हाय ? मैंने क्यो इस दुष्टको अपने घर लाकर रक्खा ? अब न जाने राजा मेरा क्या हाल करेगा ? जो हो, बेचारी रोती-झींकती राजाके पास गई और अपने साथ उस सन्दूकको भी ले गई, जिसमे कि कंस निकला था । इसने राजाके सामने होते ही कॉपते-कॉपते कहा — दुहाई है महाराजकी ! महाराज, यह पापी मेरा लड़का नहीं है, मैं सच कहती हूॅ । इस सन्दूकमेसे यह निकला है । सन्दूकको आप लीजिए और मुझे छोड़ दीजिये । मेरा इसमे कोई अपराध नहीं । मालिनको इतनी घबराई देखकर राजाको कुछ हॅसी-सी आ गई । उसने कहा--नहीं, इतने डरने-घबरानेकी कोई बात नहीं । मैंने तुम्हें कोई कष्ट देनेको

नहीं बुलाया है । बुलाया है सिर्फ कंसकी खरी-खरी हकीकत जाननेके लिये । इसके बाद राजाने सन्दूक उठाकर खोला तो उसमे एक कम्बल और एक अँगूठी निकली । अँगूठी पर खुदा हुआ नाम बाँचकर राजाको कंसके सम्बन्धमे अब कोई शका न रह गई । उसने उसे एक अच्छे राजकुलमे जन्मा समझ उसके साथ अपनी जीवजसा कुमारीका ब्याह बड़े ठाटबाटसे कर दिया । जरासन्धने उसे अपना राजका कुछ हिस्सा भी दिया । कस अब राजा हो गया ।

राजा होनेके साथ ही अब उसे अपनी राज्यसीमा और प्रभुत्त्व बढ़ानेकी महत्वकांक्षा हुई । मथुराके राजा उग्रसेनके साथ उसकी पूर्व जन्मकी शत्रुता है । कस जानता था कि उग्रसेन मेरे पिता हैं, पर तब भी उन पर वह जला करता है और उसके मनमे सदा यह भावना उठती है कि मे उग्रसेनसे लड़ूँ और उनका राज्य छीनकर अपनी आशा पूरी करूँ । यही कारण था कि उसने पहली चढ़ाई अपने पिता पर ही की । युद्धमे कसकी विजय हुई । उसने अपने पिताको एक लोहे के पीजरेमे बन्द कर और शहरके दरवाजेके पास उस पींजरेको रखवा दिया । ओर आप मथुराका राजा बनकर राज्य करने लगा । कसको इतने पर भी सन्तोष न हुआ सो अपना बैर चुकानेका अच्छा मौका समझ वह उग्रसेनको बहुत कष्ट देने लगा । उन्हे खानेके लिये वह केवल कोदूकी रोटियाँ और छाछ देता । पीनेके लिए गन्दा पानी और पहननेके लिए बडे ही मैले-कुचेले चिथड़े देता । मतलब यह कि उसने एक बड़ेसे बड़े अपराधीकी तरह उनकी दशा कर रक्खी थी । उग्रसेनकी इस हालतको देखकर उनके कट्टर दुश्मनकी भी छाती फटकर उसकी आँखोसे सहानुभूतिके आँसू गिर सकते थे, पर पापी कसको उनके लिए रत्तीभर भी दया या सहानुभूति नहीं थी । सच है, कुपुत्र कुल का काल होता है । अपने भाईकी यह नीचता देखकर कसके छोटे भाई अतिमुक्तकको ससारसे बड़ी घृणा हुई । उन्होने सब मोह-माया छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ली । वसुदेव कसके गुरु थे । इसके सिवा उन्होने उसका बहुत कुछ उपकार किया था; इसलिए कसकी उनपर बडी श्रद्धा थी । उसने उन्हें अपने ही पास बुलाकर रख लिया ।

मृतकावती पुरीके राजा देवकीके एक कन्या थी । वह बडी सुन्दर थी । राजा का उस पर बहुत प्यार था । इसलिये उसका नाम उन्होने अपने ही नाम

पर देवकी रख दिया था। कंसने उसे अपनी वहिन करके मानी थी, सो वसुदेवके साथ उसने उसका व्याह कर दिया। एक दिनकी वात है कि कसंकी स्त्री जीवंजसाने देवकीके और अपने देवर अतिमुक्तकी स्त्री पुष्पवतीके वस्त्रोंको आप पहनकर नाच रही थी—हँसी-मजाक कर रही थी। इसी समय कंसके भाई अतिमुक्तक मुनि आहार के लिये आये। जीवंजसाने हँसते-हँसते मुनिसे कहा—अजी ओ देवरजी, आइए! आइए!! मेरे साथ-साथ आप भी नाचिये। देखिए, फिर वड़ा ही आनन्द आवेगा। मुनिने गंभीरतासे उत्तर दिया—वहिन, मेरा यह मार्ग नहीं है। इसलिए अलग हो जा और मुझे जाने दे। पापिनी जीवजसा ने मुनिको जाने न देकर उलटा हठ पकड़ लिया और वोली—नहीं, मैं तव तक आपको कभी न जाने दूँगी जव तक कि आप मेरे साथ न नाचेंगे। मुनिको इससे कुछ कष्ट हुआ और इसी से उन्होंने आवेगमें आ उससे कह दिया कि मूर्खे, नाचती क्यों है! जाकर अपने स्वामीसे कह कि आपकी मौत देवकीके लड़के द्वारा होगी और वह समय वहुत नजदीक आ रहा है। सुनकर जीवंजसाको वड़ा गुस्सा आया। उसने गुस्सेमें आकर देवकीके वस्त्रको, जिसे कि वह पहने हुए थी, फाड़कर दो टुकड़े कर दिये। मुनिने कहा—मूर्ख स्त्री, कपड़ेको फाड़कर देनेसे क्या होगा? देख और सुन, जिस तरह तूने इस कपड़ेकेदो टुकड़े कर दिये हैं उसी तरह देवकीके होनेवाला वीर पुत्र तेरे वापके दो टुकड़े करेगा। जीवंजसाको वड़ा ही दुःख हुआ। वह नाचना गाना सव भूल गई। अपने पतिके पास दौड़ी जाकर वह रोने लगी। सच है यह जीव अज्ञानदशामें हँसता-हँसता जो पाप कमाता है उसका फल भी इसे वड़ा ही वुरा भोगना पड़ता है। कंस जीवंजसाको रोती देखकर वड़ा घवराया। उसने पूछा—प्रिये, क्यों रोती हो? वतलाओ, क्या हुआ? संसारमें ऐसा कौन धृष्ट होगा जो कंसकी प्राणप्यारीको रुला सके! प्रिये, जल्दी वतलाओ, तुम्हें रोती देखकर मैं वड़ा दुःखी हो रहा हूँ। जीवंजसाने मुनि द्वारा जो-जो वातें सुनी थीं, उन्हें कसं से कह दिया। सुनकर कंसको भी वड़ी चिन्ता हुई। वह जीवजंसा से वोला—प्रिये, घवरानेकी कोई वात नहीं, मेरे पास इस रोगीकी भी दवा है। इसके वाद ही वह वसुदेवके पास पहुँचा और उन्हें नमस्कार कर वोला—गुरु महाराज, आपने मुझे पहले एक 'वर' दिया था। उसकी मुझे अव

जरूरत पड़ी है । कृपा कर मेरी आशा पूरी कीजिए । इतना कहकर कसने कहा—मेरी इच्छा देवकीके होनेवाले पुत्रके मार डालनेकी है । इसलिए कि मुनि ने उसे मेरा शत्रु बतलाया है । सो कृपाकर देवकी प्रसूति मेरे महलमे हो, इसके लिए अपनी अनुमति दीजिए । कंस अपने एक शिष्यकी इस प्रकार नीचता, गुरुद्रोह देखकर वसुदेवकी छाती धडक उठी । उनकी ऑखोमें ऑसू भर आये । पर करते क्या ? वे क्षत्रिय थे और क्षत्रिय लोग इस व्रतके व्रती होते हैं कि "प्राण जॉहि पर वचन न जॉहि ।" तब उन्हे लाचार होकर कंस का कहना बिना कुछ कहे-सुने मान लेना पड़ा । क्योकि सत्पुरुष अपने वचनोका पालन करने में कभी कपट नहीं करते । देवकी ये सब बातें खडी-खड़ी सुन रही थी । उसे अत्यन्त दु ख हुआ । वह वसुदेवसे बोली—प्राणनाथ, मुझसे यह दु सह पुत्र-दु ख नहीं सहा जायगा । मैं तो जाकर जिनदीक्षा ले लेती हूँ । वसुदेवने कहा—प्रिये, घबरानेकी कोई बात नहीं है, चलो, हम चलकर मुनिराज से पूछे कि बात क्या है ? फिर जैसा कुछ होगा विचार करेगे । वसुदेव अपनी प्रियाके साथ वनमे गये । वहॉ अतिमुक्तक मुनि एक फले हुए आमके झाड़के नीचे स्वाध्याय कर रहे थे । उन्हे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर वसुदेवने पूछा—हे जिनेन्द्रभगवान्के सच्चे भक्त योगिराज, कृपा कर मुझे बतलाइए कि मेरे किस पुत्र द्वारा कस और जरासधकी मौत होगी ? इस समय देवकी आमकी एक डाली पकडे हुए थी । उस पर आठ आम लगे थे । उनमे छह आम तो दो-दोकी जोड़ीसे लगे थे और उनमें ऊपर दो आम जुदा-जुदा लगे थे । इन दो आमो मे से एक आम इसी समय पृथिवी पर गिर पड़ा और दूसरा आम थोड़ी ही देर बाद पक गया । इस निमित्त ज्ञान पर विचार कर अवधिज्ञानी मुनि बोले—भव्य वसुदेव, सुनो मैं तुम्हे खुलासा समझाये देता हूँ । देखो, देवकीके आठ पुत्र होगे । उनमे छह तो नियमसे मोक्ष जॉयगे । रहे दो, सो इनमे सातवॉ जरासध और कसका मारनेवाला होगा और आठवॉ कर्मोका नाश कर मुक्तिमहिलाका पति होगा । मुनिराजसे इस सुख-समाचारको सुनकर वसुदेव और देवकीको बहुत आनन्द हुआ । वसुदेवको विश्वास था कि मुनिका कहा कभी झूँठ नहीं हो सकता । मेरे पुत्र द्वारा कस और जरासंधकी होनेवाली मौतको कोई नहीं टाल सकता । इसके बाद वे दोनो भक्तिसे मुनिको

नमस्कार कर अपने घर लौट आये । सच है जिनभगवान्के धर्म पर विश्वास करना ही सुखका कारण है ।

देवकीके जबसे सन्तान होनेकी सम्भावना हुई । तबसे उसके रहनेका प्रबन्ध कंसके ही महल पर हुआ । कुछ दिनों बाद पवित्रमना देवकीने दो पुत्रोंको एक साथ जना । इसी समय कोई ऐसा पुण्य-योग मिला कि भद्रिलापुरमें श्रुतदृष्टि सेठकी स्त्री अलकाके भी पुत्र-युगल हुआ । पर यह युगल-मरा हुआ था । सो देवकीके पुत्रोंके पुण्यसे प्रेरित होकर एक देवता इस मृत-युगलको उठा कर तो देवकीके पास रख आया और उसके जीते पुत्रोंको अलकाके पास ला रक्खा । सच है, पुण्यवानोकी देव भी रक्षा करते हैं । इसलिए कहना पडेगा कि जिन भगवान्ने जो पुण्यमार्गमें चलनेका उपदेश दिया है वह वास्तवमे सुखका कारण है । और पुण्य भगवान्की पूजा करनेसे होता है, दान देनेसे होता है और व्रत, उपवासदि करनेसे होता है । इसलिए इन पवित्र कर्मों द्वारा निरन्तर पुण्य कमाते रहना चाहिए । कसको देवकीकी प्रसूतिका हाल मालूम होते ही उसने उस मरे हुए पुत्र-युगलको उठा लाकर बड़े जोरसे शिलापर दे मारा । ऐसे पापियोंके जीवनको धिक्कार है । इसी तरह देवकी के जो दो और पुत्र-युगल हुए, उन्हे देवता वहीं अलका सेठानीके यहाँ रख आई और उसके मरे पुत्र युगलोंको उसने देवकी के पास ला रक्खा । कंसने इन दोनों युगलोंकी भी पहले युगलकी सी दशा की । देवकीके ये छहों पुत्र इसी भवसे मोक्ष जायँगे, इसलिए इनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता । ये सुखपूर्वक यही रहकर बढ़ने लगे ।

अब सातवें पुत्रकी प्रसूतिका समय नजदीक आने लगा । अबकी बार देवकीके सातवें महीनेमें ही पुत्र हो गया । यही शत्रुओंका नाश करनेवाला था; इसलिए वसुदेवको इसकी रक्षाकी चिन्ता थी । समय कोई दो तीन बजे रातका था । पानी बरस रहा था । वसुरदेव उसे गोदमें लेकर चुपके से कंसके महलसे निकल गये । बलभद्रने इस होनहार बच्चेके ऊपर छत्री लगाई । चारों ओर गाढान्धकारके मारे हाथसे हाथ तक भी न देख पड़ता था । पर इस तेजस्वी बालकके पुण्यसे वही देवता, जिसने कि इसके छह भाइयोंकी रक्षा की है, बैलके रूपमें सींगो पर दीया रक्खे आगे-आगे हो चला । आगे चलकर इन्हे

शहर बाहर होनेके दरवाजे बन्द मिले, पर भाग्यकी लीला अपरम्पार है। उससे असम्भव भी सम्भव हो जाता है। वही हुआ। बच्चेके पॉवोका स्पर्श होते ही दरवाजा भी खुल गया। आगे चले तो नदी अथाह बह रही थी। उसे पार करनेका कोई उपाय न था बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। उन्होने होना-करना सब भाग्यके भरोसे पर छोड़कर नदीमे पॉव दिया। पुण्यकी कैसा महिमा जो यमुनाका अथाह जल घुटनों प्रमाण हो गया। पार होकर ये एक देवोके मन्दिरमे गये। इतने मे इन्हे किसीके आनेकी आहट सुनाई दी। ये वेदीके पीछे छुप गये।

इसीसे संबन्ध रखनेवाली एक और घटनाका हाल सुनिये। एक नन्द नामका गुवाल यहीं पासके गॉवमे रहता हे। उसकी स्त्रीका नाम यशोदा है। यशोदाके प्रसूति होनेवाली थी, सो वह पुत्रकी इच्छासे देवी की पूजा वगैरह कर गई थी। आज ही रातको उसके प्रसूति हुई। पुत्र न होकर पुत्री हुई। उसे बड़ा दु·ख हुआ कि मैंने पुत्रकी इच्छासे देवी की इतनी तो आराधना-पूजा की और फिर भी लड़की हुई। मुझे देवी के इस प्रसादकी जरूरत नहीं। यह विचार कर वह उठी और गुस्सामे आकर उस लड़कीको लिए देवी के मन्दिर पहुॅची। लड़कीको देवीके सामने रखकर वह बोली—देवी, लीजिए आपकी पुत्रीको ? मुझे इसकी जरूरत नहीं है। यह कहकर यशोदा मन्दिरसे चली गई। वसुदेवने इस मौकेको बहुत ही अच्छा समझ पुत्रको देवीके सामने रख दिया और लड़कीको आप उठाकर चल दिये। जाते हुए वे यशोदासे कहते गये कि अरी, जिसे तू देवताके पास रख आई है वह लड़की नहीं है; किन्तु एक बहुत ही सुन्दर लडका है। जा उसे जल्दी ले आ; नहीं तो और कोई उठा ले जायगा। यशोदाको पहले तो आश्चर्य-सा हुआ। पर फिर वह अपने पर देवीकी कृपा समझ झटपट दौड़ी गई और जाकर देखती तो सचमुच ही वह एक सुन्दर बालक है। यशोदाके आनन्दका अब कुछ ठिकाना न रहा। वह पुत्रको गोदमें लिए उसे चूमती हुई घर पर आ गई। सच है, पुण्यका कितना वैभव है इसका कुछ पार नहीं। जिसकी स्वप्नमें भी आशा न हो वही पुण्यसे सहज मिल जाता है।

इधर वसुदेव और बलभद्र घर पहुॅचकर उस लडकीको देवकीको सौंप दिया। सबेरा होते ही जब लडकीके होनेका हाल कसको मालूम हुआ

तो उस पापी ने आकर बेचारी उस लड़कीकी नाक काट ली ।

यशोदाके यहाँ वह पुत्र सुखसे रहकर दिनों-दिन बढ़ने लगा । जैसे-जैसे वह उधर बढ़ता है कंसके यहाँ वैसे ही अनेका प्रकार के अपशकुन होने लगे । कभी आकाशसे तारा टूटकर पड़ता, कभी बिजली गिरती, कभी उल्का गिरती और कभी और कोई भयानक उपद्रव होता । यह देख कंसको बड़ी चिन्ता हुई । वह बहुत घबराया । उसकी समझमे कुछ न आया कि यह सब क्या होता है ? एक दिन विचार कर उसने एक ज्योतिषीको बुलाया और उसे सब हाल कहकर पूछा कि पंडितजी, यह सब उपद्रव क्यो होते हैं ? इसका कारण क्या आप मुझे कहेगे ? ज्योतिषीने निमित्त विचार कर कहा—महाराज, इन उपद्रव का होना आपके लिए बहुत ही बुरा है । आपका शत्रु दिनो-दिन बढ़ रहा है । उसके लिए कुछ प्रयत्न कीजिए । और वह कोई बड़ी दूर न होकर यही गोकुलमे है । कस बड़ी चिन्तामें पडा । वह अपने शत्रुके मारनेका क्या यत्न करे, यह उसकी समझमें न आया । उसे चिन्ता करते हुए अपनी पूर्व सिद्ध हुई विद्याओकी याद. हो उठी । एकदम चिन्ता मिटकर उसके मुँह पर प्रसन्नताकी झलक देख पड़ी । उसने उन विद्याओंको बुलाकर कहा—इस समय तुमने बड़ा दिया । आओ, अब पलभरको भी देरी न कर जहाँ मेरा शत्रु हो उसे ठार मारकर मुझे बहुत जल्दी उसकी मौतके शुभ समाचार दो । विद्याएँ वासुदेव को मारनेको तैयार हो गई । उनमें पहली पूतना विद्याने धायके वेषमें जाकर वासुदेवको दूधकी जगह विष पिलाना चाहा । उसने जैसे ही उसके मुँहमे स्तन दिया, वासुदेवने उसे इतने जोरसे काटा कि पूतनाके होश गुम हो गये । वह चिल्लाकर भाग खड़ी हुई । उसकी यहाँतक दुर्दशा हुई कि उसे अपने जीनेमे भी सन्देह होने लगा । दूसरी विद्या कौएके वेशमे वासुदेवकी आँखे निकाल लेनेके यत्नमे लगी, सो उसने चोच, पींख वगैरहको नोंच नाचकर उसे भी ठीक कर दिया । इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं देवी जुदा-जुदा वेषमे वासुदेवको मारनेका यत्न करने लगीं, पर सफलता किसीको भी न हुई । इसके विपरीत देवियोंको ही बहुत कष्ट सहना पडा । यह देख आठवीं देवीको बड़ा गुस्सा आया । वह तब कालिका का वेष लेकर वासुदेवको मारनेके लिए तैयार हुई । वासुदेवने उसे

भी गौवर्द्धन पर्वत उठाकर उसके नीचे दबा दिया। मतलब यह है विद्याओने जितनी भी कुछ वासुदेवके मारनेकी चेष्टा की वह व्यर्थ गई। वे सब अपना-सा मुँह लेकर कंसके पास पहुँची और उससे बोली—देव, आपका शत्रु कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य नहीं। वह बड़ा बलवान है। हम उसे किसी तरह नहीं मार सकतीं। देवियाँ इतना कहकर चल दीं। उनकी इन विभीषिकाको सुनकर कस हतबुद्धि हो गया। वह इस बातसे बड़ा घबराया कि जिसे देवियाँ तक जब न मार सकीं तब तो उसका मारना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है। तब क्या मैं उसीके हाथों मारा जाऊँ ? नहीं, जब तक मुझमे दम है, मैं उसे बिना मारे कभी नहीं छोडूँगाँ। देवियाँ आखिर थीं तो स्त्री-जाति ही न ? जो स्वभाव से ही कायर-डरपोक होती हैं, वे बेचारी एक वीर पुरुषको क्या मार सकेगी ! अस्तु, अब मैं स्वयं उसके मारने का यत्न करता हूँ। फिर देखता हूँ कि वह कहाँ तक मुझसे बचता है। आखिर वह है एक गुवालका छोकरा और मैं वीर राजपूत ! तब क्या मैं उसे न मार सकूँगा ? यह असम्भव हैं। उद्यम सब काम सिद्ध हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कंसने अपने मनकी खूब समझौती कर वासुदेवके मारनेकी एक नई योजना की। उसके यहाँ दो बडे प्रसिद्ध पहलवान थे। उनके साथ कुश्ती लडकर जीतनेवालेको एक बडा भारी पारितोषिक देना उसने प्रसिद्ध किया। कंसने सोचा था कि पहले तो मेरे ये पहलवान ही उसे मच्छरकी तरह पीस डालेगे और कोई दैवयोगसे इनके हाथसे वह बच भी गया तो मैं तो उसकी छाती पर ही तलवार लिये खडा रहूँगा, सो उस समय उसका सिर धड से जुदा करनेमे मुझे देर ही क्या लगेगी ? इससे बढ़कर ओर कोई उपाय शत्रुके मारने का नहीं है। कसको इस विचारसे बडा धीरज बँधा। कुश्ती का जो दिन नियत था, उस दिन नियत किये स्थान पर हजारो आलम ठसाठस भर गये। सारी मथुरा उस वीरके देखनेको उमड़ पडी कि देखे इन पहलवानोंके साथ कौन वीर लडेगा। सबके मन बड़े उत्सुक हो उठे। आँखें उस वीर पुरुषकी बाट जोहने लगीं। पर उन्हें अब तक कोई लडनेको तैयार नहीं दिखाई पड़ा। कसका मन कुछ निराश होने लगा। कुश्तीका समय भी बहुत नजदीक आ गया। पर अभी तक उसने किसीको अखाड़ेमे उतरते नहीं देखा। यह देख उसकी छाती

धड़की । लोग जानेकी तैयारी ही मे होगे कि इतनेमे एक चौबीस पच्चीस वर्षका जवान भीड़को चीरता हुआ आया और गर्जकर बोला—हाँ जिसे कुश्ती लड़ना हो वह अखाड़ेमे उतर कर अपना बल बतावे ! उपस्थित मंडली इस आये हुए पुरुषकी देव-दुर्लभ सुन्दरता और वीरताको देखकर दंग रह गई । बहुतोको उसकी छोटी उमर और सुन्दरता तथा उन पहलवानोकी भीम काय देखकर नाना तरहकी कुशंका भी होने लगी । और साथ ही उनका हृदय सहानुभूतिसे भर आया । पर उसे रोक देनेका उनके पास कोई उपाय न था । इसलिए उन्हे दुःख भी हुआ । जो हो, आगन्तुक युवाकी उस हृदय हिलानेवाली गर्जनाको सुनकर एक भीमकाय पहलवानने अखाड़ेमें उतरकर खम ठोका । और सामनेवाले वीरको अखाड़ेमे उतरते के लिए ललकारा । युवा भी बिजलीकी तरह चपलतासे झटसे अखाडेमें दाखिल हो गया । इशारा होते ही दोनोंकी मुठभेड़ हुई । युवाकी वीरश्री और चंचलता इस समय देखनेके ही योग्य थी । उस मूर्तिमान वीरश्रीने कुछ देर तक तो उस पहलवानको खेल खिलाया और अन्तमे उठाकर ऐसा पछाडा कि उसे आसमानके तारे दीख पड़ने लगे । इतने में ही उसका साथी दूसरा पहलवान अखाड़े में उतरा । वासुदेवने उसकी भी यही दशा की । उपस्थित मंडलीके आनन्दकी सीमा न रही । तालियोसे उसका खूब जयजयकार मनाया गया । अब तो कंससे किसी तरह न रहा गया । उसके हृदयमे ईर्षा, द्वेष, प्रतिहिंसा और मत्सरताकी आग भडक उठी । वह तलवार हाथमें लिये ललकार कर बोला, हाँ ठहरो ! अभी लडाई बाकी है । यह कहकर वह स्वयं हाथमें शमशेर लिये अखाड़ेमें उतरा । उसे देखकर सब भौंचकसे रह गये । किसीकी समझमें न आया कि यह रहस्य क्या है ? क्यों ऐसा किया जा रहा है ? किसीको कुछ कहने विचारनेका अधिकार न था । इसलिए वे सब लाचार होकर उस भंयकर समयकी प्रतीक्षा करने लगे कि अन्त मे देखे ऊँट किस करवट बैठता है । जो हो, पर इतना अवश्य है कि प्रकृतिको अधिक अन्याय, अत्याचार सहन नहीं होता, और इसलिए वह फिर एक ऐसी शक्ति पैदा करती है जो उन अत्याचारोके अंकुरको जड़मूलसे ही उखाड फैंक देती है । कंसके भयानक अत्याचारोंसे सारी प्रजा त्राह-त्राह कर उठी थी । शान्ति, सुखका कहीं नाम निशान भी न रह गया था । इसीलिए

प्रकृतिने वासुदेव सरीखी एक महाशक्तिको उत्पन्न किया। कसको अखाडेमें उतरा देखकर वासुदेव भी तलवार उठा उसके सामने हुआ। दोनोंने अपनी-अपनी तलवारको सम्हाला। कंसका हृदय क्रोधकी आगसे जल ही रहा था, सो, उसने झपट कर वासुदेव पर पहला वार किया। श्रीकृष्णने उसके वारको बड़ी बुद्धिमानीसे बचाकर उसपर एक ऐसा जोरका बार किया कि पहला ही बार कसंसे सम्हालते न बना और देखते-देखते वह धड़ामसे गिरकर सदाके लिए पृथिवीकी गोदमे सो गया। प्रकृतिको सन्तोष हुआ। उसने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लोगो को भी यह शिक्षा दे दी कि देखो, निर्बलो पर अत्याचार करनेका तुम्हें कोई अधिकार नहीं। मैं ऐसे पापियोका पृथिवी पर नाम निशान भी नहीं रहने देता। यदि तुम सुखी रहना पसन्द करते हो तो दूसरोको सुखी करनेका यत्न करो। यह मेरा आदेश है।

कसको निरीह प्रजा पर अत्याचार करनेका उपयुक्त प्रायश्चित्त मिल गया। अशान्तिका छत्र भंग होकर फिरसे शान्तिके पवित्र शासनकी स्थापना हुई। वासुदेवने उसकी समय कसके पिता उग्रसेनको लाकर पीछा राज्यसिंहासन पर अधिष्ठित किया। इसके बाद ही श्री कृष्णने जरासन्ध पर चढ़ाई करके उसे भी कसका रास्ता बतलाया और आप फिर अर्धचक्रवर्ती होकर प्रजाका नीतिके साथ शासन करने लगा।

—— यह कथा प्रसगवश यहाॅ सक्षेपमें लिख दी गई हैं, जिन्हें विस्तारके साथ पढ़ना हो उन्हे हरिवंशपुराणका स्वाध्याय करना चाहिये।

जो क्रोधी, मायाचारी, ईर्षा करनेवाले, द्वेष करनेवाले और मानी थे, धर्मके नामसे जिन्हे चिढ़ थी, जो धर्मसे उलटा चलते थे, अत्याचारी थे, जड़बुद्धि थे और खोटे कर्मोकी जाल में सदा फॅसे रहकर कोई पाप करनेसे नहीं डरते थे, ऐसे कितने मनुष्य अपने की कर्मोसे कालके मुॅहमें नहीं पड़े ? अर्थात् कोई बुरा काम करे या अच्छा, कालके हाथ तो सभीको पड़ना ही पड़ता है। पर दोनोंमे विशेषता यह होती है कि एक मरे बाद भी जन साधारणकी श्रद्धाका पात्र होता है और सुगति लाभ करता है और दूसरा जीते जी ही अनेक तरहकी निन्दा, बुराई तिरस्कार आदि दुर्गुणोका पात्र बनकर

अन्तमें कुगति में जाता है । इसलिए जो विचारशील है, सुख प्राप्त करना जिनका ध्येय है, उन्हें तो यही उचित है कि वे संसारके दुःखोंका नाश कर स्वर्ग या मोक्षका सुख देनेवाले जिनभगवान्का उपदेश किया पवित्र जिनधर्मका सेवन करें ।

---

* वह विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और वह मृत्यु जिससे लोकोत्तर यश की प्राप्ति हो, ये दोनों चीज महान आत्म-बलशाली पुरुषों के मार्ग में ही आती हैं ।

* निस्सन्देह यह मनुष्यों के लिए बड़ी ही लज्जा की बात है कि वे उस चिरस्मृति का सम्पादन नहीं करते, जिसे लोग कीर्ति कहते हैं ।

* प्रशंसा करने वालों के मुख पर सदा उन लोगों का नाम रहता है जो गरीबों को दान देते हैं ।

४५. लक्ष्मीमतीकी कथा

जिन जगद्बन्धुका ज्ञान लोक और अलोक का प्रकाशित करनेवाला है जिनके ज्ञान द्वारा सब पदार्थ जाने जा सकते हैं, अपने हितके लिए उन जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर मान करनेके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है। मगधदेशके लक्ष्मी नामके सुन्दर गॉवमें सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम लक्ष्मीमती था। लक्ष्मीमती सुन्दरी थी। अवस्था इसकी जवान थी। इसमे सब गुण थे, पर एक दोष भी था। वह यह कि इसे अपनी जातिका बड़ा अभिमान था और यह सदा अपनेको सिंगारने-सजानमे मस्त रहती थी।

एक दिन पन्द्रह दिनके उपवास किये हुए श्रीसमाधिगुप्त मुनिराज आहारके लिए इसके यहॉ आये। सोमशर्मा उन्हें आहार करानेके लिए भक्तिसे ऊँचे आसन पर विराजमान कर और अपनी स्त्रीको उन्हे आहार करा देनेके लिए कहकर आप कहीं बाहर चला गया। उसे किसी कामकी जल्दी थी।

इधर ब्राह्मणी बैठी-बैठी कॉचमें अपना मुॅख देख रही थी। उसने अभिमानमे आकर मुनिको बहुतसी गालियॉ दीं, उनकी निन्दी की और किवाड़ बन्द कर लिए। हाय ! इससे अधिक और क्या पाप होगा ? मुनिराज शान्त-स्वभावी थे, तपके समुद्र थे, सबका हित करनेवाले थे, अनेक गुणोसे युक्त थे और उच्च चारित्रके धारक थे; इसलिए ब्राह्मणीकी उस दुष्टता पर कुछ ध्यान न देकर वे लौट गये। सच है, पापियोके यहॉ आई हुई निधि भी चली जाती है। मुनि निन्दाके पापसे लक्ष्मीमतीके सातवे दिन कोढ़ निकल आया। उसकी दशा बिगड गई। सच है, साधु-सन्तोको निन्दा-बुराईसे कभी शान्ति नहीं मिलती। लक्ष्मीमतीको बुरी हालत देखकर घरके लोगोने उसे घरसे बाहर कर दिया। यह कष्ट पर कष्ट उससे न सहा गया, सो वह आगमें बैठकर जल मरी। उसकी मौत बड़े बुरे भावोंसे हुई। उसे पापसे वह इसी गॉवमे एक धोबीके यहॉ गधी हुई। इस दशामे इसे दूध पीनेको नहीं मिला। यह मरकर सूअरी हुई। फिर दो बार कुत्तीकी पर्याय इसने ग्रहण की। इसी दशामे यह वनमें दावाग्निसे जल मरी। अब वह नर्मदा नदीके किनारे पर बसे हुए भृगुकच्छ गॉवमें एक मल्लाहके यहॉ काणा नामकी लड़की हुई। शरीर इसका

जन्मसे ही बड़ा दुर्गन्धित था । किसीकी इच्छा इसके पास तक बैठनेकी नहीं होती थी । देखिये अभिमानका फल, कि लक्ष्मीमती ब्राह्मणी थी, पर उसने अपनी जातिका अभिमान कर अब मल्लाहके यहाँ जन्म लिया । इसलिए बुद्धिमानोको कभी जातिका गर्व न करना चाहिए ।

एक दिन काणा लोगोको नाव द्वारा नदी पार करा रही थी । इसने नदी किनारे पर तपस्या करते हुए उन्हीं मुनिको देखा, जिनकी कि लक्ष्मीमतीकी पर्यायमें इसने निन्दा की थी । उन ज्ञानी मुनिको नमस्कार कर इसे पूछा-प्रभो, मुझे याद आता है कि मैंने कहीं आपको देख है ? मुनिने कहा बच्ची, तू पूर्वजन्ममें ब्राह्मणी थी, तेरा नाम लक्ष्मीमती था और सोमशर्मा तेरा भर्त्ता था । तूने अपने जातिके अभिमानमें आकर मुनिनिन्दा की । उसके पापसे तेरे कोढ़ निकल आया । तू उस दुःखको न सहकर आगमें जल मरी । इस आत्महत्याके पापसे तुझे गधी, सुअरी ओर दो बार कुत्ती होना पड़ा । कुत्ती के भवसे मरकर तू इस मल्लाह के यहाँ पैदा हुई है । अपना पूर्व भवका हाल सुनकर काणाको जातिस्मरण ज्ञान हो गया, पूर्वजन्मकी सब बातें उसे याद हो उठीं । वह मुनिको नमस्कार ऋर बड़े दुःखके साथ बोली-प्रभो, मैं बड़ी पापिनी हूँ । मैंने साधु महात्माओंकी बुराई कर बड़ा ही नीच काम किया है । मुनिराज, मेरी पापसे अब रक्षा करो, मुझे कुगतियोंमें जानेसे बचाओं तब मुनिने उसे धर्मका उपदेश दिया । काणा सुनकर बड़ी सन्तुष्ट हुई । उसे बहुत वैराग्य हुआ । वह वहीं मुनिके पास दीक्षा लेकर क्षुल्लिका हो गई । उसने फिर अपनी शक्ति के अनुसार खूब तपस्या की, अन्तमे शुभ भावोंसे मरकर वह स्वर्ग गई । यही काणा फिर स्वर्गसे आकर कुण्ड नगरके राजा भीष्मकी महारानी यशस्वतीके रूपिणी नामकी बहुत सुन्दर कन्या हुई । रूपिणीका ब्याह वासुदेवके साथ हुआ । सच है, पुण्यके उदयके जीवोंको सब धन-दौलत मिलती है ।

जैनधर्म सबका हित करनेवाला सर्वोच्च धर्म है । जो इसे पालते हैं वे अच्छे कुलमें जन्म लेते है, उन्हें यश-प्राप्त होती है, वे कुगतिमें न जाकर उच्च गति में जाते हैं और अन्तमें मोक्ष सर्वोच्चे सुख लाभ करते हैं ।

---

४६. पुष्पदत्ताकी कथा

अनन्त सुखके देनेवाले और तीनों जगत्‌के स्वामी श्रीजनेंन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर मायाको नाश करनेके लिए मायाविनी पुष्पदत्ताकी कथा लिखी जाती है ।

प्राचीन समयसे प्रसिद्ध अजितावर्त नगरके राजा पुष्पचूल की रानीका नाम पुष्पदत्ता था । राजसुख भोगते हुए पुष्पचूलने एक दिन अमरगुरु मुनिके पास जिनधर्मका स्वरूप सुना, जो धर्म स्वर्ग और मोक्षके सुखकी प्राप्तिका कारण है । धर्मोपदेश सुनकर पुष्पचूलको संसार, शरीर, भोगादिकोंसे बड़ा वैराग्य हुआ । वे दीक्षा लेकर मुनि हो गये । उनकी रानी पुष्पदत्ताने भी उनकी देखा-देखी ब्रह्लिला नामकी आर्यिकाके पास आर्यिकाकी दीक्षा ले ली । दीक्षा ले-लेने पर भी इसे अपने बड़प्पन, राजकुलका अभिमान जैसाका तैसा ही बना रहा । धार्मिक आचार-व्यवहारसे यह विपरीत चलने लगी । और आर्यिकाको नमस्कार, विनय करना इसे अपने अपमानका कारण जान पड़ने लगा । इसलिए यह किसीको नमस्कारादि नहीं करती थी । इसके सिवा इस योग अवस्था मे भी यह अनेक प्रकारकी सुगन्धित वस्तुओं द्वारा अपने शरीरको सिंगारा करती थी । इसका इस प्रकार बुरा, धर्मविरुद्ध आचार-विचार देखकर एक दिन धर्मात्मा ब्रह्लिलाने इसे समझाया कि इस योगदशामें तुझे ऐसा शरीरका सिंगार आदि करना उचित नहीं है । ये बाते धर्मविरुद्ध और पापकी कारण है । इसलिए इनसे विषयोकी इच्छा बढ़ती है । पुष्पदत्ताने कहा—नहीं जी, मैं कहाँ सिंगार-विगार करती हूँ । मेरा तो शरीर ही जन्म से ऐसी सुगन्ध लिये है । सच है, जिनके मनमें स्वभावसे धर्म-वासना न हो उन्हें कितना भी समझाया जाय, उनपर उस समझानेका कुछ असर नहीं होता । उनकी प्रवृत्ति और अधिक बुरे कामोकी ओर जाती है । पुष्पदत्ताने यह मायाचार कर ठीक न किया । इसका फल इसके लिए बुरा हुआ । वह मरकर इस मायाचारके पापसे चम्पापुरीमे सागरदत्त सेठके यहाँ दासी हुई । इसका नाम जैसा पूतिमुखी था, इसके मुँहसे भी सदा वैसी दुर्गन्ध निकलती रहती थी । इसलिए बुद्धिमानोको चाहिए कि वे मायाको पापकी कारण जानकर उसे दूरसे

ही छोड़ दे । यही माया पशुपतिके दुःखोको कारण है और कुल, सुन्दरता, यश, माहात्म्य, सुगति, धन-दौलत तथा सुख आदिका नाश करनेवाली है और संसारके बढ़ानेवाली लता है । यह जानकर मायाको छोड़े हुए जैनधर्मके अनुभवी विद्वानोंको उचित है कि वे धर्मकी ओर अपनी बुद्धिका लगावें ।

---

* सत्कर्म से विमुख हो जाना और कुकर्म करना निस्संदेह बुरा है, पर मुख पर हंस कर बोलना और पीठ पीछे निन्दा करना उससे भी बुरा है ।

* जो बुद्धिमान मनुष्य न्याय की बात को समझता है और दूसरों की वस्तुओं को लेना नहीं चाहता, लक्ष्मी उसकी श्रेष्ठता को जानती है और उसे ढूँढती हुई उसके घर जाती है ।

* जो मनुष्य दूसरों को देते हुए नहीं देख सकता, उसका कुटुम्ब रोटी और कपड़ों तक के लिए मारा मारा फिरेगा और नष्ट हो जायेगा ।

* दुष्टा ईर्ष्या दरिद्रता दानवी को बुलाती है और मनुष्य को नरक के द्वार तक ले जाती है ।

४७. मरीचिकी कथा

सुखरूपी धानको हरा-भरा करनेके लिए जो मेघ समान हैं, ऐसे जिनभगवान्‌के चरणोको नमस्कर कर भरत-पुत्र मरीचिकी कथा लिखी जाती है, जैसी कि वह और शास्त्रोमे लिखी है।

अयोध्या में रहनेवाले सम्राट् भरतेश्वर भरत के मरीचि नामका पुत्र हुआ। मरीचि भव्य था और सरलमन था। जब आदिनाथ भगवान्, जो कि इन्द्र, धरणेन्द्र, विद्याधर चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा सदा पूजा किये जाते थे, संसार छोड़कर योगी हुए तब उनके साथ कोई चार हजार राजा और भी साधु हो गये। इस कथा नायक मरीचि भी इन साधुओंमें था।

भरतराज एक दिन भगवान् आदिनाथ तीर्थकरका उपदेश सुननेको समवशरणमे गये। भगवान्‌को नमस्कार कर उन्होने पूछा—भगवन् आपके बाद तेईस तीर्थंकर और होगे, ऐसा मुझे आपके उपदेशसे जान पड़ा। पर इस सभामे भी कोई ऐसा महापुरुष जो तीर्थंकर होनेवाला हो ? भगवान् बोले—हॉ, है। वह यही तेरा पुत्र मरीचि, जो अन्तिम तीर्थंकर महावीरके नामसे प्रख्यात होगा। इसमे कोई सन्देह नहीं। सुनकर भरतकी प्रसन्नताका तो कुछ ठिकाना न रहा और इसी बातसे मरीचिकी मतिगति उलटी ही हो गई। उसे अभिमान आ गया कि अब तो मैं तीर्थंकर होऊँगा ही, फिर मुझे नगे रहना, दुःख सहना, पूरा खाना-पीना नहीं, यह सब कष्ट क्यों ? किसी दूसरे वेषमें रहकर मैं क्यों न सुख आरामपूर्वक रहूँ ! बस, फिर क्या था? जैसे ही विचारोका हृदयमे उदय हुआ, उसी समय वह सब व्रत, संयम, आचार-विचार, सम्यक्त्व आदिको छोड-छाड़ कर तापसी बन गया और सांख्य, परिव्राजक आदि कई मतोको अपनी कल्पनासे चलाकर संसारके घोर दुःखोका भोगनेवाला हुआ। इसके बाद वह अनेक कुगतियोमे घूमा किया। सच है, प्रमाद, असावधनी या कषाय जीवोके कल्याण-मार्गमें बड़ा ही विघ्न करनेवाली है और अज्ञानसे भव्यजन भी प्रमादी बनकर दुःख भोगते हैं। इसलिए ज्ञानियोको धर्मकार्योंमे तो कभी भूलकर भी प्रमाद करना ठीक नहीं है। मोहकी लीलासे मरीचिको चिरकाल तक संसारमे घूमना पड़ा। इसके बाद पापकर्मकी कुछ शान्ति होनेसे

उसे जैनधर्मका फिर योग मिल गया । उसके प्रसादसे वह नन्द नामका राजा हुआ । फिर किसी कारणसे इसे ससारसे वैराग्य हो गया । मुनि होकर इसने सोलहकारणभावना द्वारा तीर्थंकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया । यहॉसे यह स्वर्ग गया । स्वर्गायु पूरी होने पर इसने कुण्डलपुरमें सिद्धार्थ राजाकी प्रियकारिणी प्रियाके यहॉ जन्म लिया । ये ही संसार-पूज्य महावीर भगवान्के नामसे प्रख्यात हुए । इन्होंने कुमारपनमें ही दीक्षा लेकर तपस्या द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया । देव, विद्याधर चक्रवर्त्तियों द्वारा ये पूज्य हुए । अनेक जीवोंको इन्होंने कल्याणके मार्ग पर लगाया । अपने समयमें धर्मके नाम पर होनेवाली बे-शुमार पशु हिंसाका इन्होंने घोर विरोध कर उसे जड़मूलसे उखाड़ फैंक दिया । इनके समयमें अहिंसा धर्मकी पुनः स्थापना हुई । अन्तमें ये अघातिया कर्मोंका भी नाश कर परमधाम-मोक्ष चले गये । इसलिये हे आत्मसुखके चाहनेवालों, तुम्हे सच्चे मोक्ष सुखकी यदि चाह है तो तुम सदा हृदयमें जिनभगवान्के पवित्र उपदेशको स्थान दो । यही तुम्हारा कल्याण करेगा । विषयोंकी ओर ले जानेवाले उपदेश, कल्याण-मार्गकी ओर नहीं झुका सकते ।

वे वद्धर्मान-महावीर भगवान् संसारमें सदा जय लाभ कर, उनका पवित्र शासन निरन्तर मिथ्यान्धकार का चमकता रहे, जो भगवान् जीवमात्रका हित करनेवाले हैं, ज्ञानके समुद्र हैं, राजों, महाराजों द्वारा पूज्यनीय हैं और जिनकी भक्ति स्वर्गादिका उत्तम सुख देकर अन्तमें अनन्त, अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मीसे मिला देती है ।

-----

* क्या तुम जानना चाहते हो कि बुद्धि का उथलापन किसे कहते हैं? बस उसी अहंकार को जिससे मनुष्य मन में समझता है कि मैं बड़ा सयाना हूॅ ।

४८. गन्धमित्रकी कथा

अनन्त गुण-विराजमान और संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर गन्धमित्र राजाकी कथा लिखी जाती है, जो घ्राणेन्द्रियके विषयमे फॅसकर अपनी जान गॅवा बैठा है ।

अयोध्याके राजा विजयसेन और रानी विजयवतीके दो पुत्र थे । इनके नाम थे जयसेन और गन्धमित्र । इनमे गन्धमित्र बड़ा लम्पटी था । भौंरेकी तरह नाना प्रकार के फूलोके सूॅघनेमे वह सदा मस्त रहता था ।

इनके पिता विजयसेन एक दिन कोई कारण देखकर ससारसे विरक्त हो गये । इन्होने अपने बड़े लड़के जयसेनको राज्य देकर और गन्धमित्रको युवराज बनाकर सागरसेन मुनिराजसे योग ले लिया । सच है, जो अच्छे पुरुष होते है उनकी धर्मकी ओर स्वभाव हीसे रुचि हो ती

है ।

जयसेनके छोटे भाई गन्धमित्रको युवराज पद अच्छा नहीं लगा । इसलिये कि उसकी महत्वकाक्षा राजा होनेकी थी तब उसने राज्यके लोभमे पड़कर अपने बड़े भाई विरुद्ध षड्यत्र रचा । कितने ही बडे-बड़े कर्मचारियो को उसने धनका लोभ देकर उभारा, प्रजामेसे भी बहुतोको उल्टी- सीधी सुझाकर बहकाया । गन्धमित्रको इसमे सफलता प्राप्त हुई । उसने मौका पाकर बड़े भाई जयसनेको सिहासनसे उतार राज्य बाहर कर दिया और आप राजा बन बैठा । राजवैभव सचमुच ही महापापका कारण है । देखिए न, इस राजवैभवके लोभमे पड़कर मूर्खजन अपने सगे भाईकी जानतक लेनेकी कोशिश रहते हैं ।

राज्य-भ्रष्ट जयसेनको अपने भाईके इस अन्यायसे बडा दु:ख हुआ । इसका उसे ठीक बदला मिले, इस उपायमे अब वह भी लगा । प्रतिहिंसासे अपने कर्त्तव्यको वह भूल बैठा । उस दिनका रास्ता वह बड़ी उत्सुकतासे देखने लगा जिस दिन गन्धमित्रको वह ठार मारकर अपने हृदयको सन्तुष्ट करे ।

गन्धमित्र लम्पटी तो था ही, सो रोज-रोज अपनी स्त्रियोको साथ लिए

जाकर सरयू नदीमे उनके साथ जलक्रीड़ा, हँसी, दिल्लगी किया करता था। जयसेनने इस मौकेको अपना बदला चुकानेके लिए बहुत ही अच्छा समझा। एक दिन उसने जहरके पुट दिये अनेक प्रकारके अच्छे-अच्छे मनोहर फूलोंको ऊपरकी ओरसे नदीमें बहा दिया। फूल गन्धमित्रके पास होकर बहे जा रहे थे। गन्धमित्र उन्हे देखते ही उनके लेनेके लिए झपटा। कुछ फूलोंको हाथमे ले वह सूँघने लगा। फूलोंके विषका उस पर बहुत जल्दी असर हुआ और देखते-देखते वह चल बसा। मरकर गन्धमित्र घ्राणेन्द्रियके विषयकी अत्यन्त लालसासे नरक गया। सो ठीक, इंद्रियोंके अधीन हुए लोगोंका नाश होता ही है।

देखिये, गंधमित्र केवल एक विषयका सेवन कर नरकमें गया, जो कि अनन्त दुःखोंका स्थान है। तब जो लोग पाँचों इन्द्रियोंके विषयोंका सेवन करनेवाले हैं, वे क्या नरकोंमे न जायँगे ? अवश्य जॉयगे। इसलिए जिन बुद्धिमानों को दुःख सहना अच्छा नहीं लगता या वे दुःखोको चाहते ही नहीं, तो उन्हे विषयोकी ओरसे अपने मनको खींचकर जिनधर्मकी ओर लगाना चाहिये।

* जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को उसी तरह अपने में खींच सकता है, जिस तरह कछुआ अपने हाथ पांव को भीतर छिपा लेता है, उसने अपने समस्त आगामी जन्मों के लिए खजाना जमा कर रखा है।

* जो पुरुष समझ बूझ कर अपनी इच्छाओं का दमन करता है, उसे सभी सुखद वरदान प्राप्त होगें।

४९. गन्धर्वसेनाकी कथा

सब सुखोंके देनेवाले जिनभगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर मूर्खिणी गन्धर्वसेनाका चरित लिखा जाता है । गन्धर्वसेना भी एक ही विषयकी अत्याशक्तिसे मौतके पंजे फँसी थी ।

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा गन्धर्वदत्तकी रानी गन्धर्वदत्ताके गन्धर्वसेना नामकी एक कन्या थी । गन्धर्वसेना गान विद्या बड़ी जानकार थी । और इसीलिए उसने प्रतिज्ञा कर रक्खी थी कि जो मुझै गानेमें जीत लेगा 'वही मेरा स्वामी होगा, उसीकी मैं अंकशायिनी बनूँगी । गन्धर्वसेनाकी खूब सूरतीकी मनोहारी सुगन्धकी लालसासे अनेक क्षत्रियकुमार भौंरेकी तरह खिंचे हुए आते थे, पर यहाँ आकर उन सबको निराश-मुँह लौट जाना पड़ता था । गन्धर्व सेना के सामने गानमें कोई नहीं ठहरने पाता था ।

एक पांचाल नामका उपाध्याय गानशास्त्रका बहुत अच्छा अभ्यासी था । उसकी इच्छा भी गन्धर्वसेनाको देखनेकी हुई । वह अपने पाँचसौ शिष्योंको साथ लिये पटना आकर एक बगीचेमें ठहरा । समय गर्मीका था और बहुत दूरकी मंजिल करनेसे पांचाल थक भी गया था । इसलिए वह अपने शिष्योंसे यह कहकर, कि कोई यहाँ आये तो मुझे जगा देना, एक वृक्षकी ठंडी छायामें सो गया । इधर तो यह सोया और उधर इसके बहुतसे विद्यार्थी शहर देखनेको चल दिये ।

गन्धर्वसेनाको जब पांचालके आने और उसके पाण्डित्यकी खबर लगी । वह इसे देखनेको आई । उसने इसे बहुतसी वीणाओंको आस-पास रखे सोया देखकर समझा तो सही कि वह विद्वान् तो बहुत भारी है, पर जब उसके लार बहते हुए मुँह पर उसकी नजर गई तो उसे पाँचालसे बड़ी नफरत हुई । उसने फिर उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखा और जिस झाड़के नीचे पांचाल सोया हुआ था । उसकी चन्दन, फूल वगैरहसे पूजा कर वह उसी समय अपने महल लौट आई । गन्धर्वसेनाके जाने के बाद जब पांचालकी नींद खुली और उसने वृक्षको गध-पुष्पादिसे पूजा हुआ पाया तो कुछ संदेह हुआ । एक विद्यार्थीसे इसका कारण पूछा तो उसने एक स्त्रीके आने और इस वृक्षकी

पूजाकर उसके चले जानेका हाल पांचालसे कहा । पांचालने समझ लिया कि गन्धर्वसेना आकर चली गई । तब उसने सोचा यह तो ठीक नहीं हुआ । सोने ने सब बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया । खैर, जो हुआ, अब पीछे लौट जाना भी ठीक नहीं । चलकर प्रयत्न जरूर करना चाहिए । इसके बाद यह राजाके पास गया और प्रार्थना कर अपने रहनेको एक स्थान उसने माँगा । स्थान उसकी प्रार्थनाके अनुसार गन्धर्वसेनाके महलके पास ही मिला । कारण राजासे पाचालने कह दिया था कि आपकी राजकुमारी गानमें बड़ी होशियार है, ऐसा मैं सुनता हूँ । और मैं भी आपकी कृपासे थोड़ा बहुत गाना जानता हूँ, इसलिए मेरी इच्छा राजकुमारीका गाना सुनकर यह बात देखनेकी है कि इस विषयमें उसकी कैसी गति है । यही कारण था कि राजाने कुमारीके महलके समीप ही उसे रहनेकी आज्ञा दे दी । अस्तु ।

एक दिन पाचाल कोई रातके तीन चार बजे के समय वीणाको हाथमे लिए बड़ी मधुरतासे गाने लगा । उसके मधुर मनोहर गानेकी आवाज शान्त रात्रिमे आकाशको भेटती हुई गन्धर्वसेनाके कानोंसे जाकर टकाराई । गन्धर्वसेना इस समय भर नींदमे थी । पर इस मनोमुग्ध करनेवाली आवाजको सुनकर वह सहसा चौंक कर उठ बैठी । न केवल उठ बैठने हीसे उसे सन्तोष हुआ । वह उठकर उधर दौडी भी गई जिधरसे आवाज गूँजती हुई आ रहा थी । इस वे-भान अवस्था मे दौड़ते हुए उसका पॉव खिसक गया और वह धड़ामसे आकर जमीन पर गिर पड़ी । देखते-देखते उसका आत्माराम उसे छोड़ कर चला गया । इस विषयासक्तिसे उसे फिर संसारमे चिर समय तक रुलना पड़ा ।

गन्धर्वसेना एक कर्णेन्द्रियके विषयकी लम्पटतासे जब अथाह ससारसागरमे डूबी, तब जो पॉचों इन्द्रियोंके विषयोंमे सदा काल मस्त रहते हैं, वे यदि डूबें तो इसमें नई वात क्या ? इसलिए वुद्धिमानोका कर्त्तव्य है कि वे इन दु:खोंके कारण विषयभोगो को छोड़कर सुखके सच्चे स्थान जिनधर्मका आश्रय ले ।

------

५०. भीमराजकी कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्रोकी अपूर्व शोभाको धारण किये हुए श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर भीमराजकी कथा लिखी जाती है, जिसे सुनकर सत्पुरुषोको इस दु:खमय ससारसे वैराग्य होगा ।

कांपिल्य नगरमे भीम नामका एक राजा हो गया है । वह दुर्बुद्धि बड़ा पापी था । उसकी रानीका नाम सोमश्री था । इसके भीमदास नामका एक लड़का था । भीमने कुल-क्रमके अनुसार नन्दीश्वर पर्वमे मुनादी पिटवाई कि कोई इस पर्वमें जीवहिंसा न करे । राजाने मुनादी तो पिटवा दी, पर स्वयं महा लम्पटी था । मास खाये बिना उसे एक दिन भी चैन नहीं पड़ता था । उसने इस पर्वमें भी अपने रसोइयेसे मांस पकानेको कहा । पर दुकाने सब बन्द थीं, अत· उसे बड़ी चिन्ता हुई वह मांस लाये कहॉसे ? तब उसने एक युक्ति की । वह मसानसे एक बच्चे की लाश. उठा लाया और उसे पकाकर राजाको खिलाया । राजाको वह मांस बड़ा ही अच्छा लगा । तब उसने रसोइयेसे कहा—क्यों रे, आज यह मास बड़ा ही अच्छा लगा । तब उसने रसोइये से कहा—क्यो रे, आज यह मास और-और दिनोकी अपेक्षा इतना स्वादिष्ट क्यो है ? रसोइयेने डरकर सच्ची बात राजासे कह दी । राजाने तब उससे कहा—आजसे तू बालकोंका ही मांस पकाया करना ।

राजाने तो झटसे कह दिया कि अबसे बालकोका ही मास खानेके लिए पकाया करना । पर रसोइयेको इसकी बड़ी चिन्ता हुई कि वह रोज-रोज बालको को लाये कहॉसे ? और राजाज्ञाका पालन होना चाहिये । तब उसने यह प्रयत्न किया कि रोज शामके वक्त शहर के मुहल्लोंमे जाना जहॉ बच्चे खेल रहे हो उन्हे मिठाईका लोभ देकर झटसे किसी एकको पकड़ कर उठा लाना । इसी तरह वह रोज-रोज एक बच्चेकी जान लेने लगा । सच है, पापी लोगोंकी सगति दूसरोंको भी पापी बना देती है । जैसे भीमराजकी संगतिसे उसका रसोइया भी उसीके सरीखा पापी हो गया ।

बालकोको प्रतिदिन इस प्रकार एकाएक गायब होनेसे शहरमे बडी हलचल मच गई । सब इसका पता लगानेकी कोशिशमे लगे । एक दिन

इधर तो रसोइया चुपकेसे एक गृहस्थके बालकको उठाकर चला कि पीछेसे उसे किसी ने देख लिया। रसोइया झट-पट पकड़ लिया गया। उससे जब पूछा गया तो उसने सब बातें सच्ची-सच्ची बतला दीं। यह बात मंत्रियोंके पास पहुँची। उन्होंने सलाह कर भीमदासको अपना राजा बनाया और भीमको रसोइये के साथ शहरसे निकाल बाहर किया। सच है, पापियोंका कोई साथ नहीं देता। माता, पुत्र भाई, बहिन, मित्र, मंत्री, प्रजा आदि सब ही विरुद्ध होकर उसके शत्रु बन जाते हैं।

भीम यहाँसे चलकर अपने रसोइयेके साथ एक जंगलमें पहुँचा। यहाँ इसे बहुत ही भूख लगी। इसके पास खानेको कुछ नहीं था। तब यह अपने रसोइयेको ही मारकर खा गया। यहाँसे घूमता-फिरता यह मेखलपुर पहुँचाऔर वहाँ वासुदेवके हाथ मारा जाकर नरक गया।

अधर्मी पुरुष अपने ही पापकर्मोसे संसार-समुद्रमें रुलते हैं। इसलिए सुखकी चाह करनेवाले बुद्धिमानोंको चाहिए कि वे सुखके स्थान जैनधर्मका पालन करे।

-----

* जो मनुष्य मांस चखता है उसका हृदय शस्त्रधारी मनुष्य के हृदय के समान शुभकर्म की ओर नहीं झुकता।

* यदि मनुष्य दूसरे प्राणियों की पीड़ा और यन्त्रणा को एक बार समझ सके तो फिर वह कभी मांस भक्षण की इच्छा ही क्यों करेगा ?

५१. नागदत्तकी कथा

देवों, विद्याधरों, चक्रवर्त्तियों और राजो, महाराजो द्वारा पूजा किये गये जिन भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर नागदत्ताकी कथा लिखी जाती है ।

आभीर देश नासक्य नगरमे सागरदत्त नामका एक सेठ रहता था । उसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था । इसके एक लड़का और एक लड़की थी । दोनों दोनोंके नाम थे श्री कुमार और श्रीषेणा । नागदत्ताका चाल-चलन अच्छा न था । अपनी गौएँको चरानेवाले नन्द नामके गुवालके साथ उसकी आशनाई थी । नागदत्ताने उसे एक दिन कुछ सिखा-सुझा दिया । सो वह बीमारीका बहाना बनाकर गौएँ चरानेको नहीं आया । तब बेचारे सागरदत्तको स्वय गौएँ चरानेको जाना पड़ा । जंगलमें गौओंको चरते छोड़कर वह एक झाड़के नीचे सो गया । पीछे से नन्दगुवालने आकर उसे मार डाला । बात यह थी कि नागदत्ताने ही अपने पतिको मार डालनेके लिए उसे उकसाया था । और फिर परस्त्री-लम्पटी पुरुष अपने सुखमें आनेवाले विघ्नको नष्ट करनेके लिए कौन बुरा काम नहीं करता ।

नागदत्ता और पापी नन्द इस प्रकार अनर्थ द्वारा अपने सिर पर एक बड़ा भारी पापका बोझ लादकर अपनी नीच मनोवृत्तियोको प्रसन्न करने लगे । श्रीकुमार अपनी माताकी इस नीचतासे बेहद कष्ट पाने लगा । उसे लोगोको मुँह दिखाना तक कठिन हो गया । उसे बडी लज्जा आने लगी और इसके लिए उसने अपनी माताको बहुत कुछ कहा सुनी भी । पर नागदत्ताके मन पर उसका कुछ असर नहीं हुआ । वह पिचली हुई नागिनकी तरह उसी पर दाव खाने लगी । उसने नाराज होकर श्रीकुमारको भी मार डालनेके लिए नन्दको उभारा । नन्द फिर बीमारीका बहाना बनाकर गौएँ चरानेको नहीं आया । तब श्रीकुमार स्वयं ही जानेको तैयार हुआ । उसे जाता देखकर उसकी बहिन श्रीषेणाने उसे रोककर कहा—भैया, तुम मत जाओ । मुझे माताका इसमें कुछ कपट दिखता है । उसने जैसे नन्द द्वारा अपने पिताजीको मरवा डाला है, वह तुम्हे भी मरवा डालनेके लिए दाँत पीस रही है । मुझे जान पडता है नन्द इसीलिए बहाना बनाकर आज गौएँ चरानेको नहीं आया । श्रीकुमार बोला—बहिन,

तुमने मुझे आज सावधान कर दिया यह बडा ही अच्छा किया । तुम मत घबराओ । मैं अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकूँगा । अब मुझे रचमात्र भी डर नहीं रहा । और मैं तुम्हारे कहनेसे नहीं भी जाता, पर इससे माताको अधिक सन्देह होता और वह फिर कोई दूसरा ही यत्न मुझे मरवानेका करती । क्योंकि वह चुप तो कभी बैठी ही न रहती । आज बहुत ही अच्छा मौका हाथ लगा है । इसलिए मुझे जाना ही उचित है । और जहाँ तक मेरा बस चलेगा मैं जड़मूलसे उस अंकुरको उखाड़कर फेंक दूँगा, जो हमारी माताके अनर्थका मूल कारण है । बहिन, तुम किसी तरहकी चिन्ता मनमें न लाओ । अनाथोंका नाथ अपना भी मालिक है ।

श्रीकुमार बहिनको समझा कर जंगलमें गौएँ चरानेको गया । उसने वहाँ एक बड़े लकड़ेको वस्त्रोंसे ढककर इस तरह रख दिया कि वह दूसरोंको सोया हुआ मनुष्य जान पड़ने लगे और आप एक ओर छिप गया । श्रीषेणा की बात सच निकली । नन्द नंगी तलवार लिए दबे पाँव उस लकड़ेके पास आया और तलवार उठाकर उसने उस पर दे मारी । इतनेमें पीछे से आकर । श्रीकुमारने उसकी पीठमें इस जोरकी एक भालेकी जमाई कि भाला आर-पार हो गया । और नन्द देखते-देखते तड़फड़ाकर मर गया । इधर श्रीकुमार गौओंको लेकर घर लौट आया । आज गौएँ दोहनेके लिए भी श्रीकुमार ही गया । उसे देखकर नागदत्ताने उससे पूछा—क्यों कुमार, नन्द नहीं आया ? मैंने तो तेरे ढूँढनेके लिए उसे जंगलमें भेजा था । क्या तूने उसे देखा है कि वह कहाँ पर है ? श्रीकुमार से तब न रहा गया और गुस्सेमें आकर उसने कह डाला—माता, मुझे तो मालूम नहीं कि नन्द कहाँ है । पर मेरा यह भाला अवश्य जानता है । नागदत्ताकी आँखें जैसे ही उस खूनसे भरे भाले पर पडीं तो उसकी छाती धड़क उठी । उसने समझ लिया कि इसने उसे मार डाला है । अब तो क्रोधसे वह भी भर्रा गई । उसे सामने एक मूसला रक्खा था । उस पापिनीने उसे ही उठाकर श्रीकुमारके सिरपर इस जोरसे मारा कि सिर फटकार तत्काल वह भी धराशायी हो गया । अपने भाईकी इस प्रकार हत्या हुई देखकर श्रीषेणा दौड़ी और नागदत्ताके हाथसे झटसे मूसला छुड़ाकर उसने उसके सिर पर एक जोरकी मार जमाई, जिससे वह भी अपने कियेकी योग्य

सजा पा गई । नागदत्ता मरकर पापके फलसे नरक गई । सच है, पापीको अपना जीवन पापमें ही बिताना पड़ता है । नागदत्ता इसका उदाहरण है । उस दुराचारको धिक्कार, उस कामको धिक्कार, जिसके वश मनुष्य महा पापकर्म कर और फिर उसके फलसे दुर्गतिमें जाता है । इसलिए सत्पुरुषोंको उचित है कि वे जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये, सबको प्रसन्न करनेवाले और सुख-प्राप्तिके साधन ब्रह्मचर्य व्रतका सदा पालन करें ।

---

* मनुष्य चाहे कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो, पर उसकी श्रेष्ठता किस काम की, जबकि वह व्यभिचारजन्य लज्जा का कुछ भी विचार न कर परस्त्री गमन करता है ।

* व्यभिचारी को इन चार बातों से कभी छुटकारा नहीं मिलता-घृणा, पाप, भ्रम, और कंलक ।

* धन्य है उसके पुरुषत्व को, जो पराई स्त्री पर दृष्टि भी नहीं डालता । वह केवल श्रेष्ठ और धर्मात्मा ही नहीं, सन्त है

* राग द्वेष, जीते है ममता की छाया में और ममता जीती है मोह की गोदी में ।

५२. द्वीपायन मुनिकी कथा

संसारके स्वामी और अनन्त सुखोंके देनेवाले श्रीजिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर द्वीपायन मुनिका चरित लिखा जाता है, जैसा पूर्वाचार्योंने उसे लिखा है ।

सोरठदेशमें द्वारका प्रसिद्ध नगरी है । नेमिनाथ भगवान्का जन्म यही हुआ है । इससे यह बड़ी पवित्र समझी जाती है । जिस समयकी यह कथा लिखी जाती है उस समय द्वारकाका राज्य नवमें नारायण बलभद्र और वासुदेव करते थे । एक दिन ये दोनों राज-राजेश्वर गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ भगवान्की पूजा-वन्दना करनेको गये । भगवान्की इन्होंने भक्तिपूर्वक पूजा की ओर उनका उपदेश सुना । उपदेश सुनकर इन्हें बहुत प्रसन्नता हुई । इसके बाद बलभद्रने भगवान्से पूछा—हे संसारके अकारण बन्धो, हे केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक, हे ! तीन जगतके स्वामी हे करुणाके समुद्र और हे लोकालोकके प्रकाशक, कृपाकर कहिए, कि वासुदेवको पुण्यसे जो सम्पत्ति प्राप्त है वह कितने समय तक ठहरेगी ? भगवान् बोले—बारह वर्ष पर्यन्त वासुदेव रहकर फिर नष्ट हो जायगी । इसके सिवा मद्य-सिवा मद्य-पानसे यदुवंशका समूल नाश होगा, द्वारका द्वीपायन मुनिके सम्बन्धसे जलकर खाक हो जायगी, और बलभद्र, तुम्हारी इस छुरी द्वारा जरत्कुमारके हाथोंसे श्रीकृष्णकी मृत्यु होगी । भगवान्के द्वारा यदुवंश, द्वारका और वासुदेवका भविष्य सुनकर बलभद्र द्वारका आये । उस समय द्वारकामें जितनी शराब थी, उसे उन्होंने गिरनार पर्वतके जंगलोंमें फिकवा दिया । उधर द्वीपायन अपने सम्बन्धसे द्वारकाका भस्म होना सुन मुनि हो गये और द्वारकाको छोड़कर कहीं अन्यत्र चल दिये । मूर्ख लोग न समझ कुछ यत्न करें, पर भगवान्का कहा कभी झूठा नहीं होता । बलभद्रने शराबको तो फिकवा ही न दिया था । अब एक छुरी और उनके पास रह गई थी, जिसके द्वारा भगवान्ने श्रीकृष्ण की मौत होना बतलाई थी । बलभद्रने उसे भी खूब घिस-घिसाकर समुद्रमें फिकवा दिया । कर्मयोगसे उस छुरीको एक मच्छ निगल गया और वही मच्छ फिर एक मल्लाहकी जालमें आ फँसा । उसे मारने पर उसके पेटसे वह छुरी निकली और धीरे-धीरे वह

जरत्कुमारके हाथ तक भी पहुँच गई । जरत्कुमारने उसका बाणके लिए फला बनाकर उसे अपने बाण पर लगा लिया ।

बारह वर्ष हुए नहीं, पर द्वीपायनको अधिक महीनोंका ख्याल न रहनेसे बारह वर्ष पूरे हुए समझ वे द्वारकाकी ओर लौट आकर गिरनार पर्वतके पास ही कहीं ठहरे और तपस्या करने लगे । पर तपस्या द्वारा कर्मोका ऐसा योग कभी नष्ट नहीं किया जा सकता । एक दिनकी बात है कि द्वीपायन मुनि आतापन योग द्वारा तपस्या कर रहे थे । इसी समय मानों पापकर्मों द्वारा उभरे हुए यादवोंके कुछ लड़के गिरनार पर्वतसे खेल-कूद कर लौट रहे थे । रास्ते में इन्हें बहुत जोरकी प्यास लगी । यहाँतक कि ये बेचैन हो गये । इनके लिए घर आना मुश्किल पड़ गया । आते-आते इन्हें पानीसे भरा एक गड्ढा देख पड़ा । पर वह पानी नहीं था; किन्तु बलभद्रने जो शराब ढुलवा दी थी वही बहकर इस गड्ढेमें इकट्ठी हो गई थी । इस शराबको ही उन लड़कोने पानी समझ पी लिया । शराब पीकर थोड़ी देर हुई होगी कि उसने इन पर अपना रंग जमाना शुरू किया । नशेसे ये सुध-बुध भूलकर उन्मत्तकी तरह कूदते-फाँदते आने लगे । रास्तेमें इन्होंने द्वीपायन मुनिको ध्यान करते देखा । मुनिकी रक्षाके लिए बलभद्रने उनके चारों ओर एक पत्थरोंका कोटसा बनवा दिया था । एक ओर उसके आने-जानेका दरवाजा था । इन शैतान लड़कोने मजाकमें आ उस जगहको पत्थरोंसे पूर दिया । सच हैं, शराब पीनेसे सुध-बुध भूलकर बड़ी बुरी हालत हो जाती है । यहाँ तक कि उन्मत्त पुरुष अपनी माता बहिनोंके साथ भी बुरी वासनाओंको प्रगट करनेमें नहीं लजाता है । शराब पीनेवाले पापी लोगोंको हित-अहितका कुछ ज्ञान नहीं रहता । इन लड़कोंकी शैतानीका हाल ज़ब बलभद्रको मालूम हुआ तो वे वासुदेव को लिये दौड़े-दौड़े मुनिके पास आये और उन पत्थरोको निकाल कर उनसे उन्होंने क्षमाकी प्रार्थना की । इस क्षमा करानेका मुनि पर कुछ असर नहीं हुआ । उनके प्राणकी निकलनेकी तैयारी कर रहे थे । मुनिने सिर्फ दो उंगुलियाँ उन्हें बतलाई । और थोड़ी ही देर बाद वे मर गये । क्रोधसे मर कर तपस्याके फलसे ये व्यन्तर हुए । इन्होंने कुवधि द्वारा अपने व्यन्तर होनेका कारण जाना तो इन्हें उन लड़को के उपद्रवकी सब बातें ज्ञात हो गई । यह देखकर व्यन्तरको बड़ा क्रोध आया ।

उसने उसी समय द्वारकामें आकर आग लगा दी। सारी द्वारका धन-जन सहित देखते-देखते खाक हो गई। सिर्फ बलभद्र और वासुदेव ही बच पाये, जिनके लिये कि द्वीपायन ने दो उंगलियाँ बतलाई थीं। सच है, क्रोधके वश हो मूर्ख पुरुष सब कुछ कर बैठते हैं। इसलिये भव्यजनोंकी शान्ति-लाभके लिए क्रोधको कभी पास भी न फटकने देना चाहिये। उस भयंकर अग्नि लीलाको देखकर बलभद्र और वासुदेवका भी ठिकाने न रहा। ये अपना शरीर मात्र लेकर भाग निकले। यहाँ से निकल कर ये एक घोर जंगलमें पहुँचे। सच है, पाप का उदय आने पर सब धन-दौलत नष्ट होकर जी बचाना तक मुश्किल पड़ जाता है। जो पलभर पहले सुखी रहा हो वह दूसरे ही पल में पापके उदयसे अत्यन्त दुःखी हो जाता है इसलिए जिन लोगोंके पास बुद्धिरूपी धन है, उन्हें चाहिये कि वे पापके कारणोंको छोड़कर पुण्यके कामोंमें अपने हाथों को बटावें। पात्र-दान, जिन-पूजा, परोपकार, विद्या-प्रचार, शील, व्रत, संयम आदि ये सब पुण्यके कारण हैं। बलभद्र और वासुदेव जैसे ही उस जंगलमें आये, वासुदेवको यहाँ अत्यन्त प्यास लगी। प्यासके मारे वे गश खाकर गिर पड़े। बलभद्र उन्हें ऐसे ही छोड़कर जल लाने चले गये। इधर जरत्कुमार न जाने कहाँसे इधर ही आ निकला। उसने श्रीकृष्णको हरिणके भ्रमसे बाण द्वारा बेध दिया। पर जब उसने आकर देखा कि वह हरिण नहीं, किन्तु श्रीकृष्ण हैं तब तो उसके दुःखका कोई पार न रहा। पर अब वह कुछ करने-धरनेको लाचार था। वह बलभद्रके भयसे फिर उसी समय वहाँसे भाग लिया। इधर बलभद्र जब पानी लेकर लौटे और उन्होंने श्रीकृष्णकी यह दशा देखी तब उन्हें जो दुःख हुआ वह लिखकर नहीं बताया जा सकता। यहाँ तक कि वे भ्रातृप्रेमसे सिड़ीसे हो गये और श्रीकृष्णको कन्धो पर उठाये महीनों पर्वतों और जंगलोंमें घूमते फिरे। बलभद्रकी यह हालत देख उनके पूर्व जन्म के मित्र एक देव को बहुत खेद हुआ। उसने आकर इन्हें समझा-बुझा कर शान्त किया और इनसे भाईका दहन-संस्कार करवाया। संस्कार कर जैसे ही ये निर्वृत्त हुए, इन्हें संसारकी दशा पर बड़ा वैराग्य हुआ। ये उसी समय सब दुःख, शोक, माया-ममता छोड़कर योगी हो गये। इन्होंने फिर पर्वतों पर खूब दुस्सह तप किया। अन्तमें धर्मध्यान सहित मरण कर ये माहेन्द्र स्वर्गमें

देव हुए वहाँ ये प्रतिदिन नित नये और मूल्यवान् सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण पहनते हैं, अनेक देव-देवी इनकी आज्ञामें सदा हाजिर रहते हैं, नाना प्रकार के उत्तमसे उत्तम स्वर्गीय भोगोको ये भोगते हैं, विमान द्वारा कैलास, सम्मेद-शिखर, हिमालय, गिरनार आदि पर्वतोंकी यात्रा करते हैं, और विदेह क्षेत्रमें जाकर साक्षाज्जिनभगवान्की पूजा-भक्ति करते हैं मतलब यह है कि पुण्यके उदयसे उन्हे सब कुछ सुख प्राप्त हैं और वे आनन्द-उत्सवके साथ अपना समय बिताते हैं।

जो सभ्यग्दर्शन, सभ्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप इन तीन महान् रत्नोंसे भूषित हैं, जो जिन भगवान्के चरणोके सच्चे भक्त हैं, चारित्र धारण करनेवालोंमे जो सबसे ऊँचे हैं, जिनकी परम पवित्र बुद्धि गुणरूपी रत्नोंसे शोभाको धारण किये हैं, और जो ज्ञानके समुद्र हैं, ऐसे बलभद्र मुनिराज मुझे वह सुख, शांति और वह मंगल दें, जिससे मन सदा प्रसन्न रहे।

------

* तुम्हारा अपराधी कोई भी, पर उसके ऊपर कोप न करो, क्योंकि क्रोध से सैकड़ों अनर्थ पैदा होते हैं।

* अग्नि उसी को जलाती है जो उसके पास जाता है, परन्तु क्रोधाग्नि सारे कुटुम्ब को जला डालती है।

* मनुष्य की समस्त कामनाएँ तुरंत ही पूर्ण हो जाया करें, यदि वह अपने मन से क्रोध को दूर कर दें।

५३. शराब पीनेवालोंकी कथा

सब सुखोंके देनेवाले सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर शराब पीकर नुकसान उठानेवाले एक ब्राह्मणकी कथा लिखी जाती है । वह इसलिए कि इसे पढ़कर सर्व साधारण लाभ उठावें ।

वेद और वेदांगोंका अच्छा विद्वान् एकपात नामका एक संन्यासी एक चक्रपुरसे चलकर गंगानदी की यात्रार्थ जा रहा था । रास्तेमें जाता हुआ यह दैवयोगसे विन्ध्यावटीमें पहुँच गया । यहाँ जवानीसे मस्त हुए कुछ चाण्डाल लोग दारु पी-पीकर एक अपनी जातिकी स्त्रीके साथ हँसी मजाक करते हुए नाच-कूद रहे थे, गा रहे थे और अनेक प्रकारकी कुचेष्टाओंमें मस्त हो रहे थे। अभागा संन्यासी इस टोलीके हाथ पड़ गया । इन लोगोंनेउसे आगे न जाने देकर कहा—अहा ! आप भले आये ! आप ही की हम लोगोंमें कसर थी । आइए, मांस खाइए, दारु पीजिए और जिन्दगीका सुख देनेवाली इस खूबसूरत औरतका मजा लूटिए । महाराजजी,आज हमारे लिए बड़ी खुशीका दिन है और ऐसे समयमें जब आप स्वयं यहाँ आ गए तब तो हमारा यह सब करना-धरना सफल हो गया । आप सरीखे महात्माओंका आना, सहजमें थोड़े ही होता है ? और फिर ऐसे खुशीके समयमें । लीजिए, अब देर न कर हमारी प्रार्थनाको पूरी कीजिए इनकी वातें सुनकर बेचारे संन्यासीके तो होश उड़ गए । वह इन शराबियोंको कैसे समझाए, क्या कहे, और यह कुछ कहे सुने भी तो वे मानने वाले कब ? यह बड़े संकटमें फँस गया । तब भी उसने इन लोगोंसे कहा बतलाओ मैं मांस, मदिरा कैसे खा पी सकता हूँ ? इसलिये तुम मुझे जाने दो । उन चाण्डालोंने कहा—महाराज कुछ भी हो, हम तो आपको बिना कुछ प्रसाद लिये तो जाने नहीं देंगे । आपसे हम यहाँ तक कह देते हैं कि यदि आप अपनी खुशीसे खायेंगे तो वहुत अच्छा होगा, नहीं तो फिर जिस तरह बनेगा हम आपको खिलाकर ही छोंडेंगे । बिना हमारा कहना किये आप जीतेजी गंगाजी नहीं देख सकते । अब तो संन्यासीजी घबराये । वे कुछ विचार करने लगे, तभी उन्हें स्मृतियोंके कुछ प्रमाण वाक्य याद आ गए—

"जो मनुष्य तिल या सरसोंके बराबर मांस खाता है वह नरकोंमें तब तक दुःख भोगा करेगा, जब तक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्र रहेंगे। अर्थात् अधिक मांस खाने वाला नहीं। ब्राह्मण लोग यदि चाण्डालीके साथ विषय सेवन करें तो उनकी तो उनकी 'काष्टभक्षण' नामके प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि हो सकती है। जो ऑवले, गुड़ आदिसे बनी हुई शराब पीते हैं, वह शराब पीना नहीं कहा जा सकता—आदि।"

इसलिए जैसा ये कहे हैं, उसके करनेमें शास्त्रों, स्मृतियोंसे तो कोई दोष नहीं आता। ऐसा विचार कर उस मूर्खने शराब पी ली। थोड़ी ही देर बाद उसे नशा चढ़ने लगा। बेचारेको पहले कभी शराब पीनेका काम पड़ा नहीं था इसीलिये उसका रंग इस पर और अधिकतासे चढ़ा। शराबके नशमें चूर होकर यह सब सुध-बुध भूल गया, अपनेपन का इसे कुछ ज्ञान न रहा। लंगोटी आदि फेंक कर यह भी उन लोगोंकी तरह नाचने-कूदने लगा जैसे कोई भूत-पिशाचके पंजेमें पड़ा हुआ उन्मत्तकी भॉति नाचने-कूदने लगता है। सच है, कुसंगति कुल, धर्म, पवित्रता आदि सभीका नाश कर देती है। संन्यासी बड़ी देर तक तो इसी तरह नाचता-कूदता रहा पर जब वह थोड़ा थक गया तो उसे जोरकी भूख लगी। वहॉ खानेके लिए मांसके सिवा कुछ भी नहीं था। संन्यासीने तब मांस ही खा लिया। पेट भरनेके बाद उसे कामने सताया। तब उसने यौवनकी मस्तीमें मत्त उस स्त्रीके साथ अपनी नीच वासना पूरी की। मतलब यह कि एक शराब पीनेसे उसे ये सब नीचकर्म करने पड़े। दूसरे ग्रन्थोंमें भी इस एकपात संन्यासी के सम्बन्धमे लिखा है कि "मूर्ख एकपात संन्यासीने स्मृतियोंके वचनोंको प्रमाण मानकर शराब पी, मांस खाया और चाण्डालिनीके साथ विषय सेवन किया।" इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सहसा किसी प्रमाण पर विश्वास न कर बुद्धिसे काम ले। क्योंकि मीठे पानीमें मिला हुआ विष भी जान लिए बिना नहीं छोड़ता।

देखिये, एकपात संन्यासी गगा-गोदावरीका नहानेवाला था, विष्णुका सच्चा भक्त था, वेदों और स्मृतियोंका अच्छा विद्वान् था, पर अज्ञानसे स्मृतियोंके वचनोको हेतु-शुद्ध मानकर अर्थात् ऐसी शराब पीनेमें पाप नहीं,

चाण्डालिनीका सेवन करने पर भी प्रायश्चित्त द्वारा ब्राह्मणोंकी शुद्धि हो सकती है, थोड़ा मांस खानेमें दोष है, न कि ज्यादा खानेमें । इस प्रकार मनकी समझौती करके उसने मांस खाया, शराब पी और अपने वर्षोंके ब्रह्मचर्यको नष्ट कर वह कामी हुआ । इसलिये बुद्धिमानोंको उन सच्चे शास्त्रोंका अभ्यास करना चाहिये जो पापसे बचाकर कल्याणका रास्ता बतलानेवाले हैं और ऐसे शास्त्र जिनभगवान् ने ही उपदेश किये हैं ।

------

* जो आदमी नशे में चूर है, उसकी आकृति स्वयं उसको जन्म देने वाली माता को ही बुरी लगती है । फिर भला वह सत्पात्र पुरुषों को कैसी लगेगी?

* यह तो असीम मुर्खता और अपात्रता है कि अपना धन खर्च करे और बदले में विस्मृति तथा विभ्रम मोल लेवे ।

* जो मद्य-प्यासे को सीख देने का प्रत्यन करता है वह उस मनुष्य के समान है जो पानी में डूबे हुए आदमी को मशाल लेकर ढूंढता है ।

*व्यसनों से युक्त जीव नियमतः पापकार्य में तत्पर रहता हैं ।

५४. सगर चक्रवर्त्तीकी कथा

देवों द्वारा पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर दूसरे चक्रवर्त्ती सगरका चरित लिखा जाता है ।

जम्बूद्वीपके प्रसिद्ध और सुन्दर विदेह क्षेत्रकी पूरब दिशामें सीता नदीके पश्चिमकी ओर वत्सकावती नामका एक देश है । वत्सकावतीकी बहुत पुरानी राजधानी पृथिवीनगरके राजाका नाम जयसेन था । जयसेनकी रानी जयसेना थी । इसके दो लड़के हुए । इनके नाम थे रतिषेण और धृतिषेण । दोनो भाई बड़े सुन्दर और गुणवान् थे । कालकी कराल गतिसे रतिषेण अचानक मर गया । जयसेनको इसके मरनेका बड़ा दु ख हुआ और इसी दुःखके मारे वे धृतिषेणको राज्य देकर मारुत और मिषुन नामके राजाओंके साथ यशोधर मुनिके पास दीक्षा ले साधु हो गये । बहुत दिनो तक इन्होने तपस्या की । फिर सन्यास सहित शरीर छोड़ स्वर्गमें ये महाबल नामके देव हुए । इनके साथ दीक्षा लेनेवाला मारुत भी इसी स्वर्गमें मणिकेतु नामक देव हुआ जो कि भगवान्‌के चरणकमलोंका भौंरा था, अत्यन्त भक्त था । ये दोनों देव स्वर्गकी सम्पत्ति प्राप्त कर बहुत प्रसन्न हुए । एक दिन इन दोनोने विनोद करते-करते धर्म-प्रेमसे एक प्रतिज्ञा की कि जो हम दोनोंमें पहले मनुष्य-जन्म धारण करे, तब स्वर्गमे रहनेवाले देवका कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह मनुष्य-लोकमें जाकर उसे समझाये और संसारसे उदासीनता उत्पन्न करा कर जिनदीक्षाके सम्मुख करे ।

महाबलकी आयु बाईस सागरकी थी । तब तक उसने खूब मनमाना स्वर्गका सुख भोगा । अन्तमें आयु पूरी कर बचे हुए पुण्यप्रभावसे वह अयोध्याके राजा समुद्रविजयकी रानी सुबलाके सगर नामका पुत्र हुआ । इसकी उमर सत्तरलाख पूर्व वर्षोंकी थी । इसके सोनेके समान चमकते हुए शरीरकी ऊँचाई साढ़े चारसौ धनुष अर्थात् १५७५ हाथोकी थी । संसारकी सुन्दरताने इसीमें आकर अपना डेरा दिया था, यह बडा ही सुन्दर था । जो इसे देखता उसके नेत्र बड़े आनन्दित होते । सगरने राज्य भी प्राप्त कर छहो खण्ड पृथ्वी विजय की । अपनी भुजाओंके बल इसने दूसरे चक्रवर्त्तीका मान प्राप्त किया । सगर

चक्रवर्ती हुआ, पर इसके साथ वह अपना धर्म-कर्म भूल गया था । इसके साठ हजार पुत्र हुए । इसे कुटुम्ब, धन-दौलत, शरीर सम्पत्ति आदि सभी सुख प्राप्त थे । समय इसका खूब ही सुखके साथ वीतता था । सच है, पुण्यसे जीवोंको सभी उत्तम-उत्तम सम्पदायें प्राप्त होती हैं । इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि वे जिनभगवान्‌के उपदेश किये पुण्यमार्ग का पालन करें ।

इसी अवसरमें सिद्धवनमें चतुर्मुख महामुनिको केवलज्ञान हुआ । स्वर्गके देव, विद्याधर राजे-महाराजे उनकी पूजाके लिए आये । सगर भी भगवान्‌के दर्शन करनेको आया था । सगरको आया देख मणिकेतुने उससे कहा—क्यों राजराजेश्वर, क्या उसे स्वर्गकी बात याद है ? जहाँ कि तुमने और मैंने प्रेमके वश हो प्रतिज्ञा की थी कि जो हम दोनोंमेंसे पहले मनुष्य जन्म ले उसे स्वर्गका देव जाकर समझावे और संसारसे उदासीन कर तपस्याके सम्मुख करे । अब तो आपने बहुत समय तक राज्य-सुख भोग लिया । अब तो इसके छोड़नेका यत्न कीजिये । क्या आप नहीं जानते कि ये विषय-भोग दुःखके कारण और संसारमें घुमानेवाले हैं ? राजन्, आप तो स्वयं बुद्धिमान् हैं । आपको मैं क्या अधिक समझा सकता हूँ । मैंने तो सिर्फ अपनी प्रतिज्ञा-पालनके लिए आपसे इतना निवेदन किया है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप इन क्षण-भंगुर विषयोंसे अपनी लालसाको कम करके जिन भगवान्‌का परम पवित्र तपोमार्ग ग्रहण करेंगे और बड़ी सावधानीके साथ मुक्ति कामिनीके साथ ब्याहकी तैयारी करेंगे । मणिकेतुने उसे बहुत कुछ समझाया पर पुत्रमोही सगरको संसारसे नाममात्रके लिये भी उदासीनता न हुई । मणिकेतुने जब देखा कि अभी यह पुत्र, स्त्री, धन-दौतलके मोहमें खूब फँस रहा है । अभी इसे संसारसे विषयभोगोंसे उदासीन वना देना कठिन ही नहीं किन्तु एक प्रकार असंभवको संभव करनेका यत्न है । अस्तु, फिर देखा जायगा । यह विचार कर मणिकेतु अपने स्थान चला गया । सच है, काललब्धिके विना कल्याण हो भी तो नहीं सकता ।

कुछ समय के बाद मणिकेतुके मनमें फिर एक बार तरंग उठी कि अव किसी दूसरे यत्न द्वारा सगरको तपस्याके सम्मुख करना चाहिए । तब वह चारण मुनिका वेष लेकर, जो कि स्वर्ग-मोक्षके सुखका देनेवाला है, सगरके

जिन मन्दिरमें आया और भगवान्‌का दर्शन कर वहीं ठहर गया। उसकी नई उमर और सुन्दरताको देखकर सगरको बड़ा अचम्भा हुआ। उसने मुनिरूप धारण करनेवाले देवसे पूछा, मुनिराज, आपकी इस नई उमरने, जिसने कि संसारका अभी कुछ सुख नहीं देखा, ऐसे कठिन योगको किसलिए धारण किया ? मुझे तो आपको योगी हुए देखकर बड़ा ही आश्चर्य हो रहा है। तब देवने कहा—राजन्, तुम कहते हो, वह ठीक है। पर मेरा विश्वास है कि संसारमें सुख है ही नहीं। जिधर मैं आखें खोलकर देखता हूँ मुझे दुःख या अशान्ति ही देख पड़ती है। यह जवानी बिजलीकी तरह चमककर पलभरमें नाश होनेवाली है। यह शरीर, जिसे कि तुम भोगोंमें लगानेको कहते हो, महा अपवित्र है। ये विषय-भोग, जिन्हें तुम सुखरूप समझते हो, सर्पके समान भयंकर हैं और यह संसाररूपी समुद्र अथाह है, नाना तरहके दुःखरूपी भयंकर जलजीवोंसे भरा हुआ है और मोह जालमें फँसे हुए जीवोंके लिए अत्यन्त दुस्तर है। तब जो पुण्यसे यह मनुष्य देह मिली है, इसे इस अथाह समुद्रमें बहने देना या जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा बतलाये इस अथाह समुद्रके पार होनेके साधन तपरूपी जहाज द्वारा उसके पार पहुँचा देना। मैं तो इसके लिये यही उचित समझता हूँ कि, जब संसार असार है और उसमे सुख नहीं है, तब संसारसे पार होनेका उपाय करना ही कर्तव्य और दुर्लभ मनुष्य-देहके प्राप्त करनेका फल है। मैं तो तुम्हें भी यही सलाह दूँगा कि तुम इस नाशवान् माया-ममताको छोड़कर कभी नाश न होनेवाली लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये यत्न करो। मणिकेतुने इसके सिवा और भी बहुत कहने सुनने या समझानेमें कोई कसर न की। पर सगर सब कुछ जानता हुआ भी पुत्र-प्रेमके वश हो संसारको न छोड़ सका। मणिकेतुको इससे बड़ा दुःख हुआ कि सगरकी दृष्टिमें अभी संसारकी तुच्छता नजर न आई और वह उलटा उसीमें फँसता जाता है। लाचार हो वह स्वर्ग चला गया।

एक दिन सगर राज सभामें सिंहासन पर बैठे हुए थे। इतनेमे उनके पुत्रोंने आकर उनसे सविनय प्रार्थना की—पूज्यपाद पिताजी, उन वीर क्षत्रिय-पुत्रोंका जन्म किसी कामका नहीं, व्यर्थ है, जो कुछ काम न कर पड़े-पडे खाते-पीते और ऐशोआराम उड़ाया करते हैं। इसलिये आप कृपाकर हमें कोई काम

बतलाइये । फिर वह कितना ही कठिन या एक बार वह असाध्य ही क्यों न हो, उसे हम करेंगे । सगरने उन्हें जवाब दिया—पुत्रो, तुमने कहा वह ठीक है और तुमसे वीरोंका यही उचित भी है । पर अभी मुझे कोई कठिन या सीधा ऐसा काम नहीं देख पड़ता जिसके लिए मैं तुम्हें कष्ट दूँ और न छहों खण्ड पृथ्वीमें मेरे लिये कुछ असाध्य ही है । इसलिये मेरी तो तुमसे यही आज्ञा है कि पुण्यसे जो यह धन-सम्पत्ति प्राप्त है, इसे तुम भोगो । इस दिन तो ये सब लड़के पिताकी बातका कुछ जवाब न देकर चुपचाप इसलिये चले गये कि पिताकी आज्ञा तोड़ना ठीक नहीं परन्तु इनका मन इससे रहा अप्रसन्न ही ।

कुछ दिन बीतने पर एक दिन ये सब फिर सगरके पास गये और उन्हें नमस्कार कर बोले—पिताजी, आपने जो आज्ञा की थी, उसे हमने इतने दिनों उठाई, पर अब हम अत्यन्त लाचार हैं । हमारा मन यहाँ बिलकुल नहीं लगता । इसलिये आप अवश्य कुछ काममें हमें लगाइये । नहीं तो हमें भोजन न करनेको भी बाध्य होना पड़ेगा । सगरने जब इनका अत्यन्त ही आग्रह देखा तो उसने इनसे कहा—मेरी इच्छा नहीं कि तुम किसी कष्टके उठानेको तैयार हो । पर जब तुम किसी तरह माननेके लिये तैयार ही नहीं हो, तो अस्तु, मैं तुम्हें यह काम बताता हूँ कि श्रीमान् भरत सम्राट्ने कैलास पर्वत पर चौबीस तीर्थकरोंके चौबीस मन्दिर बनवाये हैं । वे सब सोनेके हैं । उनमें बे-शुमार धन खर्च किया है । उनमें जो अर्हन्त भगवान्की पवित्र प्रतिमाएँ हैं वे रत्नमयी हैं । उनकी रक्षा करना बहुत जरूरी है । इसलिए तुम जाओ कैलासके चारों ओर एक गहरी खाई खोदकर उसे गंगाका प्रवाह लाकर भर दो । जिससे कि फिर दुष्ट लोग मन्दिरोंको कुछ हानि न पहुँचा सकें । सगरके सब ही पुत्र पिताजीकी इस आज्ञासे बहुत खुश हुए । वे उन्हें नमस्कार कर आनन्द और उत्साहके साथ अपने कामके लिए चल पड़े । कैलास पर पहुँच कर कई वर्षोंके कठिन परिश्रम द्वारा उन्होंने चक्रवर्त्तीके दण्डरत्नकी सहायतासे अपने कार्यमें सफलता प्राप्त कर ली ।

अच्छा, अब उस मणिकेतुकी बात सुनिए—उसने सगरको संसारसे उदासीन कर योगी बनानेके लिए दोबार यत्न किया, पर दोनों ही बार उसे निराश हो जाना पड़ा । अबकी बार उसने एक बड़ा ही भयंकर कांड रचा ।

जिस समय सगरके ये साठ हजार लड़के खाई खोदकर गंगाका प्रवाह लानेको हिमवान पर्वत पर गये और इन्होंने दण्ड-रत्न द्वारा पर्वत फोड़नेके लिए उस पर एक चोट मारी उस समय मणिकेतुने एक बड़े भारी और महाविषधर सर्पका रूप धर, जिसकी कि फुंकार मात्रसे कोसों के जीव-जन्तु भस्म हो सकते थे, अपनी विषैली हवा छोड़ी। उससे देखते-देखते वे सब ही जलकर खाक हो गये। सच है, अच्छे पुरुष दूसरेका हित करनेके लिए कभी-कभी तो उसका अहित कर उसे हितकी ओर लगाते हैं। मन्त्रियोंको इनके मरनेकी बात मालूम हो गई। पर उन्होंने राजासे इसलिए नहीं कहा कि वे ऐसे महान् दुःखको न सह सकेंगे। तब मणिकेतु ब्राह्मणका रूप लेकर सगरके पास पहुँचा और बड़े दुःखके साथ रोता-रोता बोला—राजाधिराज, आप सरीखे न्यायी और प्रजाप्रिय राजाके रहते मुझे अनाथ हो जाना पड़े, मेरी आँखोंके एक मात्र तारेको पापी लोग जबरदस्ती मुझसे छुड़ा ले जाय, मेरी सब आशाओं पर पानी फेर कर मुझे द्वार-द्वारका भिखारी बना जाय और मुझे रोता छोड़ जाय तो इससे बढ़कर दुःखकी और क्या बात होगी ? प्रभो, मुझे आज पापियोंने बे-मौत मार डाला है। मेरी आप रक्षा कीजिये—अशरण-शरण, मुझे बचाइये ! सगरने उसे इस प्रकार दुःखी देखकर धीरज दिया और कहा—ब्राह्मण देव, घबराइये मत वास्तवमें बात क्या है उसे कहिए। मैं तुम्हारे दुःख दूर करनेका यत्न करूँगा। ब्राह्मण कहा—महाराज क्या कहूँ ? कहते छाती फटी जाती है, मुँहसे शब्द नहीं निकलता। यह कहकर वह फिर रोने लगा। चक्रवर्तीको इससे बड़ा दुःख हुआ। उसके अत्यन्त आग्रह करने पर मणिकेतु बोला—अच्छा तो महाराज, मेरी दुःख कथा सुनिए—मेरे एक मात्र लड़का था। मेरी सब आशा उसी पर थी। वही मुझे खिलाता-पिलाता था। पर मेरे भाग्य आज फूट गये। उसे एक काल नामका एक लुटेरा मेरे हाथोंसे जबरदस्ती छीन भागा। मैं बहुत रोया व कलपा, दयाकी मैंने उससे भीख माँगी, बहुत आर्जू-मिन्नत की, पर उस पापी चाण्डालने मेरी ओर आँख उठाकर भी न देखा। राजराजेश्वर, आपसे, मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप मेरे पुत्रको उस पापीसे छुड़ा ला दीजिए। नहीं तो मेरी जान न बचेगी। सगरको काल-लुटेरेका नाम सुनकर कुछ हँसी आ गई। उसने कहा—महाराज, आप बड़े भोले हैं।

भला, जिसे काल ले जाता है, जो मर जाता है वह फिर कभी जीता हुआ है क्या ? ब्राह्मण देव, काल किसीसे नहीं रुक सकता । वह तो अपना काम किये ही चला जाता है । फिर चाहे कोई बूढ़ा हो, या जवान हो, या बालक, सबके प्रति उसके समान भाव हैं । आप तो अभी अपने लड़केके लिए रोते हैं, पर मैं कहता हूँ कि वह तुमपर भी बहुत जल्दी सवारी करने वाला है । इसलिए यदि आप यह चाहते हों कि मैं उससे रक्षा पा सकूँ, तो इसके लिए यह उपाय कीजिए कि आप दीक्षा लेकर मुनि हो जायँ और अपना आत्महित करें । इसके सिवा काल पर विजय पानेका और कोई दूसरा उपाय नहीं है । सब कुछ सुन-सुनाकर ब्राह्मणने कुछ लाचारी बतलाते हुए कहा कि यदि यह बात सच है और वास्तवमें कालसे कोई मनुष्य विजय नहीं पा सकता तो लाचारी है । अस्तु, हाँ एक बात तो राजाधिराज, मैं आपसे कहना ही भूल गया और वह बड़ी ही जरूरी बात थी । महाराज, इस भूलकी मुझ गरीब पर क्षमा कीजिए । बात यह है कि मैं रास्तेमें आता-आता सुनता आ रहा हूँ, लोग परस्परमें बातें करते हैं कि हाय ! बड़ा बुरा हुआ जो अपने महाराजके लड़के कैलास पर्वतकी रक्षाके लिए खाई खोदनेको गये थे, वे सबके सब ही एक साथ मर गये । ब्राह्मणका कहना पूरा भी न हुआ था कि सगर एकदम गश खाकर गिर पड़े । सच है, ऐसे भयंकर दुःख-समाचारसे किसे गश न आयेगा, कौन मूर्च्छित न होगा ? उसी समय उपचारों द्वारा सगर होशमें लाये गये । इसके बाद मौका पाकर मणिकेतुने उन्हें संसारकी दशा बतलाकर खूब उपदेश किया । अबकी बार वह सफल प्रयत्न हो गया । सगरको संसारको इस क्षण-भंगुर दशा पर बड़ा ही वैराग्य हुआ । उन्होंने भागीरथको राज देकर और सब माया-ममता छुड़ाकर दृढ़धर्म केवली द्वारा दीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि संसारका भटकना मिटाने वाली है ।

सगरको दीक्षा लिए बाद ही मणिकेतु कैलास पर्वत पर पहुँचा और उन लड़कोंको माया-मौतसे सचेत कर बोला—सगर सुतो, जब आपकी मृत्युका हाल आपके पिताने सुना तो उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ और इसी दुःख के मारे वे संसारकी विनाशक लक्ष्मीको छोड़कर साधु हो गये । मैं आपके कुलका ब्राह्मण हूँ । महाराजको दीक्षा ले जानेकी खबर पाकर आपको ढूँढनेको निकला

था । अच्छा हुआ जो आप मुझे मिल गये । अब आप राजधानीमें जल्दी चलें । ब्राह्मणरूपधारी मणिकेतु द्वारा पिताका अपने लिए दीक्षित हो जाना सुनकर सगरसुतोंने कहा महाराज, आप जायें । हम लोग अब घर नहीं जायेंगे । जिस लिए पिताजी सब राज्यपाठ छोड़कर साधु हो गये तब हम किस मुँहसे उस राजको भोग सकते हैं ? हमसे इतनी कृतघ्नता न होगी, जो पिताजीके प्रेमका बदला हम ऐशो आराम भोग कर दें । जिस मार्गको हमारे पूज्य पिताजीने उत्तम समझकर ग्रहण किया है वही हमारे लिए भी शरण है । इसलिए कृपा कर आप हमारे इस समाचारको भैया भागीरथसे जाकर कह दीजिए कि वह हमारे लिए कोई चिन्ता न करें । ब्राह्मणसे इस प्रकार कहकर वे सब भाई भगवान्‌के समवशरणमें आये और पिताकी तरह दीक्षा लेकर साधु बन गये ।

भागीरथको भाइयोंका हाल सुनकर बड़ा वैराग्य हुआ । उसकी इच्छा भी योग ले लेनेकी हुई, पर राज्य-प्रबन्ध उसी पर निर्भर रहनेसे वह दीक्षा न ले सका । परन्तु उसने उन मुनियों द्वारा जिनधर्मका उपदेश सुनकर श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये । मणिकेतुका सब काम जब अच्छी तरह सफल हो गया तब वह प्रगट हुआ और उन सब मुनियोंको नमस्कार कर बोला—भगवन् आपका मैंने बड़ा भारी अपराध जरूर किया है । पर आप जैनधर्मके तत्त्वको यथार्थ जाननेवाले हैं । इसलिए सेवक को क्षमा करें । इसके बाद मणिकेतुने आदिसे इति पर्यन्त सबकी सब घटना कह सुनाई । मणिकेतुके द्वारा सब हाल सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई । वे उससे बोले—देवराज, इसमें तुम्हारा अपराध क्या हुआ, जिसके लिए क्षमा की जाय ? तुमसे तो उलटा हमारा उपकार किया है । इसलिए हमें तुम्हारा कृतज्ञ होना चाहिए । मित्रपनेके नातेसे तुमने जो कार्य किया है वैसा करनेके लिए तुम्हारे बिना और समर्थ ही कौन था ? इसलिए देवराज, तुम ही सच्चे धर्म-प्रेमी हो, जिन भगवान्‌के भक्त हो, और मोक्ष-लक्ष्मीकी प्राप्तिके कारण हो । सगर-सुतोंका इस प्रकार सन्तोष-जनक उत्तर पर मणिकेतु बहुत प्रसन्न हुआ । वह फिर उन्हे भक्तिपूर्वक नमस्कार कर स्वर्ग चला गया । यह मुनिसंघ विहार करता हुआ सम्मेदशिखर पर आया और यहीं कठिन तपस्या कर शुक्लध्यानके प्रभावसे इसने निर्वाण लाभ किया ।

उधर भागीरथने जब अपने भाइयोंका मोक्ष प्राप्त करना सुना तो उसे भी संसारसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह फिर अपने वरदत्त पुत्रको राज्य सौंप आप कैलास पर शिवगुप्त मुनिराजके पास दीक्षा ग्रहण कर मुनि हो गया। भगीरथने मुनि होकर गंगाके सुन्दर किनारों पर कभी प्रतिमायोगसे, कभी आतापन योगसे और कभी और किसी आसनसे खूब तपस्या की। देवता लोग उसकी तपस्यासे बहुत खुश हुए। और इसीलिए उन्होंने भक्तिके वश हो भगीरथके चरणोंका क्षीर-समुद्रके जलसे अभिषेक किया, जो कि अनेक प्रकारके सुखोंका देनेवाला है। उस अभिषेकके जलका प्रवाह बहता हुआ गंगामें गया। तभीसे गंगा तीर्थके रूपमें प्रसिद्ध हुई और लोग उसके स्नानको पुण्यका कारण समझने लगे। भागीरथने फिर कहीं अन्यत्र विहार न किया। वह वहीं तपस्या करता रहा और अन्तमें कर्मोंका नाशकर उसने जन्म, जरा, मरणादि रहित मोक्षका सुख भी यहींसे प्राप्त किया।

केवलज्ञानरूपी नेत्र द्वारा संसारके पदार्थोंको जानने और देखनेवाले, देवों द्वारा पूजा किये गये और मुक्तिरूप रमणीरत्नके स्वामी श्रीसगर मुनि तथा जैनतत्त्वके परम विद्वान् वे सगरसुत मुनिराज मुझे वह लक्ष्मी दें, जो कभी नाश होनेवाली नहीं है और सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है।

---

* जिस दीपक में केवल बत्ती होगी या केवल तेल ही होगा वह प्रकाश नहीं दे सकता। इस प्रकार ज्ञान के अभाव में अकेली क्रिया, क्रिया के अभाव में अकेले ज्ञान से कल्याण नहीं हो सकता है।

५५. मृगध्वजकी कथा

सारे संसार द्वारा भक्ति सहित पूजा किये गये जिन भगवान्‌को नमस्कार कर प्राचीनाचार्योंके कहे अनुसार मृगध्वज राजकुमारकी कथा लिखी जाती है ।

सीमन्धर अयोध्याके राजा थे । उनको रानीका नाम जिनसेना था । इनके एक मृगध्वज नामका पुत्र था । यह माँसका बड़ा लोलुपी था । इसे बिना मांस खाये एक दिन भी चैन न पड़ता था । यहाँ एक राजकीय भैंसा था । वह बुलानेसे पास चला आता, लौट जानेको कहनेसे चला जाता और लोगोंके पाँवोंमें लोटने लगता । एक दिन यह भैंसा एक तालाबमें क्रीड़ा कर रहा था । इतनेमें राजकुमार मृगध्वज, मंत्री और सेठके लड़कोंको साथ लिए यहाँ आया । इस भैंसेके पाँवोंको देखकर मृगध्वजके मनमे न जाने क्या धुन समाई सो इसने अपने नौकरसे कहा—देखो, आज इस भैंसेका पिछला पाँव काट कर इसका मांस खानेको पकाना । इतना कहकर मृगध्वज चल दिया । नौकर उसके कहे अनुसार भैंसेका पाँव काट कर ले गया । उसका मांस पका । उसे खाकर राजकुमार और उसके साथी बड़े प्रसन्न हुए ।

इधर बेचारा भैंसा बड़े दुःखके साथ लँगड़ाता हुआ राजाके सामने जाकर गिर पड़ा । राजाने देखा कि उसकी मौत आ लगी है । इसलिए उस समय उसने विशेष पूछ-पाछ न कर, कि किसने उसकी ऐसी दशा की है, दयाबुद्धिसे उसे संन्यास देकर नमस्कार मन्त्र सुनाया । सच है, संसारमें बहुतसे ऐसे भी गुणवान् परोपकारी हैं, जो चन्द्रमा, सूर्य, कल्पवृक्ष, पानी आदि उपकारक वस्तुओंसे भी कहीं बढ़कर हैं । भैंसा मरकर नमस्कार मन्त्रके प्रभावसे स्वर्ग में जाकर देव हुआ । सच है, जिनेन्द्र भगवान्‌का उपदेश किया पवित्र धर्म जीवोका वास्तवमे हित करनेवाला है ।

इसके बाद राजाने इस बातका पता लगाया कि भैंसकी यह दशा किसने की ! उन्हें जब यह नीच काम अपने और मंत्री तथा सेठके पुत्रोंका जान पड़ा तब तो उनके गुस्सेका कुछ ठिकाना न रहा । उन्होंने उसी समय तीनोंको मरवा डालने के लिये मंत्रीको आज्ञा की । इस राजाज्ञाकी खबर उन तीनोंको

भी लग गई । तब उन्होने झटपट मुनिदत्त मुनिके पास जाकर उनसे जिन दिक्षा ले ली । इनमे मृगध्वज महामुनि बड़े तपस्वी हुए । उन्होंने कठिन तपस्या कर ध्यानाग्नि द्वारा घातिया कर्मोंका नाश किया और केवलज्ञान प्राप्त कर संसार द्वारा वे पूज्य हुए । सच है, जिनधर्मका प्रभाव ही कुछ ऐसा अचिन्त्य है जो महापापीसे पापी भी उसे धारण कर त्रिलोक-पूज्य हो जाता है और ठीक भी है, धर्मसे और उत्तम है ही क्या ?

वे मृगध्वज मुनि मुझे और आप भव्य-जनोंको महा मंगलमय मोक्ष लक्ष्मी दें, जो भव्य-जनोंका उद्धार करनेवाले हैं, केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्रके धारक हैं, देवो, विद्याधरो और बड़े-बड़े राजों-महाराजोंसे पूज्य हैं, संसारका हित करनेवाले हैं, बड़े धीर हैं और अनेक प्रकारका उत्तमसे उत्तम सुख देनेवाले हैं ।

---

* सचमुच व्यक्ति की लाभ हानि से देश की लाभ हानि बड़ी चीज है प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह पहले समूह की भलाई को देखे और फिर अपनी भलाई को । स्मरण रखना चाहिये की समूह के कल्याण में व्यक्ति के कल्याण का बीज है ।

* सन्मार्ग कौनसा है? यह वही मार्ग है जिसमें छोटे से छोटे जीव की रक्षा का पूरा ध्यान रखा जाये ।

५६. परशुरामकी कथा

संसार-समुद्र पार करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर परशुरामका चरित्र लिखा जाता है जिसे सुनकर आश्चर्य होता है ।

अयोध्याका राजा कार्त्तवीर्य अत्यन्त मूर्ख था । उसकी रानी का नाम पद्मावती था । अयोध्याके जगलमे यमदग्नि नामके एक तपस्वीका आश्रम था । इस तपस्वीकी स्त्रीका नाम रेणुका था । इसके दो लड़के थे । इसमे एकका नाम श्वेतराम था और दूसरेका महेन्द्रराम । एक दिनकी बात है कि रेणुकाके भाई वरदत्त मुनि उस ओर आ निकले । वे एक वृक्षके नीचे ठहरे । उन्हे देखकर रेणुका बड़े प्रेमसे उनसे मिलनेको आई और उनके हाथ जोड़कर वहीं बैठ गई । बुद्धिमान् वरदत्त मुनिने उससे कहा—बहिन, मैं तुझे कुछ धर्मका उपदेश सुनाता हूँ । तू उसे जरा सावधानीसे सुन । देख, सब जीव सुखको चाहते हैं, पर सच्चे सुखके प्राप्त करनेकी कोई बिरला ही खोज करता है और इसीलिये प्राय लोग दुखी देखे जाते हैं । सच्चे सुखका कारण पवित्र सम्यग्दर्शनका ग्रहण करना है । जो पुरुष सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं, वे दुर्गतियोमे फिर नहीं भटकते । संसारका भ्रमण भी उनका कम हो जाता है । उनमे कितने तो उसी भवसे मोक्ष चले जाते हैं । सम्यक्त्वका साधारण स्वरूप यह है कि सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र पर विश्वास लाना । सच्चे देव वे हैं, जो भूख और प्यास, राग और द्वेष, क्रोध और लोभ, मान और माया आदि अठारह दोषोसे रहित हो, जिनका ज्ञान इतना बढ़ा-चढ़ा हो कि उससे ससारका कोई पदार्थ अजाना न रह गया हो, जिन्हें स्वर्गके देव, विद्याधर, चक्रवर्त्ती और बड़े-बडे राजे-महाराजे भी पूजते हों, और जिनका उपदेश किया पवित्र धर्म इस लोकमे और परलोकमें भी सुखका देनेवाला हो तथा जिस पवित्र धर्मकी इन्द्रादि देव भी पूजा-भक्ति कर अपना जीवन कृतार्थ समझते हों । धर्मका स्वरूप उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव आदि दश लक्षणो द्वारा प्राय· प्रसिद्ध है और सच्चे गुरु वे कहलाते हैं, जो शील और सयमके पालनेवाले हो, ज्ञान और ध्यानका साधन ही जिनके जीवनका खास उद्देश्य हो और जिनके पास परिग्रह रत्तीभर भी न हो । इन बाते पर विश्वास करनेको

सम्यक्त्व कहते हैं । इसके सिवा गृहस्थोंके लिए पात्रदान करना, भगवान्की पूजा करना, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत धारण करना, पर्वोमें उपवास वगैरह करना आदि वातें भी आवश्यक हैं । यह गृहस्थ-धर्म कहलाता है । तू इसे धारण कर । इससे तुझे सुख प्राप्त होगा । भाईके द्वारा धर्मका उपदेश सुन रेणुका बहुत प्रसन्न हुई । उसने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ सम्यक्त्व-रत्न द्वारा अपने आत्माको विभूषित किया और सच भी है, यही सम्यक्त्व तो भव्यजनोंका भूषण है । रेणुकाका धर्म-प्रेम देखकर वरदत्त मुनिने उसे एक 'परशु' और दूसरी 'कामधेनु' ऐसी दो महाविद्याएँ दीं, जो कि नाना प्रकारका सुख देनेवाली हैं । रेणुकाको विद्या देकर जैनतत्त्वके परम विद्वान् वरदत्तमुनि विहार कर गये । इधर सम्यक्त्वशालिनी रेणुका घर आकर सुखसे रहने लगी । रेणुकाको धर्म पर अव खूव प्रेम हो गया । वह भगवान्को वड़ी भक्त हो गई ।

एक दिन राजा कार्त्तवीर्य हाथी पकड़नेको इसी वनकी ओर आ निकला । घूमता हुआ वह रेणुकाके आश्रममें आ गया । यमदग्नि तापसने उसका अच्छा आदर-सत्कार किया और उसे अपने यहीं जिमाया भी । भोजन कामधेनु नामकी विद्याकी सहायतासे वहुत उत्तम तैयार किया गया था । राजा भोजन कर बहुत ही प्रसन्न हुआ और क्यों न होता ? क्योंकि सारी जिन्दगीमें उसे कभी ऐसा भोजन खानेको ही न मिला था । उस कामधेनुको देखकर इस पापी राजाके मनमें पाप आया । यह कृतघ्न तब उस वेचारे तापसीको जानसे मारकर गौको ले गया । सच है, दुर्जनोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जो उनका उपकार करते हैं, वे दूध पिलाये सर्प की तरह अपने उन उपकारककी ही जानके लेनेवाले हो उठते हैं ।

राजाके जानेके थोड़ी देर वाद ही रेणुकाके दोनों लड़के जंगलसे लकड़ियाँ वगैरह लेकर आ गये । माताको रोती हुई देखकर उन्होंने उसका कारण पूछा । रेणुकाने सब हाल उनसे कह दिया । माताकी दुःखभरी वातें सुनकर श्वेतरामके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा । वह कार्त्तवीर्यसे अपने पिताका वदला लेनेके लिए उसी समय मातासे 'परशु' नामकी विद्याको लेकर अपने छोटे भाई को साथ लिए चल पड़ा । राजाके नगरमें पहुँच कर उसने कार्त्तवीर्य को युद्धके लिए ललकारा । यद्यपि एक ओर कार्त्तवीर्यकी प्रचण्डसेना

थी और दूसरी ओर सिर्फ ये दो ही भाई थे; पर तब भी परशु विद्याके प्रभावसे इन दोनो भाइयोने ही कार्त्तवीर्यकी सारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया और अन्तमे कार्त्तवीर्यको मारकर अपने पिताका बदला लिया । मरकर पापके फलसे कार्त्तवीर्य नरक गया । सो ठीक ही है, पापियोंकी ऐसी गति होती ही है । उस तृष्णाको धिक्कार है जिसके वश हो लोग न्याय-अन्यायको कुछ नहीं देखते और फिर अनेक कष्टोको सहते हैं । ऐसे ही अन्यायो द्वारा तो पहले भी अनेक राजो-महाराजोंका नाश हुआ है । और ठीक भी है जिस वायुसे बड़े-बड़े हाथी तक मर जाते हैं तब उसके सामने बेचारे कीट-पतंगादि छोटे-छोटे जीव तो ठहर ही कैसे सकते हैं । श्वेतराम ने कार्त्तवीर्यको परशु विद्यासे मारा था, इसलिए फिर अयोध्यामे वह 'परशुराम' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

संसारमें जो शूरवीर, विद्वान्, सुखी, धनी हुए देखे जाते हैं वह पुण्यकी महिमा है । इसलिए जो सुखी, विद्वान्, धनवान्, वीर आदि बनना चाहते हैं, उन्हें जिन भगवान्का उपदेश किया पुण्य-मार्ग ग्रहण करना चाहिए ।

---

* जिसका मन सत्यशीलता में निमग्न है, वह पुरुष तपस्वी से भी महान और दानी से भी श्रेष्ठ है ।

* शरीर की स्वच्छता का सम्बंध तो जल से है, परन्तु मन की पवित्रता सज्जनता से सिद्ध होती है ।

५७. सुकुमाल मुनिकी कथा

जिनके नाम मात्र हीका ध्यान करनेसे हर प्रकार की धन-सम्पत्ति प्राप्त हो सकती है, उन परम पवित्र जिन भगवान्को नमस्कार कर सुकुमाल मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

अतिबल कौशाम्बीके जब राजा थे, तबहीका यह आख्यान है । यहॉ एक सोमशर्मा पुरोहित रहता था । इसकी स्त्रीका नाम काश्यपी था । इसके अग्निभूत और वायुभूति नामक दो लड़के हुए । मॉ-बापके अधिक लाड़ले होनेसे ये कुछ पढ़-लिख न सके । और सच है पुण्यके बिना किसीको विद्या आती भी तो नहीं । कालकी विचित्र गतिसे सोमशर्माकी असमयमें ही मौत हो गई । ये दोनो भाई तब निरे मूर्ख थे । इन्हे मूर्ख देखकर अतिबलने इनके पिताका पुरोहित पद, जो इन्हें मिलता, किसी और को दे दिया । यह ठीक है कि मूर्खोंका कहीं आदर-सत्कार नहीं होता । अपना अपमान हुआ देखकर इन दोनों भाइयोंको बड़ा दु·ख हुआ । तब इनकी कुछ अकल ठिकाने आई । अब इन्हें कुछ लिखने-पढ़नेकी सूझी । ये राजगृहमें अपने काका सूर्यमित्रके पास गये और अपना सब हाल इन्होंने उनसे कहा । इनकी पढ़नेकी इच्छा देखकर सूर्यमित्रने स्वयं इन्हे पढ़ाना शुरू किया और कुछ ही वर्षोंमे इन्हें अच्छा विद्धान् बना दिया । दोनो भाई जब अच्छे विद्धान् हो गये तब ये पीछे अपने शहर लौट आये । आकर इन्होंने अतिबलको अपनी विद्याका परिचय कराया । अतिबल इन्हे विद्वान् देखकर बहुत खुश हुआ और इनके पिताका पुरोहित-पद उसने पीछा इन्हें ही दे दिया । सच है सरस्वती की कृपासे ससारमें क्या नहीं होता ।

एक दिन सन्ध्याके समय सूर्यमित्र सूर्यको अर्ध चढ़ा रहा था । उसकी अंगुलीमे राजकीय एक रत्नजडी बहुमूल्य अंगूठी थी । अर्ध चढ़ाते समय वह ॲगूठी अंगुलीमेंसे निकलकर महलके नीचे तालाबमे जा गिरी । भाग्यसे वह एक खिले हुए कमलमे पड़ी । सूर्यमित्र सूर्यअस्त पाठ करके उठा और उसकी नजर उँगली पर पड़ी तब उसे मालूम हुआ कि ॲगूठी कहीं पर गिर पडी । अब तो उसके डरका कुछ ठिकाना न रहा । राजा जब अंगूठी मॉगेगा तब उसे

क्या जवाब दूँगा, इसकी उसे बड़ी चिन्ता होने लगी । अँगूठीकी शोधके लिये इसने बहुत कुछ यत्न किया, पर इसे उसका कुछ पता न चला । तब किसीके कहनेसे यह अवधिज्ञानी सुधर्म मुनिके पास गया और हाथ जोडकर इसने उनसे अँगूठीके बाबत पूछा कि प्रभो, क्या कृपा कर मुझे आप यह बतलावेगे कि मेरी अँगूठी कहाँ चली गई और हे करुणाके समुद्र, वह कैसे प्राप्त होगी ? मुनिने उत्तरमे यह कहा कि सूर्यको अर्ध देते समय तालाबमे एक खिले हुए कमलमे अँगूठी गिर पडी है । वह सबेरे मिल जायेगी । वही हुआ । सूर्योदय होते ही जैसे कमल खिला सूर्यमित्रको उसमे अँगूठी मिली । सूर्यमित्र बडा खुश हुआ । उसे इस बातका बडा अचम्भा होने लगा कि मुनिने यह बात कैसे बतलाई ? हो न हो, उनसे अपनेको भी वह विद्या सीखनी चाहिये । यह विचार कर सूर्यमित्र, मुनिराजके पास गया । उन्हे नमस्कार कर उसने प्रार्थना की कि हे योगिराज, मुझे भी आप अपनी विद्या सिखा दीजिये, जिसमे मैं भी दूसरेके ऐसे प्रश्नोका उत्तर दे सकूँ । आपकी मुझ पर बडी कृपा होगी, यदि आप मुझे अपनी यह विद्या पढ़ा देंगे । तब मुनिराजने कहा—भाई, मुझे इस विद्याके सिखानेमे कोई इकार नहीं है । पर बात यह है कि बिना जिनदीक्षा लिये यह विद्या आ नहीं सकती । सूर्यमित्र तब केवल विद्याके लोभसे दीक्षा लेकर मुनि हो गया । मुनि होकर इसने गुरुसे विद्या सिखाने को कहा । सुधर्म मुनिराजने तब सूर्यमित्रको मुनियोके आचार-विचारके शास्त्र तथा सिद्धान्त-शास्त्र पढ़ाये । अब तो एकदम सूर्यमित्रकी आँखे खुल गई । यह गुरुके उपदेश रूपी दियेके द्वारा अपने हृदयके अज्ञानान्धकारको नष्ट कर जैनधर्मका अच्छा विद्वान् हो गया । सच है, जिन भव्य पुरुषोने सच्चे मार्गको बतलानेवाले और संसारके अकारण बन्धु गुरुओकी भक्ति सहित सेवा-पूजा की है, उनके सब काम नियमसे सिद्ध हुए हैं ।

जब सूर्यमित्र मुनि अपने मुनिधर्ममे खूब कुशल हो गये तब वे गुरुकी आज्ञा लेकर अकेले ही विहार करने लगे । एक बार वे विहार करते हुए कौशाम्बीमे आये । अग्निभूतने इन्हे भक्तिपूर्वक दान दिया । उसने अपने छोटे भाई वायुभूतिसे बहुत प्रेरणा और आग्रह इसलिये किया कि वह सूर्यमित्र मुनिकी वन्दना करे, उसे जैनधर्मसे कुछ प्रेम हो । कारण वह जैनधर्मसे सदा

विरुद्ध रहता था। पर अग्निभूतिके इस आग्रहका परिणाम उलटा हुआ। वायुभूतिने और खिसियाकर मुनिकी अधिक निन्दा की और उन्हें बुरा-भला कहा। सच है, जिन्हे दुर्गतियोंमें जाना होता है प्रेरणा करने पर भी ऐसे पुरुषोंका श्रेष्ठ धर्मकी ओर झुकाव नहीं होता, किन्तु वह उलटा पाप कीचड़में अधिक-अधिक फॅसता है। अग्निभूतको अपने भाईकी ऐसी दुर्बुद्धि पर बड़ा दुःख हुआ। यही कारण था कि जब मुनिराज आहार कर वनमें गये तव अग्निभूति भी उनके साथ-साथ चला गया। और वहॉ धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य हो जानेसे दीक्षा लेकर वह भी तपस्वी हो गया। अपना और दूसरोंका हित करना अबसे अग्निभूतिके जीवनका उद्देश्य हुआ।

अग्निभूतिके मुनि हो जानेकी बात जब इसकी स्त्री सती सोमदत्ताको ज्ञात हुई तो उसे अत्यन्त दुःख हुआ। उसने वायुभूतिसे जाकर कहा—देखी, तुमने मुनि वन्दना न कर उनकी बुराई की, सुनती हूॅ उससे दुखी होकर तुम्हारे भाई भी मुनि हो गये। यदि वे अव तक मुनि न हुए हों तो चलो उन्हें तुम हम समझा लावें। वायुभूतिने गुस्सा होकर कहा—हॉ तुम्हें गर्ज हो तो तुम भी उस बदमाश नंगेके पास जाओ! मुझे तो कुछ गर्ज नहीं है। यह कहकर वायुभूति अपनी भौजीके एक लात मारकर चलता बना। सोमदत्ताको उसके मर्मभेदी वचनोंको सुनकर बड़ा दुःख हुआ। उसे क्रोध भी अत्यन्त आया। पर अबला होनेसे वह उस समय कर कुछ नहीं सकी। तव उसने निदान किया कि पापी, तूने जो इस समय मेरा मर्म भेदा है और मुझे लातोंसे ठुकराया है, और इसका वदला स्त्री होनेसे मैं इस समय न भी ले सकी तो कुछ चिन्ता नहीं, पर याद रख इस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें सही, पर बदला लूॅगी अवश्य। तेरे इसी पॉवको, जिससे कि तूने मुझे लात मारी है और मेरे हृदय भेदनेवाले तेरे इसी हृदयको मैं खाऊॅगी तभी मुझे सन्तोष होगा। ग्रन्थकार कहते हैं कि ऐसी मूर्खताको धिक्कार है जिसके वश हुए प्राणी अपने पुण्य-कर्मको ऐसे नीच निदानो द्वारा भस्म कर डालते हैं।

'इस हाथ दे उस हाथ ले' इस कहावतके अनुसार तीव्र पापका फल प्रायः तुरन्त मिल जाता है। वायुभूतिने मुनिनिन्दा द्वारा जो तीव्र पापकर्म बॉधा, उसका फल उसे बहुत जल्दी मिल गया। पूरे सात दिन भी न हुए होंगे कि

वायुभूतिके सारे शरीरमे कोढ़ निकल आया । सच है, जिनकी सारा ससार पूजा करता है और जो धर्मके सच्चे मार्गको दिखानेवाले हैं ऐसे महात्माओकी निन्दा करने वाला पापी पुरुष किन महाकष्टोको नहीं सहता । वायुभूति कोढके दु:खसे मरकर कौशाम्बीमे ही एक नटके यहाँ गधा हुआ । गधा मरकर वह जगली सूअर हुआ । इस पर्यायसे मरकर इसने चम्पापुरमें एक चाण्डालके यहाँ कुत्ती का जन्म धारण किया, कुत्ती मरकर चम्पापुरीमे ही एक दूसरे चाण्डालके यहाँ लड़की हुई । यह जन्म हीसे अन्धी थी । इसका सारा शरीर बदबू कर रहा था । इसलिये इसके माता-पिताने इसे छोड़ दिया । पर भाग्य सभीका बलवान् होता है । इसलिए इसकी भी किसी तरह रक्षा हो गई । यह एक जांबूके झाड़-नीचे पड़ी-पड़ी जांबू खाया करती थी ।

सूर्यमित्र मुनि अग्निभूतिको साथ लिये हुए भाग्यसे इस ओर आ निकले । उस जन्मकी दु·खिनी लड़कीको देखकर अग्निभूतिके हृदयमे कुछ मोह, कुछ दु ख हुआ । उन्होने गुरुसे पूछा—प्रभो, इसकी दशा बडी कष्टमे है । यह कैसे जी रही है ? ज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने कहा—तुम्हारे भाई वायुभूतिने धर्मसे पराङ्मुख होकर जो मेरी निन्दा की थी, उसी पापके फलसे उसे कई भव पशुपर्यायमें लेना पड़े । अन्तमें वह कुत्तीकी पर्यायसे मरकर यह चाण्डाल कन्या हुई है । पर अब इसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है । इसलिये जाकर तुम इसे व्रत लिवाकर संन्यास दे आओ । अग्निभूतिने वैसा ही किया । उस चाण्डाल कन्याको पाँच अणुव्रत देकर उन्होने संन्यास लिवा दिया ।

चाण्डाल कन्या मरकर व्रतके प्रभावसे चम्पापुरीमे नागशर्मा ब्राह्मणके यहाँ नागश्री नामकी कन्या हुई । एक दिन नागश्री वनमे नागपूजा करनेको गई थी । पुण्यसे सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि भी विहार करते हुए इस ओर आ गये । उन्हे देखकर नागश्रीके मनमे उनके प्रति अत्यन्त भक्ति हो गई । वह उनके पास गई और हाथ जोड़कर उनके पाँवोके पास बैठ गई । नागश्रीको देखकर अग्निभूति मुनिके मनमे कुछ प्रेमका उदय हुआ, और होना उचित ही था । क्योंकि थी तो वह उनके पूर्वजन्मका भाई न ? अग्निभूति मुनिने इसका कारण अपने गुरुसे पूछा । उन्होने प्रेम होनेका कारण जो पूर्व जन्मका भातृ-भाव था, वह बता दिया । तब अग्निभूतिने उसे धर्मका उपदेश किया

और सम्यक्त्व तथा पॉच अणुव्रत उसे ग्रहण करवाये । नागश्री व्रत ग्रहण कर जब जाने लगी तब उन्होंने उससे कह दिया कि हॉ, देख बच्ची, तुझसे यदि तेरे पिताजी इन व्रतोंको लेनेके लिए नाराज हों, तो तू हमारे व्रत हमे ही आकर सौंप जाना । सच है, मुनि लोग वास्तवमें सच्चे मार्गके दिखानेवाले होते हैं ।

इसके बाद नागश्री उन मुनिराजोके भक्तिसे हाथ जोड़कर और प्रसन्न होती हुई अपने घर पर आ गई । नागश्रीके साथकी और-और लड़कियोंने उसके व्रत लेनेकी बातको नागशर्मासे जाकर कह दिया । नागशर्मा तब कुछ क्रोधकासा भाव दिखाकर नागश्रीसे बोला—बच्ची, तू बड़ी भोली है, जो झटसे हरएकके बहकानेमे आ जाती है । भला, तू नहीं जानती कि अपने पवित्र ब्राह्मण-कुलमे उन नंगे मुनियोके दिये व्रत नहीं लिये जाते । वे अच्छे लोग नहीं होते । इसलिए उनके व्रत तू छोड़ दे । तब नागश्री बोली—तो पिताजी, उन मुनियोंने मुझे आते समय यह कह दिया था कि यदि तुझसे तेरे पिताजी इन व्रतोंको छोड देनेके लिए आग्रह करें तो तू पीछे हमारे व्रत हमे ही दे जाना । तब आप चलिए मैं उन्हे उनके व्रत दे आती हूँ । सोमशर्मा नागश्रीका हाथ पकडे क्रोधसे गुर्राता हुआ मुनियोंके पास चला । रास्तेमें नागश्रीने एक जगह कुछ गुलगपाड़ा होता सुना । उस जगह बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे और एक मनुष्य उनके बीचमें बँधा हुआ पड़ा था । उसे कुछ निर्दयी लोग वड़ी क्रूरतासे मार रहे थे । नागश्रीने उसकी यह दशा देखकर सोमशर्मासे पूछा—पिताजी, वेचारा यह पुरुष इस प्रकार निर्दयतासे क्यों मारा जा रहा है ? सोमशर्मा बोला—बच्ची, इस पर एक बनिये के लड़के वरसेनका कुछ रुपया लेना था । उसने इससे अपने रुपयोंका तकादा किया । इस पापीने उसे रुपया न देकर जानसे मार डाला । इसलिए उस अपराधके बदले अपने राजा साहबने इसे प्राणदंडकी सजा दी है, और वह योग्य है । क्योंकि एकको ऐसी सजा मिलनेसे अब दूसरा कोई ऐसा अपराध न करेगा । तब नागश्रीने जरा जोर देकर कहा—तो पिताजी, यही व्रत तो उन मुनियोने मुझे दिया है, फिर आप उसे क्यो छुडानेको कहते हैं ? सोमशर्मा लाजबाब होकर बोला—अस्तु पुत्री, तू इस व्रतको न छोड, चल बाकीके व्रत तो उनके उन्हे दे आवें । आगे

चलकर नागश्रीने एक और पुरुषको बँधा देखकर पूछा—और पिताजी, यह पुरुष क्यो बाँधा गया है ? सोमशर्माने कहा—पुत्री, यह झूठ बोलकर लोगोको ठगा करता था। इसके फन्देमे फँसकर बहुतोको दर-दरका भिखारी बनना पड़ा है। इसलिए झूठ बोलनेके अपराधमे इसकी यह दशा की जा रही है। तब फिर नागश्रीने कहा—तो पिताजी, यही व्रत तो मैंने भी लिया है। अब तो मैं उसे कभी नहीं छोड़ूगी। इसी प्रकार चोरी, परस्त्री, लोभ आदिसे दु:ख पाते हुए मनुष्योंको देखकर नागश्रीने अपने पिता को लाजबाव कर दिया और व्रतोको नहीं छोड़ा। तब सोमशर्माने हार खाकर कहा—अच्छा, यदि तेरी इच्छा इन व्रतोको छोड़नेकी नहीं है तो न छोड, पर तू मेरे साथ उन मुनियोके पास तो चल। मैं उन्हे दो बाते कहूँगा कि तुम्हे क्या अधिकार था जो तुमने मेरी लड़कीको बिना मेरे पूछे व्रत दे दिये ? फिर वे आगेसे किसीको इस प्रकार व्रत न दे सकेंगे। सच है, दुर्जनोंको कभी सत्पुरुषोंसे प्रीति नहीं होती। तब ब्राह्मण देवता अपनी होश! निकालनेको मुनियोके पास चले। उसने उन्हे दूरसे ही देखकर गुस्सेमे आकर कहा—क्योरे नगेओ! तुमने मेरी लडकीको व्रत देकर क्यो ठग लिया ? बतलाओ, तुम्हे इसका क्या अधिकार था ? कवि कहता है कि ऐसे पापियोके विचारोको सुनकर बड़ा ही खेद होता है। भला, जो व्रत, शील, पुण्यके कारण हैं, उनसे क्या कोई ठगाया जा सकता है ? नहीं। सोमशर्माको इस प्रकार गुस्सा हुआ देखकर सूर्यमित्र मुनि बडी धीरता और शान्तिके साथ बोले—भाई, जरा धीरज धर, क्यो इतनी जल्दी कर रहा है ? मैंने इसे व्रत दिये हैं, पर अपनी लडकी समझकर, और सच पूछो तो यह है भी मेरी ही लड़की। तेरा तो इस पर कुछ भी अधिकार नहीं है। तू भले ही यह कह कि यह मेरी लडकी है, पर वास्तवमे यह तेरी लड़की नहीं है। यह कहकर सूर्यमित्र मुनिने नागश्रीको पुकारा। नागश्री झटसे आकर उनके पास बैठ गई। अब तो ब्राह्मण देवता बडे घबराये। वे 'अन्याय' 'अन्याय' चिल्लाते हुए राजाके पास पहुँचे और हाथ जोडकर बोले—देव, नगे साधुओने मेरी नागश्री लडकीको जबरदस्ती छुडा लिया। वे कहते हैं कि यह तेरी लडकी नहीं, किन्तु हमारी लडकी है। राजाधिराज, सारा शहर जानता है कि नागश्री मेरी लडकी है। महाराज, उन पापियोसे मेरी लडकी दिलवा दीजिए।

सोमशर्माकी वातसे सारी राज-सभा वड़े विचारमें पड़ गई । राजाकी भी अकलमें कुछ न आया । तव वे सवको साथ लिए मुनिके पास आये और उन्हें नमस्कार कर वैठ गये । फिर यही झगड़ा उपस्थित हुआ । सोमशर्मा तो नागश्रीको अपनी लड़की वताने लगा और सूर्यमित्र मुनि अपनी । मुनि वोले—अच्छा, यदि यह तेरी लड़की है तो वतला तूने इसे क्या पढ़ाया ? और सुन, मैंने इसे सव शास्त्र पढ़ाया है, इसलिए मैं अभिमानसे कहता हूँ कि यह मेरी ही लड़की है । तव राजा वोले—अच्छा प्रभो, यह आप हीकी लड़की सही, पर आपने इसे जो पढ़ाया है उसकी परीक्षा इसके द्वारा दिलवाइए । जिससे कि हमें विश्वास हो । तव सूर्यामित्र मुनि अपने वचनरूपी किरणों द्वारा लोगोंके चित्तमें ठसे हुए मूर्खतारूप गाढ़े अन्धकारको नाश करते हुए वोले—हे नागश्री, हे पूर्वजन्ममें वायुभूतिका भव धारण करनेवाली, पुत्री, तुझे मैंने जो पूर्वजन्ममें कई शास्त्र पढ़ाये हैं,उनकी इस उपस्थित मंडलीके सामने तू परीक्षा दे । सूर्यमित्र मुनिका इतना कहना हुआ कि नागश्रीने जन्मान्तरका पढ़ा-पढ़ाया सव विषय सुना दिया । राजा तथा और सव मंडलीको इससे वड़ा अचम्भा हुआ । उन्होंने मुनिराजसे हाथ जोड़कर कहा—प्रभो, नागश्रीकी परीक्षासे उत्पन्न हुआ विनोद हृदयभूमि में अठखेलियाँ कर रहा है । इसलिए कृपाकर आप अपने और नागश्रीके सम्वन्धकी सव वातें खुलासा कहिए । तव अवधिज्ञानी सूर्यमित्र मुनिने वायुभूतिके भवसे लगाकर नागश्रीके जन्म तककी सव घटना उनसे कह सुनाई । सुनकर राजाको वड़ा आश्चर्य हुआ । उन्हें यह सव मोहकी लीला जान पड़ी । मोहकी ही सव दुःखका मूल कारण समझ कर उन्हें वड़ा वैराग्य हुआ । वे उसी समय और भी वहुतसे राजाओंके साथ जिनदीक्षा ग्रहण कर गये । सोमशर्मा भी जैनधर्मका उपदेश सुनकर मुनि हो गया और तपस्या कर अच्युत स्वर्गमें देव हुआ । इधर नागश्रीको भी अपना पूर्वका हाल सुनकर वड़ा वैराग्य हुआ । वह दीक्षा लेकर आर्यिका हो गई और अन्तमें शरीर छोड़कर तपस्याके फलसे अच्युत स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुई । अहा ! संसारमें गुरु चिन्तामणिके समान हैं, सवसे श्रेष्ठ हैं । यही कारण है कि जिनकी कृपासे जीवोंको सव सम्पदाएँ प्राप्त हो सकती हैं ।

यहाँसे विहार कर सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनिराज अग्निमन्दिर

नामके पर्वत पर पहुँचे । वहाँ तपस्या द्वारा घातिया कर्मोका नाश कर उन्होने केवलज्ञान प्राप्त किया, और त्रिलोकपूज्य हो अन्तमे बाकीके कर्मोका भी नाश कर परम सुखमय, अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया । वे दोनो केवलज्ञानी मुनिराज मुझे और आप लोगोंको उत्तम सुखकी भीख दे ।

अवन्ति देशके प्रसिद्ध उज्जैन शहरमे एक इन्द्रदत्त नाम का सेठ था । वह बड़ा धर्मात्मा और जिनभगवान्का सच्चा भक्त था । उसकी स्त्रीका नाम गुणवती था । वह नामके अनुसार सचमुच गुणवती और बड़ी सुन्दरी थी । सोमशर्माका जीव, जो अच्युत स्वर्गमें देव हुआ था वह, वहाँ अपनी आयु पूरी कर पुण्यके उदयसे इस गुणवती सेठानीके सुरेन्द्रदत्त नामका सुशील और गुणी पुत्र हुआ । सुरेन्द्रदत्तका ब्याह उज्जैन हीमे रहनेवाले सुभद्र सेठकी लड़की यशोभद्राके साथ हुआ । इनके घरमे किसी बातकी कमी नहीं थी । पुण्यके उदयसे इन्हे सब कुछ प्राप्त था । इसलिए बड़े सुखके साथ इनके दिन बीतते थे । ये अपनी इस सुख अवस्थामे भी धर्मको न भूलकर सदा उसमे सावधान रहा करते थे ।

एक दिन यशोभद्राने एक अवधिज्ञानी मुनिराजसे पूछा—क्यो योगिराज, क्या मेरी आशा इस जन्ममे सफल होगी ? मुनिराज यशोभद्राका अभिप्राय जानकर कहा—हाँ होगी, और अवश्य होगी । तेरे होनेवाला पुत्र भव्य मोक्षमे जानेवाला, बुद्धिमान् और अनेक अच्छे-अच्छे गुणोका धारक होगा । पर साथ ही एक चिन्ताकी बात यह होगी कि तेरे स्वामी पुत्रका मुख देखकर ही जिनदीक्षा ग्रहण कर जायेगे, जो दीक्षा स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाली है । अच्छा, और एक बात यह है कि तेरा पुत्र भी जब कभी किसी ज़ैन मुनिको देख पायेगा तो वह भी उसी समय सब विषयभोगोको छोड़-छाड़कर योगी बन जायगा ।

इसके कुछ महीनो बाद यशोभद्रा सेठानीके पुत्र हुआ । नागश्रीके जीवने, जो स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ था, अपनी स्वर्गकी आयु पूरी हुए बाद यशोभद्राके यहाँ जन्म लिया । भाई-बन्धुओने इसके जन्मका बहुत कुछ उत्सव मनाया । इसका नाम सुकुमाल रक्खा गया । उधर सुरेन्द्र पुत्रके पवित्र दर्शन कर और उसे अपने सेठ-पदका तिलक कर आप मुनि हो गया ।

जब सुकुमाल बड़ा हुआ तब उसकी माँको यह चिन्ता हुई कि कहीं यह भी कभी किसी मुनिको देखकर मुनि न हो जाय, इसके लिए यशोभद्राने अच्छे घरानेकी कोई बत्तीस सुन्दर कन्याओंके साथ उसका व्याह कर उन सबके रहनेको एक जुदा ही बड़ा भारी महल बनवा दिया और उसमें सब प्रकारकी विषय-भोगोंकी एकसे एक उत्तम वस्तु इकट्ठी करवा दी, जिससे कि सुकुमालका मन सदा विषयोंमें फँसा रहे । इसके सिवा पुत्रके मोहसे उसने इतना और किया कि अपने घरमें जैन मुनियोंका आना-जाना भी बन्द करवा दिया ।

एक दिन किसी बाहरके सौदागरने आकर राजा प्रद्योतनको एक बहुमूल्य रत्न-कम्बल दिखलाया, इसलिए कि वह उसे खरीद ले । पर उसकी कीमत बहुत ही अधिक होनेसे राजाने उसे नहीं लिया । रत्न-कम्बलकी बात यशोभद्रा सेठानीको मालूम हुई । उसने उस सौदागरको बुलवाकर उससे वह कम्बल सुकुमालके लिए मोल ले लिया । पर वह रत्नोंको जड़ाईके कारण अत्यन्त ही कठोर था, इसलिए सुकुमालने उसे पसन्द न किया । तब यशोभद्राने उसके टुकड़े करवा कर अपनी बहुओंके लिए उसकी जूतियाँ बनवा दीं । एक दिन सुकुमालकी प्रिया जूतियाँ खोलकर पाँव धो रही थी । इतनेमें एक चील मांसके भ्रम से एक जूतीको उठा ले उड़ी । उसकी चोंचसे छूटकर वह जूती एक वेश्याके मकानकी छत पर गिरी । उस जूतीको देखकर वेश्याको बड़ा आश्चर्य हुआ । वह उसे राजघरानेकी समझकर राजाके पास ले गई । राजा भी उसे देखकर दंग रह गये कि इतनी कीमती जिसके यहाँ जूतियाँ पहरी जाती हैं तब उसके धनका क्या ठिकाना होगा । मेरे शहरमें इतना भारी धनी कौन है ? इसका अवश्य पता लगाना चाहिए । राजाने जब इस विषयकी खोज की तो उन्हें सुकुमाल सेठका समाचार मिला कि इनके पास बहुत धन है और वह जूती उनकी स्त्रीकी है । राजाको सुकुमालके देखनेकी बड़ी उत्कंठा हुई । वे एक दिन सुकुमालसे मिलनेको आये । राजाको अपने घर आये देख सुकुमालकी माँ यशोभद्राको बड़ी खुशी हुई । उसने राजाका खूब अच्छा आदर-सत्कार किया । राजाने प्रेमवश हो सुकुमालको भी अपने पास सिंहासन पर बैठा लिया । यशोभद्राने उन दोनोंकी एक ही साथ आरती उतारी । दियेकी

तथा हारकी ज्योतिसे मिलकर बढे हुए तेजको सुकुमालकी ऑखें न सह सकीं, उनमे पानी आ गया । इसका कारण पूछने पर यशोभद्राने राजासे कहा—महाराज, आज इसकी इतनी उमर हो गई, कभी इसने रत्नमयी दीयेको छोड़कर ऐसे दीयेको नहीं देखा । इसलिए इसकी ऑखोंमें पानी आ गया है । यशोभद्रा जब दोनोको भोजन कराने बैठी तब सुकुमाल अपनी थालीमे परोसे हुए चावलोमेसे एक-एक चावलको बीन-बीनकर खाने लगा । देखकर राजाको बड़ा अचम्भा हुआ । उसने यशोभद्रासे इसका भी कारण पूछा । यशोभद्राने कहा—राजराजेश्वर, इसे जो चावल खानेको दिये जाते हैं वे खिले हुए कमलोमें रखे जाकर सुगन्धित किया होते हैं । पर आज वे चावल थोडे होनेसे मैंने उन्हे दूसरे चावलोंके साथ मिलाकर बना लिया । इससे यह एक-एक चावल चुन-चुनकर खाता है । राजा सुनकर बडे ही खुश हुए । उन्होने पुण्यात्मा सुकुमालकी बहुत प्रशंसा कर कहा—सेठानीजी, अब तक तो आपके कुॅवर साहब केवल आपके ही घर के सुकुमाल थे, पर अब मैं इनका अवन्ति-सुकुमाल नाम रखकर इन्हे सारे देशका सुकुमाल बनाता हूॅ । मेरा विश्वास है कि मेरे देशभरमें इस सुन्दरताका इस सुकुमारताका यही आदर्श है । इसके बाद राजा सुकुमालको संग लिए महलके पीछे जलक्रीडा करने बावड़ी पर गये । सुकुमालके साथ उन्होने बहुत देरतक जलक्रीड़ा की । खेलते समय राजाकी उॅगलीमेसे ॲगूठी निकलकर क्रीड़ा सरोवरमे गिर गई । राजा उसे ढूॅढ़ने लगे । वे जलके भीतर देखते हैं तो उन्हे उसमे हजारो बडे-बड़े सुन्दर और कीमती भूषण देख पडे । उन्हें देखकर राजाकी अकल चकरा गई । वे सुकुमालके अनन्त वैभवको देखकर बडे चकित हुए । वे यह सोचते हुए, कि यह सब पुण्यकी लीला है, कुछ शरमिन्दासे होकर महल लौट आये ।

सज्जनो, सुनो—धन-धान्यादि सम्पदाका मिलना, पुत्र, मित्र और सुन्दर स्त्रीका प्राप्त होना, बन्धु-बान्धवोका सुखी होना, अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषणोका होना, दुमजले, तिमजले आदि मनोहर महलोमे रहनेको मिलना, खाने-पीनेको अच्छीसे-अच्छी वस्तुऍ प्राप्त होना, विद्वान् होना, नीरोग होना आदि जितनी सुख-सामग्री हैं, वह सब जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये मार्ग पर चलनेसे जीवोको मिल सकती हैं । इसलिए दु ख देने वाले खोटे मार्गको

छोड़कर बुद्धिमानोंको सुखका मार्ग और स्वर्गमोक्षके सुखका बीज पुण्यकर्म करना चाहिए। पुण्य जिन भगवन् की पूजा करनेसे, पात्रोंको दान देनेसे तथा व्रत, उपवास, ब्रह्मचर्यके धारण करनेसे होता है।

एक दिन जैनतत्त्वके परम विद्वान् सुकुमालके मामा गणधराचार्य सुकुमालकी आयु बहुत थोड़ी रही जानकर उसके महलके पीछेके बगीचेमें आकर ठहरे और चातुर्मास लग जानेसे उन्होंने वहीं योग धारण कर लिया। यशोभद्राको उनके आनेकी खबर हुई। वह जाकर उनसे कह आई कि प्रभो, जब तक आपका योग पूरा न हो तब तक आप कभी ऊँचेसे स्वाध्याय या पठन-पाठन न कीजिएगा। जब उनका योग पूरा हुआ तब उन्होंने अपने योग-सम्बन्धी सब क्रियाओंके अन्तमें लोकप्रज्ञप्तिका पाठकरना शुरू किया। उसमें उन्होंने अच्युतस्वर्गके देवोंको आयु, उनके शरीरकी ऊँचाई आदिका खूब अच्छी तरह वर्णन किया। उसे सुनकर सुकुमाल को जातिस्मरण हो गया। पूर्व जन्ममें पाये दुःखोंको याद कर वह काँप उठा। वह उसी समय चुपकेसे महलसे निकल कर मुनिराजके पास आ गया और उन्हें भक्तिसे नमस्कार कर उनके पास बैठ गया। और मुनिने उससे कहा—बेटा, अब तुम्हारी आयु सिर्फ तीन दिनकी रह गई है, इसलिये अब तुम्हें इन विषय-भोगोंको छोड़कर अपना आत्महित करना उचित है। ये विषय-भोग पहले कुछ अच्छेसे मालूम होते हैं, पर इनका अन्त बड़ा ही दुःखदायी है। जो विषय-भोगोंकी धुनमें ही मस्त रहकर अपने हितकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें कुगतियोंके अनन्त दुःख उठाना पड़ते हैं। तुम समझो सियालेमें आग बहुत प्यारी लगती है, पर जो उसे छूएगा वह तो जलेगा ही। यही हाल इन ऊपरके स्वरूपसे मनको लुभानेवाले विषयोंका है। इसलिये ऋषियोंने इन्हें 'भोगा भुजंगभोगाभाः' अर्थात् सर्पके समान भयंकर कहकर उल्लेख किया है। विषयोंको भोगकर आज तक कोई सुखी नहीं हुआ, तब फिर ऐसी आशा करना कि इनसे सुख मिलेगा, नितान्त भूल है। मुनिराजका उपदेश सुनकर सुकुमालको बड़ा वैराग्य हुआ। वह उसी समय सुख देनेवाली जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया। मुनि होकर सुकुमाल वनकी ओर चल दिया। उसका यह अन्तिम जीवन बड़ा ही करुणासे भरा हुआ है। कठोर से कठोर चित्तवाले मनुष्यों तकके हृदयोंको

हिला देनेवाला है । सारी जिन्दगीमे कभी जिनकी ऑखोसे ऑसू न झरे हों, उन ऑखोमे भी सुकुमालका यह जीवन ऑसू ला देनेवाला है । पाठकोंको सुकुमालकी सुकुमारताका हाल मालूम है कि यशोभद्राने जब उसकी आरती उतारी थी, तब जो मगल द्रव्य सरसो उस पर डाली गई थी, उन सरसोंके चुभनेको भी सुकुमाल न सह सका था । यशोभद्राने उसके लिये रत्नोका बहुमूल्य कम्बल खरीदा था, पर उसने उसे कठोर होनेसे ही ना-पास कर दिया था । उसकी मॉका उस पर इतना प्रेम था, उसने उसे इस प्रकार लाड़-प्यारसे पाला था कि सुकुमालको कभी जमीन पर तक पॉव देनेका मौका नहीं आया था । उसी सुकुमार सुकुमालने अपने जीवन भरके एक रूपसे बहे प्रवाहको कुछ ही मिनटोके उपदेशसे बिलकुल ही उल्टा बहा दिया । जिसने कभी यह नहीं जान्ना कि घर बाहर क्या है, वह अब अकेला भयकर जंगलमें जा बसा । जिसने स्वप्नमे भी कभी दुःख नहीं देखा, वही अब दुःखोंका पहाड़ अपने सिर पर उठा लेनेको तैयार हो गया । सुकुमाल दीक्षा लेकर वनकी ओर चला । कंकरीली जमीन पर चलनेसे उसके फूलोसे कोमल पॉवोंमे कंकर-पत्थरोके गड़नेसे घाव हो गये । उनसे खूनकी धारा बह चली । पर धन्य सुकुमालकी सहनशीलता जो उसने उसकी ओर ऑख उठाकर भी नहीं झॉका । अपने कर्तव्यमें वह इतना एकनिष्ठ हो गया, इतना तन्मय हो गया कि उसे इस बातका भान ही न रहा कि मेरे शरीरकी क्या दशा हो रही है सुकुमालकी सहनशीलताकी इतनेमे ही समाप्ति नहीं हो गई । अभी और आगे बढ़िये और देखिये कि वह अपनेको इस परीक्षाको कहॉतक उत्तीर्ण करता है ।

पॉवोसे खून बहता जाता है और सुकुमाल मुनि चले जा रहे हैं । चलकर वे एक पहाडकी गुफामे पहुँचे । वहॉ वे ध्यान लगाकर बारह भावनाओका विचार करने लगे । उन्होंने प्रायोगमन संन्यास एक पॉवसे खड़े रहनेका ले लिया, जिसमे कि किसीसे अपनी सेवा-शुश्रूषा भी कराना मना किया है । सुकुमाल मुनि तो इधर आत्म-ध्यानमें लीन हुए । अब जरा इनके वायुभूतिके जन्मको याद कीजिये ।

जिस समय वायुभूतिके बडे भाई अग्निभूति मुनि हो गये थे, तब इनकी स्त्रीने वायुभूतिसे कहा था कि देखो, तुम्हारे कारणसे ही तुम्हारे भाई

मुनि हो गये सुनती हूँ । तुमने अन्याय कर मुझे दुःखके सागरमें ढकेल दिया । चलो, जब तक वे दीक्षा न ले जॉय उसके पहले उन्हें हम तुम समझा-बुझाकर घर लौटा लावें । इस पर गुस्सा होकर वायुभूतिने अपनी भौजीको बुरी-भली सुना डाली थी, और फिर ऊपरसे उस पर लात भी जमा दी थी । तव उसने निदान किया था कि पापी, तूने मुझे निर्बल समझ मेरा जो अपमान किया है, मुझे कष्ट पहुँचाया है, यह ठीक है कि मैं इस समय इसका बदला नहीं चुका सकती । पर याद रख कि इस जन्ममें नहीं तो परजन्ममें सही, पर बदला लूँगी ओर घोर बदला लूँगी ।

इसके बाद वह मरकर अनेक कुयोनियोंमें भटकी । अन्तमें वायुभूति तो यह सुकुमाल हुए और उसकी भौजी सियारनी हुई । जब सुकुमाल मुनि वनकी ओर रवाना हुए और उनके पावोंमें कंकर, पत्थर, काँटे वगैरह लगकर खून बहने लगा, तब यही सियारनी अपने पिल्लोंको साथ लिए उस खूनको चाटती-चाटती वहीं आ गई जहाँ सुकुमाल मुनि ध्यानमें मग्न हो रहे थे । सुकुमालको देखते ही पूर्वजन्मके संस्कारसे सियारनीको अत्यन्त क्रोध आया । वह उनकी ओर घूरती हुई उनके बिलकुल नजदीक आ गई है । उसका क्रोध भाव उमड़ा । उसने सुकुमालको खाना शूरू कर दिया । उसे खाते देखकर उसके पिल्ले भी खाने लग गये । जो कभी एक तिनकेका चुभ जाना भी नहीं सह सकता था, वह आज ऐसे घोर कष्टको सहकर भी सुमेरुसा निश्चल बना हुआ था । जिसके शरीरको एक साथ चार हिंसक जीव बड़ी निर्दयतासे खा रहे हैं, तब भी जो रंचमात्र हिलता-डुलता तक नहीं । उस महात्माकी इस अलौकिक सहन-शक्तिका किन शब्दोंमें उल्लेख किया जाय, यह बुद्धिमें नहीं आता । तब भी जो लोग एक ना-कुछ चीज कॉटेके लग जानेसे तलमला उठते हैं, वे अपने हृदयमें जरा गंभीरताके साथ विचार कर देखें कि सुकुमाल मुनिकी आदर्श सहनशक्ति कहाँ तक वढ़ी चढ़ी थी और उनका हृदय कितना उच्च था ! सुकुमाल मुनिकी यह सहनशक्ति उन कर्त्तव्यशील मनुष्योंको अप्रत्यक्ष रूपमें शिक्षा कर रही है कि अपने उच्च और पवित्र कामोंमें आनेवाले विघ्नोंकी परवा मत करो । विघ्नोंको आने दो और खूब आने दो । आत्माकी अनन्त शक्तियोंके सामने ये विघ्न कुछ चीज नहीं, किसी गिनतीमें नहीं । तुम अपने

पर विश्वास करो । भरोसा करो । हर एक कामोमें आत्मदृढ़ता, आत्मविश्वास, उनके सिद्ध होनेका मूलमंत्र है । जहाँ ये बाते नहीं वहाँ मनुष्यता भी नहीं । तब कर्त्तव्यशीलता तो फिर योजनोकी दूरी पर है । सुकुमाल यद्यपि सुखिया जीव थे, पर कर्त्तव्यशीलता उनके पास थी । इसीलिए देखनेवालोंके भी हृदयको हिला देनेवाले कष्टमे भी वे अचल रहे ।

सुकुमाल मुनिको उस सियारनीने पूर्व बैरके सम्बन्धसे तीन दिन तक खाया । पर वे मेरुके समान धीर रहे । दुःखकी उन्होने कुछ परवा न की । यहाँ तक कि अपनेको खानेवाली सियारनी पर भी उनके बुरे भाव न हुए । शत्रु और मित्रको समभावोसे देखकर उन्होंने अपना कर्त्तव्य पालन किया । तीसरे दिन सुकुमाल शरीर छोड़कर अच्युतस्वर्गमे महर्द्धिक देव हुए ।

वायुभूतिकी भौजीने निदानके वश सियारनी होकर अपने बैरका बदला चुका लिया । सच है, निदान करना अत्यन्त दुःखोका कारण है । इसलिए भव्यजनोको यह पापका कारण निदान कभी नहीं करना चाहिए । इस पापके फलसे सियारनी मरकर कुगतिमें गई ।

कहाँ वे मनको अच्छे लगनेवाले भोग और कहाँ यह दारुण तपस्या ! सच तो यह है कि महापुरुषोका चरित कुछ विलक्षण हुआ करता है । सुकुमाल मुनि अच्युतस्वर्गमें देव होकर अनेक प्रकारके दिव्य सुखोंको भोगते हैं और जिनभगवान्‌की भक्तिमे सदा लीन रहते हैं । सुकुमाल मुनिकी इस वीर मृत्युके उपलक्षमें स्वर्गके देवोंने आकर उनका बड़ा उत्सव मनाया । 'जय जय' शब्द द्वारा महाकोलाहल हुआ । इसी दिनसे उज्जैनमे महाकाल नामके कुतीर्थकी स्थापना हुई, जिसके कि नामसे अगणित जीव रोज वहाँ मारे जाने लगे । और देवोंने जो सुगन्ध जलकी वर्षा की थी, उससे वहाँकी नदी गन्धवती नामसे प्रसिद्ध हुई ।

जिसने दिनरात विषय-भोगोमे ही फँसे रहकर अपनी सारी जिन्दगी बिताई, जिसने कभी दुःखका नाम भी न सुना था, उस महापुरुष सुकुमाल ने मुनिराज द्वारा अपनी तीन दिनकी आयु सुनकर उसी समय माता, स्त्री, पुत्र आदि स्वजनोको, धन-दौलतको और विषय-भोगोको छोड-छाडकर जिनदीक्षा

ले ली और अन्तमें पशुओं द्वारा दुःसह कष्ट सहकर भी जिसने बड़ी धीरत और शान्तिके साथ मृत्युको अपनाया। वे सुकुमाल मुनि मुझे कर्त्तव्यके लिए कष्ट सहनेकी शक्ति प्रदान करें।

---

५८. सुकौशल मुनिकी कथा

जगपवित्र जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और गुरुओको नमस्कार कर सुकौशल मुनिकी कथा लिखी जाती हैं ।

अयोध्यामे प्रजापाल राजाके समयमे एक सिद्धार्थ नामके नामी सेठ हो गये हैं । उनके कोई बत्तीस अच्छी-अच्छी सुन्दर स्त्रियाँ थीं । पर खोटे भाग्यसे इनमें किसीके कोई सन्तान न थी । स्त्री कितनी भी सुन्दर हो, गुणवती हो, पर बिना सन्तानके उसकी शोभा नहीं होती । जैसे बिना फल-फूलके लताओंकी शोभा नहीं होती । इन स्त्रियोमे जो सेठकी खास प्राणप्रिया थी, जिस पर कि सेठ महाशयका अत्यन्त प्रेम था, वह पुत्र प्राप्तिके लिए सदा कुदेवोंकी पूजा-मानता किया करती थी । एक दिन उसे कुदेवोकी पूजा करते एक मुनिराजने देख लिया । उन्होंने तब उससे कहा—बहिन, जिस आशासे तू इन कुदेवोकी पूजा करती है वह आशा ऐसा करनेसे सफल न होगी । कारण सुख-सम्पत्ति, सन्तान प्राप्ति, नीरोगता, मान-मर्यादा, सद्बुद्धि आदि जितनी अच्छी बाते हैं, उन सबका कारण पुण्य है । इसलिए यदि तू पुण्य-प्राप्तिके लिए कोई उपाय करे तो अच्छा हो । मैं तुझे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि इन यक्षादिक कुदेवोंकी पूजा-मानता छोड़कर, जो कि पुण्य-बन्धका कारण नहीं है, जिनधर्मका विश्वास कर । इससे तू सत्पथ पर आ जायगी और फिर तेरी आशा भी पूरी होने लगेगी । जयावतीको मुनिका उपदेश रुचा और वह अबसे जिनधर्म पर श्रद्धा करने लगी । चलते समय उसे ज्ञानी मुनिने यह भी कह दिया था कि जिसकी तुझे चाह है वह चीज तुझे सात वर्षके भीतर-भीतर अवश्य प्राप्त होगी । तू चिन्ता छोड़कर धर्मका पालन कर । और क्यों न हो ? जिसकी कि वर्षोंसे उसके हृदयमे भावना थी वही भावना तो अब सफल होनेको है न । अस्तु ।

मुनिका कथन सत्य हुआ । जयावतीने धर्मके प्रसादसे पुत्र-रत्नका मुँह देख पाया । उसका नाम रक्खा गया सुकोशल । सुकोशल खूबसूरत और साथ ही तेजस्वी था ।

सिद्धार्थ सेठ विषय-भोगोको भोगते-भोगते कंटाल गये थे । उनके

हृदयकी ज्ञानमयी आँखोंने उन्हें अब संसारका सच्चा स्वरूप बतला कर वहुत डरा दिया था । वे चाहते तो नहीं थे कि एक मिनट भी संसारमें रहें, पर अपनी सम्पत्तिको सम्हाल लेनेवाला कोई न होनेसे पुत्र-दर्शन तक, उन्हें लाचारीसे घरमें रहना पड़ा अब सुकोशल हो गया, इसका उन्हें बड़ा आनन्द हुआ । वे पुत्रका मुखचन्द्र देखकर और अपने सेठ पदका उसके ललाट पर तिलक कर आप श्री नयंधर मुनिराजके पास दीक्षा ले गये ।

अभी वालकको जन्मते ही तो देर न हुई कि सिद्धार्थ सेठ घर-वार छोड़कर योगी हो गये । उनकी इस कठोरता पर जयावतीको वड़ा गुस्सा आया । न केवल सिद्धार्थ पर ही उसे गुस्सा आया, किन्तु नयंधर मुनि पर भी । इसलिए कि उन्हें इस समय सिद्धार्थको दीक्षा देना उचित न था; और इसी कारण मुनि मात्र पर उसकी अश्रद्धा हो गई । उसने अपने घरमें मुनियोंका आना-जाना तक बन्द कर दिया । वड़े दुःखकी बात है कि यह जीव मोहके वश हो धर्मको भी छोड़ वैठता है । जैसे जन्मका अन्धा हाथमें आये चिन्तामणिको खो वैठता है ।

वयःप्राप्त होने पर सुकोशलका अच्छे-अच्छे घरानेकी कोई वत्तीस कन्या-रत्नोंसे ब्याह हुआ । सुकोशलके दिन अब वड़े ऐशो आरामके साथ वीतने लगे । माताका उस पर अत्यन्त प्यार होनेसे नित नई वस्तुएँ उसे प्राप्त होती थीं । सैकड़ों दास-दासियाँ उसकी सेवामें सदा उपस्थित रहा करती थीं । वह जो कुछ चाहता वह कार्य उसकी आँखोंके इशारे मात्रसे होता था । सुकोशलको कभी कोई वातके लिए चिन्ता न करनी पड़ती थी । सच है, जिनके पुण्यका उदय होता है उन्हें सब सुख-सम्पत्ति सहजमें प्राप्त हो जाती हैं ।

एक दिन सुकोशल, अपनी माँ, अपनी स्त्री ओर अपनी धायके साथ महल पर आ वैठा अयोध्याकी शोभा तथा मनको लुभानेवाल प्रकृति देवीको नई-नई सुन्दर छटाओंको देख-देखकर बड़ा खुश हो रहा था । उसकी दृष्टि कुछ दूर तक गई उसने एक मुनिराजको देखा । ये मुनि इसके पिता सिद्धार्थ ही थे । इनके वदन पर नाममात्रके लिए भी वस्त्र न देखकर सुकोशल वड़ा चकित हुआ । इसलिए कि पहले कभी उसने मुनिको देखा नहीं था । उनका अजव वेष देखकर सुकोशलने माँसे पूछा—माँ, यह कौन है ? सिद्धार्थको देखते ही जयावतीकी आँखोंमें खून वरस गया । वह कुछ घृणा और कुछ

उपेक्षाको लिए बोली—बेटा, होगा कोई भिखारी, तुझे इससे क्या मतलब ! परन्तु अपनी मॉके इस उत्तरसे सुकोशलको सन्तोष नहीं हुआ । उसने फिर पूछा—मॉ, यह तो बड़ा खूबसूरत और तेजस्वी देख पड़ता है । तुम इसे भिखारी कैसे बताती हो ? जयावतीको अपने स्वामी पर ऐसी घृणा करते देख सुकोशलकी धाय सुनन्दासे न रहा गया । वह बोल उठी—अरी ओ, तू इन्हे जानती है कि ये हमारे मालिक हैं । फिर भी तू इनके सम्बन्धमे ऐसा उलटा सुझा रही है ? तुझे यह योग्य नहीं । क्या हो गया यदि ये मुनि हो गये तो ? इसके लिए क्या तुझे इनकी निन्दा करनी चाहिए ? इसकी बात पूरी भी न हो पाई थी कि सुकोशलकी मॉने उसे ऑखके इशारेसे रोककर कह दिया कि चुप क्यो नहीं रह जाती । तुझसे कौन पूछता है, जो बीचमे ही बोल उठी ! सच है, दुष्ट स्त्रियोके मनमे धर्म-प्रेम कभी नहीं होता । जैसे जलती हुई आगका बीचका भाग ठंडा नहीं होता ।

सुकोशल ठीक तो न समझ पाया, पर उसे इतना ज्ञान हो गया कि मॉने मुझे सच्ची बात नहीं बतलाई । इतनेमे रसोइया सुकोशलको भोजन कर आनेके लिए बुलाने आया । उसने कहा—प्रभो, चलिए । बहुत समय हो गया । सब भोजन ठंडा हुआ जाता है । सुकोशलने तब भोजनके लिए इकार कर दिया । माता और स्त्रियोने भी बहुत आग्रह किया, पर वह भोजन करनेको नहीं गया । उसने साफ-साफ कह दिया कि जब तक मैं उस महापुरुषका सच्चा-सच्चा हाल न सुन लूॅगा तब तक भोजन नहीं करूॅगा । जयावतीको सुकोशलके इस आग्रहसे कुछ गुस्सा आ गया, सो वह तो वहॉसे चल दी । पीछे सुनन्दाने सिद्धार्थ मुनिकी सब बाते सुकोशलसे कह दीं । सुनकर सुकोशलको कुछ दु:ख भी हुआ, पर साथ ही वैराग्यने उसे सावधान कर दिया । वह उसी समय सिद्धार्थ मुनिराजके पास गया और उन्हे नमस्कार कर धर्मका स्वरूप सुननेकी उसने इच्छा प्रकट की । सिद्धार्थने उसे मुनिधर्म और गृहस्थ-धर्मका खुलासा स्वरूप समझा दिया । सुकोशलको मुनिधर्म बहुत पसन्द पड़ा । वह मुनिधर्मकी भावना भाता हुआ घर आया और सुभद्राकी गर्भस्थ सन्तानको अपने सेठ पदका तिलक कर तथा सब माया-ममता, धन-दौलत और स्वजन-परिजनको छोड़कर श्री सिद्धार्थ मुनिके पास ही दीक्षा लेकर योगी

बन गया। सच है, जिसे पुण्योदयसे धर्म पर प्रेम है और जो अपना हित करनेके-लिए सदा तैयार रहता है, उस महापुरुषको कौन झूठी-सच्ची सुझाकर अपने कैदमें रख सकता है, उसे धोखा दे ठग सकता है ?

एक मात्र पुत्र और वह भी योगी बन गया। इस दुःखकी जयावतीके हृदय पर बड़ी गहरी चोट लगी। वह पुत्र दुःखसे पगली-सी बन गई। खाना-पीना उसके लिए जहर हो गया। उसकी सारी जिन्दगी ही धूलधानी हो गई। वह दुःख और चिन्ताके मारे दिनोंदिन सूखने लगी। जब देखो तब ही उसकी आँखें आँसुओंसे भरी रहतीं। मरते दम तक वह पुत्रशोकको न भूल सकी। इसी चिन्ता, दुःख, आर्त्तध्यानसे उसके प्राण निकले। इस प्रकार बुरे भावोंसे मरकर मगध देशके मौद्गिलनामके पर्वत पर उसने व्याघ्रीका जन्म लिया। इसके तीन बच्चे हुए। यह अपने बच्चोंके साथ पर्वत पर ही रहती थी। सच है, जो जिनेन्द्र भगवान्के पवित्र धर्मको छोड़ बैठते हैं, उनकी ऐसी ही दुर्गति होती है।

विहार करते हुए सिद्धार्थ और सुकोशल मुनिने भाग्यसे इसी पर्वत पर आकर योग धारण कर लिया। योग पूरा हुए बाद जब ये भिक्षाके लिए शहरमें जानेके लिए पर्वत परसे नीचे उतर रहे थे उसी समय वह व्याघ्री, जो कि पूर्वजन्ममें सिद्धार्थकी स्त्री और सुकोशलकी माता थी, इन्हें खानेको दौड़ी और जब तक कि ये संन्यास लेकर बैठते हैं, उसने इन्हें खा लिया। ये पिता-पुत्र समाधिसे शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर देव हुए। वहाँसे आकर अब वे निर्वाण लाभ करेंगे। ये दोनों मुनिराज आप भव्यजनोंको और मुझे शान्ति प्रदान करें।

जिस समय व्याघ्रीने सुकोशलको खाते-खाते उनका हाथ खाना शुरू किया, उस समय उसकी दृष्टि सुकोशलके हाथोंके लाण्छनों (चिह्नों) पर जा पड़ी। उन्हें देखते ही इसे अपने पूर्वजन्मका ज्ञान हो गया। जिसे वह खा रही है, वह उसी का पुत्र है, जिस पर उसका बेहद प्यार था, उसे ही वह खा रही है यह ज्ञान होते ही उसे जो दुःख, जो आत्म-ग्लानि हुई। वह लिखी नहीं जा सकती। वह सोचती है, हाय ! मुझसी पापिनी कौन होगी जो अपने ही प्यारे पुत्रको मैं आप ही खा रही हूँ ! धिक्कार है मुझसी मूर्खिनीको जो पवित्र

धर्मको छोड़कर अनन्त-संसारको अपना वास बनाती है । उस मोहको, उस ससारको धिक्कार है जिसके वश हो यह जीव अपने हित-अहितको भूल जाता है और फिर कुमार्गमे फॅसकर दुर्गतियोमें दुःख उठाता है । इस प्रकार अपने किये कर्मोकी बहुत कुछ आलोचना कर उस व्याघ्रीने संन्यास ग्रहण कर लिया और अन्तमे शुद्ध भावोंसे मरकर व सौधर्मस्वर्गमें देव हुई । सच है, जीवोकी शक्ति अद्भुत ही हुआ करती है और जैनधर्मका प्रभाव भी संसारमे बड़ा ही उत्तम है । नहीं तो कहॉ तो पापिनी व्याघ्री और कहॉ उसे स्वर्गकी प्राप्ति ! इसलिए जो आत्मसिद्धिने चाहनेवाले हैं, उन भव्य जनोको स्वर्ग-मोक्षको देनेवाले पवित्र जैनधर्मका पालन करना चाहिए ।

श्री मूलसघरूपी अत्यन्त ऊँचे उदयाचलसे उदय होनेवाले मेरे गूरु श्रीमल्लिभूषणरूपी सूर्य संसारमे सदा प्रकाश करते रहें ।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजयलाभ करे जो ज्ञानके समुद्र हैं । देखिए, समुद्रमें रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शन रूपी श्रेष्ठ रत्नको धारण किये हैं । समुद्रमें तरंगे होती हैं, ये भी सप्तभगी रूपी तरंगोसे युक्त हैं, स्याद्वाद विद्याके बड़े ही विद्वान् हैं । समुद्रकी तरंगे जैसे कूड़ा-करकट निकाल बाहर फैंक देती हैं, इसी तरह ये अपनी सप्तभगवाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकटको हटा दूर करते थे, अन्य मतोके बड़े-बड़े विद्वानोको शास्त्रार्थ मे पराजित कर विजयलाभ करते थे । समुद्रमें मगरमच्छ घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्रमे उससे यह विशेषता थी, अपूर्वता थी कि उसमे क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि भयानक मगरमच्छ न थे । समुद्रमे अमृत रहता है और इनमे जिनेन्द्र भगवान्का वचनमयी निर्मल अमृत समाया हुआ था । और समुद्रमे अनेक तरहकी बिकने योग्य वस्तुऍ रहती हैं, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रेय-वस्तुको धारण किये थे ।

---

५९. गजकुमार मुनिकी कथा

जिन्होंने अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध हुए और सब कामोंको करके सिद्धि, कृत्यकृत्यता लाभ की है, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर गजकुमार मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

नेमिनाथ भगवान्‌के जन्मसे पवित्र हुई प्रसिद्ध द्वारकाके अर्धचक्री वासुदेवकी रानी गन्धर्वसेनासे गजकुमारका जन्म हुआ था । गजकुमार वड़ा वीर था । उसके प्रतापको सुनकर ही शत्रुओंकी विस्तृत मानरूपी वेल भस्म हो जाती थी ।

पोदनपुरके राजा अपराजितने तब वड़ा सिर उठा रक्खा था । वासुदेवने उसे अपने कावूमें लानेके लिये अनेक यत्न किये, पर वह किसी तरह इनके हाथ न पड़ा । तब इन्होंने शहरमें यह डोंडी पिटवाई कि जो मेरे शत्रु अपराजितको पकड़ लाकर मेरे सामने उपस्थित करेगा, उसे उसका, मन चाहा वर मिलेगा । गजकुमार डौंडी सुनकर पिताके पास गया और हाथ जोड़कर उसने स्वयं अपराजित पर चढ़ाई करनेकी प्रार्थना की । उसकी प्रार्थना मंजूर हुई । वह सेना लेकर अपराजित पर जा चढ़ा । दोनों ओरसे धमासान युद्ध हुआ । अन्तमें विजयलक्ष्मीने गजकुमारका साथ दिया । अपराजितको पकड़ लाकर उसने पिताके सामने उपस्थित कर दिया । गजकुमारकी इस वीरताको देखकर वासुदेव वहुत खुश हुए ।

ऐसे वहुत कम अच्छे पुरुष निकलते हैं जो मनचाहा वर लाभकर सदाचारी और सन्तोषी वने रहें । परन्तु गजकुमारकी उल्टी दशा हुई । उसने मनचाहा वर पिताजीसे लाभ कर अन्यायकी ओर कदम वढ़ाया । वह पापी जबरदस्ती अच्छे-अच्छे घरोंकी सती स्त्रियोंकी इज्जत लेने लगा । वह ठहरा राजकुमार, उसे कौन रोक सकता था । और जो रोकनेकी कुछ हिम्मत करता तो वह उसकी ऑखोंका कॉटा खटकने लगता और फिर गजकुमार उसे जड़मूलसे उखाड़कर फेंकनेका यत्न करता । उस कामको, उस दुराचारको धिक्कार है, जिसके वश हो मूर्ख-जनोंको लज्जा और भय भी नहीं रहता है ।

इसी तरह गजकुमारने अनेक अच्छी-अच्छी कुलीन स्त्रियोंकी इज्जत

ले डाली । पर इसके दबदबेसे किसीने चूँ तक न किया । एक दिन पांसुल सेठकी सुरति नामकी स्त्री पर इसकी नजर पड़ी और इसने उसे खराब भी कर दिया । यह देख पांसुलका हृदय क्रोधाग्निसे जलने लगा । पर वह बेचारा इसका कुछ कर नहींसकता था । इसलिये उसे भीचुपचाप घरमे बैठा रह जाना पड़ा ।

एक दिन भगवान् नेमिनाथ भव्य-जनोके पुण्योदयसे द्वारकामें आये । बलभद्र, वासुदेव तथा और भी बहुतसे राजे-महाराजे बड़े आनन्दके साथ भगवान्की पूजा करनेको गये । खूब भक्तिभावोंसे उन्होंने स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले भगवान्की पूजा-स्तुति की, उनका ध्यान-स्मरण किया । बाद गृहस्थ और मुनिधर्मका भगवान्के द्वारा उन्होने उपदेश सुना, जो कि अनेक सुखोंका देनेवाला है । उपदेश सुनकर सभी बहुत प्रसन्न हुए । उन्होने बार-बार भगवान्की स्तुति की । सच है, साक्षात् सर्वज्ञ भगवान्का दिया सर्वोपदेश सुनकर किसे आनन्द या खुशी न होगी । भगवान्के उपदेशका गजकुमारके हृदय पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा । वह अपने किये पापकर्मों पर बहुत पछताया । संसारसे उसे बड़ी घृणा हुई । वह उसी समय भगवान्के पास ही दीक्षा ले गया, जो संसारके भटकनेकी मिटानेवाली है । दीक्षा लेकर गजकुमार मुनि विहार कर गये । अनेक देशो और नगरोमें विहार करते, और भव्य-जनोको धर्मोपदेश द्वारा शान्तिलाभ कराते अन्त में वे गिरनार पर्वतके जंगलमें आये । उन्हे अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी । इसलिए वे प्रयोपगमन सन्यास लेकर आत्म-चिन्तवन करने लगे । तब इनकी ध्यान-मुद्रा बड़ी निश्चल और देखने योग्य थी ।

इनके संन्यासका हाल पांसुल सेठको जान पड़ा, जिसकीकी स्त्रीको गजकुमारने अपने दुराचारीपनेकी दशामें खराब किया था । सेठको अपना बदला चुकानेका बड़ा अच्छा मौका हाथ लग गया । वह क्रोधसे भर्राता हुआ गजकुमार मुनिके पास पहुँचा और उनके सब सन्धिस्थानोंमे लोहेके बड़े-बडे कीले ठोककर चलता बना । गजकुमार मुनि पर उपद्रव तो बड़ा ही दु.सह हुआ, पर वे जैनतत्त्वके अच्छे अभ्यासी थे, अनुभवी थे, इसलिये उन्होने इस घोर कष्टको एक तिनके के चुभनेकी बराबर भी न गिन बड़ी शान्ति और धीरताके

साथ शरीर छोड़ा । यहाँसे ये स्वर्गमें गये । वहाँ अब चिरकाल तक वे सुख भोगेंगे । अहा ! महापुरुषोंका चरित बड़ा ही अचंभा पैदा करनेवाला होता है । देखिये, कहाँ तो गजकुमार मुनिका ऐसा दुःसह कष्ट और कहाँ सुख देनेवाली पुण्य-समाधि ! इसका कारण सच्चा तत्त्वज्ञान है । इसलिये इस महत्ताको प्राप्त करनेके लिए तत्वज्ञानका अभ्यास करना सबके लिए आवश्यक है ।

सारे ससारके प्रभु कहलानेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के द्वारा सुखके कारण धर्मका उपदेश सुनकर जो गजकुमार अपनी दुर्बुद्धिको छोड़कर पवित्र बुद्धिके धारक और बड़े भारी सहनशील योगी हो गये, वे हमें भी सुबुद्धि और शान्ति प्रदान करें, जिससे हम भी कर्त्तव्यके लिये कष्ट सहनेमें समर्थ हो सके ।

---

* जिन लोगों ने तप कर शक्ति और सिद्धि प्राप्त कर ली है, वे मृत्यु की जीतने में भी सफल हो जाते हैं ।

* वे लोग तपस्या करते है वे ही वास्तव में अपना भला करते हैं और सब तो लालसा के जाल में फंसते हुए है, जो अपने को केवल हानि ही पहुंचाते है ।

६०. पणिक मुनिकी कथा

सुखके देनेवाले और सत्पुरुषोंसे पूजा किये गये जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर श्री पणिक नामके मुनिकी कथा लिखी जाती है, जो सबका हित करनेवाली है !

पणीश्वर नामक शहरके राजा प्रजापालके समय वहाँ सागरदत्त नामका एक सेठ हो चुका है । उसकी स्त्रीका नाम पणिका था । इसके एक लड़का था । उसका नाम भी पणिक था । पणिक सरल, शान्त और पवित्र हृदयका था । पाप कभी उसे छू भी न गया था । सदा अच्छे रास्ते पर चलना उसका कर्त्तव्य था । एक दिन वह भगवान्‌के समवशरणमें गया, जो कि रत्नोंके तोरणोसे बड़ी ही सुन्दरता धारण किये हुए था और अपनी मानस्तंभादि शोभासे सबके चित्तको आनन्दित करनेवाला था । वहाँ उसने वर्द्धमान भगवान्‌को गंधकुटी पर विराजे हुए देखा । भगवान्‌की इस समयकी शोभा अपूर्व और दर्शनीय थी । वे रत्न-जड़े सोनेके सिंहासन पर बिराजे हुए थे, पूनमके चन्द्रमाको शरमिन्दा करनेवाले तीन छत्र उन पर शोभा दे रहे थे, मोतियोंके हारके समान उज्जवल और दिव्य चॅवर उन पर ढुर रहे थे, एक साथ उदय हुए अनेक सूर्योंके तेजको जिनके शरीरकी कान्ति दबाती थी, नाना प्रकारकी शंकाओको मिटानेवाली दिव्यध्वनि द्वारा जो उपदेश कर रहे थे, देवोंके बजाये दुन्दुभि नामके बाजोंसे आकाश और पृथ्वी मण्डल शब्दमय बन गया था, इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर और बड़े-बड़े राजे-महाराजे आदि आ-आकर जिनकी पूजा करते थे, अनेक निर्ग्रन्थ मुनिराज उनकी स्तुति कर अपनेको कृतार्थ कर रहे थे, चौंतीस प्रकारके अतिशयोंसे जो शोभित थे, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख ओर अनन्तवीर्य ऐसे चार अनन्त चतुष्टय आत्म-सम्पत्तिको धारण किये थे, जिन्हे ससारके सर्वोच्च महापुरुषका सम्मान प्राप्त था, तीनों लोकोको स्पष्ट देख-जानकर उसका स्वरूप भव्य-जनोको जो उपदेश कर रहे थे और जिनके लिये मुक्ति-रमणी वरमाला हाथमे लिए उत्सुक हो रही थी ।

पणिकने भगवान्‌का ऐसा दिव्य स्वरूप देखकर उन्हे अपना सिर नवाया, उनकी स्तुति-पूजा की, प्रदक्षिणा दी और बैठकर धर्मोपदेश सुना ।

अन्तमे उसने अपनी आयुके सम्बन्धमें भगवान्‌से प्रश्न किया । भगवान्‌के उत्तरसे उसे अपनी आयु बहुत थोड़ी जान पड़ी । ऐसी दशामें आत्महित करना बहुत आवश्क समझ पणिक वहीं दीक्षा ले साधु हो गया । यहॉसे विहार कर अनेक देशो और नगरोमे धर्मोपदेश करते हुए पणिक मुनि एक दिन गंगा किनारे आये । नदी पार होनेके लिए ये एक नावमें बैठे । मल्लाह नाव खेये जा रहा था कि अचानक एक प्रलयकी-सी ऑधीने आकर नावको खूब डगमगा दिया, उसमें पानी भर आया, नाव डूबने लगी । जब तक नाव डूबती है पणिक मुनिने अपने भावोंको खूब उन्नत किया । यहॉ तक कि उन्हें उसी समय केवलज्ञान हो गया और तुरन्त ही वे अघातिया कर्मोका नाश कर मोक्ष चले गये । वे सेठ पुत्र पणिक मुनि मुझे भी अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी दें, जिन्होने मेरु स्थिर रहकर कर्म शत्रुओंका नाश किया ।

सागरदत्त सेठकी स्त्री पणिका सेठानीके पुत्र पवित्रात्मा पणिक मुनि, वर्द्धमान भगवान्‌के दर्शन कर, जो कि मोक्षके देनेवाले हैं, और उनसे अपनी आयु बहुत ही थोड़ी जानकर संसारकी सब माया-ममता छोड़ मुनि हो गये और अन्तमें कर्मोका नाश कर मोक्ष, गये, वे मुझे भी सुखी करें ।

---

* पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा, देवपूजन, अतिथिसत्कार, बन्धु-बांन्धवों की सहायता और आत्मोन्नति, ये गृहस्थ के पॉच धर्म है ।

६१. भद्रबाहु मुनिराजकी कथा

संसारका कल्याण करनेवाले और देवो द्वारा नमस्कार किये गये श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर पचम श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु मुनिराजकी कथा लिखी जाती है, जो कथा सबका हित करनेवाली है ।

पुण्ड्रवर्द्धन देशके कोटीपुर नामक नगरके राजा पद्मरथके समयमें वहाँ सोमशर्मा नामका एक पुरोहित ब्राह्मण हो गया है । इसकी स्त्रीका नाम श्रीदेवी था । कथा-नायक भद्रबाहु इसीके लड़के थे । भद्रबाहु बचपन्से ही शान्त और गम्भीर प्रकृतिके थे । उनके भव्य चेहरेको देखनेसे वह झटसे कल्पना होने लगती थी कि ये आगे चलकर कोई बड़े भारी प्रसिद्ध महापुरुष होगे । क्योंकि यह कहावत बिलकुल सच्ची है कि "पूतके पग पालनेमें ही नजर आ जाते हैं ।" अस्तु ।

जब भद्रबाहु आठ वर्षके हुए और इनका यज्ञोपवीत और मौञ्जीबन्धन हो चुका था तब एक दिनकी बात है कि ये अपने साथी बालको के साथ खेल रहे थे । खेल था गोलियोका । सब अपनी-अपनी होशियारी और हाथोंकी सफाई से गोलियोंको एक पर एक रखकर दिखला रहे थे । किसीने दो, किसीने चार, किसीने छह और किसी-किसीने अपनी होशियारीसे आठ गोलियाँ तक ऊपर तले चढ़ा दी । पर हमारे कथा-नायक भद्रबाहु इन सबसे बढ़कर निकले । इन्होंने एक साथ कोई चौदह गोलियाँ तले ऊपर चढ़ा दी । सब बालक देखकर दंग रहे गये । इसी समय एक घटना हुई । वह यह कि—श्रीवर्द्धमान भगवान्‌को निर्वाण लाभ किये बाद होनेवाले पाँच श्रुतकेवलियोमे चौदह महापूर्वके जाननेवाले चौथे श्रुतकेवली श्री गोवर्द्धनाचार्य गिरनारकी यात्राको जाते हुए इस ओर आ गये । उन्होंने भद्रबाहुके खेलकी इस चकित करनेवाली चतुरता को देखकर निमित्तज्ञान से समझ लिया कि पाँचवे होनेवाले श्रुतकेवली भद्रबाहु ये ही होने चाहिए । उन्होने भद्रबाहुको पढानेके लिए माँगा । सोमशर्माने कुछ आनाकानी न कर अपने लडकेको आचार्य महाराजके सुपुर्द कर दिया । आचार्यने भद्रबाहुको अपने स्थान पर लाकर खूब पढाया और सब विषयोंमे उसे आदर्श विद्वान् बना दिया । जब आचार्यने देखा कि भद्राबाहु

अच्छा विद्वान् हो गया तब उन्होंने उसे वापिस घर लौटा दिया इसलिए कि कहीं सोमशर्मा यह न समझ ले कि मेरे लड़केको वहका कर इन्होंने साधु वना लिया। भद्रवाहु घर गये सही, पर अब उनका मन घरमें न लगने लगा। उन्होंने माता-पिता से अपने साधु होनेकी प्रार्थना की। माता-पिताको उनकी इस इच्छासे बड़ा दुःख हुआ। भद्रावाहुने उन्हें समझा वुझाकर शान्त किया और आप सब माया-मोह छोड़कर गोवर्द्धनाचार्य द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। सच है, जिसने तत्त्वोंका स्वरूप समझ लिया वह फिर गृहजंजालको क्यों अपने सिर पर उठायेगा ? जिसने अमृत चख लिया है वह फिर क्यों खारा जल पीयेगा ? मुनि हुए बाद भद्राबाहु अपने गुरुमहाराज गोवर्द्धनाचार्यकी कृपासे चौदह महापूर्वके भी विद्वान हो गये। जब संघाधीश गोवर्द्धनाचार्यका स्वर्गवास हो गया तव उनके वाद पट्ट पर भद्रवाहु श्रुतकेवली ही वैठे। जब भद्रबाहु आचार्य अपने संघको साथ लिए अनेक देशों और नगरों में अपने उपदेशामृत द्वारा भव्यजनरूपी धनको बढ़ाते हुए उज्जैन की ओर आये और सारे संघको एक पवित्र स्थानमें ठहरा कर आप आहारके लिए शहरमें गये। जिस घरमें इन्होंने पहले ही पॉव दिया वहाँ एक बालक पलनेमें झूल रहा था, और जो अभी स्पष्ट वोलना तक न जानता था; इन्हे घरमें पाँव देते देख वह सहसा बोल उठा कि "महाराज, जाइए ! जाइए !! एक अबोध बालककी बोलता देखकर भद्रवाहु आचार्य वड़े चकित हुए। उन्होंने उसपर निमित्तज्ञानसे विचार किया तो उन्हें जान पड़ा कि यहॉ बारह वर्षका भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा और वह इतना भीषणरूप धारण करेगा कि धर्म-कर्मकी रक्षा तो दूर रहे, पर मनुष्योंको अपनी जान वचाना भी कठिन हो जायगा। भद्रबाहु आचार्य उसी समय अन्तराय कर लौट आये। शामके समय उन्होंने अपनेसारे संघको इकट्ठा कर उनसे कहा—साधुओ, यहॉ बारह वर्षका बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है, और तव धर्म-कर्मका निर्वाह होना कठिन ही नहीं, असम्भव हो जायगा। इसलिए आप लोग दक्षिण दिशाकी ओर जायें और मेरी आयु वहुत ही थोड़ी रह गई है, इसलिए मैं इधर ही रहूँगा। यह कहकर उन्होंने दशपूर्वके जाननेवाले अपने प्रधान शिष्य श्रीविशाखाचार्यको चारित्रकी रक्षाके लिए सारे संघसहित दक्षिणकी ओर रवाना कर दिया। दक्षिणकी ओर

जानेवाले मुनि उधर सुख-शान्तिसे रहे । उनका चारित्र निर्विघ्न पला । और सच है, गुरुके वचनोंको माननेवाले शिष्य सदा सुखी रहते हैं ।

सारे संघको चला गया देख उज्जैनके राजा चन्द्रगुप्तको उसके वियोग का बहुत रंज हुआ। उससे फिर वे भी दीक्षा ले मुनि बन गये और भद्रबाहु आचार्य की सेवामें रहे । आचार्यकी आयु थोड़ी रह गई थी, इसलिए उन्होंने उज्जैन में ही किसी एक बड़के झाड़के नीचे समाधि ले ली और भूख-प्यास आदिकी परीषह जीतकर अन्तमें स्वर्गलाभ किया । वे जैनधर्मके सार तत्वको जाननेवाले महान् तपस्वी श्रीभद्रबाहु आचार्य हमें सुखमयी सन्मार्गमें लगावें ।

सोमशर्मा ब्राह्मणके वंशके एक चमकते हुए रत्न, जिनधर्मरूप समुद्रके बढ़ानेको पूर्ण चन्द्रमा और मुनियों, योगियोंके शिरोमणि श्रीभद्रबाहु पंचम श्रुतकेवली हमें वह लक्ष्मी दें जो सर्वोच्च सुखकी देनेवाली है, सब धन-दौलत, वैभव-सम्पत्तिमे श्रेष्ठ है ।

---

६२. बत्तीस सेठ पुत्रोंकी कथा

लोक और अलोकके प्रकाश करनेवाले—उन्हें देख जानकर उनके स्वरूपको समझानेवाले श्रीसर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर बत्तीस सेठ पुत्रोंकी कथा लिखी जाती है ।

कौशाम्बीमें बत्तीस सेठ थे । उनके नाम थे इन्द्रदत्त, जिनदत्त, सागरदत्त आदि । इनके पुत्र भी बत्तीस ही थे । उनके नाम समुद्रदत्त, वसुमित्र, नागदत्त, जिनदास आदि थे । ये सब ही धर्मात्मा थे, जिनभगवान्‌के सच्चे भक्त थे, विद्वान थे, गुणवान् थे और सम्यक्त्वरूपी रत्नसे भूषित थे । इन सबकी परस्परमें बड़ी मित्रता थी । यह एक इनके पुण्यका उदय कहना चाहिए जो सब ही धनवान्, सब ही गुणवान् सब ही धर्मात्मा और सबकी परस्परमें गाढ़ी मित्रता । बिना पुण्यके ऐसा योग कभी गिल ही नहीं सकता ।

एक दिन ये सब ही मित्र मिलकर एक केवलज्ञानी योगिराज की पूजा करनेको गये । भक्तिसे इन्होंने भगवान्‌की पूजा की और फिर उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना । भगवान्‌से पूछने पर इन्हें जान पड़ा कि इनकी उमर अब बहुत थोड़ी रह गई है । तब इस अन्तसमयमें आत्महित साधने के योगको उचित समझ इन सब हीने संसारका भटकना मिटानेवाली जिनदीक्षा ले ली । दीक्षा लेकर तपस्या करते हुए ये यमुना नदीके किनारे पर आये । यहीं इन्होंने प्रायोपगमन संन्यास ले लिया । भाग्यसे इन्हीं दिनोंमें खूब जोरकी वर्षा हुई । नदी, नाले सब पूर आ गये । यमुना भी खूब चढ़ी । एक जोरका ऐसा प्रवाह आया कि ये सभी मुनि उसमें बह गये । अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर छोड़कर स्वर्ग गये । सच है महापुरुषोंका चरित्र सुमेरुसे कहीं स्थिरशाली होता है । स्वर्गमें दिव्यसुखोंको भोगते हुए वे सब जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्ति में सदा लीन रहते हैं ।

कर्मो को जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् सदा जयलाभ करें । उसका पवित्र शासन संसारमें सदा रहकर जीवोंका हित साधन करे । उनका सर्वोच्च चारित्र अनेक प्रकारके दुःसह कष्टोंको सहकर भी मेरु सदृश स्थिर रहता है, उसकी तुलना किसीके साथ नहीं की जा सकती, वह संसारमें सर्वोत्तम आदर्श

है, भव-भ्रमण मिटानेवाला है, परम सुखका स्थान है और मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आदि आत्मशत्रुओका नाश करनेवाला है, उन्हे जड़ मूलसे उखाड़ फैंक देनेवाला है। हे भव्यजन ! आप भी इस उच्च आदर्श को प्राप्त करनेका प्रयत्न करिये, ताकि आप भी परमसुख-मोक्षके पात्र बन सके। जिनेन्द्र भगवान् इसके लिए आप सबको शक्ति प्रदान करें, यही भावना है

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञान भास्कराः ।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥

इति आराधना कथाकोश द्वितीय भाग

---

* जो मेरे भाग्य में नहीं है, वो दुनियाकी कोई भी शक्ति मुझे नहीं दे सकती और मेरे भाग्य में है उसे दुनिया की कोई भी शक्ति छीन नहीं सकती, ईश्वरीय शक्ति असम्भव को सम्भव बना सकती है। अतः कर्म ही ''कामधेनु'' एवम् प्रार्थना ही ''पारसमणी'' है।

आराधना कथाकोश

{ तीसरा भाग }

सत्य धर्मका उपदेश करनेवाले अतएव सारे संसारके स्वामी जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर श्रीधर्मघोष मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

एक महीनाके उपवासे धर्ममूर्ति श्रीधर्मघोष मुनि एक दिन चम्पापुरीके किसी मुहल्ले में पारण कर तपोवनकी ओर लौट रहे थे । रास्ता भूल जानेसे उन्हें बड़ी दूर तक हरी-हरी घास पर चलना पड़ा । चलनेमें अधिक परिश्रम होनेसे थकावटके मारे उन्हें प्यास लग आई । वे आकर गंगाके किनारे एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गये । उन्हें प्याससे कुछ व्याकुलसे देखकर गंगा देवी पवित्र जलका भरा एक लोटा लेकर उनके पास आई । वह उनसे बोली—योगिराज, मैं आपके लिए ठंडा पानी लाई हूँ, आप इसे पीकर प्यास शान्त कीजिए । मुनिने कहा—देवी, तूने अपना कर्त्तव्य बजाया, यह तेरे लिए उचित ही था; पर हमारे लिए देवों द्वारा दिया गया आहार-पानी काम नहीं आता । देवी सुनकर बड़ी चकित हुई । वह उसी समय इसका कारण जाननेके लिए विदेहक्षेत्रमें गई और वहाँ सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर उसने पूछा—भगवन्, एक प्यासे मुनिको मैं जल पिलाने गई, पर उन्होंने मेरे हाथका पानी नहीं पिया; इसका क्या कारण है ? तब भगवान्‌ने इसके उत्तरमें कहा—देवोंका दिया आहार मुनि लोग नहीं कर सकते । भगवान्‌का उत्तर सुन देवी निरुपाय हुई । तब उसने मुनिको शान्ति प्राप्त हो, इसके लिए उनके चारों ओर सुगन्धित और ठण्डे जलकी वर्षा शुरू की । उससे मुनिको शान्ति प्राप्त हुई । इसके बाद शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया । स्वर्गके देव उनकी पूजा करनेको आये । अनेक भव्य-जनों आत्म-हितके रास्ते पर लगा कर अन्तमें उन्होंने निर्वाण लाभ किया ।

वे धर्मघोष मुनिराज आपको तथा मुझे भी सुखी करें, जो पदार्थोंकी सूक्ष्म स्थिति देखनेके लिए केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं, भव्य जनोंको

हितमार्गमें लगानेवाले हैं, लोक तथा अलोकके जाननेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं और भव्य-जनोंके मिथ्यात्व, मोहरूपी गाढ़े अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्य हैं ।

बड़े-बड़े शानदार बंगले बनवाने में दो-चार कुत्ते पालने में, या मोटर गाड़ी रखने में और उसे चारों ओर फिरा कर धूल-उड़ाने में भले ही आज तुम्हें श्रीमन्ताई दीखती हो, पर ज्ञानियों की दृष्टि में वह सच्ची श्रीमन्ताई नहीं है । जो जन-समाज की अधिक-से-अधिक सेवा करते है, वही सच्चे श्रीमन्त है और उन्हीं की सच्ची श्रीमन्ताई जगत् के लिए हितकारक है ।

६४. श्रीदत्त मुनिकी कथा

केवलज्ञानरूपी सर्वोच्च लक्ष्मीके जो स्वामी हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर श्रीदत्त मुनिकी कथा लिखी जाती है, जिन्होंने देवों द्वारा दिये हुए कष्टको बड़ी शान्तिसे सहा ।

श्रीदत्त इलावर्द्धनपुरीके राजा जितशत्रुकी रानी इला के पुत्र थे । अयोध्याके राजा अंशुमानकी राजकुमारी अंशुमतीसे इनका ब्याह हुआ था । अंशुमतीने एक तोतेको पाल रक्खा था । जब ये पति-पत्नी विनोदके लिए चौपड़ वगैरह खेलते तब तोता कौन कितनी बार जीता, इसके लिए अपने पैरके नखसे रेखा खींच दिया करता था । पर इसमें यह दुष्टता थी कि जब श्रीदत्त जीतता तब तो यह एक ही रेखा खींचता और जब अपनी मालकिनकी जीत होती तब दो रेखाएँ खींच दिया करता था । आश्चर्य है कि पक्षी भी ठगाई कर सकते हैं । श्रीदत्त तोतेकी इस चालाकीको कई बार तो सहन कर गया । पर आखिर उसे तोते पर बहुत गुस्सा आया । सो उसने तोतेकी गरदन पकड़ कर मरोड़ दी । तोता उसी दम मर गया । बड़े कष्टके साथ मरकर वह व्यन्तरदेव हुआ ।

इधर साँझको एक दिन श्रीदत्त अपने महल पर बैठा हुआ प्रकृति देवीकी सुन्दरताको देख रहा था । इतनेमें एक बादलका बड़ा भारी टुकड़ा उसकी आँखोंके सामनेसे गुजरा । वह थोड़ी दूर न गया होगा कि देखतेदेखते छिन्न-भिन्न हो गया । उसकी इस क्षण नश्वरताका श्रीदत्तके चित्त पर बहुत असर पड़ा । संसारकी सब वस्तुएँ उसे बिजलीकी तरह नाशवान् देख पड़ने लगीं । सर्पके समान भयंकर विषय-भोगोंसे उसे डर लगने लगा । शरीर जिसे कि वह बहुत प्यार करता था सर्व अपवित्रताका स्थान जान पड़ने लगा । उसे ज्ञान हुआ कि ऐसे दुःखमय और देखते-देखते नष्ट होनेवाले संसारके साथ जो प्रेम करते हैं, माया-ममता बढ़ाते हैं, वे बड़े बेसमझ हैं । वह अपने लिए भी बहुत पछताया कि हाय ! मैं कितना मूर्ख हूँ जो अब तक अपने हितको न शोध सका । मतलब यह कि संसारकी दशासे उसे बड़ा वैराग्य हुआ और अन्तमें वह सुखके कारण जिनदीक्षा ले ही गया ।

इसके बाद श्रीदत्त मुनिने बहुतसे देशों और नगरोंमे भ्रमण कर अनेक

भव्य-जनोंको सम्बोधा, उन्हें आत्महितकी ओर लगाया । घूमते-फिरते वे एक बार अपने शहरकी ओर आ गये । समय जाड़े का था । एक दिन श्रीदत्त मुनि शहर बाहर कायोत्सर्ग-ध्यान कर रहे थे, उन्हें ध्यानमें खड़ा देख उस तोतेके जीवको, जिसे श्रीदत्तने गरदन मरोड़ मार डाला था और जो मरकर व्यन्तर हुआ था, अपने बैरी पर बड़ा क्रोध आया । उस बैरका बदला लेनेके अभिप्रायसे उसने मुनि पर बड़ा क्रोध आया । उस बैरका बदला लेनेके अभिप्रायसे उसने मुनि पर बड़ा उपद्रव किया । एक तो वैसे ही जाड़ेका समय, उस पर इसने बड़ी जोरकी ठंडी-ठार हवा चलाई, पानी बरसाया, ओले गिराये । मतलब यह कि उसने अपना बदला चुकानेमें कोई बात उठा न रखकर मुनिको बहुत ही कष्ट दिया । श्रीदत्त मुनिराजने इन सब कष्टोंको बड़ी शान्ति और धीरजके साथ सहा । व्यन्तर इनका पूरा दुश्मन था, पर तब भी इन्होंने उस पर रंच मात्र भी क्रोध न किया । वे बैरी और हितूको सदा समान भाव से देखते थे । अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर वे कभी नाश न होनेवाले मोक्ष स्थानको चले गये ।

जितशत्रु राजाके पुत्र श्रीदत्त मुनि देवकृत कष्टोंको बड़ी शान्तिके साथ सहकर अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा सब कर्मोंका नाश कर मोक्ष गये । वे केवलज्ञानी भगवान् मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें, जिससे मुझे भी शान्ति प्राप्त हो ।

---

* जिस ज्ञान से चारित्र लाभ नहीं होता वह ज्ञान निष्फल है अकारण है

६५. वृषभसेनकी कथा

जिन्हें सारा संसार वड़े आनन्दके साथ सिर झुकाता है, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर वृषभसेनका चरित लिखा जाता है।

उज्जैनके राजा प्रद्योत एक दिन उन्मत्त हाथी पर वैठकर हाथी पकड़नेके लिए स्वयं किसी एक घने जंगलमें गये। हाथी इन्हें वड़ी दूर ले भागा और आगे-आगे भागता ही चला जाता था। इन्होंने उसके ठहरानेकी बड़ी कोशिश की, पर उसमें ये सफल नहीं हुए। भाग्यसे हाथी एक क्षाड़के नीचे होकर जा रहा था कि इन्हें सुवुद्धि सूझ गई। वे उसकी टहनी पकड़ कर लटक गये और फिर धीरे-धीरे नीचे उत्तर आये। यहाँसे चलकर ये खेट नामके एक छोटेसे पर वहुत सुन्दर गाँवके पास पहुँचे। एक पनघट पर जाकर ये वैठ गये। इन्हें वड़ी प्यास लग रही थी। इन्होंने उसी समय पनघट पर पानी भरनेको आई हुई जिनपालकी लड़की जिनदत्तासे जल पिला देनेके लिए कहा। उसने इनके चेहरेके रंग-ढंगसे इन्हें कोई वड़ा आदमी समझ जल पिला दिया। वाद अपने घर पर आकर उसने प्रद्योतका हाल अपने पितासे कहा। सुनकर जिनपाल दौड़ा हुआ आकर इन्हें अपने घर लिवा लाया और बड़े आदर सत्कारके साथ इसने उन्हें स्नान-भोजन कराया। प्रद्योत उसकी इन मेहमानीसे वड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जिनपालको अपना सव परिचय दिया। जिनपालने ऐसे महान् अतिथि द्वारा अपना घर पवित्र होनेसे अपनेको वड़ा भग्यशाली माना। वे कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इतनेमें उनके सब नौकर-चाकर भी उन्हें लिवानेको आ गये। प्रद्योत अपने शहर जानेको तैयार हुए। इसके पहले एक वात कह देनेकी है कि जिनदत्ताको जवसे प्रद्योतने देखा तब हीसे उनका उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया था और इसीसे जिनपालकी सम्मति पा उन्होंने उसके साथ ब्याह भी कर लिया था। दोनों नव दम्पति सुखके साथ अपने राज्यमें आ गये। जिनदत्ताको तव प्रद्योतने अपनी पट्टरानीका सम्मान दिया। सच है, समय पर दिया हुआ थोड़ा भी दान बहुत ही सुखोंका देनेवाला होता है। जैसे वर्षाकालमें बोया हुआ वीज वहुत फलता है। जिनदत्तासे, जो उसने प्रद्योतको किया था, जिनदत्ताको एक राजरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये नये दम्पति सुखसे

समय बिताने लगे, प्रतिदिन नये-नये सुखोंका स्वाद लेनेमें इनके दिन कटने लगे ।

कुछ दिनों बाद इनके एक पुत्र हुआ । जिस दिन पुत्र होनेवाला था, उसी रातको राजा प्रद्योतने सपनेमें एक सफेद बैलको देखा था । इसलिए पुत्रका नाम भी उन्होंने वृषभसेन रख दिया । पुत्र-लाभ हुए बाद राजाको प्रवृत्ति धर्म-कार्योंकी ओर और अधिक झुक गई । वे प्रतिदिन पूजा, प्रभावना, अभिषेक, दान आदि पवित्र कार्योंको बड़ी भक्ति श्रद्धाके साथ करने लगे । इसी तरह सुखके साथ कोई आठ बरस बीत गये । जब वृषभसेन कुछ होशियार हुआ तब एक दिन राजाने उससे कहा—बेटा, अब तुम अपने इस राज्यके कारभारको सम्भालो । मैं अब जिन भगवान्के उपदेश किये पवित्र तपको ग्रहण करता हूँ । वही शान्ति प्राप्तिका कारण है । वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, आप तप क्यों ग्रहण करते हैं, क्या परलोक-सिद्धि, मोक्षप्राप्ति राज्य करते हुए नहीं हो सकती है ? राजाने कहा—बैटा हॉ, जिसे सच्ची सिद्धि या मोक्ष कहते हैं, वह बिना तप किये नहीं होती । जिन भगवान्ने मोक्षका कारण एक मात्र तप बताया है । इसलिए आत्महित करनेवालोंको उसका ग्रहण करना अत्यन्त ही आवश्यक है । राजपुत्र वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, यदि यह बात है तो फिर मैं ही इस दुःखके कारण राज्यको लेकर क्या करूँगा ? कृपाकर यह भार मुझ पर न रखिए । राजाने वृषभसेनको बहुत समझाया, पर उसके ध्यानमें तप छोड़कर राज्यग्रहण करनेकी बात बिलकुल न आई । लाचार हो राजा राज्यभार अपने भतीजेको सौंपकर आप पुत्रके साथ जिनदीक्षा ले गये ।

यहाँसे वृषभसेन मुनि तपस्या करते हुए अकेले ही देश, विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ घूमते-फिरते एक दिन कौशाम्बीके पास आ एक छोटी-सी पहाड़ी पर ठहरे । समय गर्मीका था । बड़ी तेज धूप पड़ती थी । मुनिराज एक पवित्र शिला पर कभी बैठे और कभी खड़े इस धूपमें योग साधा करते थे । उनकी इस कड़ी तपस्या और आत्मतेजसे दिपते हुए उनके शारीरिक सौन्दर्यको देख लोगोंकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई । जैनधर्म पर उनका विश्वास खूब दृढ़ जम गया ।

एक दिन चारित्रचूड़ामणि श्रीवृषभसेन मुनि भिक्षार्थ शहरमें गये हुये थे कि पीछेसे किसी जैनधर्मके प्रभावको न सहनेवाले बुद्धदास नामके बुद्धधर्मीने मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको आगसे तपाकर लाल सुर्ख कर दिया। सच है, साधु-महात्माओंका प्रभाव दुर्जनोंसे नहीं सहा जाता। जैसे सूरजके तेजको उल्लू नहीं सह सकता। जब मुनिराज आहार कर पीछे लौटे और उन्होंने शिलाको अग्निकी तपी हुई देखा, यदि वे चाहते और भौतिक शरीरसे उन्हें मोह होता तो बिलाशक वे अपनी रक्षा कर सकते थे। पर उनमें यह वात न थी; वे कर्त्तव्यशील थे, अपनी प्रतिज्ञाओंका पालना वे सर्वोच्च समझते थे। यही कारण था कि वे संन्यासकी शरण ले उस आगसे धधकती शिला पर वैठ गये। उस समय उनके परिणाम इतने ऊँचे चढ़े कि उन्हें शिला पर बैठते ही केवलज्ञान हो गया और उसी समय अघातिया कर्मोका नाश कर उन्होंने निर्वाण-लाभ किया। सच है, महापुरुषोंका चारित्र मेरुसे भी कहीं अधिक स्थिर होता है।

जिसके चित्तरूपी अत्यन्त ऊँचे पर्वतकी तुलना में बड़े-बड़े पर्वत एक ना कुछ चीज परमाणुकी तरह दीखने लगते हैं, समुद्र दूबाकी अणी पर ठहरे जलकणसा प्रतीत होता है, वे गुणोंके समुद्र और कर्मोको नाश करनेवाले वृषभसेन जिन मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो सव मनचाही सिद्धियोंके देनेवाले हैं।

---

* आत्मलाभ से बड़ा कोई ज्ञान नहीं है।

* आत्मलाभ से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

६६. कार्त्तिकेय मुनिकी कथा

संसारके सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोको देखने जाननेके लिए केवलज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है और जो पवित्रताकी प्रतिमा और सब सुखोंके दाता हैं, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर कार्तिकेय मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

कार्तिकपुरके राजा अग्निदत्तकी रानी वीरवतीके कृत्तिका नामकी एक लड़की थी । एक बार अठाईके दिनोंमें उसने आठ दिनके उपवास किये । अन्तके दिन वह भगवान्की पूजा कर शेषाको-भगवान्के लिए चढ़ाई फूलमालाको लाई । उसे उसने अपने पिताको दिया । उस समय उसकी दिव्य रूपराशिको देखकर उसके पिता अग्निदत्तकी नियत ठिकाने न रही । कामके वश हो उस पापीने बहुतसे अन्य धर्मी और कुछ जैन साधुओंको इकट्ठा कर उनसे पूछा—योगी-महात्माओ, आप कृपा कर मुझे बतलावें कि मेरे घरमें पैदा हुए रत्नका मालिक मैं ही हो सकता हूँ या कोई और ? राजाका प्रश्न पूरा होता है कि सब ओरसे एक ही आवाज आई कि महाराज, उस रत्नके तो आप ही मालिक हो सकते हैं, न कि दूसरा । पर जैनसाधुओंने राजाके प्रश्न पर कुछ गहरा विचार कर इस रूपमें राजाके प्रश्नका उत्तर दिया—राजन्, यह बात ठीक है कि अपने यहाँ उत्पन्न हुए रत्नके मालिक आप हैं, पर एक कन्या-रत्नको छोड़ कर । उसकी मालिकी पिताके नातेसे ही आप कर सकते हैं और रूपमें नहीं । जैन साधुओंका यह हितभरा उत्तर राजाको बड़ा बुरा लगा और लगना ही चाहिए; क्योंकि पापियोको हितकी बात कब सुहाती है ? राजाने गुस्सा होकर उन मुनियोंको देश बाहर कर दिया और अपनी लड़कीके साथ स्वयं ब्याह कर लिया । सच है, जो पापी हैं, कामी हैं जिन्हें आगामी दुर्गतियोंमे दुःख उठाना है, उनमे कहाँ धर्म, कहाँ लाज, कहाँनीति-सदाचार और कहाँ सुबुद्धि ?

कुछ दिनों बाद कृत्तिकाके दो सन्तान हुईं । एक पुत्र और एक पुत्री । पुत्रका नाम रखा कार्तिकेय और पुत्रीका नाम वीरमती । वीरमती बड़ी खूबसूरत थी । उसका ब्याह रोहेड़ नगरके राजा क्रोंचके साथ हुआ । वीरमती वहाँ रहकर सुखके साथ दिन बिताने लगी ।

इधर कार्तिकेय भी बड़ा हुआ । अब उसकी उम्र कोई १४ वर्ष की हो गई थी । एक दिन वह अपने साथी राजकुमारोंके साथ खेल रहा था । वे सब अपने नानाके यहाँसे आए हुए अच्छे-अच्छे कपड़े और आभूषण पहने हुए थे । पूछने पर कार्तिकेयको ज्ञात हुआ कि वे वस्त्राभरण उन सब राजकुमारोंके नाना-मामाके यहाँसे आए हैं । तब उसने अपनी माँसे जाकर पूछा—क्यों माँ ! मेरे साथी राजपुत्रोंके लिए तो उनके नाना-मामा अच्छे-अच्छे वस्त्राभरण भेजते हैं, भला फिर मेरे नाना-मामा मेरे लिए क्यों नहीं भेजते हैं ? अपने प्यारे पुत्रकी ऐसी भोली बात सुनकर कृत्तिका का हृदय भर आया । आँखोंसे आँसू बह चले । अब वह उसे क्या कहकर समझाये और कहनेको जगह ही कौन-सी बच रही थी । परन्तु अबोध पुत्रके आग्रहसे उसे सच्ची हालत कहनेको बाध्य होना पड़ा । वह रोती हुई बोली—बेटा, मैं इस महापापकी बात तुझसे क्या कहूँ । कहते हुए छाती फटती है । जो बात कभी नहीं हुई, वही बात मेरे तेरे सम्बन्धमें है । वह केवल यही कि जो मेरे पिता हैं वे ही तेरे भी पिता हैं । मेरे पिताने मुझसे बलात् ब्याह कर मेरी जिन्दगी कलंकित की । उसीका तू फल है । कार्तिकेयको काटो तो खून नहीं । उसे अपनी माँका हाल सुनकर बेहद दुःख हुआ । लज्जा और आत्मग्लानिसे उसका हृदय तिलमिला उठा । इसके लिए वह लाइलाज था । उसने फिर अपनी माँसे पूछा—तो क्यों माँ ! उस समय मेरे पिताको ऐसा अनर्थ करते किसी ने रोका नहीं, सब कानोंमें तेल डाले पड़े रहे ? उसने कहा—बेटा ! रोका क्यों नहीं ? मुनियोंने उन्हें रोका था, पर उनकी कोई बात नहीं सुनी गई, उलटे वे ही देशसे निकाल दिये गए ।

कार्तिकेयने तब पूछा—माँ वे गुणवान् मुनि कैसे होते हैं ? कृत्तिका बोली—बेटा ! वे शान्त रहते हैं, किसीसे लड़ते-झगड़ते नहीं । कोई दस गालियाँ भी उन्हें दे जाय तो वे उससे भी कुछ नहीं कहते और न क्रोध ही करते हैं । बेटा ! वे बड़े पण्डित होते हैं, उनके पास धन-दौलत तो दूर रहा, एक फूटी कौड़ी भी नहीं रहती । वे कभी कपड़े नहीं पहिनते, उनका वस्त्र केवल यह आकाश है । चाहे कैसी ही ठण्ड या गर्मी पड़े, चाहे कैसी ही बरसात हो उनके लिए सब समान है । बेटा ! वे बड़े दयावान होते हैं, कभी

किसी जीवको जरा भी नहीं सताते । इसी दयाको पूरी तौरसे पालनेके लिए वे अपने पास सदा मोरके अत्यन्त कोमल पंखोंकी एक पीछी रखते हैं और जहाँ उठते-बैठते हैं, वहाँकी जमीनको पहले उस पीछीसे झाड़-पोंछकर साफ कर लेते हैं । उनके हाथमें लकड़ीका एक कमण्डलु होता है, जिसमें वे शौच वगैरहके लिए प्रासुक (जीवरहित) पानी रखते हैं । बेटा, उनकी चर्या बड़ी ही कठिन है । वे भिक्षाके लिये श्रावकोंके यहाँ जाते हैं जरूर, पर कभी माँग कर नहीं खाते । किसीने उन्हें आहार नहीं दिया तो वे भूखे ही पीछे तपोवनमें लौट जाते हैं । वे आठ-आठ, पन्द्रह-पन्द्रह दिनके उपवास करते हैं । बेटा, मैं तुझे उनके आचार-विचारकी बातें कहाँ तक बताऊँ । तू इतनेमें ही समझ ले कि संसारके सब साधुओंमें वे ही सच्चे साधु हैं । अपनी माता द्वारा जैन साधुओंकी तारीफ सुनकर कार्तिकेयकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई । उसे अपने पिताके कार्यसे वैराग्य तो पहले ही हो चुका था, उस पर माताके इस प्रकार समझानेसे उसकी जड़ और मजबूत हो गई । वह उसी समय सब मोह ममता तोड़कर घरसे निकल गया और मुनियोंके स्थान तपोवनमें जा पहुँचा । मुनियोंका संघ देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने बड़ी भक्तिसे उन सब साधुओंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दीक्षाके लिए उनसे प्रार्थना की । संघके आचार्यने उसे होनहार जान दीक्षा देकर मुनि बना लिया । कुछ दिनोंमें ही कार्तिकेय मुनि, आचार्यके पास शास्त्राभ्यास कर बड़े विद्वान् हो गए ।

कार्तिकेयकी माताने पुत्रके सामने मुनियोंकी बहुत प्रशंसा की थी, पर उसे यह मालूम न था कि उसकी की हुई प्रशंसाका कार्तिकेय पर यह प्रभाव पड़ेगा कि वह दीक्षा लेकर मुनि बन जाय । इसलिए जब उसने जाना कि कार्तिकेय योगी बनना चाहता है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ । वह कार्तिकेयके सामने बहुत रोई, गिड़गिड़ाई कि वह दीक्षा न ले, परन्तु कार्तिकेय अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और तपोवनमे जाकर साधु बन ही गया । कार्तिकेयकी जुदाईका दुःख सहना उसकी माँके लिये बड़ा कठिन हो गया । दिनोंदिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और आखिर वह पुत्र शोकसे मृत्युको प्राप्त हुई । मरते समय भी वह पुत्रके आर्त्तध्यानसे मरी, अतः मरकर व्यन्तर देवी हुई ।

मुझे अपने आत्महितके लिए कड़ीसे कड़ी तपस्या कर अनादि कालसे पीछा किये हुए इन आत्मशत्रु कर्मोका नाश करना उचित है, यही मेरे पहले किये कर्मोका पूर्ण प्रायश्चित्त है, और ऐसा करनेसे ही मैं शिवरमणीके हाथोंका सुख-स्पर्श कर सकूँगा । इस प्रकार स्थिर विचार कर अभयघोषने सब राजभार अपने कुँवर चण्डवेगको सौंप जिन दीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर उन्हें आत्मशक्तिके बढ़ानेको सहायक बनाती है । इसके बाद अभयघोष मुनि संसार-समुद्रसे पार करनेवाले और जन्म-जरा-मृत्युको नष्ट करनेवाले अपने गुरु महाराजको नमस्कार कर और उनकी आज्ञा ले देश विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विहार कर गये । इसके कितने वर्षो ही बाद वे घूमते-फिरते फिर एक बार अपनी राजधानी काकन्दीकी ओर आ निकले । एक दिन ये वीरासनसे तपस्या कर रहे थे । इसी समय इनका पुत्र चण्डवेग इस ओर आ निकला । पाठकोंको याद होगा कि चण्डवेगकी और इसके पिता अभयघोषकी शत्रुता है । कारण चण्डवेग पूर्व जन्ममें कछुआ था और उसके पाँव अभयघोषने काट डाले थे । सो चण्डवेगकी जैसे ही इन पर नजर पड़ी उसे अपने पूर्वकी याद आ गई । उसने क्रोधसे अन्धे होकर उनके भी हाथ पाँवोंको काट डाला । सच है धर्महीन अज्ञानी जन कौन पाप नहीं कर डालते ।

अभयघोष मुनि पर महान् उपसर्ग हुआ, पर वे तब भी मेरुके समान अपने कर्त्तव्यमें दृढ़ बने रहे । अपने आत्मध्यानसे वे रत्तीभर भी न डिगे । इसी ध्यान बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर अन्तमें उन्होंने अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया । सच है, आत्मशक्ति बड़ी गहन है, आश्चर्य पैदा करनेवाली है । देखिए कहाँ तो अभयघोष मुनि पर दुःसह कष्टका आना और कहाँ मोक्ष प्राप्तिका कारण दिव्य आत्मध्यान !

सत्पुरुषों द्वारा सेवा किये गये वे अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्षका सुख दें, जिन्होंने दुःसह परीषहको जीता, आत्मशत्रु राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिको नष्ट किया और जन्म-जन्ममे दारुण दुःखोंके देनेवाले कर्मोका क्षय कर मोक्षका सर्वोच्च सुख, जिस सुखकी कोई तुलना नहीं कर सकता, प्राप्त किया ।

६८. विद्युच्चर मुनिकी कथा

सब सुखोके देनेवाले और संसारमे सर्वोच्च गिने जानेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर शास्त्रोके अनुसार विद्युच्चर मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

मिथिलापुरके राजावामरथके राज्यमे इनके समय कोतवालके ओहदे पर एक यमदण्ड नामका मनुष्य नियुक्त था । यहीं एक विद्युच्चर नामका चोर रहता था । यह अपने चोरीके फनमे बड़ा चलता हुआ था । सो यह क्या करता कि दिनमें तो एक कोढ़ीके वेषमे किसी सुनसान मन्दिरमे रहता और ज्यो ही रात होती कि एक सुन्दर मनुष्यका वेष धारण कर खूब मजा-मोज मारता । यही ढंग इसका बहुत दिनोसे चला आता था । पर इसे कोई पहिचान न सकता था । एक दिन विद्युच्चर राजाके देखते-देखते खास उन्हींके ही हारको चुरा लाया । पर राजासे तब कुछ भी न बन पड़ा । सुबह उठकर राजाने कोतवालको बुलाकर कहा—देखो, कोई चोर अपनी सुन्दर वेषभूषासे मुझे मुग्ध बनाकर मेरा रत्न-हार उठा ले गया है । इसलिए तुम्हें हिदायत की जाती है कि सात दिनके भीतर उस हारको या उसके चुरा लेजानेवालेको मेरे सामने उपस्थित करो, नहीं तो तुम्हें इसकी पूरी सजा भोगनी पड़ेगी । जान पडता है तुम अपने कर्तव्य पालनमें बहुत त्रुटि करते हो । नहीं तो राजमहलमे से चोरी हो जाना कोई कम आश्चर्यकी बात नहीं है । 'हुक्म हुजूरका' कहकर कोतवाल चोरके ढूँढ़नेको निकला । उसने सारे शहरकी गली-कूँची, घर-बार आदि एक-एक करके छान डाला, पर उसे चोरका पता कहीं न चला । ऐसे उसे छह दिन बीत गये । सातवें दिन वह फिर घर बाहर हुआ । चलते-चलते उसकी नजर एक सुनसान मन्दिर पर पड़ी । वह उसके भीतर घुस गया । वहाँ उसने एक कोढ़ीको पड़ा पाया । उस कोढ़ीका रंगढंग देखकर कोतवालको कुछ सन्देह हुआ । उसने उससे कुछ बाते-चीते इस ढगसे की कि जिससे कोतवाल उसके हृदयका कुछ पता पा सके । यद्यपि उस बातचीतसे कोतवालको जैसी चाहिए थी वैसी सफलता न हुई, पर तब भी उसके पहले शकको सहारा अवश्य मिला । कोतवाल उस कोढीको राजाके पास ले गया और

बोला—महाराज, यही आपके हारका चोर है । राजाके पूछने पर उस कोढ़ीने साफ इन्कार कर दिया कि मैं चोर नहीं हूँ । मुझे ये जबरदस्ती पकड़ लाये हैं । राजाने कोतवालकी ओर तब नजर की । कोतवालने फिर भी दृढ़ताके साथ कहा कि महाराज, यही चोर है । इसमें कोई सन्देह नहीं । कोतवालको बिना कुछ सुबूतके इस प्रकार जोर देकर कहते देखकर कुछ लोगोंके मनमें यह विश्वास जम गया कि यह अपनी रक्षाके लिए जबरन इस बेचारे गरीब भिखारीको चोर बताकर सजा दिलवाना चाहता है । उसकी रक्षा हो जाय, इस आशयसे उन लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि महाराज, कहीं ऐसा न हो कि बिना ही अपराधके इस गरीब भिखारीको कोतवाल साहबकी मार खाकर बेमौत मर जाना पड़े और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये इसे मारेंगे अवश्य । तब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे अपना हार भी मिल जाय और बेचारे गरीबकी जान भी न जाय । जो हो, राजाने उन लोगोंकी प्रार्थना पर ध्यान दिया या नहीं, पर यह स्पष्ट है कि कोतवाल साहब उस गरीब कोढ़ीको अपने घर लिवा ले गये और जहाँ तक उनसे बन पड़ा उन्होंने उसके मारनेपीटने, सजा देने, बाँधने आदिमें कोई कसर न की । वह कोढ़ी इतने दुःसह कष्ट दिये जाने पर भी हर बार यही कहता रहा कि मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ । दूसरे दिन कोतवालने फिर उसे राजाके सामने खड़ा करके कहा—महाराज, यही पक्का चोर है । कोढ़ीने फिर भी यही कहा कि महाराज मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ । सच है, चोर बड़े ही कट्टर साहसी होते हैं ।

तब राजाने उससे कहा—अच्छा, मैं तेरा सब अपराध क्षमा कर तुझे अभय देता हूँ, तू सच्चा-सच्चा हाल कर दे कि तू चोर है या नहीं ? राजासे जीवनदान पाकर उस कोढ़ी या विद्युच्चरने कहा—यदि ऐसा है तो लीजिए कृपानाथ, मैं सब सच्ची बात आपके सामने प्रगट करे देता हूँ । यह कहकर वह बोला—राजाधिराज, अपराध क्षमा हो । वास्तवमें मैं ही चोर हूँ । आपके कोतवाल साहबका कहना सत्य है । सुनकर राजा चकित हो गये । उन्होंने तब विद्युच्चरसे पूछा—जब कि तू चोर था तब फिर तूने इतनी मारपीट कैसे सह ली रे ? विद्युच्चर बोला—महाराज, इसका तो कारण यह है कि मैंने एक मुनिराज द्वारा नरकोंके दुःखोंका हाल सुन रक्खा था । तब मैंने विचारा कि नरकोंके

दु:खोंमे और इन दु:खोमे तो पर्वत और राईका सा अन्तर है । और जब मैंने अनन्त बार नरकोंके भयंकर दु:ख, जिनके कि सुनने मात्रसे ही छाती दहल उठती है, सहे है तब इन तुच्छ, ना कुछ चीज दु:खोंका सह लेना कौन बड़ी बात है ! यही विचार कर मैंने सब कुछ सहकर चूँ तक भी नहीं की । विद्युच्चरसे उसकी सच्ची घटना सुनकर राजाने खुश होकर उसे वर दिया कि तुझे 'जो कुछ मॉगना हो मॉग' । मुझे तेरी बातें सुननेसे बड़ी प्रसन्नता हुई । तब विद्युच्चरने कहा—महाराज, आपकी इस कृपाका मैं अत्यन्त उपकृत हूँ । इस कृपाके लिए आप जो कुछ मुझे देना चाहते हैं वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहबको दीजिए । राजा सुनकर और भी अधिक अचम्भेमें पड़ गये । उन्होने विद्युच्चरसे कहा—क्यो यह तेरा मित्र कैसे है ? विद्युच्चरने तब कहा—सुनिए महाराज, मैं सब आपको खुलासा सुनाता हूँ । यहॉसे दक्षिणकी ओर आभीर प्रान्तमें बहनेवाली वेना नदीके किनारे पर बेनातट नामका एक शहर बसा हुआ है । उसके राजा जितशत्रु और उनकी रानी जयावती, ये मेरे माता-पिता हैं । मेरा नाम विद्युच्चर है । मेरे शहरमें ही एक यमपाश नामके कोतवाल थे । उनकी स्त्री यमुना थी । ये आपके कोतवाल यमदण्ड साहब उन्हींके पुत्र है । हम दोनो एक ही गुरुके पास पढ़े हुए हैं । इसलिए तभीसे मेरी इनके साथ मित्रता है । विशेषता यह है कि इन्होंने तो कोतवाली सम्बन्धी शास्त्राभ्यास किया था और मैंने चौर्यशास्त्रका । यद्यपि मैंने यह विद्या केवल विनोदके लिए पढ़ी थी, तथापि एक दिन हम दोनों अपनी-अपनी चतुरताकी तारीफ कर रहे थे; तब मैंने जरा घमण्डके साथ कहा—भाई, मैं अपने फनमे कितना होशियार हूँ, इसकी परीक्षा मैं इसीसे कराऊँगा कि जहॉ तुम कोतवालीके ओहदे पर नियुक्त होगे, वहीं मैं आकर चोरी करूँगा । तब इन महाशयने कहा—अच्छी बात है, मैं भी उसी जगह रहूँगा जहॉ तुम चोरी करोगे और मैं तुमसे शहरकी अच्छी तरह रक्षा करूँगा । तुम्हारे द्वारा मैं उसे कोई तरहकी हानि न पहुँचने दूँगा ।

इसके कुछ दिनों बाद मेरे पिता जितशत्रु मुझे सब राजभार दे जिनदीक्षा ले गये । मैं तब राजा हुआ । और इनके पिता यमपाश भी तभी जिनदीक्षा लेकर साधु बन गये । इनके पिताकी जगह तब इन्हें मिली । पर ये मेरे डरके मारे मेरे

शहरमें न रहकर जहाँ तुम कोतवालीके ओहदे पर नियुक्त हुए। मैं अपनी प्रतिज्ञाके वश चोर बनकर इन्हें ढूँढ़नेको यहाँ आया। यह कहकर फिर विद्युच्चरने उनके हारके चुरानेकी सब बातें कह सुनाई और फिर यमदण्डको साथ लिए वह अपने शहरमें आ गया।

विद्युच्चरको इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने राजमहलमे पहुँचते ही अपने पुत्रको बुलाया और उसके साथ जिनेन्द्र भगवान्का पूजाअभिषेक किया। इसके बाद वह सब राजभार पुत्रको सौंपकर आप बहुतसे राजकुमारोंके साथ जिनदीक्षा ले मुनि बन गया।

यहाँसे विहार कर विद्युच्चर मुनि अपने सारे संघको साथ लिए देश विदेशोंमें बहुत घूमे-फिरे। बहुतसे बे-समझ या मोह-मायामें फँसे हुए जनोंको इन्होंने आत्महितके मार्ग पर लगाया और स्वयं भी काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेषादि आत्मशत्रुओंका प्रभुत्व नष्ट कर उन पर विजय लाभ किया आत्मोन्नतिके मार्गमें दिन बदिन बे-रोक टोक ये बढ़ने लगे। एक दिन घूमते-फिरते ये तार्मलिप्तपुरीकी ओर आये। अपने संघके साथ ये पुरीमें प्रवेश करनेको ही थे कि इतनेमें यहाँकी चामुण्डा देवीने आकर भीतर घुसनेसे इन्हे रोका और कहा—योगिराज, जरा ठहरिए, अभी मेरी पूजाविधि हो रही है। इसलिए जब तक वह पूरी न हो जाये तब तक आप यहीं ठहरें, भीतर न जायें। देवीके इस प्रकार मना करने पर भी अपने शिष्योंके आग्रहसे वे न रुककर भीतर चले गये और पुरीके पश्चिम तरफके परकोटेके पास कोई पवित्र जगह देखकर वहीं सारे संघने ध्यान करना शुरू कर दिया। अब तो देवीके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसने अपनी मायासे कोई कबूतरके बराबर डाँस तथा मच्छर आदि खून पीनेवाले जीवोकी सृष्टि रचकर मुनि पर घोर उपद्रव किया। विद्युच्चर मुनिने इस कष्टको बड़ी शान्तिसे सह कर बारह भावनाओके चिन्तनसे अपने आत्माको वैराग्यकी ओर खूब दृढ़ किया और अन्तमें शुक्ल-ध्यानके बलसे कर्मोका नाश कर अक्षय और अनन्त मोक्षके सुखको अपनाया।

उन देवों, विद्याधरों, चक्रवर्त्तियों तथा राजों-महाराजों द्वारा, जो अपने

मुकुटोंमे जड़े हुए बहुमूल्य दिव्य रत्नोकी कान्तिसे चमक रहे हैं, बड़ी भक्तिसे पूजा किये गये और केवलज्ञानसे विराजमान वे विद्युच्चर मुनि मुझे और आप भव्य-जनोको मंगल-मोक्ष सुख दे, जिससे संसारका भटकना छूटकर शान्ति मिले ।

☆ धर्म, अर्थ, काम और प्राणों का भय, ये चार कसौटियाँ हैं जिन पर कस कर मनुष्य को चुनना चाहिये ।

☆ जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हैं, दोषों से रहित है और अपयश से डरता है वही तुम्हारें लिए योग्य मनुष्य है ।

☆ जब तुम परीक्षा करोगे तो देखोगे कि अत्यन्त ज्ञानवान और शुद्ध मन वाले लोग भी हर प्रकार के अज्ञान से सर्वथा अलिप्त नहीं निकलेंगे ।

☆ मनुष्य की भलाइयों को देखों और फिर उसकी बुराइयों पर दृष्टि डालो । इनमें जो अधिक हैं, वरन् समझ लो वैसा ही उसका स्वभाव है ।

६९. गुरुदत्त मुनिकी कथा

जिनकी कृपासे केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है, उन पंच परमेष्ठी-अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार कर गुरुदत्त मुनिका पवित्र चरित लिखा जाता है।

गुरुदत्त हस्तिनापुरके धर्मात्मा राजा विजयदत्तकी रानी विजयाके पुत्र थे। बचपनसे ही इनकी प्रकृतिमें गम्भीरता, धीरता, सरलता तथा सौजन्यता थी। सौन्दर्यमें भी ये अद्वितीय थे। अस्तु, पुण्यकी महिमा अपरम्पार है।

विजयदत्त अपना राज्य गुरुदत्तको सौंपकर स्वयं मुनि हो गये और आत्महित करने लगे। राज्यकी बागडोर गुरुदत्तने अपने हाथमें लेकर बड़ी सावधानी और नीतिके साथ शासन आरम्भ किया। प्रजा उनसे बहुत खुश हुई। वह अपने नये राजाको हजार-हजार साधुवाद देने लगी। दुःख किसे कहते हैं, यह बात गुरुदत्तकी प्रजा जानती ही न थी। कारण-किसीको कुछ, थोड़ा भी कष्ट होता था तो गुरुदत्त फौरन ही उसकी सहायता करता। तनसे, मनसे और धनसे वह सभीके काम आता था।

लाट देशमें द्रोणीमान पर्वतके पास चन्द्रपुरी नामकी एक सुन्दर नगरी बसी हुई थी। उसके राजा थे चन्द्रकीर्ति। इनकी रानीका नाम चन्द्रलेखा था। इनके अभयमती नामकी एक पुत्री थी। गुरुदत्तने चन्द्रकीर्तिसे अभयमतीके लिए प्रार्थना की कि वे अपनी कुमारी का व्याह उसके साथ कर दें। परन्तु चन्द्रकीर्तिने उनकी इस बातसे साफ इन्कार कर दिया, वे गुरुदत्तके साथ अभयमतीका व्याह करनेको राजी न हुए। गुरुदत्तने इससे कुछ अपना अपमान हुआ समझा। चन्द्रकीर्ति पर उसे गुस्सा आया। उसने उसी समय चन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर दी और उसे चारों ओरसे घेर लिया। कुमारी अभयमती गुरुदत्त पर पहले हीसे मुग्ध थी और जब उसने उसके द्वारा चन्द्रपुरीका घेरा जाना सुना तो वह अपने पिताके पास आकर बोली—पिताजी ! अपने सम्बन्धमें मैं आपसे कुछ कहना उचित नहीं समझती, पर मेरे संसारको सुखमय होनेमें कोई बाधा या विघ्न न आवे। इसलिए कहना या प्रार्थना करना उचित जान पड़ता है। क्योंकि मुझे दुःखमें देखना तो आप सपनेमें भी पसन्द नहीं करेंगे।

वह प्रार्थना यह है कि आप गुरुदत्तजीके साथ ही मेरा ब्याह कर दें, इसीमें मुझे सुख होगा। उदार-हृदय चन्द्रकीर्तिने अपनी पुत्रीकी बात मान ली। इसके बाद अच्छा दिन देख खूब आनन्दोत्सवके साथ उन्होने अभयमतीका ब्याह गुरुदत्तके साथ कर दिया। इस सम्बन्धसे कुमार और कुमारी दोनों ही सुखी हुए। दोनोकी मनचाही बात पूरी हुई।

ऊपर जिस द्रोणीमान पर्वतका उल्लेख हुआ है, उसमें एक बड़ा ही भयंकर सिह रहता था। उसने सारे शहरको बहुत ही आतंकित कर रखा था। सबके प्राण सदा मुट्ठीमें रहा करते थे। कौन जाने कब आकर सिंह खा ले, इस चिन्तासे सब हर समय घबराए हुएसे रहते थे। इस समय कुछ लोगोंने गुरुदत्तसे जाकर प्रार्थना की कि राजाधिराज, इस पर्वत पर एक बड़ा भारी हिंसक सिंह रहता है। उससे हमे बड़ा कष्ट है। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे हम लोगोका कष्ट दूर हो।

गुरुदत्त उन लोगोंको धीरज बँधाकर आप अपने कुछ वीरोंको साथ लिये पर्वत पर पहुँचा। सिंहको उसने सब ओरसे घेर लिया। पर मौका पाकर वह भाग निकला और जाकर एक अँधेरी गुफामें घुसकर छिप गया। गुरुदत्तने तब इस मौकेको अपने लिए और भी अच्छा समझा। उसने उसी समय बहुतसे लकड़े गुफामें भरवाकर सिंहके निकलनेका रास्ता बन्द कर दिया। और बाहर गुफाके मुँह पर भी एक लकड़ोका ढेर लगवा कर उसमें आग लगवा दी। लकड़ों की खाकके साथ-साथ उस सिंहकी भी देखते-देखते खाक हो गई। सिंह बड़े कष्टके साथ मरकर इसी चन्द्रपुरीमे भरत नामके ब्राह्मणकी विश्वदेवी स्त्रीके कपिल नामका लड़का हुआ। यह जन्मसे ही बड़ा क्रूर हुआ और यह ठीक भी है कि पहले जैसा संस्कार होता है, वह दूसरे जन्ममें भी आता है।

इसके बाद गुरुदत्त अपनी प्रियाको लिए राजधानीमें लौट आया। दोनों नव दम्पती बड़े सुखसे रहने लगे। कुछ दिनों बाद अभयमतीके एक पुत्रने जन्म लिया। इसका नाम रखा गया सुवर्णभद्र। यह सुन्दर था, सरलता और पवित्रताकी प्रतिमा था और बुद्धिमान् था। इसीलिये सब ही इसे बहुत प्यार करते थे। जब इसकी उमर योग्य हो गई और सब कामोमे यह हुशियार

हो गया तब जिनेन्द्र भगवान्‌के सच्चे भक्त इसके पिता कुछ वर्षों बाद ये अनेक देशो, नगरों और गॉवोंमे धर्मोपदेश करते, भव्य-जनोंको सुलटाते एक बार चन्द्रपुरीकी ओर आये ।

एक दिन गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणके खेत पर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे । इसी समय कपिल घर पर अपनी स्त्रीसे यह कह कर, कि प्रिये, मैं खेत पर जाता हूँ, तुम वहॉ भोजन लेकर जल्दी आना, खेत पर आ गया । जिस खेत पर गुरुदत्त मुनि ध्यान कर रहे थे, उसे तब जोतने योग्य न समझ वह दूसरे खेत पर जाने लगा । जाते समय मुनिसे वह यह कहता गया कि मेरी स्त्री यहॉ भोजन लिए हुये आवेगी सो उसे आप कह दीजियेगा कि कपिल दूसरे खेत पर गया है । तू भोजन वहीं ले जा, सच है, मूर्ख लोग महामुनिके मार्ग को न समझ कर कभी-कभी बड़ा ही अनर्थ कर बैठते हैं । इसके बाद जब कपिलको स्त्री भोजन लेकर खेत पर आई और उसने अपने स्वामीको खेत पर न पाया तब मुनिसे पूछा—क्यों साधु महाराज, मेरे स्वामी यहॉसे कहॉ गये हैं ? मुनि चुप रहे, कुछ बोले नहीं । उनसे कुछ उत्तर न पाकर वह घर पर लौट आई । इधर समय पर समय बीतने लगा ब्राह्मण देवता भूखके मारे छट-पटाने लगे पर ब्राह्मणीका अभी तक पता नहीं; यह देख उन्हें बड़ा गुस्सा आया । वे क्रोधसे गुर्राते हुए घर आये और लगे बेचारी ब्राह्मणी पर गालियोंकी बोछार करने ! रॉड, मैं तो भूखके मारे मरा जाता हूँ और तेरा अभी तक आनेका ठिकाना ही नहीं ! उस नंगेको पूछकर खेत पर चली आती । बेचारी ब्राह्मणी घबराती हुई बोली—अजी तो इसमें मेरा क्या अपराध था ! मैंने उस साधुसे तुम्हारा ठिकाना पूछा । उसने कुछ न बताया ! तब मैं वापिस घर पर आ गई । ब्राह्मणने दॉत पीसकर कहा—हॉ उस नंगेने तुझे मेरा ठिकाना नहीं बताया ! और मैं तो उससे कह गया था । अच्छा, मैं अभी ही जाकर उसे इसका मजा चखता हूँ । पाठकोंको याद होगा कि कपिल पहले जन्ममें सिंह था, और उसे इन्हीं गुरुदत्त मुनिने राज अवस्थामें जलाकर मार डाला था तव इस हिसाबमें कपिलके वे शत्रु हुए । यदि कपिलको किसी तरह यह जान पड़ता कि ये मेरे शत्रु हैं, तो उस शत्रुताका बदला उसने कभीका ले लिया होता पर उसे इसके जाननेका न तो कोई जरिया मिला और न था ही । तब

उस शत्रुताको जाग्रत करनेके लिए कपिलकी स्त्रीको कपिलके दूसरे खेत पर जानेका हाल जो मुनिने न बताया, यह घटना सहायक हो गई। कपिल गुस्सेसे लाल होता हुआ मुनिके पास पहुँचा। वहाँ बहुतसी सेमलकी रुई पड़ी हुई थी। कपिलने उस रुईसे मुनिको लपेट कर उसमे आग लगा दी। मुनि पर बड़ा उपसर्ग हुआ। पर उसे उन्होंने बड़ी धीरतासे सहा। उस समय शुक्लध्यानके बलसे घातिया कर्मोका नाश होकर उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। देवोंने आकर उन पर फूलोंकी वर्षा की, आनन्द मनाया। कपिल ब्राह्मण यह सब देखकर चकित हो गया। उसे तब जान पडा कि जिन साधुको मैंने अत्यन्त निर्दयतासे जला डाला उनका कितना माहात्म्य था! उसे अपनी इस नीचता पर बड़ा ही पछतावा हुआ। उसने बड़ी भक्तिसे भगवान्‌को हाथ जोड़कर अपने अपराधकी उनसे क्षमा माँगी। भगवान्‌के उपदेशने उसके हृदय पर गहरा असर किया। वह उसी समय सब छोड़-छोड़ कर अपने पापका प्रायश्चित करनेके लिये मुनि हो गया। सच है, सत्पुरुषों—महात्माओंकी संगति सुख देनेवाली होती है। यही तो कारण था कि एक महाक्रोधी ब्राह्मण पल भरमे सब छोड़-छोड़ कर योगी बन गया। इसलिये भव्य-जनोको सत्पुरुषोंकी संगतिसे अपनेको, अपनी सन्तानको और अपने कुलको सदा पवित्र करनेका यत्न करते रहना चाहिए। यह सत्संग परम सुखका कारण है।

वे कर्मोके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् सदा संसारमे रहे, उनका शासन चिरकाल तक जय लाभ करे जो सारे संसारको सुख देनेवाले हैं, सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हैं और देवों द्वारा जो पूजा स्तुति किये जाते हैं। तथा दुःसह उपसर्ग आने पर भी जो मेरुको तरह स्थिर रहे और जिन्होंने अपना आत्मस्वभाव प्राप्त किया ऐसे गुरुदत्त मुनि तथा मेरे परम गुरु श्रीप्रभाचन्द्राचार्य, ये मुझे आत्मीक सुख प्रदान करे।

वस्तुतः न अपनी जिम्मेदारी अपने पर है और न किसी की जिम्मेदारी किसी पर।
होनी से जो होने का है वह हो रहा है।
जिम्मेदार अवश्य जिम्मेदार है।
इसके अतिरिक्त कोई किसी का जिम्मेदार नहीं।

७०. चिलात-पुत्र की कथा

केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर चिलातपुत्रकी कथा लिखी जाती है ।

राजगृहके राजा उपश्रेणिक एक बार हवाखोरीके लिए शहर बाहर गए । वे जिस घोड़े पर सवार थे, वह बड़ा दुष्ट था । सो उसने उन्हें एक भयानक वनमें जा छोड़ा । उस वनका मालिक एक यमदंड नामका भील था । इसके एक लडकी थी । उसका नाम तिलकवती था । वह बड़ी सुन्दरी थी । उपश्रेणिक उसे देखकर कामके बाणोंसे अत्यन्त बींधे गये । उनकी यह दशा देखकर यमदण्डने उनसे कहा—राजाधिराज, यदि आप इससे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका मालिक बनाना मजूर करें तो मैं इसे आपके साथ ब्याह सकता हूँ । उपश्रेणिकने यमदण्डकी शर्त मजूर कर ली । यमदण्डने तब तिलकवतीका ब्याह उनके साथ कर दिया । वे प्रसन्न होकर उसे साथ लिये राजगृह लौट आये ।

बहुत दिनो तक उन्होंने तिलकवतीके साथ सुख भोगा, आनन्द मनाया । तिलकवतीके एक पुत्र हुआ । इसका नाम चिलातपुत्र रक्खा गया । उपश्रेणिकके पहली रानियोंसे उत्पन्न हुये और भी कई पुत्र थे । यद्यपि राज्य वे तिलकवतीके पुत्रको देनेका संकल्प कर चुके थे, तो भी उनके मनमें यह खटका सदा बना रहता था कि कहीं इसके हाथमें राज्य जाकर धूलधानी न हो जाय ! जो हो, पर वे अपनी प्रतिज्ञाके न तोड़नेको लाचार थे । एक दिन उन्होंने एक अच्छे विद्वान् ज्योतिषीको बुलाकर उससे पूछा—पंडितजी, अपने निमित्तज्ञानको लगाकर मुझे आप यह समझाइए कि मेरे इन पुत्रोंमें राज्यका मालिक कौन होगा ? ज्योतिषीजी बहुत कुछ सोच-विचारके बाद राजासे बोले—सुनिये महाराज, मैं आपको इसका खुलासा कहता हूँ । आपके सब पुत्र खीरका भोजन करनेको एक जगह बैठाये जाये और उस समय उनपर कुत्तोंका एक झुंड छोड़ा जाय । तब उन सबमें जो निडर होकर वहीं रखे हुए सिंहासन पर बैठ नगारा बजाता जाय और भोजन भी करता जाय और दूसरे कुत्तोको भी डालकर खिलाता जाय, उसमें राजा होनेकी योग्यता है । मतलब यह कि अपनी बुद्धिमानीसे कुत्तोंके स्पर्शसे अछूता रहकर आप भोजन कर ले ।

दूसरा निमित्त यह होगा कि आग लगने पर जो सिहासन, छत्र, चॅवर आदि राज्यचिन्होको निकाल सके, वह राजा हो सकेगा । इत्यादि और कई बातें है, पर उनके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं ।

कुछ दिन बीतने पर उपश्रेणिकने ज्योतिषीजीके बताये निमित्तकी जॉच करनेका उद्योग किया । उन्होंनें सिहासनके पास ही एक नगारा रखवाकर वहीं अपने सब पुत्रोंको खीर खानेको बैठाया । वे जीमने लगे कि दूसरी ओरसे कोई पॉच सौ कुत्तोंका झुण्ड दौड़कर उन पर लपका । उन कुत्तोंको देखकर राजकुमारोंके तो होश गायब हो गये । वे सब चीख मारकर भाग खड़े हुए । पर हॉ एक श्रेणिक जो इन सबसे वीर और बुद्धिमान था, उन कुत्तोंसे डरा नहीं और बड़ी फुरतीसे उठकर उसने खीर परोसी हुई बहुत-सी पत्तलोंको एक ऊँची जगह रख कर आप ही रखे हुए सिहासन पर बैठ गया और आनन्दसे खीर खाने लगा । साथमें वह उन कुत्तोंको भी थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक एक पत्तल उठा-उठा डालता गया और नगारा बजाता गया, जिससे कि कुत्ते उपद्रव न करें ।

इसके कुछ दिनो बाद उपश्रेणिकने दूसरे निमित्तकी भी जॉच की । अबकी बार उन्होने कहीं कुछ थोड़ी-सी आग लगवा लोगो द्वारा शोरोगुल करवा दिया कि राजमहलमें आग लग गई । श्रेणिकने जैसे ही आग लगनेकी बात सुनी वह दौडा गया और झटपट राजमहलसे सिहासन, चॅवर आदि राज्यचिन्होंको निकाल बाहर हो गया । यही श्रेणिक आगे तीर्थकर होगा ।

श्रेणिककी वीरता और बुद्धिमानी देखकर उपश्रेणिकको निश्चय हो गया कि राजा यही होगा इसीके यह योग्य भी है । श्रेणिक के राजा होनेकी बात तब तक कोई न जान पाये जब तक वह अपना अधिकार स्वयं अपनी भुजाओं द्वारा प्राप्त न कर ले । इसके लिए उन्हे उसके रक्षाकी चिन्ता हुई । कारण उपश्रेणिक राज्यका अधिकारी तिलकवतीके पुत्र चिलातको बना चुके थे और इस हालमे किसी दुश्मनको या चिलातके पक्षपातियोंको यह पता लग जाता कि इस राज्यका राजा तो श्रेणिक ही होगा, तब यह असम्भव नहीं था कि वे उसे राजा होने देनेके पहले ही मार डालते । इसलिये उपश्रेणिका यह चिन्ता करना वाजिब था, समयोचित और दूरदर्शिताका था । इस लिये उन्हे

एक अच्छी युक्ति सूझ गई और बहुत जल्दी उन्होंने उसे कार्यमे भी परिणित कर दिया। उन्होंने क्षेणिकके सिर पर यह अपराध मढ़ा कि उसने कुत्तोका झूँठा खाया, इसलिये वह भ्रष्ट है। अब वह न तो राजघरानेमें ही रहने योग्य रहा और न देश में ही। इसलिये मैं उसे आज्ञा देता हूँ कि वह बहुत जल्दी राजगृहसे बाहर हो जाये। सच है पुण्यवानोंकी सभी रक्षा करते हैं।

श्रेणिक अपने पिताकी आज्ञा पाते ही राजगृहसे उसी समय निकल गया। वह फिर पलभरके लिए भी वहॉ न ठहरा। वहॉसे चलकर वह द्राविड़ देशकी प्रधान नगरी काञ्चोंमे पहुँचा। इसने अपनी बुद्धिमानीसे वहॉ कोई ऐसा वसीला लगा लिया जिससे इसके दिन बड़े सुखसे कटने लगे।

इधर उपश्रेणिक कुछ दिनों तक तो और राजकाज चलाते रहे। इसक बाद कोई ऐसा कारण उन्हे देख पड़ा जिससे संसार और विषयभोगोंसे वे बहुत उदासीन हो गये। अब उन्हे संसारका वास एक बहुत ही पेचीला जाल जान पड़ने लगा। उन्होने तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चिलातपुत्रको राजा बनाकर सब जीवोंका कल्याण करनेवाला मुनिपद ग्रहण कर लिया।

चिलात-पुत्र राजा हो गया सही, पर उसका जाति-स्वभाव न गया। और ठीक भी हे कौएको मोरके पंख भले ही लगा दिये जायॅ, पर वह मोर न बनकर रहेगा कौआका कौआ ही। यही दशा चिलातपुत्रकी हुई। वह राजा बना भी दिया गया तो क्या हुआ, उसमे राजाके तो कुछ गुण नहीं थे, तब वह राजा होकर भी क्या बड़ा कहला सका ? नहीं। अपने जाति-स्वभावके अनुसार प्रजाको कष्ट देना, उस पर जबरन जोर-जुल्म करना उसने शुरू किया। यह एक साधारण बात है कि अन्यायी का कोई साथ नहीं देता और यही कारण हुआ कि मगधकी प्रजाकी श्रद्धा उस परसे बिलकुल ही उठ गई। सारी प्रजा उससे हृदयसे नफरत करने लगी। प्रजाका पालक होकर जो राजा उसी पर अन्याय करे तब इससे बढ़कर और दुःखकी बात क्या हो सकती है ?

परन्तु इसके साथ ही यह भी बात है कि प्रकृति अन्यायको नहीं सहती। अन्यायीको अपने अन्यायका फल तुरन्त मिलता है। चिलातपुत्रके अन्यायकी डुगडुगी चारो ओर पिट गई। श्रेणिकको जब यह बात सुन पड़ी तब उससे

चिलातपुत्रका प्रजा पर जुल्म करना न सहा गया । वह उसी समय मगधकी ओर रवाना हुआ । जैसे ही प्रजाको श्रेणिकके राजगृह आनेकी खबर लगी उसने उसका एकमत होकर साथ दिया । प्रजाकी इस सहायतासे श्रेणिकने चिलातको राज्यसे बाहर निकाल आप मगधका सम्राट बना । सच है, राजाहोनेके योग्य वही पुरुष है जो प्रजाका पालन करनेवाला हो । जिसमे यह योग्यता नहीं वह राजा नहीं, किन्तु इस लोकमें तथा परलोकमें अपनी कीर्त्तिका नाश करनेवाला है ।

चिलातपुत्र मगधसे भागकर एक वनीमे जाकर बसा । वहाँ उसने एक छोटा-मोटा किला बनवा लिया और आसपासके छोटे-छोटे गॉवोसे जबरदस्ती कर वसूल कर आप उनका मालिक बन बैठा । इसका भर्तृमित्र नामका एक मित्र था । भर्तृमित्रके मामा रुद्रदत्तके एक लड़की थी । सो भर्तृमित्रने अपने मामासे प्रार्थना की—वह अपनी लड़कीका ब्याह चिलातपुत्रके साथ कर दे । उसकी बात पर कुछ ध्यान न देकर रुद्रदत्त चिलातपुत्रको लड़की देनेसे साफ मुकर गया । चिलातपुत्रसे अपना यह अपमान न सहा गया । वह छुपा हुआ राजगृहमे पहुँचा और विवाहस्नान करती हुई सुभद्राको उठा चलता बना । जैसे ही यह बात श्रेणिकके कानों मे पहुँची वह सेना लेकर उसके पीछे दौड़ा । चिलातपुत्रने जब देखा कि अब श्रेणिकके हाथसे बचना कठिन है, तब उस दुष्ट निर्दयीने बेचारी सुभद्राको तो जानसे मार डाला और आप जान लेकर भागा । वह वैभारपर्वत परसे जा रहा था कि उसे वहाँ एक मुनियोंका सघ देख पड़ा । चिलातपुत्र दौड़ा हुआ संघाचार्य श्री मुनिदत्त मुनिराजके पास पहुँचा और उन्हें हाथ जोड़ सिर नवा उसने प्रार्थना की कि प्रभो, मुझे तप दीजिए, जिससे मैं अपना हित कर सकूँ । आचार्यने तब उससे कहा—प्रिय, तूने बड़ा अच्छा सोचा जो तू तप लेना चाहता है । तेरी आयु अब सिर्फ आठ दिनकी रह गई है । ऐसे समय जिनदीक्षा लेकर तुझे अपना हित करना उचित ही है । मुनिराजसे अपनी जिन्दगी इतनी थोडी सुन उनसे उसी समय तप ले लिया जो ससार—समुद्रसे पार करनेवाला है । चिलातपुत्र तप लेनेके साथ ही प्रायोपगमन सन्यास ले धीरतासे आत्मभावना भाने लगा । उधर उसके पकड़नेको पीछे

आनेवाले श्रेणिकने वैभारपर्वत पर आकर उसे इस अवस्थामें जब देखा तब उसे चिलातपुत्रकी इस धीरता पर बड़ा चकित होना पड़ा । श्रेणिकने तब उसके इस साहसकी बड़ी तारीफ की । इसे बाद वह उसे नमस्कार कर राजगृह लौट आया। चिलातपुत्रने जिस सुभद्राको मार डाला था, वह मरकर व्यन्तर देवी हुई । उसे जान पड़ा कि मैं चिलातपुत्र द्वारा बड़ी निर्दयतासे मारी गई हूँ । मुझे भी तब अपने बैरका बदला लेना ही चाहिए । यह सोचकर वह चीलका रूप ले चिलात मुनिके सिर पर आकर बैठ गई । उसने मुनिको कष्ट देना शुरू किया । पहले उसने चोंचसे उनकी दोनों ऑखे निकाल लीं और बाद मधुमक्खी बनकर वह उन्हें काटने लगी । आठ दिनतक उन्हें उसने बेहद कष्ट पहुँचाया । चिलातमुनिने विचलित न हो इस कष्टको बड़े शान्तिसे सहा । अन्त में समाधिसे मरकर उसने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की ।

जिस वीरोके वीर और गुणों की खान चिलात मुनिने ऐसा दु:सह उपसर्ग सहकर भी अपना धैर्य न छोड़ा और जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंका, जो कि देवों द्वारा भी पूज्य हैं, खूब मन लगाकर ध्यान करते रहे और अन्तमे जिन्होने अपने पुण्यबलसे सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की वे मुझे भी मंगल दें ।

☆ करुणा यानि हृदय का जागरण, प्रेम का जागरण, बदलीयों का पानी से भर जाना और भूमि पर बरस पड़ना तृषितो की प्यास बुझाना ।

☆ किसी एक विचारक ने कहा है मुझे किसी पीड़ित मनुष्य से यह पुछने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि वह अपने में क्या अनुभव कर रहा है और उस की वेदना को अपने भीतर महसूस करने लगता है ।

७१. धन्य मुनिकी कथा

सर्वोच्च धर्मका उपदेश करनेवाले श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धन्य नामके मुनिकी कथा लिखी जाती है, जो पढ़ने या सुननेसे सुख प्रदान करनेवाली है ।

जम्बूद्वीप पूर्वकी ओर बसे हुए विदेह क्षेत्रकी प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुरका राजा अशोक बड़ा ही लोभी राजा हो चुका है । जब फसल काटकर खेतों पर खले किए जाते थे तब वह बेचारे बैलोका मुँह बँधवा दिया करता और रसोई घरमें रसोई बनानेवाली स्त्रियोंके स्तन बँधवा कर उनके बच्चेको दूध न पीने देता था । सच है, लोभी मनुष्य कौनसा पाप नहीं करते ?

एक दिन अशोकके मुँहमें कोई ऐसी बीमारी हो गई जिससे उसका सारा मुँह आ गया । सिरमे भी हजारों फोड़े-फुन्सी हो गए । उससे उसे बड़ा कष्ट होने लगा । उसने उस रोग की औषधि बनवाई । वह उसे पीनेको ही था कि इतनेमें अपने चरणोंसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए एक मुनि आहारके लिए इसी ओर आ निकले । भाग्यसे ये मुनि भी .राजाकी तरह इसी महारोगसे पीड़ित हो रहे थे । इन तपस्वी मुनिकी यह कष्टमय दशा देखकर राजाने सोचा कि जिस रोग से मैं कष्ट पा रहा हूँ, जान पड़ता है उसी रोगसे ये तपोनिधि भी दुःखी हैं । यह सोचकर या दयासे प्रेरित होकर राजा जिस दवाको स्वय पीनेवाला था, उसे उसने मुनिराजको पिला दिया और वैसा ही उन्हे पथ्य भी दिया । दवाने बहुत लाभ किया । बारह वर्षका यह मुनि का महारोग थोड़े ही समयमें मिट गया, मुनि भले चंगे हो गए ।

अशोक जब मरा तो इस पुण्यके फलसे वह अमलकण्ठपुरके राजा निष्ठसेनकी रानी नन्दमतीके धन्य नामका सुन्दर गुणवान् पुत्र हुआ । धन्यको एक दिन श्रीनेमिनाथ भगवान्‌के पास धर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला । वह भगवान्‌के द्वारा अपनी उमर बहुत थोडी जानकर उसी समय सब माया ममता छोड़ मुनि बन गया । एक दिन वह शहरमे भिक्षाके लिए गया, पर पूर्वजन्म के पाप कर्मके उदयसे उसे भिक्षा न मिली । वह वैसे ही तपोवनमें लौट आया । यहाँसे विहार कर वह तपस्या करता तथा धर्मोपदेश देता हुआ

सौरीपुर आकर यमुनाके किनारे आतापन योग द्वारा ध्यान करने लगा । इसी ओर यहाँका राजा शिकारके लिए आया हुआ था, पर आज उसे शिकार न मिला । वह वापिस अपने महलकी ओर आ रहा था कि इसी समय इसकी नजर मुनि पर पड़ी । इसने समझ लिया कि बस, शिकार न मिलनेका कारण इस नगेका दीख पड़ना है, इसीने यह अशकुन किया है । यह धारण कर इस पापी राजाने मुनिको बाणोंसे खूब वेध दिया । मुनिने तब शुक्लध्यानकी शक्तिसे कर्मोंका नाश कर सिद्ध गति प्राप्त की । सच है, महापुरुषोंकी धीरता बड़ी ही चकित करनेवाली होती है । जिससे महान् कष्टके समयमें भी मोक्ष प्राप्ति हो जाता है ।

वे धन्य मुनि रोग, शोक, चिन्ता आदि दोषोंको नष्ट कर मुझे शाश्वत, कभी नाश न होनेवाला सुख दे, जो भव्यजनोंका भय मिटानेवाले हैं, संसार समुद्रसे पार करनेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं, मोक्ष-महिलाके स्वामी हैं, ज्ञानका समुद्र हैं और चारित्र-चूड़ामणि हैं ।

- ☆ तुम तपस्वी लोगों की महिमा को नहीं नाप सकते । यह काम उतना ही कठिन हैं, जितना कि दिवंगत आत्माओं की गणना करना ।
- ☆ त्याग की चट्टान पर खड़े हुए महात्माओं के क्रोध को एक क्षण भी सह लेना असम्भव है ।
- ☆ जो पुरुष अपनी सुदृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा पाँचों इन्द्रियों को इस तरह वश में रखता है जिस तरह हाथी अंकुश द्वारा वशीभूत किया जाता है । वास्तव में, वही स्वर्ग के खेतों में बोने योग्य बीज है ।

७२. पाँचसौ मुनियोंकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर पॉचसौ मुनियों पर एक साथ बीतनेवाली घटनाका हाल लिखा जाता है, जो कि कल्याणका कारण है ।

भरतके दक्षिणकी ओर बसे हुए कुम्भकारकट नामके पुराने शहरके राजाका नाम दण्डक औरउनकी रानीका नाम सुव्रता था । सुव्रता रूपवती और विदुषी थी । राज़मंत्रीका नाम बालक था । यह पापी जैनधर्मसे बड़ा द्वेष रखा करता था । एक दिन इस शहरमें पॉचसौ मुनियोंका संघ आया । बालक मंत्रीको अपनी पण्डिताई पर बड़ा अभिमान था । सो वह शास्त्रार्थ करनेको मुनिसंघके आचार्यके पास जा रहा था । रास्तेमें इसे एक खण्डक नामके मुनि मिल गयें । सो उन्हींसे आप झगड़ा करनेको बैठ गया और लगा अन्टसन्ट बकने । तब मुनिने इसकी युक्तियोंका अच्छी तरह खण्डन कर स्याद्वाद-सिद्धान्तका इस शैलीसे प्रपिपादन किया कि बालक मंत्रीका मुँह बन्द हो गया, उनके सामने फिर उससे कुछ बोलते न बना । झख मारकर तब उसे लज्जित हो घर लौट आना पड़ा । इस अपमानकी आग उसके हृदयमें खूब धधकी । उसने तब इसका बदला चुकनेकी ठानी । इसके लिए उसने यह युक्तिकी कि एक भॉडको छलसे मुनि बनाकर सुव्रता रानीके महलमे भेजा । यह भॉड रानीके पास जाकर उससे भला-बुरा हॅसी-मजाक करने लगा । इधर उसने यह सब लीला राजाको भी बतला दी और कहा—महाराज, आप इन लोगोंकी इतनी भक्ति करते हैं, सदा इनकी सेवामें लगे रहते हैं, तो क्या यह सब इसी दिनके लिए है ? जरा ऑखें खोलकर देखिए कि सामने क्या हो रहा है ? उस भॉडकी लीला देखकर मूर्खराज दण्डकके क्रोधका कुछ पार न रहा । क्रोधसे अन्धे होकर उसने उसी समय हुक्म दिया कि जितने मुनि इस समय मेरे शहरमे मौजूद हों, उन सबको घानीमें पेल दी । पापी मंत्री तो इसी पर मुँह धोये बैठा था । सो राजाज्ञा होते ही उसने पलभर का भी विलम्ब करना उचित न समझ मुनियोंके पेले जानेकी सब व्यवस्था फौरन जुटा दी । देखते-देखते वे सब मुनि घानीमे पेले दिये गये । बदला लेकर बालक मत्रीकी आत्मा सन्तुष्ट हुई । सच है, जो पापी होते हैं, जिन्हे दुर्गतियोमे दुःख भोगना है, वे मिथ्यात्वी लोग भयंकर

पाप करनेमे जरा भी नहीं हिचकते । चाहे फिर उस पापके फलसे उन्हें जन्म-जन्ममें भी क्यों न कष्ट सहना पड़े । जो हो, मुनिसंघ पर इस समय बड़ा ही घोर और दुःसह उपद्रव हुआ । पर वे साहसी धन्य हैं, जिन्होंने जबानसे चूँ तक न निकाल कर सब कुछ बड़े साहसके साथ सह लिया । जीवनकी इस अन्तिम कसौटी पर वे खूब तेजस्वी उतरे । उन मुनियोंने शुक्लध्यानरूपी अपनी महान् आत्मशक्तिसे कर्मोंका, जो कि आत्माके पक्के दुश्मन हैं, नाश कर मोक्ष लाभ किया ।

दिपते हुए सुमेरुके समान स्थिर, कर्मरूपी मैलको, जो कि आत्माको मलिन करनेवाला है, नाश करनेवाले और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजो द्वारा पूजा किये गये जिन मुनिराजोंने संसारका नाश कर मोक्ष लाभ किया, वे मेरा भी संसार-भ्रमण मिटावें ।

☆ शुद्धान्तःकरण वाला मनुष्य कुवेर की सम्पत्ति मिले तो भी किसी को त्रास देने वाला नहीं बनेगा ।

☆ द्वेषबुद्धि से प्रेरित होकर यदि कोई दूसरा आदमी उसे कष्ट देवे तो भी पवित्र दृश्य उससे उसका बदला नहीं लेता । दुःख देने वाले व्यक्ति को शिक्षा अर्थात् दण्ड देने का यही एक उत्तम उपाय है कि तुम उसके बदले में भलाई करो, जिससे वह मन ही मन लज्जा के मारे मर जाये । यही उसके लिए गहरी मार है ।

७३. चाणक्यकी कथा

देवो द्वारा पूजा किये जानेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर चाणक्यकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र या पटनाके राजा नन्दके तीन मंत्री थे । कावी, सुबन्धु और शकटाल ये उनके नाम थे । यहीं एक कपिल नामका पुरोहित रहता था । कपिलकी स्त्रीका नाम देविला था । चाणक्य इन्हींका पुत्र था । यह बड़ा बुद्धिमान् और वेदोका ज्ञाता था ।

एक बार आस-पास छोटे-मोटे राजोंने मिलकर पटना पर चढ़ाई कर दी । कावी मंत्रीने इस चढ़ाईका हाल नन्दसे कहा । नन्दने घबरा कर मंत्रीसे कह दिया कि जाओ जैसे बने उन अभिमानियोको समझा-बुझाकर वापिस लौटा दो । धन देना पड़े तो वह भी दो । राजाज्ञा पा मत्रीने उन्हे धन वगैरह देकर लौटा दिया । सच है, बिना मंत्रीके राज्य स्थिर हो ही नहीं सकता ।

एक दिन नन्दको स्वयं कुछ धनकी जरूरत पड़ी । उसने खजांचीसे खजानेमें कितना धन मौजूद है, इसके लिए पूछा । खंजाचीने कहा—महाराज, धन तो सब मंत्री महाशयने दुश्मनोंको दे डाला । खजानेमें तो अब नाम मात्रके लिये थोड़ा-बहुत धन बचा होगा । यद्यपि दुश्मनोको धन स्वयं राजाने दिलवाया था और इसलिए गलती उसी की थी, पर उस समय अपनी यह भूल उसे न दीख पडी और दूसरेके उकसानेमें आकर उसने बेचारे निर्दोष मत्रीको और साथमें उसके सारे कुटुम्बको एक अन्धे कुएमें डलवा दिया । मंत्री तथा उसका कुटुम्ब वहॉ बड़ा कष्ट पाने लगा । इनके खाने-पीनेके लिए बहुत ही थोड़ा भोजन और थोड़ा-सा पानी दिया जाता था । यह इतना थोड़ा होता था कि एक मनुष्य भी उससे अच्छी तरह पेट न भर सकता था । सच है, राजा किसीका मित्र नहीं होता । राजाके इस अन्यायने कावीके मनमे प्रतिहिंसाकी आग धधका दी । इस आगने बड़ा भयंकर रूप धारण किया । कावीने तब अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—जो भोजन इस समय हमें मिलता है उसे यदि हम इसी तरह थोड़ा थोड़ा सब मिलकर खाया करेंगे तब तो हम धीरे-धीरे सब ही मर मिटेंगे और ऐसी दशामें कोई राजासे उसके इस अन्यायका बदला

लेनेवाला न रहेगा । पर मुझे यह सह्य नहीं । इसलिये मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई कुटुम्बका मनुष्य राजासे बदला ले । तब ही मुझे शान्ति मिलेगी । इसलिये इस भोजनको वही मनुष्य अपनेमेंसे खाये जो बदला लेनेकी हिम्मत रखता हो । तब उसके कुटम्बियोंने कहा—इसका बदला लेनेमे आप ही समर्थ देख पड़ते हैं । इसलिये हम खुशीके साथ कहते हैं कि इस भारको आप ही अपने सर पर लें । उस दिनसे उसका सारा कुटुम्ब भूखा रहने लगा और धीरे-धीरे सबका सब मर मिटा । इधर कावी अपने रहने योग्य एक छोटा-सा गड्ढा उस कुएमें बनाकर दिन काटने लगा । ऐसे रहते उसे कोई तीन वर्ष बीत गये ।

जब यह हालत आस-पासके राजोंके पास पहुँचा तब उन्होंने इस समय राज्यको अव्यस्थित देख फिर चढ़ाई कर दी । अब तो नन्दके कुछ होश ढीले पड़े, अकल ठिकाने आई । अब उसे न सूझ पड़ा कि वह क्या करे ? तब उसे अपने मंत्री कावीकी याद आई । उसने नौकरोंको आज्ञा दे कुएसे मंत्रीको निकलवाया और पीछा मंत्रीकी जगह नियत किया । मंत्री भी इस समय तो उन राजोंसे सुलह कर नन्दकी रक्षा कर ली । पर अब उसे अपना बैर निकालनेकी चिन्ता हुई । वह किसी ऐसे मनुष्यको खोज करने लगा, जिससे उसे सहायता मिल सके । एक दिन कावी किसी वनमें हवाखोरीके लिए गया हुआ था । इसने वहॉ एक मनुष्यको देखा कि जो कॉटोंके समान चुभनेवाली दूबाको जड़-मूलसे उखाड़-उखाड़ कर फैंक रहा था । उसे एक निकम्मा काम करते देखकर कावीने चकित होकर पूछा—ब्राह्मदेव, इसे खोदनेसे तुम्हारा क्या मतलब है ? क्यों बे-फायदा इतनी तकलीफ उठा रहे हो ? इस मनुष्य का नाम चाणक्य था । इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है चाणक्यने तब कहा—वाह महाशय ! इसे आप बे-फायदा बतलाते हैं । आप जानते हैं कि इसका क्या अपराध है ? सुनिये ! इसने मेरा पॉव छेद डाला और मुझे महा कष्ट दिया, तब मैं ही क्यो इसे छोड़ने चला ? में तो इसका जड़मूलसे नाश कर ही उठूँगा । यही मेरा संकल्प है । तब कावीने उसके हृदयकी थाह लेनेके लिए कि इसकी प्रतिहिंसाकी आग कहॉ जाकर ठण्डी पड़ती है, कहा—तो महाशय ! अब इस बेचारीको क्षमा कीजिए, बहुत हो चुका । उत्तरमें चाणक्यने कहा—नहीं,

तब तक इसके खोदने से लाभ ही क्या जब तक कि इसकी जड़े बाकी रह जायँ। उस शत्रुके मारनेसे क्या लाभ जब कि उसका सिर न काट लिया जाये ? चाणक्यकी यह ओजस्विता देखकर कावीको बहुत सतोष हुआ। उसे निश्चय हो गया कि इसके द्वारा नन्दकुलका जड़-मूल से नाश हो सकेगा। इससे अपनेको बहुत सहायता मिलेगी। अब सूर्य और राहुका योग मिला देना अपना काम है। किसी तरह नन्दके सम्बन्धमे इसका मनमुटाव करा देना ही अपने कार्यका श्रीगणेश हो जायगा। कावी मंत्री इस तरहका विचार कर ही रहा था कि प्यासेकी जलकी आशा होनेकी तरह एक योग मिल ही गया। इसी समय चाणक्यकी स्त्री यशस्वतीने आकर चाणक्यसे कहा—सुनती हूँ, राजा नन्द ब्राह्मणोको गौ दान किया करते हैं। तब आप भी जाकर उनसे गौ लाइए न ? चाणक्यने कहा—अच्छी बात है, मैं अपने महाराजके पास जाकर जरूर गौ लाऊँगा। यशस्वतीके मुँहसे यह सुनकर कि नन्द गौओका दान किया करता है, कावी मंत्री खुश होता हुआ राजदरबारमे गया और राजासे बोला—महाराज ! क्या आज आप गौएं दान करेगे ? ब्राह्मणोको इकट्ठा करनेकी योजना की जाय ? महाराज, आपको तो यह पुण्यकार्य करना ही चाहिए। धनका ऐसी जगह सदुपयोग होता है। मंत्रीने अपना चक्र चलाया और वह राजा पर चल भी गया। सच है, जिनके मनमें कुछ और होता है, जो वचनोसे कुछ और बोलते हैं तथा शरीर जिनका मायासे सदा लिपटा रहता है, उन दुष्टोंकी दुष्टताका पता किसीको नहीं लग पाता। कावीकी सत्यसम्मति सुनकर नन्दने कहा—अच्छा ब्राह्मणोको आप बुलवाइए, मैं उन्हें गौएं दान करूँगा। मंत्री जैसा चाहता था, वही हो गया। वह झटपट जाकर चाणक्यको ले आया और उसे सबसे आगे रखे आसन पर बैठा दिया। लोभी चाणक्यने सब आसन अपने आस-पास रख लिये। उसे इस प्रकार लोभी देखकर कावीने कपटसे कहा—पुरोहित महाराज ! राजा साहब कहते हैं और बहुतसे ब्राह्मण विद्वान आए हैं, आप उनके लिये आसन दीजिये। चाणक्यने तब एक आसन निकाल कर दे दिया। इसी तरह धीरे-धीरे मंत्रीने उससे सब आसन रखवाकर अन्तमे कहा—महाराज, क्षमा कीजिए ! मेरा कोई अपराध नहीं हैं। मैं तो पराया नौकर हूँ। इसलिये जैसा मालिक कहते हैं उनका हुक्म बजाता

हूँ पर जान पड़ता है कि राजा बड़ा अविचारी है जो आप सरीखे महा ब्राह्मणका अपमान करना चाहता है । महाराज, राजाका कहना है कि आप जिस अग्रासन पर बैठे हैं उसे छोड़कर चले जाइये । यह आसन दूसरे विद्वान के लिये पहले हीसे दिया जा चुका है । यह कहकर ही कावीने गर्दन पकड़ चाणक्यको निकाल बाहर कर दिया । चाणक्य एक तो वैसे ही महाक्रोधी और अब उसका ऐसा अपमान किया गया और वह भी भरी राजसभामें ! तबतो अब चाणक्य के क्रोधका पूछना ही क्या ? वह नन्दवंशको जड़मूलसे उखाड़ फँकनेका दृढ़ सकल्प कर जाता-जाता बोला कि जिसे नन्दका राज्य चाहना हो, वह मेरे पीछे-पीछे चला आवे । यह कहकर वह चलता बना । चाणक्यकी इस प्रतिज्ञाके साथ ही कोई एक मनुष्य उसके पीछे हो गया । चाणक्य उसे लेकर उन आस-पासके राजोंसे मिल गया और नन्द को मरवा कर आप उस राज्यका मालिक बन बैठा । सच है, मंत्रीके क्रोधसे कितने राजोंका नाम इस पृथिवी से उठ गया होगा ।

इसके बाद चाणक्यने बहुत दिनोंतक राज्य किया । एक दिन उसे श्रीमहीधर मुनि द्वारा जैनधर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला । उस उपदेशका उसके चित्त पर खूब असर पडा । वह उसी समय सब राज-काज छोड़कर मुनि बन गया । चाणक्य बुद्धिमान् और बड़ा तेजस्वी था । इसलिए थोडे ही दिनों बाद उसे आचार्य पद मिल गया । वहाँसे कोई पांचसौ शिष्योंको साथ लिये उसने बिहार किया । रास्ते में पड़नेवाले देशो, नगरों और गाँवोंमें धर्मोपदेश करता और अनेक भव्य-जनोंको हितमार्ग में लगाता वह दक्षिण की ओर बसे हुए बनवास देशके क्रौंचपुरमे आया । इस पुरके पश्चिम किनारे कोई अच्छी जगह देख इसने संघ ठहरा दिया । चाणक्य को यहाँ यह मालूम हो गया कि उसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है इसलिये उसने वहीं प्रायोपगमन संन्यास ले लिया ।

नन्दका दूसरा मत्री सुबन्धु था । चाणक्यने जब नन्दको मरवा डाला तब उसके क्रोधका पार नहीं रहा । प्रतिहिंसाकी आग उसके हृदयमे दिन-रात जलने लगी । पर उस समय उसके पास कोई साधन बदला लेनेका न था । इसलिये वह लाचार चुप रहा । नन्दकी मृत्युके बाद वह इसी क्रौंचपुरमे आकर

यहाँके राजा सुमित्रका मंत्री हो गया । राजाने जब मुनिसंघके आनेका समाचार सुना तो वह उसकी वन्दना पूजाके लिए आया, बड़ी भक्तिसे उसने सब मुनियोंकी पूजा कर उनसे धर्मोपदेश सुना और बाद उनकी स्तुति कर वह अपने महलमे लौट आया ।

मिथ्यात्वी सुबन्धुको चाणक्यसे बदला लेनेका अब अच्छा मौका मिल गया । उसने उस मुनिसंघके चारो ओर खूब घास इकट्ठा करवा कर उसमें आग लगवा दी । मुनि संघ पर हृदयको हिला देनेवाला बड़ा ही भयंकर दु सह उपसर्ग हुआ सही, पर उसने उसे बड़ी सहन-शीलता के साथ सह लिया और अन्तमें अपनी शुक्लध्यानरूपी आत्मशक्ति से कर्मोका नाश कर सिद्धगति लाभ की । जहाँ राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, दु.ख, चिन्ता आदि दोष नहीं हैं और सारा संसार जिसे सबसे श्रेष्ठ समझता है ।

चाणक्य आदि निर्मल चारित्रके धारक ये सब मुनि अब सिद्धगतिमें ही सदा रहेगे । ज्ञानके समुद्र ये मुनिराज मुझे भी सिद्धगतिका सुख दे ।

☆ धन्य है वह पुरुष जो परिश्रम से कभी पीछे नहीं हटता भाग्य-लक्ष्मी उसके घर की राह पूछती हुई आती है ।

☆ अपार उत्साह ही मानव की शक्ति है । जिनमें उत्साह नहीं वे तो निरे पशु हैं । उनका मानव शरीर तो एक मात्र शारीरिक विशेषता को ही प्रकट करने वाला है ।

☆ भाग्य उल्टा भी हो तो उद्योग श्रम का फल दिये बिना नहीं रहता ।

७४. वृषभसेनकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और ज्ञानके समुद्र साधुओंको नमस्कार कर वृषभसेनकी उत्तम कथा लिखी जाती है ।

दक्षिण दिशाकी ओर बसे हुए कुण्डल नगरके राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा ओर सम्यग्दृष्टि थे । और रिष्टामातय नामका इनका मंत्री इनसे बिलकुल उल्टा-मिथ्यात्वी और जैनधर्मका बड़ा द्वेषी था । सो ठीक ही है, चन्दनके वृक्षोके आस-पास सर्प रहा ही करते हैं ।

एक दिन श्रीवृषभसेन मुनि अपने संघको साथ लिये कुण्डल नगरकी ओर आये । वैश्रवण उनके आनेके समाचार सुन वड़ी विभूतिके साथ भव्यजनोंको संग लिये उनकी वन्दनाको गया । भक्तिसे उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की वन्दना की और पवित्र द्रव्योंसे पूजा की तथा उनसे जैनधर्मका उपदेश सुना । उपदेश सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ । सच है, इस सर्वोच्च और सव सुखोंके देनेवाले जैनधर्मका उपदेश सुनकर कौन सद्गति-का पात्र सुखी न होगा ?

राजमंत्री भी मुनिसंघके पास आया । पर वह इसलिए नहीं कि वह उनकी पूजा-स्तुति करे; किन्तु उनसे वाद-शास्त्रार्थ कर उनका मानभंग करने, लोगोकी श्रद्धा उन परसे उठा देने । पर यह उसकी भूल थी । कारण जो दूसरोंके लिए कुआ खोदते हैं उसमें पहले उन्हें ही गिरना पड़ता है । यही हुआ भी । मंत्रीने मुनियोंका अपमान करनेकी गर्जसे उनसे शास्त्रार्थ किया, पर अपमानभी उसीका हुआ । मुनियोंके साथ उसे हार जाना पड़ा । इस अपमानकी उसके हृदय पर गहरी चोट लगी । इसका बदला चुकाना निश्चित कर वह शामको छुपा हुआ मुनिसंघके पास आया और जिस स्थानमें वह ठहरा था उसमे उस पापीने आग लगा दी । बड़े दुःखकीबात है कि दुर्जनोंका स्वभाव एक विलक्षण ही तरहका होता है । वे स्वयं तो पहले दूसरोके साथ छेड़-छाड़ करते हैं और जब उन्हें अपने कियेका फल मिलता है तब वे यह समझ कर, कि मेरा इसने बुरा किया, दूसरे निर्दोष सत्पुरुषों पर क्रोध करते हैं और फिर उनसे बदला लेनेके लिए उन्हें नाना प्रकारके कष्ट देते हैं ।

जो हो, मंत्रीने अपनी दुष्टतामें कोई कसर न की । मुनिसंघ पर उसने

बड़ा ही भयकर उपसर्ग किया । पर उन तत्वज्ञानी-वस्तु स्थितिको जानने वाले मुनियोने इस कष्टकी कुछ परवा न कर बडी सहन-शीलताके साथ सब कुछ सह लिया और अन्तमें अपने-अपने भावोकी पवित्रताके अनुसार उनमेसे कितने ही मोक्ष गये और कितने ही स्वर्गमें ।

दुष्ट पुरुष सत्पुरुषोको कितना ही कष्ट क्यो न पहुॅचावे उससे खराबी उन्हीं की हैं, उन्हे ही दुर्गतिमे दु·ख भोगना पडेगे । और सत्पुरुष तो ऐसे कष्टके समयमें भी अपनी प्रतिज्ञाओ पर दृढ़ रहकर अपना धर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन कर सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे । जैसा कि उक्त मुनिराजोने किया ।

वे मुनिराज आप लोगोको भी सुख दे, जिन्होने ध्यानरूपी पर्वतका आश्रय ले बड़ा दु·सह उपसर्ग जीता, अपने कर्त्तव्यसे सर्वश्रेष्ठ कहलानेका सम्मान लाभ किया और अन्तमे अपने उच्च भावोसे मोक्ष सुख प्राप्त कर देवो, विद्याधरो, चक्रवर्तियो आदि द्वारा पूजाको प्राप्त हुए और ससारमे सबसे पवित्र गिने जाने लगे ।

☆ सोने को जिस आग में पिघलाते हैं वह जितनी भी अधिक तेज होती है सोने का रंग उतना ही अधिक उज्ज्वल निकलता है । ठीक उसी तरह जितने ही बड़े कष्टों को सहता है उसके उतने ही अधिक आत्मिक भाव निर्मल होते हैं।

☆ यदि जगत में दीनों की संख्या अधिक है, तो इसका कारण यही है कि वे लोग जो तप करते है थोड़े है और जो तप नहीं करते है उनकी संख्या अधिक है ।

७५. शालिसिक्थ मच्छके भावोंकी कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक और स्वयंभू श्री आदिनाथ भगवान्को नमस्कार कर सत्पुरुषोको इस बातका ज्ञान हो कि केवल मनकी भावनासे ही मनमे विचार करनेसे ही कितना दोष या कर्मबन्ध होता है, इसकी एक कथा लिखी जाती है।

सबसे अन्तके स्वयंभूरमण समुद्रमें एक बड़ी भारी दीर्घकाय मच्छ है। वह लम्बाईमें एक हजार योजन, चौड़ाई में पॉच सौ योजन और ऊँचाईमें ढाईसौ योजनका है। (एक योजन चार या दो हजार कोसका होता है) यहीं एक और शालिसिक्थ नामका मच्छ इस बड़े मच्छके कानोंके पासरहता है। पर यह बहुत ही छोटा है और इस बड़े मच्छके कानोंका मैल खाया करता है। जब यह बड़ा मच्छ सैकड़ों छोटे-मोटे जल-जीवोंको खाकर और मुँह फाड़े छह मासकी गहरी नींदके खुर्राटेमे मग्न हो जाता उस समय कोई एक-एक दो-दो योजनके लम्बे-चौड़े कछुए, मछलियॉ, घड़ियाल, मगर आदि जलजन्तु, बड़े निर्भीक होकर इसके विकराल डाढोंवाले मुँहमें घुसते और बाहर निकलते रहते हैं। तब यह छोटा सिक्थमच्छ रोज-रोज सोचा करता है कि यह बड़ा मच्छ कितना मूर्ख है जो अपने मुखमें आसानीसे आये हुए जीवोको व्यर्थ ही जाने देता है ! यदि कहीं मुझे वह सामर्थ्य प्राप्त हुई होती तो मैं कभी एक भी जीवको न जाने देता। बड़े दु:खकी बात है कि पापी लोग अपने आप ही ऐसे बुरे भावो द्वारा महान् पापका बन्धकार दुर्गतियोमें जाते हैं और वहॉ अनेक कष्ट सहते हैं। सिक्थ-मच्छकी भी यही दशा हुई। वह इस प्रकार बुरे भावोंसे तीव्र कर्मोका बन्ध कर सातवे नरक गया। क्योंकि मनके भाव ही तो पुण्य या पापके कारण होते हैं। इसलिए सत्पुरुषोंको जैनशास्त्रोके अभ्यास या पढ़ने-पढ़ानेसे मनको सदा पवित्र बनाये रखना चाहिए, जिससे उसमे बुरे विचारोंका प्रवेश ही न हो पाये। और शास्त्रोंके अभ्यासके बिना अच्छे बुरेका ज्ञान नहीं हो पाता, इसलिए शास्त्राभ्यास पवित्रताका प्रधान कारण है।

---

७६. सुभौम चक्रवर्तीकी कथा

चारो प्रकारके देवो द्वारा जिनके चरण पूजे जाते है उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर आठवे चक्रवर्ती सुभौमकी कथा लिखी जाती है ।

सुभौम ईर्ष्यावान् शहरके राजा कार्त्तवीर्यकी रानी रेवतीके पुत्र थे । चक्रवर्तीका एक जयसेन नामका रसोइया था । एक दिन चक्रवर्ती जब भोजन करनेको बैठे तब रसोइयेने उन्हे गरम-गरम खीर परोस दी । उसके खानेसे चक्रवर्तीका मुँह जल गया । इससे उन्हे रसोइए पर बड़ा गुस्सा आया । गुस्सेसे उन्होने खीर रखे गरम बरतनको ही उसके सिरपर दे मारा । उससे उसका सारा सिर जल गया । इसकी घोर वेदनासे मरकर वह लवणसमुद्रमे व्यन्तर देव हुआ । कु-अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी बात जानकर चक्रवर्ती पर उसके गुस्सेका पार न रहा । प्रतिहिंसासे उसका जी बे-चैन हो उठा । तब वह एक तापसी बनकर अच्छे-अच्छे सुन्दर फलोको अपने हाथमे लिये चक्रवर्तीके पास पहुँचा । फलोको उसने चक्रवर्तीको भेट किया । चक्रवर्ती उन फलोको खाकर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होने उस तापससे कहा—महाराज, ये फल तो बडे ही मीठे हैं । आप इन्हें कहाँसे लाये ? और ये मिले तो कहाँ मिलेंगे ? तब उस व्यन्तरने धोखा देकर चक्रवर्तीसे कहा—समुद्रके बीचमे एक छोटा सा टापू है । वहीं मेरा घर है । आप मुझ गरीब पर कृपा कर मेरे घरको पवित्र करे तो मैं आपको बहुतसे ऐसे-ऐसे उत्तम और मीठे फल भेंट करूँगा । कारण वहाँ ऐसे फलोंके बहुत बगीचे हैं । चक्रवर्ती लोभमे फँसकर व्यन्तरके झाँसेमे आ गये और उसके साथ चल दिये । जब व्यन्तर इन्हे साथ लिये बीच समुद्र में पहुँचा तब अपने सच्चे स्वरूपमे आ उसने बड़े गुस्सेसे चक्रवर्तीको कहा—पापी, जानता है कि मैं तुझे यहाँ क्यो लाया हूँ ? यदि न जानता हो तो सुन—मैं तेरा जयसेन नामका रसोइया था, तब तूने मुझे निर्दयताके साथ जलाकर मार डाला था । अब उसीका बदला लेनेको मैं तुझे यहाँ लाया हूँ । बतला अब कहाँ जायगा ? जैसा किया उसका फल भोगने को तैयार हो जा । तुझसे पापियोकी ऐसी गति होनी ही चाहिए । पर सुन, अब भी एक उपाय है, जिससे तू बच सकता है । और वह यह कि यदि तू पानीमे पच नमस्कार मन्त्र लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटा दे तो तुझे मैं जीता छोड सकता हूँ । अपनी

जान बचाने के लिए कौन किस कामको नहीं कर डालता ? वह भला है या बुरा इसके विचार करनेकी तो उसे जरूरत ही नहीं रहती । उसे तब पड़ी रहती है अपनी जान की । यही दशा चक्रवर्ती महाशय की हुई । उन्होने तब नहीं सोच पाया कि इस अनर्थसे मेरी क्या दुर्दशा होगी ? उन्होंने उस व्यन्तरके कहे अनुसार झटपट जलमें मंत्र लिख कर पॉवसे उसे मिटा डाला । उनका मन्त्र मिटाना था कि व्यन्तरने उन्हें मारकर समुद्रमें फैंक दिया । इसका कारण यह हो सकता है कि मंत्रको पॉवसे मिटानेके पहले व्यन्तरकी हिम्मत चक्रवर्तीको मारनेकी इसलिए न पड़ी होगी कि जगत्पूज्य जिनेन्द्र भगवान्के भक्तको वह कैसे मारे, या यह भी सभव था कि उस समय कोई जिनशासनका भक्त अन्य देव उसे इस अन्यायसे रोककर चक्रवर्तीकी रक्षा कर लेता और अब मंत्रको पॉवोसे मिटा देनेसे चक्रवर्त्ती जिनधर्मका द्वेपी समझा गया और इसीलिए व्यन्तरने उसे मार डाला । मरकर इस पापके फलसे चक्रवर्ती सातवें नरक गया । उस मूर्खताको, उस लम्पटताको धिक्कार है जिससे चक्रवर्त्ती सारी पृथिवीका सम्राट् दुर्गतिमें गया । जिसका जिन भगवान्के धर्म पर विश्वास नहीं होता उसे चक्रवर्तीकी तरह कुगतिमें जाना पड़े तो इसमे आश्चर्य क्या ? वे पुरुष धन्य हैं और वे ही सबके आदर पात्र हैं, जिनके हृदयमें सुख देनेवाले जिन वचन रूप अमृतका सदा स्रोत बहता रहता है । इन्हीं वचनोंपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन जीवमात्रका हित करनेवाला है, संसार भय मिटाने वाला है, नाना प्रकारके सुखोंका देनेवाला है, और मोक्ष प्राप्तिका मुख्य कारण है । देव, विद्याधर आदि सभी वड़े-बड़े पुरुप सम्यग्दर्शनकी या उसके धारण करनेवाले की पूजा करते हैं । यह गुणोंका खजाना है । सम्यग्दृष्टिको कोई प्रकार की भय-बाधा नहीं होती । वह बड़ी सुख-शान्तिसे रहता है । इसलिए जो सच्चे सुखकी आशा रखते हैं उन्हें आठ अंग सहित इस पवित्र सम्यग्दर्शनका विश्वासके साथ पालन करना चाहिए ।

---

७७. शुभ राजाकी कथा

ससारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार कर शुभ नामके राजाकी कथा लिखी जाती है ।

मिथिला नगरके राजा शुभकी रानी मनोरमाके देवरति नामका एक पुत्र था । देवरति गुणवान और बुद्धिमान् था । किसी प्रकारका दोष या व्यसन उसे छू तक न गया था ।

एक दिन देवगुरु नामके अवधिज्ञानी मुनिराज अपने सघको साथ लिये मिथिला आये । शुभ राजा तब बहुतसे भव्यजनोके साथ मुनि-पूजाके लिए गया । मुनिसघकी सेवा-पूजाकर उसने धर्मोपदेश सुना । अन्तमे उसने अपने भविष्यके सम्बन्धका मुनिराज से प्रश्न किया—योगिराज, कृपाकर बतलाइए कि आगे मेरा जन्म कहाँ होगा ? उत्तरमें मुनिने कहा— राजन् सुनिए-पापकर्मोके उदयसे तुम्हे आगे के जन्ममे तुम्हारे ही पाखानेमे एक बडे कीड़ेकीदेह प्राप्त होगी, शहरमें घुसते समय तुम्हारे मुँहमे विष्टा प्रवेश करेगा, तुम्हारा छत्रभग होगा और आजके सातवे दिन बिजली गिरनेसे तुम्हारी मौत होगी । सच है, जीवोंके पापके उदयसे सभी कुछ होता है । मुनिराजने ये सब बाते राजासे बड़े निडर होकर कहीं । और यह ठीक भी है कि योगियोके मनमे किसी प्रकार का भय नहीं रहता । मुनिका शुभके सम्बन्धका भविष्य--कथन सच होने लगा । एक दिन बाहरसे लौट कर जब वे शहरमे घुसने लगे तब घोड़के पाँवों की ठोकरसे उड़े हुए थोड़ेसे विष्टाका अश उनके मुँहमे आ गिरा और यहाँसे वे थोड़े ही आगे बढ़े होगे कि एक जोरकी आँधीने उनके छत्रको तोड़ डाला । सच है, पापकर्मोके उदयसे क्या नहीं होता । उन्होने तब अपने पुत्र देवरतिको बुलाकर कहा—बेटा, मेरे कोई ऐसा पापकर्मका उदय आवेगा उससे मैं मरकर अपने पाखानेमे पाँच रगका कीड़ा होऊँगा, सो तुम उस समय मुझे मार डालना । इसलिए कि फिर मैं कोई अच्छी गति प्राप्त कर सकूँ । उक्त घटनाको देखकर शुभको यद्यपि यह एक तरह निश्चय-सा हो गया था कि मुनिराजकी कही बाते सच्ची है और वे अवश्य होंगी पर तब भी उनके मनमें कुछ-कुछ सन्देह बना रहा और इसी कारण बिजली गिरनेके भयसे डरकर

उन्होने एक लोहेकी बड़ी मजबूत सन्दूक मॅगवाई और उसमे बैठकर गंगाके गहरे जलमे उसे रख आनेको नौकरोको आज्ञा की । इसलिए कि जलमें बिजलीका असर नहीं होता । पर उनकी ये बे-समझी थी । कारण प्रत्यक्ष-ज्ञानियोंकी कोई बात कभी झूठी नहीं होती । जो हो, सातवॉ दिन आया । आकाशमे बिजलियॉ चमकने लगीं । इसी समय भाग्यसे एक बड़े मच्छने राजाकी उस सन्दूकको एक ऐसा जोरका उथेला दिया कि सन्दूक जल के बाहर दो हाथ ऊॅचे तक उछल आई । सन्दूकका बाहर होना था कि इतनेमे बड़े जोरसे कड़क कर उस पर बिजली आ गिरी । खेद है कि उस बिजलीके गिरनेसे राजा अपने यत्नमें कामयाब न हुए और आखिर वे मौतके मुॅहमें पड़ ही गये । मरकर वह मुनिराजके कहे अनुसार पाखानेमे कीड़ा हुए । पिताके कहे माफिक जब देवरतिने जाकर देखा तो सचमुच एक पॉच रंगका कीड़ा उसे देख पड़ा और तब उसने उसे मार डालना चाहा । पर जैसे ही देवरतिने हाथका हथियार उसके मारनेको उठाया, वह कीड़ा उस विष्टाके ढेर में घुस गया । देवरतिको इससे बड़ा अचम्भा हुआ । उसने जिन-जिनसे इस घटनाका हाल कहा, उन सबको संसारकी इस भयंकर लीलाको सुन बड़ा डर मालूम हुआ । उन्होंने तब संसारका बन्ध काट देनेके लिए जैनधर्मका आश्रय लिया, कितनोंने सब माया-ममता तोड़ जिनदीक्षा ग्रहण की और कितनोंने अभ्यास बढ़ानेको पहले श्रावकोंके व्रत ही लिये ।

देवरतिको इन घटनासे बड़ा अचम्भा हो ही रहा था, सो एक दिन उसने ज्ञानी मुनिराजसे इसका कारण पूछा—भगवन्, क्यों तो मेरे पिताने मुझसे कहा कि मैं विष्टामें कीड़ा होऊॅगा सो मुझे तू मार डालना और जब मैं उस कीड़ेको मारने जाता हूॅ तब वह भीतर ही भीतर घुसने लगता है । मुनिने उसके उत्तरमें देवरतिसे कहा—भाई, जीव गतिसुखी होता है फिर चाहे वे कितनी ही बुरीसे बुरी जगह भी क्यों न पैदा हो । वह उसीमें अपनेको सुखी मानेगा, वहॉसे कभी मरना पसन्द न करेगा । यही कारण है कि जबतक तुम्हारे पिता जीते थे तबतक उन्हें मनुष्य जीवनसे प्रेम था, उन्होंने न मरनेके लिए यत्न भी किया, पर उन्हें सफलता न मिली । और ऐसी उच्च मनुष्य गतिसे वे मरकर कीड़ा होंगे, सो भी विष्टामे । उसका उन्हे खेद था और इसलिए उन्होंने

तुमसे उस अवस्थामे मार डालनेको कहा था । पर अब उन्हे वही जगह अत्यन्त प्यारी है, वे मरना पसन्द नहीं करते '। इसलिए जब तुम उसे कीड़ेको मारने जाते हो तब वह भीतर घुस जाता है । इसमे आश्चर्य और खेद करनेकी कोई बात नहीं । संसारकी स्थिति ही ऐसी है । मुनिराज द्वारा यह मार्मिक उपदेश सुनकर देवरतिको बड़ा वैराग्य हुआ । वह संसार छोड़कर, इसलिए कि उसमें सार कुछ नहीं है, मुनिपद स्वीकार कर आत्महित साधक योगी हो गया ।

जिनके वचन पापोके नाश करनेवाले हैं, सर्वोत्तम हैं ओर संसारका भ्रमण मिटानेवाले हैं, वे देवों द्वारा, पूजे जानेवाले जिन भगवान् मुझे तब तक अपने चरणोकी सेवाका अधिकार दे जब तक कि मैं कर्मोका नाश कर मुक्ति प्राप्त न कर लूँ ।

★ यदि कोई मनुष्य विद्वान न हो तो भी उसे उपदेश सुनने दो, क्योंकि जब उसके ऊपर संकट पड़ेगा तब उनसे ही उसे कुछ सान्त्वना मिलेगी ।

★ अच्छे शब्दों को ध्यान पूर्वक सुनो चाहे वे थोड़े से ही क्यों न हो क्योंकि वे थोड़े शब्द भी तुम्हारी प्रतिष्ठा में समुचित वृद्धि करेगें ।

७८. सुदृष्टि सुनारकी कथा

देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजों द्वारा पूजा किये जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर सुदृष्टि नामक सुनारकी, जो रत्नोंके काममें बड़ा होशियार था, कथा लिखी जाती है ।

उज्जैनके राजा प्रजापाल बड़े प्रजाहितैषी, धर्मात्मा और भगवान्‌के सच्चे भक्त थे । इनकी रानीका नाम सुप्रभा था । सुप्रभा बड़ी सुन्दरी और सती थी । सच है संसारमें वही रूप और वही सौन्दर्य प्रशंसाके लायक होता है जो शीलसे भूषित हो ।

यहाँ एक सुदृष्टि नामका सुनार रहता था । जवाहिरातके काममें यह बड़ा चतुर था तथा सदाचारी और सरल-स्वभावी था । इसक स्त्रीका नाम विमला था । विमला दुराचारिणी थी । अपने घरमें रहनेवाले एक वक्र नामके विद्यार्थीसे, जिसे कि सुदृष्टि अपने खर्चसे लिखाता-पढ़ाता था, विमलाका अनुचित सम्बन्ध था । विमला अपने स्वामीसे वहुत ना-खुश थी । इसलिए उसने अपने प्रेमी वक्रको उकसा कर, उसे कुछ भली-वुरी सुझाकर सुदृष्टिका खून करवा दिया । खून उस समय किया गया जब कि सुदृष्टि विषय-सेवनमें मग्न था । सो यह मरकर विमलाके ही गर्भमें आया । विमलाने कुछ दिनों बाद पुत्र प्रसव किया । आचार्य कहते हैं कि संसारकी स्थिति बड़ी ही विचित्र है जो पल भरमें कर्मोंकी पराधीनतासे जीवोंका अजब परिवर्तन हो जाता है । वे नटकी तरह क्षणक्षणमें रूप बदला ही करते हैं ।

चैतका महीना था वसन्त शोभाने सब ओर अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था । वन उपवनोंकी शोभा मनको मोह लेती थी । इसी सुन्दर समयमें एक दिन महारानी सुप्रभा अपने खास वगीचेमें प्राणनाथके साथ हँसीविनोद कर रही थी । इसी हँसी-विनोदमें उसका क्रीड़ा-विलास नामका सुन्दर वहुमूल्य हार टूट पड़ा । उसके सब रत्न विखर गये । राजाने उसे फिर वैसा ही वनवानेका वहुत यत्न किया, जगह-जगहसे अच्छे सुनार बुलवाये पर हार पहले सा किसीसे नहीं वना । सच है, बिना पुण्यके कोई उत्तम कला या ज्ञान नहीं होता । इसी टूटे हुए हारको विमलाके लड़केने अर्थात पूर्वभवके

उसके पति सुदृष्टिने देखा । देखते ही उसे जाति स्मरणपूर्व जन्मका ज्ञान हो गया । उससे उसने इस हारको पहले-सा ही बना दिया । इसका कारण यह था कि इस हारको पहले भी सुदृष्टि हीने बनाया था और यह बात सच है कि इस जीवको पूर्व जन्मके संस्कार पुण्यसे ही कला कौशल, ज्ञान-विज्ञान दान-पूजा आदि सभी बाते प्राप्त हुआ करती है। । प्रजापाल 'उसकी यह होशियारी देखकर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होने उससे पूछा भी कि भाई, यह हार जैसा सुदृष्टिका बनाया था वैसा ही तुमने कैसे बना दिया ? तब वह विमलाका लड़का मुँह नीचा कर बोला—राजाधिराज, मैं अपनी कथा आपसे क्या कहूँ । आप यह समझे कि वास्तवमे मैं ही सुदृष्टि हूँ । इसके बाद उसने बीती हुई सब घटना राजासे कह सुनाई । वे ससारकी इस विचित्रताको सुनकर विषय-भोगोसे बडे विरक्त हुए । उन्होंने उसी समय सब माया-जाल छोड़कर आत्महितका पथ जिनदीक्षा ग्रहण कर ली ।

इधर विमलाके लड़केको भी अत्यन्त वैराग्य हुआ । वह स्वर्ग मोक्षके सुखोको देनेवाली जिनदीक्षा लेकर योगी बन गया । यहाँसे फिर यह शुद्धात्मा धर्मोपदेशके लिये अनेक और शहरोमे घूम-फिर कर तपस्या करता हुआ और अनेक भव्यजनोंको आत्महितके मार्ग पर लगाता हुआ सौरीपुरके उत्तर भागमे यमुनाके पवित्र किनारे पर आकर ठहरा । यहाँ शुक्लध्यान द्वारा कर्मोका नाश कर इसने लोकालोकका ज्ञान करानेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य होकर अन्तमें मुक्ति लाभ किया । वे विमला-सुत मुनि मुझे शान्ति दे ।

वे जिन भगवान् आप भव्यजनोंको और मुझे मोक्षका सुख दे, जो संसार-सिन्धुमे डूबते हुए, असहाय-निराधर जीवोको पार करनेवाले हैं, कर्म-शत्रुओका नाश करनेवाले हैं, ससारके सब पदार्थोको देखनेवाले केवलज्ञानसे युक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, स्वर्ग तथा मोक्षका सुख देनेवाले हैं और देवो, विद्याधरो, चक्रवर्तियो आदि प्राय· सभी महापुरुषोसे पूजा किये जाते हैं ।

---

७९. धर्मसिंह मुनिकी कथा

इस प्रकार के देवों द्वारा जो पूजा-स्तुति किये जाते हैं और ज्ञानके समुद्र हैं, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धर्मसिंह मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

दक्षिण देशके कौशलगिर नगरके राजा वीरसेनकी रानी वीरमतीके दो सन्तान थीं । एक पुत्र था और एक कन्या थी । पुत्रका नाम चन्द्रभूति और कन्याका चन्द्रश्री था । चन्द्रश्री बड़ी सुन्दर थी । उसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी ।

कौशल देश और कौशल ही शहरके राजा धर्मसिंहके साथ चन्द्रश्रीकी शादी हुई थी । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । नाना प्रकारकी भोगोपभोग वस्तुऍं सदा उनके लिये मौजूद रहती थीं । इतना होने पर भी राजाका धर्मपर पूर्ण विश्वास था, अगाध श्रद्धा थी । वे सदा दान, पूजा व्रतादि धर्मकार्य करते थे ।

एक दिन धर्मसिंह तपस्वी दमधर मुनिके दर्शनार्थ गये । उनकी भक्तिसे पूजा-स्तुति कर उन्होंने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना, जो धर्म देवो द्वारा भी बडी भक्तिके साथ पूजा माना जाता है । धर्मोपन्देशका धर्मसिंहके चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा । वे संसार और विषय-भोगोसे विरक्त हो गये और मुनि दीक्षा लेली । उनकी रानी चन्द्रश्रीको उन्हें जवानीमें दीक्षा ले जानेसे बड़ा कष्ट हुआ । पर बेचारी लाचार थी । उसके दुःखकी बात जब उसके भाई चन्द्रभूतिको मालूम हूई तो उसे भी अत्यन्त दुःख हुआ । उससे अपनी बहिनकी यह हालत न देखी गई । उसने तब जबरदस्ती अपने बहनोई धर्मसिंहको उठा लाकर चन्द्रश्रीके पास ला रक्खा । धर्मसिंह फिर भी न ठहरे और जाकर उन्होने पुन दीक्षा ले ली और महा तप तपने लगे ।

एक दिन इसी तरह वे तपस्या कर रहे थे । तब उन्होंने चन्द्रभूतिको अपनी ओर आता हुआ देखा । उन्होंने समझ लिया कि यह फिर मेरी तपस्या बिगाडेगा । सो तपको रक्षाके लिये पास ही पड़े हुए मृत हाथी के शरीरमे घुसकर उन्होंने समाधि ले ली और अन्तमे शरीर छोड़कर वे स्वर्गमे गये ।

इसलिये भव्यजनोको कष्टके समय भी अपने व्रतकी रक्षा करनी ही चाहिये कि जिससे स्वर्ग या मोक्षका सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है ।

निर्मल जैनधर्मके प्रेमी जिन श्रीधर्मसिह मुनिने जिन भगवान्के उपदेश किये और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले तप मार्गका आश्रय ले उसके पुण्यसे स्वर्ग-सुख लाभ किया वे संसार प्रसिद्ध महात्मा और अपने गुणोसे सबकी बुद्धि पर प्रकाश डालनेवाले मुझे भी मगल-सुख दान करे ।

☆ प्राप्त करने योग्य जो ज्ञान है उसे सम्पूर्ण रुप से प्राप्त करना चाहिए और प्राप्त करने के पश्चात तदनुसार व्यवहार करना चाहिये ।

☆ ईर्ष्या के विचारों को अपने मन में न आने दो, क्योंकि ईर्ष्या से रहित होना धर्माचरण का एक अंग है ।

८०. वृषभसेनकी कथा

स्वर्ग ओर मोक्षका सुख देनेवाले तथा सारे संसारके द्वारा पूज्य-माने जानेवाले श्री भगवान्‌को नमस्कार कर वृषभसेनकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र (पटना) में वृषभदत्त नामका एक सेठ रहता था । पूर्व पुण्यके प्रभावसे इसके पास धन सम्पत्ति खूब थी । इसकी स्त्रीका नाम वृषभदत्ता था । इसके वृषभसेन नामका सर्वगुण-सम्पन्न एक पुत्र था । वृषभसेन बड़ा धर्मात्मा और सदा दान-पूजादिक पुण्यकर्मोका करनेवाला था ।

एक अन्य सेठ धनपतिकी स्त्री श्रीकान्ताके एक लड़की थी । इसका नाम धनश्री था । धनश्री सुन्दरी थी, चतुर थी और लिखी-पढ़ी थी । धनश्रीका ब्याह वृषभसनेके साथ हुआ था । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । नाना प्रकारके विषय-भोगोंकी वस्तुएँ उनके लिये सदा हाजिर रहती थी ।

एक दिन वृषभसेन दमधर मुनिराजके दर्शनोंके लिये गया । भक्ति सहित उनकी पूजा-वन्दना कर उसने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना । उपदेश उसे बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उसपर बहुत पड़ा । वह उसी समय संसार और भ्रमसे सुख जान पड़नेवाले विषय-भोगोंसे उदासीन हो मुनिराजके पास आत्महितकी साधक जिनदीक्षा ले गया । उसे युवावस्थामें ही दीक्षा ले-जानेसे धनश्रीको बड़ा दुःख हुआ । उसे दिन-रात रोनेके सिवा सुछ न सूझता था । धनश्रीका यह दुःख उसके पिता धनपतिसे न सहा गया । वह तपोवनमें जाकर वृषभसेनको उठा लाया और जबरदस्ती उसकी दीक्षा वगैरह खण्डित कर दी, उसे गृहस्थ बना दिया । सच है, मोही पुरुष करने और न करने योग्य कर्मोका विचार न कर उन्मत्तकी तरह हर एक काम करने लग जाता है, जिससे कि पापकर्मोका उसके तीव्र बन्ध होता है ।

जैसे मनुष्य कैदमें जबरदस्ती रहना पड़ता है उसी तरह वृषभसेनको भी कुछ समय तक और घरमें रहना पड़ा । इसके बाद वह फिर मुनि हो गया । इसका फिर मुनि हो जाना जब धनपतिको मालूम हुआ तो किसी बहानेसे घर पर लकार अबकी बार उसे उसने लोहेकी सॉकलसे बॉध दिया । मुनिने यह सोचकर, कि यह मुझे अबकी बार फिर व्रतरूपी पर्वतसे गिरा देगा, मेरा व्रत

भंग कर देगा, संन्यास ले लिया और इसी अवस्थामें शरीर छोड़कर वह पुण्यके उदयसे स्वर्गमें देव हुआ । दुर्जनो द्वारा सत्पुरुषों को कितने ही कष्ट क्यो न पहुँचाये जायँ पर वे कभी पापबन्धके कारण कामोमे नहीं फँसते ।

दुर्जन पुरुष चाहे कितनी ही तकलीफ क्यों न दे, पर पवित्र बुद्धि के धारी सज्जन महात्मा पुरुष तो जिन भगवान्‌के चरणोकी सेवा-पूजासे होनेवाले पुण्यसे सुख ही प्राप्त करेगे । इसमे तनिक भी सन्देह नहीं ।

☆ संसार भर के धर्म-ग्रन्थ सत्यवक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं ।

☆ धन वैभव और इन्द्रिय सुख के तूफानी समुद्र को वे ही पार कर सकते हैं, जो उस धर्मसिन्धु मुनीश्वर के चरणों में लीन रहते हैं ।

☆ केवल वे ही लोग दुःखों से बच जाते हैं जो उस अद्वितीय पुरुष की शरण में आते हैं ।

८१. जयसेन राजाकी कथा

स्वर्गादि सुखों को देनेवाले और मोक्षरूपी रमणीके स्वामी श्रीजिन भगवान् को नमस्कार कर जयसेन राजाकी सुन्दर कथा लिखी जाती है ।

श्रावस्तीके राजाजयसेनकी रानी वीरसेनाके एक पुत्र था । इसका नाम वीरसेन था । वीरसेन बुद्धिमान् और सच्चे हृदयका था, मायाचार-कपट उसे छू तक न गया था ।

यहाँ एक शिवगुप्त नामका वृद्ध भिक्षुक रहता था । यह मांसभक्षी और निर्दयी था । ईर्षा और द्वेष इसके रोम-रोममें ठसा था मानों वह इनका पुतला था । यह शिवगुप्त राजगुरु था । ऐसे मिथ्यात्वको धिक्कार है जिसके वश हो ऐसे मायावी और द्वेपी भी गुरु हो जाते हैं ।

एक दिन यतिवृषभ मुनिराज अपने सारे संघको साथ लिये श्रावस्ती में आये । राजा यद्यपि बुद्धधर्मका माननेवाला था, तथापि वह और-और लोगोंको मुनिदर्शनके लिये जाते देख आप भी गया । उसने मुनिराज द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश चित्त लगाकर सुना । उपदेश उसे बहुत पसन्द आया । उसने मुनिराजसे प्रार्थना कर श्रावकोंके व्रत लिये । जैनधर्म पर अब उसकी दिनो-दिन श्रद्धा बढ़ती ही गई । उसने अपने सारे राज्यभरमें कोई ऐसा स्थान न रहने दिया जहाँ जिनमन्दिर न हो । प्रत्येक शहर, प्रत्येक गाँवमें उसने जिनमन्दिर बनवा दिया । जिनधर्मके लिये राजाका यह प्रयत्न देख शिवगुप्त ईर्षा और द्वेषके मारे जल कर खाक हो गया । वह अब राजाको किसी प्रकार मार डालनेके प्रयत्नमे लगा । और एक दिन खास इसी कामके लिये वह पृथिवीपुरी गया और वहाँके बुद्धधर्मके अनुयायी राजा सुमतिको उसने जयसनेके जैनधर्म धारण करने और जगह-जगह जिनमन्दिरोंके बनवाने आदिका सब हाल कह सुनाया । यह सुनसुमतिने जयसेनको एक पत्र लिखा कि "तुमने बुद्धधर्म छोड़कर जो जैनधर्म ग्रहण किया, यह बहुत बुरा किया है । तुम्हें उचित है कि तुम पीछा बुद्धधर्म स्वीकार कर लो ।" इसके उत्तरमें जयसेनने लिख भेजा कि—"मेरा विश्वास है, निश्चय है कि जैनधर्म ही संसारमें एक ऐसा सर्वोच्च धर्म है जो जीवमात्रका हित करनेवाला है । जिस धर्ममें जीवोंका मास खाया

जाता है या जिनमे धर्मके नाम पर हिंसा वगैरह महापाप बड़ी खुशीके साथ किये जाते हैं वे धर्म नहीं हो सकते । धर्मका अर्थ है जो संसारके दु खोसे छुड़ाकर उत्तम सुखमे रक्खे, सो यह बात सिवा जैनधर्मके और धर्मोमे नहीं है । इसलिए इसे छोड़कर और सब अशुभ बन्धके कारण है ।" सच है, जिसने जैनधर्मका सच्चा स्वरूप जान लिया वह क्या फिर किसीसे डिगाया जा सकता है ? नहीं । प्रचण्डसे प्रचण्ड हवा भी क्यो न चले पर क्या वह मेरुको हिला देगी ? नहीं । जयसेनके इस प्रकार विश्वासको देख सुमतिको बड़ा गुस्सा आया । तब उसने दो आदमियोको इसलिए श्रावस्तीमे भेजा कि वे जयसेनकी हत्या कर आवे । वे दोनो आकर कुछ समय तक श्रावस्तीमे ठहरे और जयसेनके मार डालनेकी खोजमे लगे रहे, पर उन्हे ऐसा मौका ही न मिल पाया जो वे जयसेनको मार सके । तबलाचार हो वे वापिस पृथ्वीपुरी लौट आये और सब हाल उन्होंने राजासे कह सुनाया । इससे सुमतिका क्रोध और भी बढ़ गया । उसने तब अपने सब नौकरोको इकट्ठा कर कहा—क्या कोई मेरे आदमियेंमे ऐसा भी हिम्मत बहादुर है जा श्रावस्ती जाकर किसी तरह जयसेनको मार आवे । उनमेसे एक हिमारक नामके दुष्टने कहा—हॉ महाराज, मैं इस कामको कर सकता हूँ । आप मुझे आज्ञा दे । इसके बाद ही वह राजाज्ञा पाकर श्रावस्ती आया और यतिवृषभ मुनिराजके पास मायाचारसे जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया ।

एक दिन जयसेन मुनिराजके दर्शन करनेको आया और अपने नौकर-चाकरोको मन्दिर के बाहर ठहरा कर आप मन्दिरमे गया । मुनिको नमस्कार कर वह कुछ समयके लिए उनके पास बैठा ओर उनसे कुशल समाचार पूछकर उसने कुछ धर्म-सम्बन्धी बातचीत की। इसके बाद जब वह चलनेके पहले मुनिराजको ढोक देनेके लिए झुका कि इतनेमे वह दुष्ट हिमारक जयसेनको मार कर भाग गया । सच है बुद्ध लोग बडे ही दुष्ट हुआ करते है । यह देख मुनि यतिवृषभको बडी चिन्ता हुई । उन्होंने सोचा—कहीं सारे सघ पर विपत्ति न आये, इसलिए पास ही की भीत पर उन्होने यह लिखकर, कि "दर्शन या धर्मकी डाहके वश होकर ऐसा काम किया गया है," छुरीसे अपना पेट चीर लिया और स्थिरतासे सन्यास द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वे

स्वर्ग गये ।

वीरसेनको जब अपने पिताकी मृत्युका हाल मालूम हुआ तो वह उसी समय दौड़ा हुआ मन्दिर आया । उसे इस प्रकार दिन-दहाड़े किसी साधारण आदमीकी नहीं, किन्तु खास राजा साहवकी हत्या हो जाने और हत्याकारीका कुछ पता न चलनेका बड़ा ही आश्चर्य हुआ । और जब उसने अपने पिताके पास मुनिको भी मरा पाया तव तो उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना ही न रहा । वह वड़े विचारमे पड़ गया । वे हत्याएँ क्यों हुई ? और कैसे हुई ? इसका कारण कुछ भी उसकी समझमें न आया । उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं इन मुनिने तो यह काम न किया हो ? पर दूसरे ही क्षणमें उसने सोचा कि ऐसा नहीं हो सकता । इनका और पिताजीका कोई वैर-विरोध नहीं, लेना देना नहीं, फिर वे क्यों ऐसा करने चले ? और पिताजी तो इनके इतने बड़े भक्त थे । और न केवल यही वात थी कि पिताजी ही इनके भक्त हों, ये साधुजी भी तो उनसे बड़ा प्रेम करते थे; घण्टों तक उनके साथ इनकी धर्मचर्चा हुआ करती थी । फिर इस सन्देहको जगह नहीं रहती कि एक निस्पृह और शान्त योगी द्वारा यह अनर्थ किया जा सके । तव हुआ क्या ? वेचारा वीरसेन बड़ी कठिन समस्यामें फॅसा । वह इस प्रकार चिन्तातुर हो कुछ सोच-विचार कर ही रहा था कि उसकी नजर सामनेकी भींत पर जा पड़ी । उस पर यह लिखा हुआ, कि "दर्शन या धर्मकी डाहके वश होकर ऐसा हुआ है," देखते ही उसकी समझमें उस समय सव बातें वरावर आ गई । उसके मनका अव रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया । उसकी अब मुनिराज पर अत्यन्त ही श्रद्धा हो गई । उसने मुनिराजके धैर्य और सहनपने की वड़ी प्रशंसा की । जैनधर्मके विषयमें उसका पूरा-पूरा विश्वास हो गया । जिनका दुष्ट स्वभाव है, जिनसे दूसरोंके धर्मका अंभ्युदय-उन्नति नहीं सही जाती, ऐसे लोग जिनधर्म सरीखे पवित्र धर्म पर चाहे कितना ही दोष क्यों न लगावे, पर जिनधर्म तो वादलोंसे न ढके हुए सूरजकी तरह सदा ही निर्दोष रहता है ।

जिस धर्मको चारों प्रकारके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती, राजे-महाराजे आदि सभी महापुरुष भक्तिसे पूजते-मानते हैं, जो संसारके दु·खोंका नाश कर

८२. शकटाल मुनिकी कथा

सुखके देनेवाले संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर शकटाल मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा नन्दके दो मंत्री थे । एक शकटाल और दूसरा वररुचि । शकटाल जैनी था, इसलिए सुतरा उसकी जैनधर्म पर अचल श्रद्धा या प्रीति थी और वररुचि जैनी नहीं था, इसलिए सुतरां उसे जैनधर्मसे, जैनधर्मके पालनेवालों से द्वेष था, ईर्षा थी । और इसीलिए शकटाल और वररुचि की कभी न बनती थी, एकसे एक अत्यन्त विरुद्ध थे ।

एक दिन जैनधर्मके परम विद्वान्‌महापद्म मुनिराज अपने सघको साथ लिये पटनामें आये । शकटाल उनके दर्शन करनेको गया । वड़ी भक्तिके साथ उसने उनकी पूजा-वन्दना की और उनके पास बैठकर मुनि और गृहस्थ धर्मका उनसे पवित्र उपदेश सुना । उपदेशका शकटालके धार्मिक अतएव कोमल हृदय पर वहुत प्रभाव पड़ा । वह उसी समय संसारका सब मायाजाल तोड़कर दीक्षा ले मुनि हो गया । इसके बाद उसने अपने गुरु द्वारा सिद्धान्तशास्त्रका अच्छा अभ्यास किया । थोड़े ही दिनोंमें शकटाल मुनिने कई विषयों में वहुत ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । गुरु इनकी बुद्धि, विद्वत्ता तर्कनाशक्ति और सर्वोपरि इनकी स्वाभाविक प्रतिभा देखकर वहुत ही खुश हुए । उन्होंने अपना आचार्यपद अव इन्हें ही दे दिया । यहाँसे धर्मोपदेश और धर्मप्रचारके लिए अनेक देशों, शहरों और गाँवोंमें घूमे-फिरे । इन्होंने वहुतोंको आत्महित साधक पवित्र मार्ग पर लगाया और दुर्गति के दुःखोंका नाश करनेवाले पवित्र जैनधर्मका सब ओर प्रकाश फैलाया । इस प्रकार धर्म प्रभावना करते हुए ये एक वार फिर पटनामें आये ।

एक दिनकी वात है कि शकटाल मुनि राजाके अन्तःपुरमें आहार कर तपोवनकी ओर जा रहे थे । मत्री वररुचिने इन्हे देख लिया । सो इस पापी ने पुराने बैरका वदला लेनेका अच्छा मौका देखकर नन्दसे कहा—महाराज, आपको कुछ खवर है कि इस समय अपना पुराना मंत्री पापी शकटाल भीखके वहाने आपके अन्तःपुरमें, रनवासमें घुसकर न जाने क्या अनर्थ कर गया है ।

मुझे तो उसके चले जाने के बाद ये समाचार मिले, नहीं तो मैंने उसे कभीका पकड़वा कर पापकी सजा दिलवा दी होती। अस्तु, आपको ऐसे धूर्तोंके लिए चुप बैठना उचित नहीं। सच है, दुर्गतिमें जानेवाले ऐसे पापी लोग बुरासे बुरा कोई काम करते नहीं चूकते। नन्दने अपने मंत्रीके बहकानेमें आकर गुस्सेसे उसी समय एक नौकरको आज्ञा की कि वह जाकर शकटालको जानसे मार आवे। सच है, मूर्ख पुरुष दुर्जनो द्वारा उस्कारे जाकर, करने और न करने योग्य भले-बुरे कार्यका कुछ विचार न कर, अन्याय कर ही डालते हैं। शकटाल मुनिने जब उस घातक मनुष्यको अपनी ओर आते देखा तब उन्हे विश्वास हो गया कि वह मेरे ही मारनेको आ रहा है और यह सब कर्म मन्त्री वररुचिका है। अस्तु, जब तक वह घातक शकटाल मुनिके पास पहुँचता है उसके पहले ही उन्होने सावधान होकर सन्यास ले लिया। घातक अपना काम पूरा कर वापिस लौट गया। इधर शकटाल मुनिने समाधिसे शरीर त्याग कर स्वर्ग लाभ किया। सच है, दुष्ट पुरुष अपनी ओरसे कितनी ही दुष्टता क्यो न करे, पर उससे सत्पुरुषोको कुछ नुकसान न पहुँच कर लाभ ही होता है।

परन्तु जब नन्दको यह सब सच्चा हाल ज्ञात हुआ और उसने सब बातोंकी गहरी छान-बीनकी तब उसे मालूम हो गया कि शकटाल मुनिका कोई दोष न था, वे सर्वथा निरपराध थे। इसके पहले जैनमुनियोके सम्बन्धमे जो उसकी मिथ्या धारण हो गई थी और उन पर जो उसका बे-हद क्रोध हो रहा था उस सबको हृदयसे दूर कर वह अब बडा ही पछताया। अपने पाप कर्मोकी उसने बहुत निन्दा की। इसके बाद वह श्रीमहापद्म मुनिके पास गया। बडी भक्तिसे उसने उनकी पूजा-वन्दना की और सुखके कारण पवित्र जैनधर्मका उनके द्वारा उपदेश सुना। धर्मोपदेशका उसके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने श्रावकोके व्रत धारण किये। जैनधर्म पर अब इसकी अचल श्रद्धा हो गई।

इस जीवको जब कोई बुरी संगति मिल जाती है तब तो यह बुरेसे बुरे पापकर्म करने लग जाता है और जब अच्छे महात्मा पुरुषोकी सगति मिलती है तब यही पुण्य-पवित्र कर्म करने लगता है। इसलिए भव्यजनोको सदा ऐसे महापुरुषोंकी सगति करना चाहिए जो संसारके आदर्श हैं और जिनकी सत्सगतिसे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

इन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपरूपी रत्नोंकी सुन्दर मालाको प्रभाचन्द्र आदि पूर्वाचार्योंने शास्त्रोंका सार लेकर बनाया है, जो ज्ञानके समुद्र और सारे संसारके जीव मात्रका हित करनेवाले थे। उन्हींकी कृपासे मैंने इस आराधनारूपी मालाको अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार बनाया है। यह माला भव्यजनोंको और मुझे सुख दे।

"चरवैति"

☆ साधक को साधना के क्षेत्र के निरंतर चलते रहना चाहिये। कभी भी विराम का नहीं सोचना चाहिये। विराम का चिन्तन साधक के गिराव (पतन) का सूचक है।

"संस्कार-बीज"

☆ बड़ वृक्ष के संस्कार जैसे उसके बीज में मौजूद रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा के द्वारा की हुई क्रियाओं के संस्कार आत्मा में मौजूद रहते हैं और वे संस्कार क्रिया के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते हैं।

८३. श्रद्धायुक्त मनुष्यकी कथा

निर्मल केवलज्ञान द्वारा सारे संसारके पदार्थोंको प्रकाशित करनेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर श्रद्धागुणके धारी विनयधर राजाकी कथा लिखी जाती है जो कथा सत्पुरुषोको प्रिय है ।

कुरुजागल देशकी राजधानी हस्तिनापुरका राजा विनयधर था । उसकी रानीका नाम विनयवती था । यहाँ वृषभसेन नामका एक सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम वृषभसेना था । इसके जिनदास नामका एक बुद्धिमान पुत्र था ।

विनयधर बड़ा कामी था । सो एक बार इसके कोई महारोग हो गया । सच है, ज्यादा मर्यादासे बाहर विषय सेवन भी उलटा दु:खका ही कारण होता है । राजाने बड़े-बड़े वैद्योका इलाज करवाया पर उसका रोग किसी तरह न मिटा । राजा इस रोगसे बड़ा दु:खी हुआ । उसे दिन-रात चैन न पड़ने लगा ।

राजाका एक सिद्धार्थ नामका मंत्री था । यह जैनी था । शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक था । सो एक दिन इसने पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराजके पाँव प्रक्षालनका जल लाकर, जो कि सब रोगोका नाश करनेवाला होता है, राजाको दिया । जिन भगवान्‌के सच्चे भक्त उस राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ उस जलको पी-लिया । उसे पीनेसे उसका सब रोग जाता रहा । जैसे सूरजके उगनेसे अन्धकार जाता रहता है । सच है, महात्माओ के तपके प्रभावको कौन कह सकता है, जिनके कि पाँव धोनेके पानीसे ही सब रोगोकी शान्ति हो जाती है । जिस प्रकार सिद्धार्थ मन्त्रीने मुनिके पाँव प्रक्षालनका पवित्र जल राजाको दिया, उसी प्रकार अन्य भव्यजनोको भी उचित है कि वे धर्मरूपी जल सर्व-साधारणको देकर उनका संसार ताप शान्त करे । जैनतत्वके परम विद्वान् वे पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराज मुझे शान्ति-सुख दे ।

जैनधर्ममे या जैनधर्मके अनुसार किये जानेवाले दान, पूजा, व्रत, उपवास आदि पवित्र कार्योमे की हुई श्रद्धा, किया हुआ विश्वास दु:खोका नाश करनेवाला है । इस श्रद्धाका आनुषंगिक फल है—इन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदिकी सम्पदाका लाभ और वास्तविक फल है मोक्षका कारण केवलज्ञान, जिसमें कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चार

अनन्तचतुष्टय-आत्माकी खास शक्तियाँ प्रगट हो जाती हैं। वह श्रद्धा आप भव्यजनोंका कल्याण करे।

"धीरज की कसौटी"

विपत्ति आत्मा का बल बढ़ाने वाली सम्पत्ति है। विपत्ति के साथ संघर्ष करके पुरुष महापुरुष बनता है। विपत्ति सोची हुई मानवीय शक्तियों को जगाती है। विपत्ति मनुष्य को ओज की, धैर्य की, और साहस की कसौटी है। विपत्ति सफलता की सखी है जो महाप्राण पुरुष विपत्ति को सहर्ष अंगीकार करता है, उसी को सफलता प्राप्त होती है।

८४. आत्मनिन्दा करनेवालीकी कथा

चारो प्रकारके देवो द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर उस स्त्रीकी कथा लिखी जाती है कि जिसने अपने किये पापकर्मोकी आलोचना कर अच्छा फल प्राप्त किया है ।

बनारसके राजा विशाखदत्त थे । उनकी रानीका नाम कनकप्रभा था । इनके यहाँ एक चितेरा रहता था । इसकानाम विचित्र था । यह चित्रकलाका बड़ा अच्छा जानकार था । चितेरेकी स्त्रीका नाम विचित्रपताका था । इसके बुद्धिमती नामकी एक लडकी थी । बुद्धिमती बडी सुन्दरी और चतुर थी ।

एक दिन विचित्र चितेरा राजाके खास महलमे, जो कि बडा सुन्दर था, चित्र कर रहा था । उसकी लड़की बुद्धिमती उसके लिए भोजन लेकर आई । उसने विनोद वश हो भींत पर मोरकी पींछीका एक चित्र बनाया वह चित्र इतना सुन्दर बना कि सहसा कोई न जान पाता कि वह चित्र है । जो उसे देखता वह यही कहता कि यह मोरकी पींछी है । इसी समय महाराज विशाखदत्त इस ओर आ गये । । वे उस चित्रको मोरकी पींछी समझ उठानेकोउसकी ओर बढ़े । यह देख बुद्धिमतीने समझा कि महाराज बे-समझ हैं । नहीं तो इन्हे इतना भ्रम नहीं होता ।

दूसरे दिन बुद्धिमतीने एक और अद्‌भुत् चित्र राजाको बतलाते हुए अपने पिताको पुकारा—पिताजी, जल्दी आइए, भोजन की जवानीका समय बीत रहा है । बुद्धिमतीके इन शब्दोंको सुनकर राजा बड़े अचम्भेमें पड़ गया । वह उसके कहनेका कुछ भाव न समझ कर एक टकटकी लगाये उसके मुँहकी ओर देखता रह गया । राजाको अपना भाव न समझा देख बुद्धिमतीको उसके मूर्ख होनेका और दृढ़ विश्वास हो गया ।

अबकी बार बुद्धिमतीने और ही चाल चली । एक भींत पर दो परदे लगा दिये और राजाको चित्र बतलानेके बहाने उसने एक परदा उठाया । उसमें चित्र न था । तब राजा उस दूसरे परदेकी ओर चित्रकी आशासे ऑखे फाड़कर देखने लगा । बुद्धिमतीने दूसरा परदा भी उठा दिया । भींतपर चित्रको न देखकर राजा बडा शर्मिंदा हुआ । उसकी इन चेष्टाओंसे उसे पूरा मूर्ख समझ

बुद्धिमतीने जरा हँस दिया । राजा और भी अचम्भेमे पड़ गया । वह बुद्धिमती का कुछ भी अभिप्राय न समझ सका । उसने तब व्यग्र हो बुद्धिमती से ऐसा करनेका कारण पूछा । बुद्धिमतीके उत्तरसे उसे जान पड़ा कि वह उसे चाहती है और इसलिए पिताको भोजनके लिये पुकारते समय व्यंगसे राजा पर उसने अपना भाव प्रगट किया था । राजा उसकी सुन्दरता पर पहले हीसे मुग्ध था, सो वह बुद्धिमतीकी बातोसे बड़ा खुश हुआ । उसने फिर बुद्धिमतीके साथ ब्याह भी कर लिया । धीरे-धीरे राजाका उस पर इतना अधिक प्रेम बढ़ गया कि अपनी सब रानियोमे पटरानी उसने उसे ही बना दिया । सच बात यह है कि प्राणियोकी उन्नतिके लिये उनके गुण ही उनका दूतपना करते हैं, उन्हे उन्नति पर पहुँचा देते हैं ।

राजाने बुद्धिमतीको सारे रनवासकी स्वामिनी बना तो दिया, पर उसमे सब रानियाँ उस बेचारी की शत्रु बन गई, उससे डाह, ईर्षा करने लगी । आते-जाते वे बुद्धिमतीके सिर पर मारती और उसे बुरी-भली सुनाकर बे-हद कष्ट पहुँचार्ती । बेचारी बुद्धिमती सीधी-साधी थी, सो न तो वह उनसे कुछ कहती और न महाराजसे ही कभी उनकी शिकायत करती । इस कष्ट और चिन्तासे मन ही मन घुलकर वह सूख सी गई । वह जब जिन मन्दिर दर्शन करने जाती तब सब सिद्धियोके देनेवाले भगवान्‌के सामने खड़े हो अपने पूर्व कर्मोंकी निन्दा करती और प्रार्थना करती कि हे संसार पूज्य, हे स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले, हे दु खरूपी दावानलके बुझानेवाले मेघ, और हे दयासागर, मैं एक छोटे कुलमे पैदा हुई हूँ, इसीलिये मुझे ये सब कष्ट हो रहे हैं । पर नाथ, इसमे दोष किसी का नहीं । मेरे पूर्व जन्मके पापोका उदय है । प्रभो, जो हो, पर मुझे विश्वास है कि जीवोको चाहे कितने ही कष्ट क्यों न सता रहे हो, पर जो आपको हृदयसे चाहता है, आपका सच्चा सेवक है,उसके सब कष्ट बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं । और इसीलिये हे नाथ, कामी, क्रोधी, मानी मायावी देवोको छोडकर मैंने आपकी शरण ली है । आप मेरा कष्ट दूर करेगे ही । बुद्धिमती न मन्दिरमे ही किन्तु महल पर भी अपने कर्मोंकी आलोचना किया करती । वह सदा एकान्तमे रहती और न किसीसे विशेष वोलती-चालती । राजाने उसके दुर्बल होनेका कारण पूछा—बार-बार आग्रह

किया, पर बुद्धिमतीने उसे कुछ भी न कहा ।

बुद्धिमती क्यो दिनो दिन दुर्बल होती जाती है, इसका शोध लगानेके लिये एक दिन राजा उसके पहले जिनमन्दिर आ गया । बुद्धिमतीने प्रतिदिनकी तरह आज भी भगवान्के सामने खड़ी होकर आलोचना की । राजाने वह सब सुन लिया । सुनकर ही वह सीधा महल पर आया । अपनी सब रानियोको उसने खूब ही फटकारा, धिक्कारा और बुद्धिमतीको ही उनकी मालकिन–पट्टरानी बनाकर उन सबको उसकी सेवा करनेके लिए बाध्य किया ।

जिस प्रकार बुद्धिमतीने अपनी आत्म-निन्दा की, उसी तरह अन्य बुद्धिमानो और क्षुल्लक आदिको भी जिन भगवान्के सामने भक्तिपूर्वक आत्मनिन्दा–पूर्वकर्मोकी आलोचना करना उचित है ।

उत्तम कुल और उत्तम सुखोंकी देनवाली तथा दुर्गतिके दु:खोकी नाश करनेवाली जिन भगवान्की भक्ति मुझे भी मोक्ष का सुख दे ।

कोई समझाये तो:

☆ मनानेवाला हो तो मन क्या नहीं मान लेता?
वह सभी कुछ समझ लेता है, समझाने वाला चाहिये । विवेक से कार्य करनेवालों के लिए मन अबोध शिशु के समान है ।
इतना अवश्य जानें कि
यदि तू अधिक न जाने तो इतना तो अवश्य जान कि जो बात मुझे बुरी लगती है, वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है ।

८५. आत्मनिन्दा की कथा

सब दोषोंके नाश करनेवाले और सुखके देनेवाले ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर अपने बुरे कर्मोकी निन्दा—आलोचना करनेवाली वीरा ब्राह्मणीकी कथा लिखी जाती है ।

दुर्योधन जब अयोध्याका राजा था तब की यह कथा है । यह राजा बडा न्यायी और बुद्धिमान् हुआ है । इसकी रानीका नाम श्रीदेवी था । श्रीदेवी वड़ी सुन्दरी और सच्ची पतिव्रता थी ।

यहाँ एक सर्वोपाध्याय नामका ब्राह्मण रहता था । इसकी स्त्रीका नाम वीरा था । इसका चाल-चलन अच्छा न था । जवानीके जोरमें यह मग्न रहा करती थी । उपाध्यायके घर पर एक विद्यार्थी पढ़ा करता था । उसका नाम अग्निभूति था । वीरा ब्राह्मणीके साथ इसकी अनुचित प्रीति थी । ब्राह्मणी इसे वहुत चाहती थी । पर उपाध्याय इन दोनोंके सुखका कॉटा था । इसलिये ये मनमाना ऐशोआराम न कर पाते थे । ब्राह्मणी को यह वहुत खटका करता था । सो एक दिन मौका पाकर ब्राह्मणीने अपने पतिको मार डाला । और उसे मसानमें फैंक आनेको छत्रीमें छुपाकर अन्धेरी रातमें वह घरसे निकली । मसानमें जैसे ही उपाध्यायके मुर्देको फैंकनेको तैयार हुई कि एक व्यन्तरदेवीने उसके ऐसे नीच कर्म पर गुस्सा होकर छत्रीको कील दिया और कहा—"सवेरा होने पर जब तू सारे शहरकी स्त्रियोंके घर-घर पर जाकर अपना यह नीच कर्म प्रगट करेगी, अपने कर्म पर पछतायेगी तव तेरे सिर परसे यह छत्री गिरेगी ।" देवीके कहे अनुसार ब्राह्मणीने वैसा ही किया । तव कहीं उसका पीछा छूटा, छत्री सिरसे अलग हो सकी । इस आत्म-निन्दासे ब्राह्मणीका पापकर्म वहुत हल्का हो गया, वह शुद्ध हुई । इसी तरह अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे प्रतिदिन होनेवाले बुरे कर्मोकी गुरुओंके पास आलोचना किया करें । उससे उनका पाप नष्ट होगा और अपने आत्माको वे शुद्ध बना सकेंगे ।

किसी पुरुषके शरीरमें कॉटा लग गया और वह उससे वहुत कष्ट पा रहा है । पर जब तक वह कॉटा उसके शरीरसे न निकलेगा तव तक वह सुखी नहीं हो सकता । इसलिए उस कॉटेको निकाल फैंककर जैसे वह पुरुष सुखी

होता है, उसी तरह जो आत्म-हितैषी जैनधर्मके बताये सिद्धान्त पर चलनेवाले वीतरागी साधुओंकी शरण ले अपने आत्माको कष्ट पहुँचानेवाले पापकर्मरूपी काँटेको कृतकर्मोंकी आलोचना द्वारा निकाल फैंकते हैं वे फिर कभी नाश न होनेवाली आत्मीक लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं ।

इसकी कोई चिन्ता है?

☆ देखना चाहिये कि जीवन का तत्व कहाँ जा रहा है? दो पैसे गुम जाने का तो रंज होता है मगर समग्र जीवन बीता जा रहा इसकी कोई चिन्ता ही नहीं है ।

नम्रता और अकड़

☆ वृक्षों में भी जो वृक्ष नम्र होता है वह अच्छा समझा जाता है और जो अकड़ा रहना है वह ठूंठ कहलाता है । नम्र वृक्ष में फल भी रसीले और मीठे होते हैं, जबकि अकड़े रहनेवाले वृक्ष के फल कटुक और खराब होते हैं ।

८६. सोमशर्म मुनिकी कथा

सर्वोत्तम धर्मका उपदेश करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर सोमशर्म मुनिकी कथा लिखी जाती है।

आलोचना, गर्हा, आत्मनिन्दा, व्रत उपवास, स्तुति और कथाएँ इनके द्वारा प्रमादको, असावधानीको नाश करना चाहिए। जैसे मंत्र, औषधि आदिसे विषका वेग नाश किया जाता है इसी सम्बन्धकी यह कथा है।

भारतके किसी हिस्सेमें बसे हुए पुण्ड्रक देशके प्रधान शहर देवी-कोटपुरमें सोमशर्म नामका ब्राह्मण हो चुका है। सोमशर्म वेद और वेदांग, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा और कला का अच्छा विद्वान् था। इसकी स्त्रीका नाम सोमिल्या था। इसके अग्निभूति और वायुभूति दो लड़के थे।

यहाँ विष्णुदत्त नामका एक और ब्राह्मण रहता था। इसकी स्त्रीका नाम विष्णुश्री था। विष्णुदत्त अच्छा धनी था। पर स्वभावका अच्छा आदमी न था। किसी दिन कोई खास जरूरत पड़ने पर सोमशर्मने विष्णुदत्तसे कुछ रुपया कर्ज लिया था। उसका कर्ज अदा न कर पाया था कि एक दिन सोमशर्मको किसी जैनमुनिके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो जानेसे वह मुनि हो गया। वहाँसे विहार कर वह कहीं अन्यत्र चला गया और दूसरे नगरों और गाँवोंमें धर्मका उपदेश करता हुआ एक बार फिर वह कोटपुरमें आया। विष्णुदत्तने तब इसे देखकर पकड़ लिया और कहा—साधुजी, आपके दोनों लड़के तो इस समय महा दरिद्र दशामें हैं। उनके पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं है वे मेरा रुपया नहीं दे सकते। इसलिये या तो आप मेरा रुपया दे दीजिये, या अपना धर्म बेच दीजिये। सोमशर्म मुनिके सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। वे क्या करें, इसकी उन्हें कुछ सूझ न पड़ी। तब उनके गुरु वीरभद्राचार्यने उनसे कहा—अच्छा तुम जाओ और धर्म बेचो! उनकी आज्ञा पाकर सोमशर्म मुनि मसानमें जाकर धर्म बेचने लगे। इस समय एक देवीने आकर उनसे पूछा—मुनिराज, जिस धर्मको आप बेच रहे हैं, भला, कहिये तो वह कैसा है? उत्तरमें मुनिने कहा—मेरा धर्म अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तरगुणोंसे

युक्त है तथा उत्तम-क्षमा, मोर्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग आकिचन और ब्रह्मचर्य इन दश भेद रूप है । धर्मका यह स्वरूप श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌ने कहा है । मुनि द्वारा अपने बेचे जानेवाले धर्मकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर वह देवी बहुत प्रसन्न हुई । उसने मुनिको नमस्कार कर धर्मकी प्रशसामे कहा—मुनिराज, आपने जो कहा वह बहुत ठीक है । यही धर्म ससारको वश करनेके लिए एक वशीकरण मत्र है, अमूल्य चिन्तामणि है, सुखरूप अमृतकी धारा है, और मनचाही वस्तुओके दुहने—देने के लिये कामधेनु है। अधिक क्या, किन्तु यह समझना चाहिये कि संसारमें जो-जो मनोहरता देख पड़ती है वह सब एक धर्महीका फल है । धर्म एक सर्वोत्तम अमोल वस्तु है । उसका मोल हो ही नहीं सकता । पर मुनिराज, आपको उस ब्राह्मणका कर्ज चुकाना है । आपका यह उपसर्ग दूर हो, इसलिये दीक्षा समय-केश लोच किये आपके बालोको उसे कर्जके बदले दिये देती हूँ । यह कहकर देवी उन बालोको अपनी दैवी-मायासे चमकते हुए बहुमूल्य रत्न बनाकर आप अपने स्थान पर चल दी । सच है, जैनधर्मका प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है, जो कि सदा ही सुख देनेवाला और देवो द्वारा पूजा किया जाता है ।

सबेरा होने पर विष्णुदत्त, सोमशर्म मुनिके तपका प्रभाव देखकर चकित रह गया । उसकी मुनि पर तब श्रद्धा हो गई । उसने नमस्कार कर उनकी प्रशंसा में कहा—योगिराज, सचमुच आप बड़े ही भाग्यशाली हैं । अपके सरीखा विद्वान् और धीर मैंने किसीको नहीं देखा । यह आपहीसे महात्माओंका काम है जो मोहपाश तोड़-तुड़ाकर इस प्रकार दु सह तपस्या कर रहे हैं । महाराज, आपकी मैं किन शब्दोमे तारीफ करूँ, यह मुझे नहीं जान पडता । आपने तो अपने जीवनको सफल बना लिया । पर हाय ! मैं पापी पापकर्मके उदयसे धनरूपी चोरो द्वारा ठगा गया । मैं अब इनके पैंचीले जालसे कैसे छूट सकूँगा । दयासागर, मुझे बचाइये । नाथ, जब तो मैं आप हीके चरणोकी सेवा करूँगा । आपकी सेवाको ही अपना ध्येय बनाऊँगा । तब ही कहीं मेरा भला होगा । इस प्रकार बडी देर तक विष्णुदत्तने सोमशर्म मुनिकी स्तुति की । अन्त मे प्रार्थना कर उनसे दीक्षा ले वह मुनि हो गया ।

जो विष्णुदत्त एक ही दिन पहले मुनिकी इज्जत, प्रतिष्ठा बिगाड़नेको हाथ धोकर उनके पीछा पड़ा था और मुनिको उपसर्ग कर जिसने पाप बाँधा था वही गुरुभक्तिसे स्वर्ग और मोक्षके सुखका पात्र हो गया । सच है, धर्मकी शरण ग्रहण कर सभी सुखी होते हैं । विष्णुदत्तके सिवा और भी बहुतेरे भव्यजन जैनधर्मका ऐसा प्रभाव देखकर जैनधर्मके प्रेमी हो गए और उस धनसे, जिसे देवीने मुनिके बालोंको रत्नोंके रूपमें बनाया था, कोटितीर्थ, नामका एक बड़ा ही सुन्दर जिनमन्दिर बनवा दिया. जिसमें धर्मसाधन कर भव्यजन सुख-शान्ति लाभ करते थे ।

जो बुद्धिरूपी धनके मालिक, बड़े विचारशील साधु-सन्त जिन भगवान् के द्वारा उपदेश किये, सारे संसारमें पूजे-माने जाने वाले, स्वर्ग-मोक्षके या ओर सब प्रकार सांसारिक सुखके कारण, संसारका भय मिटानेवाले ऐसे परम पवित्र तपको भक्तिसे ग्रहण करते हैं वे कभी नाश न होनेवाले मोक्षका सुखका लाभ करते हैं । ऐसे महात्मा योगीराज मुझे भी आत्मीक सच्चा सुख दें ।

"पूज्य कब"

☆ तपदोषों की निवृत्ति के लिए परम रसायन है ।

☆ मिट्टी भी तप कर पूज्य बनती है जब वह अग्नि की तपन को पार कर लेती है तभी आदर प्राप्त कर पाती है पहले कष्ट, फिर मिष्ट ।

८७. कालाध्ययनकी कथा

जिनका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है और ससारसमुद्रसे पार करनेवाला है, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर उचित कालमें शास्त्राध्ययन कर जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ।

जैनतत्वके विद्वान् वीरभद्र मुनि एक दिन सारी रात शास्त्राभ्यास करते रहे । उन्हे इस हालतमें देखकर श्रुतदेवी एक अहीरनीका वेष लेकर उनके पास आई । इसलिये कि मुनिको इस बातका ज्ञान हो जाय कि यह समय शास्त्रोके पढ़ने पढानेका नहीं है । देवी अपने सिर पर छाछकी मटकी रखकर और यह कहती हुई, कि लो, मेरे पास बहुत ही मीठी छाछ है, मुनिके चारो ओर घूमने लगी । मुनिने तब उसकी ओर देखकर कहा—अरी, तू बड़ी बेसमझ जान पड़ती है, कहीं पगली तो नहीं हो गई है बतला तो ऐसे एकान्त स्थानमे ओर सो भी रातमे कौन तेरी छाछ खरीदेगा ? उत्तरमे देवीने कहा—महाराज क्षमा कीजिये । मैं तो पगली नहीं हूँ, किन्तु मुझे आप ही पागल देख पडते हैं । नहीं तो ऐसे असमयमे, जिसमे पठन-पाठनकी मना है, आप क्यो शास्त्राभ्यास करते ? देवीका उत्तर सुनकर मुनिजीकी ऑखे खुलीं । उन्होने आकाशकी ओर नजर उठाकर देखा तो उन्हें तारे चमकते हुए देख पडे उन्हे मालूम हुआ कि अभी बहुत रात है । तब वे पढ़ना छोडकर सो गये ।

सबेरा होने पर वे अपने गुरु महाराजके पास गये और अपनी इस क्रियाकी आलोचना कर उनसे उन्होने प्रायश्चित्त लिया । अबसे वे शास्त्राभ्यासका जो काल है उसीमे पठन-पाठन करने लगे । बडी भक्तिसे उसने उनकी पूजा की । सच है, गुणवानोकी सभी पूजा करते हैं ।

इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्रका यथार्थ पालन कर वीरभद्र मुनिराज अन्त समयमे धर्म-ध्यानसे मृत्यु लाभ कर स्वर्गधाम सिधारे ।

भव्यजनोको भी उचित है कि वे जिन भगवान्‌के उपदेश किए, संसारको अपनी महत्तासे मुग्ध करनेवाले, स्वर्ग या मोक्षकी सर्वोच्च सम्पदाको देनेवाले, दु ख, शोक, कलक आदि आत्मा पर लगे हुए कीचडको धो-देनेवाले, ससारके पदार्थोका ज्ञान करानेमे दीयेकी तरह काम देनवाले और सब प्रकारके

ससारिक सुखके आनुषंगिक कारण ऐसे पवित्र ज्ञानको भक्तिसे प्राप्त कर मोक्षका अविनाशी सुख लाभ करे ।

☆ जो सुख के साथ प्राप्त हुआ ज्ञान है वह दुःख के आने पर पलायमान हो जाता है, कपूर के समान उड़ जाता है । और जो कष्ट । दुःख, झेलकर ज्ञान अर्जित किया जाता है, वह अनुकूल प्रतिकूल वातावरण में भी स्थाई बना रहता है ।

☆ परमार्थ की अभिव्यक्ति में शब्द बौने/निरर्थक से हो जाते हैं। अतः शब्दों के माध्यम से स्वयं जागें और परमार्थ की अभिव्यक्ति कर उसका रस पान करें ।

८८ अकालमें शास्त्राभ्यास करनेवालेकी कथा

संसार द्वारा पूजे जानेवाले और केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, ऐसे जिन भगवान्‌को नमस्कार कर असमयमे जो शास्त्राभ्यासके लिए योग्य नहीं है, शास्त्राभ्यास करनेसे जिन्हे उसका बुरा फ़ल भोगना पड़ा, उनकी कथा लिखी जाती है । इसलिए कि विचारशीलोको इस बातका ज्ञानहो कि असमयमे शास्त्राभ्यास करना अच्छा नहीं हैं, उसका बुरा फल होता है ।

शिवनन्दी मुनिने अपने गुरु द्वारा यद्यपि यह जान रक्खा था कि स्वाध्यायका समय–काल श्रवण नक्षत्रका उदय होनेके बाद माना गया है, तथापि कर्मो के तीव्र उदयसे वे अकालमें ही शास्त्राभ्यास किया करते थे । फल इसका यह हुआ कि मिथ्या समाधिमरण द्वारा मरकर उन्होने गगामे एक बड़े भारी मच्छकी पर्याय धारण की । सो ठीक ही है जिन भगवान्‌की आज्ञाका उल्लंघन करनेसे इस जीवको दुर्गतिके दु ख भोगने ही पडते हैं ।

एक दिन नदी किनारे पर एक मुनि शास्त्राभ्यास कर रहे थे । इस मच्छने उनके पाठको सुन लिया । उससे उसे जातिस्मरण हो गया । तब उसने इस बातका बहुत पछतावा किया कि हाय ! मैं पढ़कर भी मूर्ख बना रहा , जो जैनधर्मसे विमुख होकर मैंने पापकर्म बॉधा । उसीका यह फल हैं, जो मुझे मच्छ-शरीर लेना पड़ा । इस प्रकार अपनी निन्दा और अपने पापकर्मकी आलोचना कर उसने भक्तिसे सम्यक्त्व ग्रहण किया, जो कि सब जीवोंका हित करनेवाला है । इसके बाद वह जिन भगवान्‌की आराधना कर पुण्यके उदयसे स्वर्ग महर्द्धिक देव हुआ । सच है, मनुष्य धर्मकी आराधना कर स्वर्ग जाता है और पापी धर्मसे उलटा चलकर दुर्गतिमें जाता है । पहला सुख भोगता है और दूसरा दु ख उठाता है । यह जानकर बुद्धिवानोको उचित है, उनका कर्त्तव्य है कि वे जिनेन्द्र भगवान्‌के उपदेश किये धर्मकी भक्तिसे अपनी शक्तिके अनुसार आराधना करे, जो कि सब सुखो का देनेवाला है ।

सम्यग्ज्ञान जिसने प्राप्त कर लिया उसकी सारे ससारमे कीर्ती होती है, सब प्रकारकी उत्तम-उत्तम सम्पदाऍं उसे प्राप्त होती हैं, शान्ति मिलती है और वह पवित्रताकी साक्षात्प्रतिमा बन जाता है । इसलिए भव्यजनोको उचित

है कि वे जिन भगवान्‌के पवित्र ज्ञानको, जो कि देवों और विद्याधरों द्वा
पूजा-माना जाता है, प्राप्त करनेका यत्न करें ।

संसारी प्राणी आधार लेकर जीना चाहता है, जबकि यहाँ सब निराधार हैं, एक मात्र कर्म ही आधार है सबका, जिसके वशीभूत होने पर भी सभी निराधार हो जाते हैं । अतः यदि वास्तविक आधार लेकर ही निराधार/स्वाश्रित जीवन जीना चाहते हो तो कर्म का नहीं धर्म का, राग का नहीं वीतराग का आधार लीजिए, और जीवन में वास्तविक आधार को पाकर निराधार यानि कभी भी पुनः आधार की आवश्यकता नहीं पड़ेगी

☆ मात्र शुद्ध उच्चारण ही नहीं वरन् शुद्ध आचरण भी आवश्यक है ।

☆ कोई भी कार्य अच्छे संकल्प, अच्छी दृढ़ता व अच्छे उत्साह के साथ, प्रोत्साहन के साथ करने से सफल होते हैं ।

८९. विनयी पुरुषकी कथा

इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषो द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर विनयधर्मके पालनेवाले मनुष्यकी पवित्र कथा लिखी जाती है ।

वत्सदेशमे सुप्रसिद्ध कौशाम्बीके राजा धनसेन वैष्णव धर्म के माननेवाले थे । उनकी रानी धनश्री, जो बहुत सुन्दरी और विदुषी थी, जिनधर्म पालती थी । उसने श्रावकोके व्रत ले रक्खे थे । यहाँ सुप्रतिष्ठ नामका एक वैष्णव साधु रहता था । राजा इसका बड़ा आदर-सत्कार करते थे और यही कारण था कि राजा इसे स्वय ऊँचे आसन बैठाकर भोजन कराते थे । इसके पास एक जलस्तंभिनी नामकी विद्या थी । उसके यह बीच यमुनामें खडा रहकर ईश्वराधना किया करता था, पर डूबता न था । इसके ऐसे प्रभावको देखकर मूढ लोग बड़े चकित होते थे । सो ठीक ही है मूर्खोंको ऐसी मूर्खताकी क्रियाएँ पसन्द हुआ ही करती है ।

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे बसे हुए रथनूपुरके राजा विद्युत्प्रभ तो जैनी थे, श्रावकों के व्रतोके पालनेवाले थे और उनकी रानी विद्युद्वेगा वैष्णव धर्मकी माननेवाली थी । सो एक दिन ये राजा-रानी प्रकृतिकी सुन्दरता देखते और अपने मनको बहलाते कौशाम्बीकी ओर आ गये । नदी-किनारे पहुँच कर इन्होने देखा कि एक साधु बीच यमुनामें खडा रहकर तपस्या कर रहा है । विद्युत्प्रभने जान लिया कि यह मिथ्यादृष्टि है । पर उनकी रानी विद्युत्प्रभने रानीसे कहा—अच्छी बात है, प्रिये, आओ तो मैं तुम्हे जरा इसकी मूर्खता बतलाता हूँ । इसके बाद ये दोनो चाण्डालका वेष बना ऊपर किनारेकी ओर गये और मरे ढोरोका चमड़ा नदीमे धोने लगे । अपने इस निन्द्यकर्म द्वारा इन्होने साधुको अपवित्र कर दिया । उस साधुको यह बुरा लगा । सो वह इन्हें कुछ कह सुनकर ऊपरकी ओर चला गया । वहाँ उसने फिर नहाया धोया । सच है मूर्खताके वश लोग कौन काम नहीं करते । साधुकी यह मूर्खता देखकर ये भी फिर ओर आगे जाकर चमडा धोने लगे । इनकी बार-बार यह शैतानी देखकर साधुको बडा गुस्सा आया । तब वह और आगे चला गया ।

इसके पीछे हो ये दोनो भी जाकर फिर अपना काम करने लगे । गर्ज यह कि इन्होने उस साधुको बहुत ही कष्ट दिया । तब हार खाकर बेचारेको अपना जप-तप, नाम-धन ही छोड देना पड़ा । इसके बाद उस साधुको इन्होने अपनी विद्याके बलसे वनमे एक बड़ा भारी महल खड़ा कर देना, झूला बनाकर उस पर झूलना आदि अनेक अचम्भे डालनेवाली बातें बतलाई । उन्हें देखकर सुप्रतिष्ठ साधु बडा चकित हुआ । वह मनमे सोचने लगा कि जैसी विद्या इन चाण्डालोके पास है ऐसी तो अच्छे-अच्छे विद्याधरो या देवोंके पास भी न होगी । यदि यही विद्या मेरे पास भी होती तो मैं भी इनकी तरह बड़ी मौज मारता । अस्तु, देखें, इनके पास जाकर मैं कहूँकि ये अपनी विद्या मुझे भी दे दे । इसके बाद वह इनके पास आया और उनसे बोला—आप लोग कहाँसे आ रहे हैं ? आपके पास तो लोगोको चकित करनेवाली बड़ी-बड़ी करामाते हैं ! आपका वह विनोद देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । उत्तरमें विद्युत्प्रभ विद्याधरने कहा—योगीजी, आप मुझे नहीं जानते कि मैं चाण्डाल हूँ । मैं तो अपने गुरु महाराजके दर्शनके लिए यहाँ आया हुआ था । गुरुजीने खुश होकर मुझे जो विद्या दी है, उसीके प्रभावसे यह सब कुछ मैं करता हूँ । अब तो साधुजीके मुँहमे भी विद्यालाभके लिए पानी आ गया । उन्होंने तब उस चाण्डाल रूपधारी विद्याधरसे कहा—तो क्या कृपा करके आप मुझे भी यह विद्या दे सकते हैं, जिससे कि मैं भी फिर आपकी तरह खुशी मनाया करूँ । उत्तरमें विद्याधरने कहा—भाई, विद्याके देनेमें तो मुझे कोई हर्ज मालूम नहीं देता, पर वात यह है कि मैं ठहरा चाण्डाल और आप वेदवेदांगके पढ़े हुए एक उत्तम कुलके मनुष्य, तब आपका मेरा गुरु-शिष्य भाव नहीं बन सकता । और ऐसी हालतमें आपसे मेरा विनय भी न हो सकेगा और बिना विनयके विद्या आ नहीं सकती । हाँ यदि आप यह स्वीकार करें कि जहाँ मुझे देख पावे वहाँ मेरे पाँवोंमें पड़कर बड़ी भक्तिके साथ यह कहें कि प्रभो, आप हीकी चरणकृपासे मैं जीता हूँ ! तब तो मैं आपको विद्या दे सकता हूँ और तभी विद्या सिद्ध हो सकती है । बिना ऐसा किये सिद्ध हुई विद्या भी नष्ट हो जाती है । उसने यह सब बाते स्वीकार कर लीं । तब विद्युत्प्रभ विद्याधर इसे विद्या देकर अपने घर चला गया ।

इधर सुप्रतिष्ठ साधुको जैसे ही विद्या सिद्ध हुई, उसने उन सब लीलाओंको करना शुरू किया जिन्हे कि विद्याधरने किया था । सब बाते वैसी ही हुई देखकर सुप्रतिष्ठ बड़ा खुश हुआ । उसे विश्वास हो गया कि अब मुझे विद्या सिद्ध हो गई । इसके बाद वह भोजनके लिए राजमहल आया । उसे देरसे आया हुआ देखकर राजाने पूछा—भगवन्, आज आपको बड़ी देर लगी ? मैं बड़ी देरसे आपका रास्ता देख रहा हूँ । उत्तरमें सुप्रतिष्ठने मायाचारी से झूठ-मूठ ही कह दिया कि राजन्, आज मेरी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब देव आये थे । ये बडी भक्तिसे मेरी पूजा करके अभी गये हैं । यही कारण मुझे देरी लग जानेका है । और राजन् एक बात नई यह हुई कि मैं अब आकाशमें ही चलने-फिरने लग गया । सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही मे यह सब कौतुक देखनेकी उसकी मशा हुई । उसने तब सुप्रतिष्ठसे कहा—अच्छा तो महाराज, अब आप आइए और भोजन कीजिए । क्योकि बहुत देर हो चुकी है । आप वह सब कौतुक मुझे बतलाइगा । सुप्रतिष्ठ 'अच्छी बात है' कहकर भोजनके लिए चला आया ।

दूसरे दिन सबेरा होते ही राजा और उसके अमीर-उमराव वगैरह सभी सुप्रतिष्ठ साधुके मठमे उपस्थित हुए । दर्शकोका भी ठाठ लग गया । सबकी ऑखें और मन साधुकी ओर जा लगे कि वह अपना नया चमत्कार बतलावे । सुप्रतिष्ठ साधु भी अपनी करामात बतलानेको आरंभ करनेवाला ही था कि इतनमे वह विद्युत्प्रभ विद्याधर और उसकी स्त्री उसी चाण्डाल वेषमे वहीं आ धमके । सुप्रतिष्ठके देवता उन्हें देखते ही कूँच कर गये । ऐसे समय उनके आ जानेसे इसे उनपर बड़ी घृणा हुई । उसने मन ही मन घृणाके साथ कहा—ये दुष्ट इस समय क्यो चले आये ! उसका यह कहना था कि उसकी विद्या नष्ट हो गई । वह राजा वगैरहको अब कुछ भी चमत्कार न बतला सका और बडा शर्मिन्दा हुआ । तब राजाने 'ऐसा एक साथ क्यो हुआ' इसका सब कारण सुप्रतिष्ठसे पूछा । झख मारकर फिर उसे सब बाते राजासे कह देनी पडीं । सुनकर राजाने उन चाण्डालोको बडी भक्तिसे प्रणाम किया । राजा की यह भक्ति देखकर उन्होने वह विद्या राजाको दे दी । राजा उसकी

परीक्षा कर बडी प्रसन्नतासे अपने महल लौट गया । सो ठीक ही है विद्याका लाभ सभीकी सुख देनेवाला होता है ।

राजाकी भी परीक्षाका समय आया । विद्याप्राप्तिके कुछ दिनो बाद एक दिन राजा राज-दरबारमें सिंहासन पर बैठा हुआ था । राजसभा सब अमीर-उमरावोसे ठसा-ठस भरी हुई थी । इसी समय राजगुरु चाण्डाल वहाँ आया, जिसने कि राजाको विद्या दी थी । राजा उसे देखते ही बड़ी भक्तिसे सिंहासन परसे उठा और उसके सत्कारके लिए कुछ आगे बढ़कर उसने उसे नमस्कार किया और कहा—प्रभो, आप हीके चरणोंकी कृपासे मैं जीता हूँ । राजाकी ऐसी भक्ति और विनयशीलता देखकर विद्युत्प्रभ बड़ा खुश हुआ । उसने तब अपना खास रूप प्रगट किया और राजाको और भी कई विद्याएँ देकर वह अपने घर चला गया । सच है, गुरुओंके विनयसे लोगोंको सभी सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

इस आश्चर्यको देखकर धनसेन, विद्युद्वेगा तथा और भी बहुतसे लोगोने श्रावक-व्रत स्वीकार किये । विनयका इस प्रकार फल देखकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे गुरुओंका विनय, भक्ति निर्मल भावोंसे करें ।

जो गुरुभक्ति क्षणमात्रमें कठिनसे कठिन कामको पूरा कर देती है वही भक्ति मेरी सब क्रियाओकी भूषण बने । मैं उन गुरुओको नमस्कार करता हूँ कि जो ससार-समुद्रसे स्वंय तैरकर पार होते हैं और साथ ही और-और भव्यजानोको पार करते हैं ।

जिनके चरणोकी पूजा देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े महापुरुष करते हैं उन जिन भगवान्का, उनके रचे पवित्र शास्रोका और उनके बताये मार्ग पर चलनेवाले मुनिराजोंका जो हृदयसे विनय करते हैं, उनकी भक्ति करते हैं उनके पास कीर्ति, सुन्दरता, उदारता, सुख-सम्पत्ति और ज्ञान-आदि पवित्र गुण अत्यन्त पड़ोसी होकर रहते हैं । अर्थात् विनयके फलसे उन्हे सब गुण होते हैं ।

---

१०. अवग्रह-नियम लेनेवालेकी कथा

पुण्य कारण जिन भगवान् चरणोको नमस्कर कर उपाधानअवग्रहकी अर्थात् यह काम जबतक न होगा तबतक मैं ऐसी प्रतिज्ञाकरता हूँ, इस प्रकारका नियम कर जिसने फल प्राप्त किया, उसकी कथा लिखी जाती है, जो सुख की देनेवाली है ।

अहिछत्रपुरके राजा वसुपाल बडे बुद्धिमान् थे । जैनधर्म पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी । उनकी रानीका नाम वसुमती था । वसुमती भी अपने स्वामीके अनुरूप बुद्धिमती और धर्म पर प्रेम करनेवाली थी । वसुपालने एक बड़ा ही विशाल और सुन्दर 'सहस्रकूट' नामका जिनमन्दिर बनवाया । उसमे उन्होने श्रीपार्श्वनाथ भगवान्‌की प्रतिमा विराजमान की । राजाने प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको एक अच्छे होशियार लेपकारको बुलाया और प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको उससे कहा । राजाज्ञा पाकर चित्रकारने प्रतिमा पर बहुत सुन्दरतासे लेप चढ़ाया । पर रात होने पर वह लेप प्रतिमा परसे गिर पड़ा । दूसरे दिन फिर ऐसा ही किया गया । रातमे वह लेप भी गिर पड़ा । गर्ज यह कि वह दिनमे लेप लगाता और रातमें वह लेप भी गिर पड़ता । इस तरह उसे कई दिन बीत गये । ऐसा क्यों होता है, इसका उसे कुछ भी कारण न जान पड़ा । उससे् वह तथा राजा वगैरह बडे दुखी हुए । बात असलमे यह थी कि वह लेपकार मांस खाने वाला था । इसलिए उसकी अपवित्रतासे प्रतिमा पर लेप न ठहरता था । तब उसे लेपकारको एक मुनि द्वारा ज्ञान हुआ कि प्रतिमा अतिशयवाली है, कोई शासनदेवी या देव उसकी रक्षामें सदा नियुक्त रहते हैं । इसलिये जब तक यह कार्य पूरा हो तब तक तुझे मांसके न खानेका व्रत लेना चाहिए । लेपकारने वैसा ही किया । मुनिराजके पास उसने मांस न खाने का नियम लिया । इसके बाद जब उसने दूसरे दिन लेप किया तो अबकी बार वह ठहर गया । सच है, व्रती पुरुषोंके कार्यकी सिद्धि होती ही है । तब राजाने अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण देकर लेपकारका बड़ा आदर-सत्कार किया । जिस तरह इस लेपकारने अपने कार्यकी सिद्धिके लिए नियम किया उसी प्रकार और-और लोगोको तथा मुनियोंको भी ज्ञानप्रचार, शासन-प्रभावना आदि कामोंमें अवग्रह या प्रतिज्ञा करना चाहिए ।

वह जिनेन्द्र भगवान्‌का उपदेश किया ज्ञानरूपी समुद्र मुझे भी केवलज्ञानी—सर्वज्ञ बनावे, जो अत्यन्त पवित्र साधुओं द्वारा आत्म-सुखकी प्राप्तिके लिए सेवन किया जाता है और देव विद्याधर, चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े महापुरुष जिसे भक्तिसे पूजते हैं ।

☆ ग्रहण करने योग्य वस्तु जब तक पूर्णतः प्राप्त न हो जाए, तब तक भूलना नहीं चाहिए, और त्याग करने योग्य वस्तु को छोड़ने के उपरान्त भूल करके भी याद नहीं करना, तभी छोड़ने योग्य पूर्णतः छूटी मानी जाता है, और ग्रहण करने योग्य ग्रहण किया हुआ माना जाता है ।

९१. अभिमान करनेवालीकी कथा

निर्मल केवलज्ञान धारी जिन भगवान्‌को नमस्कार का मान करनेसे बुरा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा लिखी जाती है । इस कथाको सुनकर जो लोग मानके छोड़नेका यत्न करेगे वे सुख लाभ करेगे ।

बनारसके राजा मोरध्वज प्रजाका हित चाहनेवाले और बड़े बुद्धिमान् थे । इनकी रानीका नाम वसुमती था । वसुमती बड़ी सुन्दरी थी । राजाका इस पर अत्यन्त प्रेम था ।

गगाके किनारे पर पलास नामका एक गॉव बसा हुआ था । इसमे अशोक नामका एक गुवाल रहता था । यह गुवाल राजाको गॉवके लगानमे कोई एक हजार घीके भरे घड़े दिया करता था । इसकी स्त्री नन्दा पर इसका प्रेम न था । इसलिये कि वह बॉझ थी । और यह सच है, सुन्दर या गुणवान स्त्री भी बिना पुत्रके शोभा नहीं पाती है और न उस पर पतिका पूरा प्रेम होता है । वह फल रहित लताकी तरह निष्फल समझी जाती है । अपनी पहली स्त्रीको नि.सन्तान देखकर अशोक गुवालने एक और ब्याह कर लिया । इस नई स्त्रीका नाम सुनन्दा था । कुछ दिनो तक तो इन दोना सौतोंमे लोक-लाजसे पटती रही, पर जब बहुत ही लड़ाई-झगड़ा होने लगा तब अशोकने इनसे तंग आकर अपनी जितनी धन-सम्पत्ति थी उसे दोनोंके लिये आधी-आधी बॉट दिया । नन्दाको अलग घरमें रहना पड़ा और सुनन्दा अशोकके पास ही रही । नन्दामें एक बात बड़ी अच्छी थीं वह एक तो समझदार थी । दूसरे वह अपने दूध दुहनेके लिये बरतन वगैरहको बड़ा साफ रखती । उसे सफाई बड़ी पसन्द थी । इसके सिवा वह अपने नौकर गुवालो पर बडा प्रेम करती । उन्हे अपना नौकर न समझ अपने कुटुम्बकी तरह मानती । वह उनका बडा आदर-सत्कार करती । उन्हे हर एक त्यौहारोके मौको पर दान-मानादिसे बड़ा खुश रखती । इसलिए वे गुवाल लोग भी उसे बहुत चाहते थे और उसके कामोको अपना ही समझ कर किया करते थे । जब वर्ष पूरा होता तो नन्दा राज लगानके हजार घीके घड़ोमेसे अपना आधा हिस्सा पॉचसौ घड़े अपने स्वामीको प्रतिवर्ष दे दिया करती थी । पर सुनन्दामे ये सब बातें न थीं । उसे अपनी सुन्दरताका बड़ा

अभिमान था । इसके सिवा यह बड़ी शौकीन थी । साज-सिंगारमें ही उसका सब समय चला जाता था । वह अपने हाथोंसे कोई काम करना पसन्द न करती थी । सब नौकर-चाकरों द्वारा ही होता था । इस पर भी उसका अपने नौकरोंके साथ अच्छा बरताव न था । सदा उनके साथ वह माथा-फोड़ी किया करती थी । किसीका अपमान करती, किसीको गालियाँ देती और किसीको भला-बुरा कहकर झिटकारती । न वह उन्हें कभी त्यौहारों पर कुछ देकर प्रसन्न करती । गर्ज यह कि सब नौकर-चाकर उससे प्रसन्न न थे । जहाँ तक उनका वस चलता वे भी सुनन्दाको हानि पहुँचानेका यत्न करते थे । यहाँ तक कि वे जो गायोंको चराने जंगलमें ले जाते, वहाँ उनका दूध तक दुह कर पी लिया करते थे । इससे सुनन्दाके यहाँ पहले ही वर्षमें ही घी वहुत थोड़ा हुआ । वह राजलगानका अपना आधा हिस्सा भी न दे सकी । उसके इस आधे हिस्सेको भी वेचारी नन्दाने ही चुकाया । सुनन्दा की यह दशा देख कर अशोकने घरसे निकाल वाहर की । नन्दाको अपना गया अधिकार पीछा प्राप्त हुआ । पुण्यमे वह पीछा अशोक की प्रेमपात्र हुई । घर बार, धन-दौलतकी वह मालकिन हुई । जिस प्रकार नन्दा अपने घरगृहस्थीके कामको अच्छी तरह चलानेके लिये सदा दान-मानादि किया करती उसी प्रकार अनेक पारमार्थिक कामोंके लिये भव्यजनोंको भी अभिमान रहित होकर जैनधर्मकी उन्नतिके कार्योमें दान-मानादि करते रहना चाहिए । उससे वे सुखी होंगे और सम्यग्ज्ञान लाभ करेंगे ।

जो स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले जिन भगवान्को वड़ी भक्तिसे पूजा-प्रभावना करते हैं, भगवान्के उपदेश किये शास्त्रोंके अनुसार चल उनका सत्कार करते हैं, पवित्र जैनधर्म पर श्रद्धा-विश्वास करते हैं और सज्जन धर्मात्माओंका आदर सत्कार करते हैं वे संसार में सर्वोच्च यश लाभ करते हैं ओर अन्तमें कर्मोका नाश कर परम पवित्र केवलज्ञान—कभी नाश न होनेवाला सुख प्राप्त करते हैं ।

---

१२. निह्नव-असल बातको छुपानेवालेकी कथा

जिनके सर्व-श्रेष्ठ ज्ञानमे यह सारा संसार परमाणुके समान देख पड़ता है, उन सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर निह्नव—जिस प्रकार जो बात हो उसे उसी प्रकार न कहना, उसे छुपाना, इस सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

उज्जैन के राजा धृतिषेणकी रानी मलयावतीके चण्डप्रद्योत नामका एक पुत्र था । वह जैसा सुन्दर था वैसा ही गुणवान भी था । पुण्यके उदयसे उसे सभी सुख सामग्री प्राप्त थी ।

एक बार दक्षिण देशके वेनातट नगरमे रहनेवाले सोमशर्मा ब्राह्मणका कालसदीव नामका विद्वान् पुत्र उज्जैनमे आया । वह कई भाषाओका जाननेवाला था । इसलिये धृतिषेणने चण्डप्रद्योतको पढ़ानेके लिये उसे रख लिया । कालसंदीवने चण्डप्रद्योतको कई भाषाओका ज्ञान कराये बाद एक म्लेच्छ-अनार्यभाषाको पढ़ाना शुरू किया । इस भाषाका उच्चारण बड़ा ही कठिन था । राजकुमारको उसके पढ़नेमे बहुत दिक्कत पड़ा करती थी । एक दिन कोई ऐसा ही पाठ आया, जिसका उच्चारण बहुत क्लिष्ट था । राजकुमारसे उसका ठीक ठीक उच्चारण न बन सकता । कालसन्दीवने उसे शुद्ध उच्चारण करानेकी बहुत कोशिश की, पर उसे सफलता प्राप्त न हुई । इससे कालसन्दीवको कुछ गुस्सा आ गया । गुस्सेमें आकर उसने राजकुमारके एक लात मार दी । चण्डप्रद्योत था तो राजकुमार ही सो उसका भी कुछ मिजाज बिगड गया । उसने अपने गुरु महाराजसे तब कहा—अच्छा महाराज, आपने जो मुझे मारा है, मैं भी इसका बदला लिये बिना न छोड़ूँगा । मुझे आप राजा होने दीजिये, फिर देखिएगा कि मैं भी आपके इसी पॉवको काटकर ही रहूँगा । सच है, बालक कम-बुद्धि हुआ ही करते हैं । कालसन्दीव कुछ दिनोतक और यहॉ रहा, फिर वह यहॉसे दक्षिणकी ओर चला गया । उधर कालसन्दीवको एक दिन किसी मुनिका उपदेश सुननेका मौका मिला । उपदेश सुनकर उसे बडा वैराग्य हुआ । वह मुनि हो गया ।

इधर धृतिषेण राजा भी चण्डप्रद्योतको सब राज-काज सौंपकर साधु बन गया । राज्यकी बागडोर चण्डप्रद्योतके हाथमे आई । इसमे कोई सन्देह

नहीं कि चण्डप्रद्योतने भी राज्यशासन बड़ी नीतिके साथ चलाया । प्रजाके हितके लिये उसने कोई बात उठा न रखी ।

एक दिन चण्डप्रद्योत पर एक यवनराजका पत्र आया । भाषा उसकी अनार्य थी । उस पत्रको कोई राजकर्मचारी न बाँच सका । तब राजाने उसे देखा तो वह उससे बँच गया । पत्र पढ़कर राजाकी अपने गुरु कालसन्दीव पर बड़ी भक्ति हो गई । उसने बचपनकी अपनी प्रतिज्ञाको उसी समय भुला दिया । इसके बाद राजाने कालसन्दीवका पता-लगाकर उन्हें अपने शहर बुलाया और बड़ी भक्तिसे उनके चरणोंकी पूजा की । सच है, गुरुओंके वचन भव्यजनोंको उसी तरह सुख देनेवाले होते हैं जैसे रोगी को औषधि ।

कालसन्दीव मुनि यहाँ श्वेतसन्दीव नामके किसी एक भव्यको दीक्षा देकर फिर बिहार कर गये । मार्गमें पड़नेवाले शहरों और गाँवोंमें उपदेश करते हुए वे विपुलाचल पर महावीर भगवान्के समवशरणमें गये, जो कि बड़ी शान्ति देनेवाला था । भगवान्के दर्शन कर उन्हें बहुत शान्ति मिली । वन्दना कर भगवान्का उपदेश सुननेके लिये वे वहीं बैठ गये ।

श्वेतसन्दीव मुनि भी इन्हींके साथ थे । वे आकर समवशरणके बाहर आतापन योग द्वारा तप करने लगे । भगवान्के दर्शन कर जब महामण्डलेश्वर श्रेणिक जाने लगे तब उन्होंने श्वेतसन्दीव मुनिको देखकर पूछा—आपके गुरु कौन हैं, किनसे आपने यह दीक्षा ग्रहण की ? उत्तरमें श्वेतसंदीव मुनिने कहा—राजन्, मेरे गुरु श्रीवर्द्धमान् भगवान् है । इतना कहना था कि उनका सारा शरीर काला पड़ गया । यह देख श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने पीछे जाकर गणधर भगवान्से इसका कारण पूछा । उन्होंने कहा—श्वेतसन्दीवके असल गुरु हैं कालसंदीव, जो कि यहीं बैठे हुए हैं । उनका इन्होंने निह्नव किया—सच्ची बात न बतलाई । इसलिये उनका शरीर काला पड़ गया है । तब श्रेणिकने श्वेतसंदीवको समझा कर उनकी गलती उन्हें सुझाई और कहा—महाराज,आपकी अवस्थाके योग्य ऐसी बातें नहीं हैं । ऐसी बातोंसे पाप-बन्ध होता है । इसलिये आगेसे आप कभी ऐसा न करेंगे, यह मेरी आपसे प्रार्थना है । श्रेणिककी इस शिक्षाका श्वेतसंदीव मुनिके चित्त पर बडा गहरा असर पडा । वे अपनी भूल पर बहुत पछताये । इस

आलोचनासे उनके परिणाम बहुत उन्नत हुए। यहाँ तक कि उसी समय शुक्लध्यान-द्वार कर्मोका नाश कर लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया। वे सारे संसार द्वारा अब पूजे जाने लगे। अन्त मे अघातिया कर्मोको नष्ट कर उन्होने मोक्षका अनन्तसुख लाभ किया। श्वेतसदीव मुनिके इस वृत्तान्त से भव्यजनोको शिक्षा लेनी चाहिये कि वे अपने गुरु आदिका निह्नव न देनेवाले हैं, इसलिये सेवा करने योग्य हैं।

वे श्रीश्वेतसदीव मुनि मेरे बढ़ते हुए संसारकी-भव भ्रमण की शान्ति कर-मेरा संसारका भटकना मिटाकर मुझे कभी नाश न होनेवाला और अनन्त मोक्ष-सुख दे, जो केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्रके धारक हैं, भव्यजनोको हितकी ओर लगानेवाले हैं, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषो द्वारा पूज्य हैं, और अनन्तचतुष्टय-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यसे युक्त हैं तथा और भी अनन्त गुणोके समुद्र हैं।

☆ गुरु संकेत के द्वारा ही शिष्य को अपने सब कर्त्तव्य करते रहना चाहिए। इसी में शिष्य की कुशल शिष्यता है। अन्यथा गुरु शिष्य दोनों के सारे के सारे क्षण यूँ ही व्यर्थ चले जाते हैं, क्योंकि जिन क्षणों में गुरुने संकेत दिए और जिन क्षणों में शिष्य ने ग्रहण किए, लेकिन उनका सदुपयोग नहीं किया, तो वे क्षण गुरु और शिष्य दोनों के लिए व्यर्थ ठहरते हैं।

१३. अक्षरहीन अर्थकी कथा

जिन भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर अक्षरहीन अर्थकी कथा लिखी जाती है ।

मगधदेशकी राजधानी राजगृहके राजा जब वीरसेन थे, उस समयकी यह कथा है । वीरसेनकी रानीका नाम वीरसेना था । इनके एक पुत्र हुआ, उसका नाम रक्खा गया सिंह । सिंहको पढ़ानेके लिए वीरसेन महाराजने सोमशर्मा ब्राह्मणको रक्खा । सोमशर्मा सब विषयोंका अच्छा विद्वान् था ।

पोदनपुरके राजा सिंहरथके साथ वीरसेनकी बहुत दिनोंसे शत्रुता चली आती थी । सो मौका पाकर वीरसेनने उस पर चढ़ाई कर दी । वहाँसे वीरसेन अपने यहाँ एक राज्य-व्यवस्थाकी बावत पत्र लिखा । और-और समाचारोंके सिवा पत्रमें वीरसेनने एक यह भी समाचार लिख दिया था कि राजकुमार सिंहके पठन-पाठनकी व्यवस्था अच्छी तरह करना । इसके लिए उन्होंने यह वाक्य लिखा था कि "सिंहो ध्यापयितव्यः" । जब यह पत्र पहुँचा तो इसे एक अर्धदग्धने बाँचकर सोचा—'ध्यै' धातु का अर्थ है स्मृति या चिन्ता करना । इसलिए अर्थ हुआ कि 'राजकुमार पर अब राज्य- चिन्ताका भार डाला जाय'। उसे अब पढ़ाना उचित नहीं । बात यह थी कि उक्त वाक्यके पृथक् पद करनेसे—'सिंहः अध्यापयितव्यः' ऐसे पद होते हैं और इनका अर्थ होता है—सिंहको पढ़ाना, पर उस बाँचनेवाले अर्धग्धने इस वाक्यके—'सिंहः ध्यापयितव्य" ऐसे पद समझकर इसके सन्धिस्थ अकार पर ध्यान न दिया और केवल 'ध्यै' धातुसे बने हुए 'ध्यापयितव्यः' का चिन्ता अर्थ करके राजकुमारका लिखना-पढ़ना छुड़ा दिया । व्याकरणके अनुसार तो उक्त वाक्यके दोनों ही तरह पद होते हैं और दोनों ही शुद्ध हैं, पर यहाँ केवल व्याकरणकी ही दरकार न थी । कुछ अनुभव भी होना चाहिए था। पत्र बाँचनेवालेमें इस अनुभवकी कमी होनेसे उसने राजकुमारका पठन-पाठन छुड़ा दिया । इसका फल यह हुआ कि जब राजा आये और अपने कुमारका पठन-पाठन छूटा हुआ देखा तो उन्होंने उसके कारण की तलाश की । यथार्थ बात मालूम हो जाने पर उन्हे उस अर्धदग्ध—मूर्ख पत्र बाँचनेवाले पर बड़ा गुस्सा आया । उन्होंने इस

मूर्खताकी उसे बड़ी कड़ी सजा दी । इस कथासे भव्यजनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वे कभी ऐसा प्रमाद न करें, जिससे कि अपने कार्यको किसी भी तरहकी हानि पहुँचे ।

जिस प्रकार गुणहीन औषधिसे कोई लाभ नहीं होता, वह शरीरके किसी रोगको नहीं मिटा सकती; उसी तरह अक्षर रहित शास्त्र या मन्त्र वगैरह भी लाभ नहीं पहुँचा सकते । इसलिए बुद्धिमानोको उचित है कि वे सदा शुद्ध रीतिसे शास्त्राभ्यास करें—उसमें किसी तरहका प्रमाद न करें, जिससे कि हानि होनेकी संभावना है ।

☆ शरीर एक शास्त्रवत् है, अगर सही स्वाध्याय करने की कला हो तो ।

☆ जो व्यक्ति हित के पथ पर नहीं चलता, वह दूसरों का हित नहीं कर सकता, मात्र हित की बात कर सकता है, हित से मुलाकात नहीं करा सकता । हित की बात करना अलग है, और हित से मुलाकात करना अलग बात है । मुलाकात में हित का साक्षात्कार है, बात में नहीं ।

१४. अर्थहीन वाक्यकी कथा

गर्भ, जन्म तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे पॉच कल्याणोमें स्वर्गके देवोने आकर जिनकी बड़ी भक्तिसे पूजा की, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर अर्थहीन अर्थात् उलटा अर्थ करनेके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

वसुपाल अयोध्याके राजा थे । उनकी रानीका नाम वसुमती था । इनके वसुमित्र नामका एक बुद्धिमान् पुत्र था । वसुपालने अपने पुत्रके लिखने-पढ़नेका भार एक गर्ग नामके विद्वान् पंडितको सौंपकर उज्जैनके राजा वीरदत्त पर चढ़ाई कर दी । कारण वीरदत्त हर समय वसुपालका मानभंग किया करता था । और उनकी प्रजाको भी कष्ट दिया करता था । वसुपाल उज्जैन आकर कुछ दिनो तक शहरका घेरा डाले रहे । इस समय उन्होंने अपनी राज्य-व्यवस्थाके सम्बन्धका एक पत्र अयोध्या भेजा । उसीमें अपने पुत्रके बाबत उन्होंने लिखा—

''पुत्रोध्यापयितव्योसौ वसुमित्रोति सादरम् ।
शालिभक्तं मसिस्पृक्तं सर्पियुक्तं दिनं प्रति ।।
गर्गोध्यायकस्योच्चैर्दीयते भोजनाय च ।''

इसका भाव यह है—वसुमित्रके पढ़ाने-लिखानेका प्रबन्ध अच्छा करना, कोई त्रुटि न करना और उसके पढ़ानेवाले पंडितजीको खाने-पीनेकी कोई तकलीफ न हो—उन्हे घी, चावल, दूध-भात, वगैरह खानेको दिया करना ।" पत्र पहुँचा । बॉचानेवालने उसे ऐसा ही बॉचा । पर श्लोकमे 'मसस्पृिक्त एक शब्द है । इसका अर्थ करनेमे वह गल्ती कर गया । उसने इसे 'शालिभक्तं' का विशेषण समझ यह अर्थ किया कि घी, दूध और मसि[१] मिले चावल पंडितजीको खानेको देना । ऐसा ही हुआ ।

१. श्लोकमे 'मसिस्पृक्त' शब्द है. उससे ग्रन्थकारका क्या मतलब है यह समझमे नहीं आता । पर वह ऐसी जगह प्रयोग किया गया है कि उसे "शालिभक्त" का विशेषण न किये गति ही नहीं हैं । आराधना कथाकोशकी छन्दोबन्ध भाषा बनानेवाले पडित वख्तावरमल उक्त श्लोकोंकी भाषा यो करते हैं—

"सुत वसुमित्र पढ़ाइयो नित्त, सर्वनाम पाठक जो पवित्त ।
ताकि भोजना तंदुल घीव, लिखन हेत मसि देव सदीव ॥"

पंडित वख्तावरमलजीने 'मसिस्पृक्त" शब्दका अर्थ किया है–उपाध्यायको लिखनेको स्याही देना । यह उन्होने कैसे ही किया हो, पर उस शब्दमे ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि यह अर्थ किया जा सके । और यदि ग्रन्थकारका भी इसी अर्थसे मतलब हो तो कहना पड़ेगा कि उनकी रचना शक्ति बड़ी ही शिथिल थी । हमारा यह विश्वास केवल इसी डेढ़ श्लोकसे ही ऐसा नहीं हुआ, किन्तु इतने बड़े ग्रन्थमे जगह-जगह, श्लोक-श्लोकमे ऐसी ही शिथिलता देख पड़ती है । हॉ यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकारने इतना बड़ा ग्रंथ बना जरूर लिया, पर हमारे विश्वासके अनुसार उन्हे ग्रथकी साहित्यसुन्दरता, रचना सुन्दरता आदि बातोमे बहुत थोड़ी भी सफलता शायद ही प्राप्त हुई हो ! इस विषयका एक पृथक लेख लिखकर हम पाठकोकी सेवामें उपस्थित करेगे, जिससे वे हमारे कथनमें कितना तथ्य है, इसका ठीक-ठीक पता पा सकेंगे ।

२. 'मसि' का अर्थ स्याही प्रसिद्ध है । प० बख्तावरमलजीने भी स्याही अर्थ किया है । पर ग्रथकार इसका अर्थ करते हैं–कोयला' ।

देखिए–

मसिर्घृत सुभक्तं च दीयते भोजनालक्षणे ।
चूर्णीकृत्य ततोऽगार घृतभक्तेन मिश्रितम् ॥ दत्त तस्मै इति ।

स्याही काली होती है और कोयला भी काला, शायद इसी रंगकी समानतासे ग्रन्थकारने कोयलेकी जगह मसिका प्रयोग कर दिया होगा ? पर है आश्चर्य ! ग्रन्थकारने इस श्लोकमे मसि शब्दको अलग लिखा है, पर ऊपरके श्लोकमे आये हुए 'मसिस्पृक्तं' शब्दका ऐस जुदा अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता । ग्रन्थकारकी कमजोरीकी हद है, जो उनकी रचना इतनी शिथिल देख पड़ती है ।

जब बेचारे पडितजी भोजन करनेको बैठते तब चावलोमे घी वगैरहके साथ थोडा कोयला भी पीसकर मिला दिया जाया करता था ।

जब राजा विजय प्राप्त कर लौटे तव उन्होंने पंडितजीसे कुशल समाचार उत्तरमे पूछा । उत्तरमें पंडितजीने कहा—राजाधिराज, आपके पुण्य प्रसादसे मैं हूँ तो अच्छी तरह, पर खेद है कि आपके कुल परम्पराकी रीतिके अनुसार मुझसे मसि-कोयला नहीं खाया जा सकता । इसलिए अब क्षमा कर आज्ञा दें तो बड़ी कृपा हो । राजाको पंडितजीकी बातका वड़ा अचम्भा हुआ । उनकी समझमें न आया कि बात क्या है । उन्होंने फिर उसका खुलासा पूछा । जब सब बातें उन्हें जान पड़ीं तब उन्होंने रानीसे पूछा—मैंने तो अपने पत्रमें ऐसी कोई बात न लिखी थी, फिर पंडितजीको ऐसा खानेको दिया जाकर क्यों तंग किया जाता था ? रानीने राजाके हाथमे उनका लिखा हुआ पत्र देकर कहा—आपके बॉचनेवाले ने हमें यही मतलब समझाया था । इसलिए यह समझकर, कि ऐसा करनेसे राजा साहबका कोई विशेष मतलब होगा, मैंने ऐसी व्यवस्था की थी । सुनकर राजाको बड़ा गुस्सा आया । उन्होंने पत्र बॉचनेवालेको उसी समय देश निकाले की सजा देकर उसे अपने शहर वाहर करवा दिया । इसलिए बुद्धिवानोको उचित है कि वे लिखने-बॉचनेमें ऐसा प्रमाद का अर्थ कर अनर्थ न करें ।

यह विचार कर जो पवित्र आचरणके धारी और ज्ञान जिनका धन है ऐसे सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये हुए, पुण्यके कारण और यश तथा आनन्दको देनेवाले ज्ञान—सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करनेका भक्तिपूर्वक यत्न करेंगे वे अनन्तज्ञानरूपी लक्ष्मीका सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे ।

★ कर्म सिद्धान्त के रहस्य को समझने के लिए, अध्ययन करने के लिए प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति भी अपना पूरा जीवन खपा दे, तो भी अधूरा रहेगा ।

९५. व्यंजनहीन अर्थकी कथा

निर्मल केवलज्ञानके धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करनेवालेकी कथा लिखी जाती है ।

कुरुजागल देशकी राजधानी हस्तिनापुरके राजा महापद्म थे । ये बड़े धर्मात्मा और जिन भगवान्‌के सच्चे भक्त थे । इनकी रानीका नाम पद्मश्री था । पद्मश्री सरल स्वभाववाली थी, सुन्दरी थी और कर्मोंके नाश करनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत उपवास आदि पुण्यकर्म निरन्तर किया करती थी । मतलब यह कि जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी ।

सुरम्य देशके पोदनापुरका राजा सिहनाद और महापद्ममे कई दिनोकीशत्रुता चली आ रही थी । इसलिए मौका पाकर महपद्मने उस पर चढ़ाई कर दी । पोदनापुरमें महापद्मनेएक 'सहस्रकूट' नामसे प्रसिद्ध जिनमन्दिर देखा । मन्दिरकी हजार खम्भोवाली भव्य और विशाल इमारत देखकर माहपद्म बड़े खुश हुए । इनके हृदयमे भी धर्मप्रेमका प्रवाह बहा । अपने शहरमें भी एक ऐसे ही सुन्दर मन्दिरके बनवानेकी इनकी भी इच्छा हुई । तब उसी समय इन्होंने अपनी राजधानीमे पत्र लिखा । उसमे इन्होंने लिखा—

"महास्तंभसहस्रस्य कर्त्तव्यः संग्रहो ध्रवम् ।"

अर्थात्—बहुत जल्दी बड़े-बड़े एक हजार खम्भे इकट्‌ठे करना ।" पत्र बॉचनेवालेने इस भ्रमसे पड़ा—

"महास्तंभसहस्रस्य कर्त्तव्य· संग्रही ध्रुवम् । 'स्तभ' शब्दको ्'स्तभ' समझकर उसने खम्भेकी जगह एक हजार बकरोको इकट्‌ठा करनेको कहा । ऐसा ही किया गया । तत्काल एक हजार बकरे मॅगवाये जाकर वे अच्छे खांने पिलाने द्वारा पाले जाने लगे ।

जब महाराज लौटकर वापिस आये तो उन्होंने अपने कर्मचारियोसे पूछा कि मैंने जो आज्ञा की थी, उसकी तामील की गई ? उत्तरमें उन्होंने 'जी हॉ' कहकर उन बकरोको महाराजाको दिखलाया । महापद्म देखकर सिरसे पैर तक जल उठे । उन्होने गुस्सा होकर कहा—मैंने तो तुम्हें एक हजार खम्भो

को इकट्ठा करनेको लिखा था, तुमने वह क्या किया ? तुम्हारे इस विचारकी सजा मैं तुम्हें जीवनदण्ड देता हूँ । महापद्मकी ऐसी कठोर सजा सुनकर वे बेचारे वड़े घबराये ! उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज, इसमे हमारा तो कुछ दोष नहीं हैं । हमे तो जैसा पत्र बाँचनेवालेने कहा, वैसा ही हमने किया । महाराजने तब उसी समय पत्र बाँचनेवालेको बुलाकर उसके इस गुरुत्तर अपराधको जैसी चाहिए वैसी सजा की । इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे ज्ञान, ध्यान आदि कामोमे कभी ऐसा प्रमाद न करें । क्योकि प्रमाद कभी सुखके लिए नहीं होता ।

जो सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये पवित्र और पुण्यमय ज्ञानका अभ्यास करेगे वे फिर मोह उत्पन्न करनेवाले प्रमादको न कर सुख देनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवासादि धार्मिक कार्मोमे अपनी बुद्धिको लगाकर केवलज्ञानका अनन्तसुख प्राप्त करेगे ।

☆ आज विश्व में वित्त ज्यादा होने विद् यानी ज्ञान का अवमूल्यन होता चला जा रहा है यही कारण है कि आज जिनवाणी की सत्य पहचान नहीं हैं, और उसका आदर भी नहीं है।

☆ जिन लिंग धारण करके जिनवाणी की सेवा करना सर्वोत्तम सेवा है ।

९६. धरसेनाचार्यकी कथा

उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर, जिनका कि केवलज्ञान एक सर्वोच्च नेत्रकी उपमा धारण करनेवाला है, न्यूनाधिक अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धरसेनाचार्यकी कथा लिखी जाती है ।

गिरनार पर्वतकी एक गुफामे श्रीधरसेनाचार्य, जो कि जैनधर्मरूप समुद्रके लिये चन्द्रमाकी उपमा धारण करनेवाले हैं, निवास करते थे । उन्हे निमित्तज्ञानसे जान पड़ा कि उनकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है । तब उन्हे दो ऐसे विद्यार्थियोंकी आवश्यकता पडी कि जिन्हे वे शास्त्रज्ञानकी रक्षाके लिए कुछ अंगादिका ज्ञान करा दे । आचार्यने तब तीर्थयात्राके लिए आन्ध्रदेशके वेनातट नगरमे आये हुए संघाधिपति महासेनाचार्यको एक पत्र लिखा । उसमे उन्होने लिखा–

"भगवान् महावीरका शासन अचल रहे, उसका सब देशोंमें प्रचार हो । लिखनेका कारण यह है कि इस कलियुगमें अंगादिका ज्ञान यद्यपि न रहेगा तथापि शास्त्रज्ञानकी रक्षा हो, इसलिये कृपाकर आप दो ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थियोको मेरे पास भेजिये, जो बुद्धिके बडे तीक्ष्ण हों, स्थिर हो, सहनशील हों और जैनसिद्धान्तका उद्धार कर सके ।

आचार्य ने पत्र देकर एक ब्रह्मचारीको महासेनाचार्यके पास भेजा । महासेनाचार्य उस पत्रको पढ़कर बहुत खुश हुए । उन्होंने तब अपने सघमें से पुष्पदत्त और भूतबलि ऐसे दो धर्मप्रेमी और सिद्धान्तके उद्धार करनेमें समर्थ मुनियोंको बड़े प्रेमके साथ धरसेनाचार्यके पास भेजा । ये दोनो मुनि जिस दिन आचार्यके पास पहुँचने वाले थे, उसकी पिछली रातको धरसेनाचार्यको एक स्वप्न देख पड़ा । स्वप्नमें उन्होने दो हृष्टपुष्ट, सुडौल और सफेद बैलोको बड़ी भक्तिसे अपने पॉवोमें पडते देखा । इस उत्तम स्वप्नको देखकर आचार्यको जो प्रसन्नता हुई वह लिखी नहीं जा सकती । वे ऐसा कहते हुए, कि सब सन्देहोके नाश करनेवाली श्रुतदेवी–जिनवाणी सदा काल इस ससारमें जल लाभ करे, उठ बैठे । स्वप्नका फल उनके विचारनुसार ठीक निकला । सबेरा होते ही दो मुनियोने जिनकी कि उन्हे चाह थी, आकर आचार्यके

पॉवोमे बडी भक्तिके के साथ अपना सिर झुकाया और आचार्यकी स्तुति की । आचार्यने तब उन्हे आशीर्वाद दिया—तुम चिरकाल जीकर महावीर भगवान्के पवित्र शासनकी सेवा करो । अज्ञान और विषयोके दास बने संसारी जीवोको ज्ञान देकर उन्हे कर्त्तव्यकी ओर लगाओं । उन्हे सुझाओ कि अपने धर्म और अपने भाइयोके प्रति जो उनका कर्त्तव्य है उसे पूरा करे ।

इसके बाद आचार्यने इन दोनों मुनियोंको दो तीन दिन तक अपने पास रक्खा और उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्त्तव्य बुद्धिका परिचय प्राप्त कर दोनोंको दो विद्याएँ सिद्ध करनेको दीं । आचार्यने इनकी परीक्षाके लिये विद्या साधनेके मन्त्रोंके अक्षरोको कुछ न्यूनाधिक कर दिया था । आचार्यकी आज्ञानुसार ये दोनो इसी गिरनार पर्वतके एक पवित्र और एकान्त भागमे भगवान् नेमिनाथकी निर्वाण शिला पर पवित्र मनसे विद्या सिद्ध करनेको बैठे । मंत्र साधनकी अवधि जब पूरी होनेको आई तब दो देवियॉ इनके पास आई । इन देवियोंमें एक देवी तो ऑखोसे अन्धी थी । और दूसरी के दॉत बड़े और बाहर निकले हुए थे । देवियोके ऐसे असुन्दर रूप को देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ । इन्होंने सोचा देवोंका तो ऐसा रूप होता नहीं, फिर यह क्यो ? तब इन्होने मत्रोंकी जॉच की, मत्रों को व्याकरणसे उन्होंने मिलाया कि कहीं उनमे तो गल्ती न रह गई हो ? इनका अनुमान सच हुआ । मंत्रोकी गल्ती इन्हे भास गई । फिर इन्होने उन्हें शुद्ध कर जपा । अबकी बार दो देवियॉ सुन्दर वेष में इन्हें देख पड़ीं । गुरुके पास आकर तब इन्होंने अपना सब हाल कहा । धरसेनाचार्य इनका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए । आचार्यने इन्हें सब तरह योग्य पा फिर खूब शास्त्राभ्यास कराया । आगे चलकर यही दो मुनिराज गुरुसेवाके प्रसादसे जैनधर्मके धुरन्धर विद्वान् बनकर सिद्धान्तके उद्धारकर्त्ता हुए । जिस प्रकार इन मुनियों ने शास्त्रोका उद्धार किया उसी प्रकार अन्य धर्मप्रेमियोको भी शास्त्रोद्धार या शास्त्रप्रचार करना उचित है ।

श्रीमान् धरसेनाचार्य और जैनसिद्धान्तके समुद्र श्री पुष्पदत्त और भूतबलि आचार्य मेरी बुद्धिको स्वर्गमोक्षका सुख देनेवाले पवित्र जैनधर्ममे लगावे, जो जीव मात्रका हित करनेवाले और देवो द्वारा पूजा किये जाते हैं ।

---

१७. सुव्रत मुनिराजकी कथा

देवो द्वारा जिनके पॉव पूजे जाते हैं, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर सुव्रत मुनिराजकी कथा लिखी जाती है ।

सौराष्ट्र देशकी सुन्दर नगरी द्वारकामे अन्तिम नारायण श्रीकृष्णका जन्म हुआ । श्रीकृष्णकी कई स्त्रियॉ थीं, पर उन सबमे सत्यभामा बड़ी भाग्यवती थी । श्रीकृष्णका सबसे अधिक प्रेम इसी पर था । श्रीकृष्ण अर्धचक्री थे, तीन खण्डके मालिक थे । हजारो राजे महाराजे इनकी सेवामे सदा उपस्थित रहा करते थे ।

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान्के दर्शनार्थ समवशरण में जा रहे थे । रास्तेमें इन्होने तपस्वी श्रीसुव्रत मुनिराजको सरोग दशामें देखा । सारा शरीर उनका रोगसे कष्ट पा रहा था । उनकी यह दशा श्रीकृष्णसे न देखी गई । धर्मप्रेमसे उनका हृदय अस्थिर हो गया । उन्होने उसी समय एक जीवक नामके प्रसिद्ध वैद्यको बुलाया और मुनिको दिखलाकर औषधिके लिये पूछा । वैद्यके कहे अनुसार सब श्रावकोके घरोमे उन्होंने औषधि-मिश्रित लड्डुओके बनवानेकी सूचना करवा दी । थोड़े ही दिनोमें इस व्यवस्थासे मुनिको आराम हो गया, सारा शरीर फिर पहले सा सुन्दर हो गया । इस औषधिदानके प्रभावसे श्रीकृष्णके तीर्थकर-प्रकृतिका बन्ध हुआ । सच है, सुखके कारण सुपात्रदानसे संसारमे सत्पुरुषोंको सभी कुछ प्राप्त होता है ।

निरोग अवस्था मे सुव्रत मुनिराजको एक दिन देखकर श्रीकृष्ण बड़े खुश हुए । इसलिये कि उन्हे अपने काममे सफलता प्राप्त हुई । उनसे उन्होने पूछा—भगवन्, अब अच्छे तो हैं ? उत्तरमे मुनिराजने कहा—राजन्, शरीर स्वभाव हीसे अपवित्र, नाश होनेवाला और क्षण-क्षणमे अनेक अवस्थाओको बदलनेवाला है, इसमे अच्छा और बुरापन क्या है ? पदार्थोका जैसा परिवर्तन स्वभाव है उसी प्रकार यह कभी निरोग और कभी सरोग हो जाया करता है । हो, मुझे न इसके रोगी होनेमे खेद है और न निरोग होनेमे हर्ष । मुझे तो अपने आत्मासे काम, जिसे कि मैं प्राप्त करनेमे लगा हुआ हूँ और जो मेरा परम कर्त्तव्य है। सुव्रत योगिराजकी शरीरसे इस प्रकार निस्पृहता देखकर

श्रीकृष्णको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होने मुनिको नमस्कार कर उनकी बड़ी प्रशसा की।

पर जब मुनिकी यह निस्पृहता जीवक वैद्यके कानोंमें पहुँची तो उन्हें इस बातका बड़ा दुःख हुआ, बल्कि मुनि पर उन्हें अत्यन्त घृणा हुई, कि मुनिका मैंने इतना उपकार किया तब भी उन्होने मेरे सम्बन्धमे तारीफका एक शब्द भी न कहा ! इससे उन्होंने मुनिको बड़ा कृतघ्न समझ उनकी बहुत निन्दा की, बुराई की। इस मुनिनिन्दासे उन्हे बहुत पापका बन्ध हुआ। अन्तमें जब उनकी मृत्यु हुई तब वे इस पापके फलसे नर्मदा के किनारे पर एक बन्दर हुए। सच है, अज्ञानियोको साधुओंके आचार-विचार, व्रतनियमादिका कुछ ज्ञान तो होता नहीं है। व्यर्थ उनकी निन्दा-बुराई कर वे पापकर्म बॉध लेते हैं। इससे उन्हें दुःख उठाना पड़ता है।

एक दिनकी बात है कि यह जीवक वैद्यका जीव बन्दर जिस वृक्ष पर बैठा हुआ था, उससे नीचे यही सुब्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे। इस समय उस वृक्षकी एक टहनी टूट कर मुनि पर गिरी। उसकी तीखी नोंक जाकर मुनिके पेटमे घुस गई। पेटका कुछ हिस्सा चिरकर उससे खून बहने लगा। मुनि पर जैसे ही उस बन्दरकी नजर पड़ी उसे जातिस्मरण हो गया। वह पूर्व जन्मकी शत्रुता भूलकर उसी समय दौड़ा गया और थोड़ी ही देरमे बहुत से बन्दरोंको बुला लाया। उन सबने मिलकर उस डालीको बड़ी सावधनीसे खींचकर निकाल लिया। और वैद्यके जीवने पूर्व जन्मके संस्कारसे जंगलसे जड़ी-बूटी लाकर उसका उस मुनिके घाव पर निचोड़ दिया। उससे मुनिको शान्ति मिली। इस बन्दरने भी इस धर्मप्रेमसे बहुत पुण्यबंध किया। सच है, पूर्व जन्मोंमे जैसा अभ्यास किया जाता है, जैसा पूर्व जन्मका संस्कार होता है दूसरे जन्मोंमें भी उसका संस्कार बना रहता है और प्रायः जीव वैसा ही कार्य करने लगता है। बन्दरमें—एक पशुमे इस प्रकार दयाशीलता देखकर मुनिराजने अवधिज्ञान द्वारा तो उन्हे वैद्यके जीवके जन्मका सब हाल ज्ञात हो गया। उन्होंने तब उसे भव्य समझकर उसके पूर्वजन्मकी सब कथा उसे सुनाई और धर्मका उपदेश किया। मुनिकी कृपासे धर्मका पवित्र उपदेश सुनकर धर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गई। उसने भक्तिसे सम्यक्त्व-व्रत पूर्व अणुव्रतोंको

ग्रहण किया । उन्हे उसने बड़ी अच्छी तरह पाला भी । अन्तमें वह सात दिनका संन्यास ले मरा । इस धर्मके प्रभावसे वह सौधर्मस्वर्गमे जाकर देव हुआ । सच है, जैनधर्मसे प्रेम करनेवालोको क्या प्राप्त नहीं होता । देखिए, यह धर्मका ही तो प्रभाव था जिससे कि एक बन्दर—पशु देव हो गया ! इसलिये धर्म या गुरुसे बढ़कर ससारमे कोई सुखका कारण नहीं है ।

वह जैनधर्म जयलाभ करे, संसारमें निरन्तर चमकता रहे, जिसके प्रसादसे एक तुच्छ प्राणी भी देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषोकी सम्पत्ति लाभ कर-उसका सुख भोगकर अन्तमे मोक्षश्रीका अनन्त, अविनाशी सुख प्राप्त करता है । इसलिये आत्महित चाहनेवाले बुद्धिमानोको उचित है , उनका कर्त्तव्य है कि वे मोक्षसुखके लिये परम पवित्र जैनधर्मके प्राप्त करनेका ओर प्राप्त कर उसके पालनेका सदा यत्न करे ।

आचार्यों ने अपनी मांगलिक लेखनी से शास्त्रों की रचना करके लिखा है, कि एक आचार्य परमेष्ठी अपने जीवनकाल में तपस्या के माध्यम से, शिक्षा-दीक्षा के माध्यम से धर्म की जो प्रभावना करते हैं, उसका छटवॉ भाग उस क्षेत्र के नेता (राजा) को प्राप्त हो जाता है । उन लोगों का सहयोग, यदि नहीं मिलता तो आज इस धर्म निरपेक्ष देश में जो धार्मिक बातें करते हैं वे सब नहीं कर पाते ।

१८. हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है ऐसे जिन भगवान्‌को नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा लिखी जाती है ।

अगदेशके सुप्रसिद्ध कांपिल्य नगरके राजा सिंहध्वज थे । इनकी रानीका नाम विप्रा था । कथानायक हरिषेण इन्हींका पुत्र था । हरिषेण बुद्धिमान् था, शूरवीर था, सुन्दर था, दानी था और बड़ा तेजस्वी था । सब उसका बड़ा मान—आदर करते थें ।

हरिषेणकी माता धर्मात्मा थी । भगवान् पर उसकी अचल भक्ति थी । यही कारण था कि वह अठाईके पर्वमें सदा जिन भगवान्‌का रथ निकलवाया करती और उत्सव मनाती । सिंहध्वजकी दूसरी रानी लक्ष्मीमतीको जैनधर्म पर विश्वास न था । वह सदा उसकी निन्दा करती थी । एक बार उसने अपने स्वामीसे कहा—प्राणनाथ, आज पहले मेरा ब्रह्माजीका रथ शहरमें घूमे, इस पर कुछ विचार न कर लक्ष्मीमतीका कहा मान लिया । पर जब धर्मवत्सल विप्रा रानीको इस बातकी खबर मिली तो उसे बडा दुःख हुआ । उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं खाना-पीना तभी करूँगी जब कि मेरा रथ पहले निकलेगा । सच है, सत्पुरुषोंको धर्म ही शरण होता है, उनकी धर्म तक ही दौड़ होती है ।

हरिषेण इतनेमें भोजन करनेको आया । उसने सदा की भाँति आज अपनी माताको हँस-मुख न देखकर उदास मन देखा । इससे उसे बड़ा खेद हुआ । माता क्यों दुखी हैं, इसका कारण जब उसे जान पड़ा तब वह एक पलभर भी फिर वहाँ न ठहर कर घरसे निकल पड़ा । यहाँसे चलकर वह एक चोरोंके गाँवमें पहुँचा । इसे देखकर एक तोता अपने मालिकोंसे बोला—जो कि चोरोंका सिखाया-पढ़ाया था, देखिये, यह राजकुमार जा रहा है, इसे पकड़ो । तुम्हें लाभ होगा । तोतेके इस कहने पर किसी चोरका ध्यान न गया । इसलिये हरिषेण बिना किसी आफतके आये यहाँसे निकल गया । सच है, दुष्टोंकी सगति पाकर दुष्टता आती ही है । फिर ऐसे जीवोंसे कभी किसीका हित नहीं होता ।

यहाँसे निकल कर हरिषेण फिर एक शतमन्यु नामके तापसीके आश्रममे

पहुँचा । वहाँ भी एक तोता था । परन्तु यह पहले तोते सा दुष्ट न था । इसलिये इसने हरिषेणको देखकर मनमे सोचा कि जिसके मुँह पर तेजस्विता ओर सुन्दरता होती है उसमे गुण अवश्य ही होते हैं । यह जानेवाला भी कोई ऐसा ही पुरुष होना चाहिये । इसके बाद ही उसने अपने मालिक तापसियोंसे कहा—वह राजकुमार जा रहा है । इसका आप लोग आदर करें । राजकुमारको बडा अचम्भा हुआ । उसने पहलेका हाल कह कर इस तोतेसे पूछा—तेरे भाईने तो अपने मालिकोंसे मेरे पकड़नेको कहा था और तू अपने मालिकोसे मेरा मान-आदर करनेको कह रहा है, इसका कारण क्या है ? तोता बोला—अच्छा राजकुमार, सुनो मैं तुम्हे इसका कारण बतलाता हूँ । उस तोतेकी और मेरी माता एक ही है, हम दोनो भाई-भाई हैं । इस हालतमे मुझमे और उसमे विशेषता होनेका कारण यह है कि मैं इन तपस्वियोंके हाथ पड़ा और वह चोरोंके । मैं रोज-रोज इन महात्माओकी अच्छी-अच्छी बाते सुना करता हूँ और वह उन चोरोकी बुरी-बुरी बाते सुनता है । इसलिये मुझमे और उसमे इतना अन्तर है । सो आपने अपनी आँखो देख ही लिया कि दोष और गुण ये संगतिके फल हैं । अच्छोकी संगतिसे गुण प्राप्त होते हैं और बुरोंकी सगतिसे दुर्गुण ।

इस आश्रमके स्वामी तापसी शतमन्यु पहले चम्पापुरीके राजा थे । इनकी रानीका नाम नागवती है । इनके जनमेजय नामका एक पुत्र और मदनावती नामकी एक कन्या है । शतमन्यु अपने पुत्रको राज्य देकर तापसी हो गये । राज्य अब जनमेजय करने लगा । एक दिन जनमेजयसे मदनावतीके सम्बन्धमें एक ज्योतिषीने कहा कि यह कन्या चक्रवर्तीका सर्वोच्च स्त्रीरत्न होगा । और यह सच है कि ज्ञानियोका कहा कभी झूठा नहीं होता ।

जब मदनावतीकी इस भविष्यवाणी की सब ओर खबर पहुँची तो अनेको राजे लोग उसे चाहने लगे । इन्हींमें उडदेशका राजा कलकल भी था । उसने मदनावतीके लिये उसके भाईसे मँगनी की । उसकी यह मँगनी जनमेजयने नहीं स्वीकारी । इससे कलकलको बड़ा ना-गवार गुजरा । उसने रुष्ट होकर जनमेजय पर चढाई कर दी और चम्पापुरीके चारो ओर घेरा डाल दिया सच है, कामसे अन्धे हुए मनुष्य कौन काम नहीं कर डालते । जनमेजय भी ऐसा

डरपोक राजा न था । उसने फौरन ही युद्धस्थलमे आ-डटनेकी अपनी सेनाको आज्ञा दी । दोनो ओरके वीर योद्धाओकी मुठभेड़ हो गई । खूब घमासान युद्ध आरम्भ हुआ । इधर युद्ध छिड़ा और उधर नागवती अपनी लड़की मदनावतीको साथ ले सुरंगके रास्तेसे निकल भागी । वह इसी शतमन्युने तब नागवती और मदनावतीको अपने आश्रममे ही रख लिया ।

हरिषेण राजकुमारका ऊपर जिकर आया है । इसका मदनावती पर पहलेसे ही प्रेम था । हरिषेण उसे बहुत चाहता था । यह बात आश्रमवासी तापसियोको मालूम पड़ जानेसे उन्होंने हरिषेणको आश्रमसे निकाल बाहर कर दिया । हरिषेण को इससे बुरा तो बहुत लगा, पर वह कुछ कर-धर नहीं सकता था । इसलिये लाचार होकर उसे चला जाना ही पड़ा । इसने चलते समय प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा इस पवित्र राजकुमारीके साथ ब्याह होगा तो मैं अपने सारे देशमे चार-चार कोस दूरी पर अच्छे-अच्छे सुन्दर और विशाल जिनमन्दिर बनवाऊँगा, जो पृथ्वीको पवित्र करनेवाले कहलायेंगे । सच है, उन लोगोके हृदयमे जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्ति सदा रहा करती है जो स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करनेवाले होते हैं ।

प्रसिद्ध सिन्धुदेशके सिन्धुतट शहरके राजा सिन्धुनद और रानी सिन्धुमतीके कोई सौ लड़कियॉ थीं । ये सब ही बड़ी सुन्दर थीं । इसने लड़कियोके सम्बन्धमे नैमित्तिकने कहा था कि—ये सब राजकुमारियॉ चक्रवर्त्ती हरिषेणकी स्त्रियॉ होगी । से सिन्धुनदी पर स्नान करनेके लिये जायेंगी । इसी समय हरिषेण भी यहीं आ जायगा । तब परस्परकी चार ऑखें होते ही दोनो ओरसे प्रेमका बीज अकुरित हो उठेगा ।

नैमित्तिकका कहना ठीक हुआ । हरिषेण दूसरे राजाओं पर विजय करता हुआ इसी सिन्धुनदीके किनारे पर आकर ठहरा । इसी समय सिन्धुनदकी कुमारियॉ भी यहॉ स्नान करनेके लिए आई हुई थीं । प्रथम ही दर्शनमें दोनोके हृदयमे प्रेमका अंकुर फूटा और फिर वह क्रमसे बढ़ता ही गया । सिन्धुनदसे यह बात छिपी न रही । उसने प्रसन्न होकर हरिषेणके साथ अपनी लड़कियोका ब्याह कर दिया ।

रातको हरिषेण चित्रशाला नामके एक खास महलमें सोया हुआ था। इसी समय एक वेगवती नामकी विद्याधरी आकर हरिषेणको सोता हुआ ही उठा ले चली। रास्तेंमें हरिषेण जग उठा। अपनेको एक स्त्री कहीं लिये जा रही है, इस बातकी मालूम होते ही उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने तब उसे विद्याधरीको मारनेके लिये घूँसा उठाया। उसे गुस्सा हुआ देख विद्याधरी डरी और हाथ जोड कर बोली—महाराज, क्षमा कीजिए। मेरी एक प्रार्थना सुनिए। विजयार्द्ध पर्वत पर बसे हुए सूर्योदर शहरके राजा इन्द्रधन और रानी बुद्धमतीकी एक कन्या है। उसका नाम जयचन्द्रा है। वह सुन्दर है, बुद्धिमती है और बड़ी चतुर है। पर उसमें एक ऐब है और वह महा ऐब है। वह यह कि उसे पुरुषोसे बडा द्वेष है, पुरुषोको वह ऑखोसे देखना तक पसन्द नहीं करती। नैमित्तिकने उसके सम्बन्धमें कहा है कि जो सिन्धुनदकी सौ राजकुमारियोंका पति होगा, वही इसका भी होगा। तब मैंने आपका चित्र ले जाकर उसे बतलाया। वह उसे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसका सब कुछ आप पर न्योछावर हो चुका है। वह आपके सम्बन्धकी तरह-तरहकी बाते पूछा करती है और बडे चावसे उन्हें सुनतीहै। आपका जिकर छिड़ते ही वह बड़े ध्यानसे उसे सुनने लगती है। उसकी इन सब चेष्टाओंसे जान पड़ता है कि उसका आप पर अन्यन्त प्रेम है। यही कारण है कि मैं उसी आज्ञासे आपको उसके पास लिये जा रही हूँ। सुनकर हरिषेण बहुत खुश हुआ और फिर वह कुछ भी न बोलकर जहॉ उसे विद्याधरी लिवा गई, चला गया। वेगवतीने हरिषेणको इन्द्रधनके महल पर ला रक्खा। हरिषेणके रूप ओर गुणोंको देख कर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। जयचन्द्राके माता-पिताने उसे ब्याहका भी दिन निश्चित कर दिया। जो दिन ब्याहका था उस दिन राजकुमारी जयचन्द्राके मामाके लड़के गंगाधर और महीधर ये दोनो हरिषेण पर चढ़ आये। इसलिये कि वह जयचन्द्राको स्वयं ब्याहना चाहते थे। हरिषेणने इनके साथ बड़ी वीरतासे युद्ध कर इन्हे हराया। इस युद्ध मे हरिषेणके हाथ जवाहिरात और बहुत धन-दौलत लगी। यह चक्रवर्त्ती होकर अपने घर लौटा। रास्तेमे इसने अपनी प्रेमिणी मदनावतीसे भी ब्याह किया। घर आकर फिर इसने अपनी माताकी इच्छा पूरी की। पहले उसीका रथ चला। इसके बाद हरिषेणने अपने

देशभरमे जिन मन्दिर बनवा कर अपनी प्रतिज्ञाको भी निबाहा । सच है, पुण्यवानोके लिये कोई काम कठिन नहीं ।

वे जिनेन्द्र भगवान् सदा जय लाभ करें, जो देवादिको द्वारा पूजा किये जाते हैं, गुणरूपी रत्नो की खान हैं, स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले हैं, संसारके प्रकाशित करनेवाले निर्मल चन्द्रमा हैं केवलज्ञानी, सर्वज्ञ हैं और जिनके पवित्र धर्मका पालन कर भव्यजन सुख लाभ करते हैं ।

☆ गंधहीन पुष्प को व्यक्ति सूंघ रहा है, और सोच रहा है, गन्ध क्यों नहीं आ रही है, यानि धर्म बिना जीवन व्यक्ति जी रहा है, और सोचता है, कि धर्म का फल क्यों नहीं मिल रहा है ।

☆ हमारी क्षणिक-बाह्य भौतिक निधि को कोई ले भी सकता है । नष्ट भी करता है । लेकिन हमारी भीतरी निधि संस्कृति को मिटाने का हकदार इस धरती पर कोई नही है, वह अक्षुण्ण बनी रहेगी।

९९. दूसरोंके गुण ग्रहण करनेकी कथा

जिन्हें स्वर्गके देव पूजते हैं उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर दूसरोके दोषोको न देखकर गुण ग्रहण करनेवालेकी कथा लिखी जाती है ।

एक दिन सौधर्म स्वर्गका इन्द्र धर्म-प्रेमके वश हो गुणवान् पुरुषोंकी अपने सभामे प्रशंसा कर रहा था । उस समय उसने कहा—जिस पुरुषका—जिस महात्माका हृदय इतना उदार है कि वह दूसरोके बहुतसे औगुणो पर बिलकुल ध्यान न देकर उसमे रहनेवाले गुणोके थोड़े भी हिस्सेको खूब बढानेका यत्न करता है, जिसका ध्यान सिर्फ गुणोके ग्रहण करनेकी ओर है वह पुरुष, वह महात्मा ससारमें सबसे श्रेष्ठ है, उसीका जन्म भी सफल है । इन्द्रके मुँहसे इस प्रकार दूसरोंकी प्रशंसा सुन एक मौजीले देवने उससे पूछा—देवराज, जैसा इस समय आपने गुणग्राहक पुरुषकी प्रशसा की है, क्या ऐसा कोई बड़भागी पृथ्वी पर है भी । इन्द्रने उत्तरमें कहा—हाँ हैं और वे अन्तिम वासुदेव द्वारकाके स्वामी श्रीकृष्ण । सुनकर वह देव उसी समय पृथ्वी पर आया । इस समय श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् के दर्शनार्थ जा रहे थे । इनकी परीक्षाके लिये यह मरे कुत्तेका रूप ले रास्तेमे पड़ गया । इसके शरीरसे बड़ी ही दुर्गन्धि भभक रही थी । आने-जाने वालोंके लिये इधर-उधर होकर आना-जाना मुश्किल हो गया था । इसकी इस असह दुर्गन्धिके मारे श्रीकृष्णके साथी सब भाग खड़े हुए । इसी समय वह देव एक दूसरे ब्राह्मणका रूप लेकर श्रीकृष्णके पास आया और उस कुत्तेकी बुराई करने लगा, उसके दोष दिखाने लगा । श्रीकृष्णने उसकी सब बाते सुन-सुनाकर कहा—अहा ! देखिये, इस कुत्तेके दाँतोकी, श्रेणी स्फटिकके समान कितनी निर्मल और सुन्दर है । श्रीकृष्णने कुत्तेके और दोषों पर उसकी दुर्गन्धि आदि पर कुछ ध्यान न देकर उसके दाँतोकी, उसमे रहनेवाले थोड़ेसे भी अच्छे भागकी उल्टी प्रशंसा ही की । श्रीकृष्णकी पशुके लिये इतनी उदार बुद्धि देखकर वह देव बहुत खुश हुआ । उसने फिर प्रत्यक्ष होकर सब हाल श्रीकृष्णसे कहा—और उचित आदरमान करके आप अपने स्थान चला गया ।

इसी तरह अन्य जिन भगवान्‌के भक्त भव्यजनोको भी उचित है कि

वे दूसरोके दोषोको छोड़कर सुखकी प्राप्तिके लिये प्रेमके साथ उनके गुणोंको ग्रहण करनेका यत्न करे । इसीसे वे गुणज्ञ और प्रशसाके पात्र कहे जा सकेंगे ।

☆ आज का न्याय केवल अर्थ के ऊपर निर्धारित है, अर्थ मिलता है, तो परमार्थ को गौण किया जा सकता है, और यदि अर्थ नहीं मिलता, तो उसका विरोध भी किया जा सकता है, लेकिन ध्यान रखो-अर्थ की दृष्टि तीन काल में, परमार्थ को नहीं देख सकती, और परमार्थ को गौण करने से अर्थ की दृष्टि संसार को निर्लज्ज बना सकती है ।

☆ ब्रह्मचर्य पूज्य बना किन्तु भोग सामग्री आज तक पूज्य नहीं बनी ।

१००. मनुष्य-जन्मकी दुर्लभताके दस दृष्टान्त

अतिशय निर्मल केवलज्ञानके धारक जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर मनुष्य जन्मका मिलना कितना कठिन है, इस बातको दस दृष्टान्तो-उदाहरणो द्वारा खुलासा समझाया जाता है ।

१. चोल्लक, २. पासा, ३. धान्य, ४. जुआ, ५ रत्न, ६ स्वप्न, ७. चक्र, ८. कछुआ, ९. युग और १० परमाणु ।

अब पहले ही चोल्लक दृष्टान्त लिखा जाता है, उसे आप ध्यान से सुनें ।

१. चौल्लक

ससारके हितकर्ता नेमिनाथ भगवान्‌को निर्वाण गये बाद अयोध्यामे ब्रह्मदत्त बारहवे चक्रवर्त्ती हुए । उनके एक वीर सामन्तका नाम सहस्रमह था । सहस्रमहकी स्त्री सुमित्राके सन्तानमें एक लड़का था । इसका नाम वासुदेव था । वासुदेव न तो कुछ पढ़ा-लिखा था और न राज-सेवा वगैरहकी उसमे योग्यता थी । इसलिये अपने पिताकी मृत्युके बाद उनकी जगह इसे न मिल सकी, जो कि एक अच्छी प्रतिष्ठित जगह थी । और यह सच है कि बिना कुछ योग्यता प्राप्त किये राज-सेवा आदिमे आदर-मानकी जगह मिल भी नहीं सकती । इसकी इस दशा पर माताको बडा दुःख हुआ । पर बेचारी कुछ करने-धरनेको लाचार थी । वह अपनी गरीबीके मारे एक पुरानी गिरी-पड़ी झौंपड़ीमे रहने लगी और जिस किसी प्रकार अपना गुजारा चलाने लगी । उसने भावी आशासे वासुदेवसे कुछ काम लेना शुरू किया । वह लड्डू, पेड़ा, पान आदि वस्तुएँ एक खोमचेमे रखकर उसे आस-पासके गॉवोमें भेजने लगी, इसलिये कि वासुदेवको कुछ परिश्रम करना आ जाय, वह कुछ हुशियार हो जाय । ऐसा करनेसे सुमित्राको सफलता प्राप्त हुई और वासुदेव कुछ सीख भी गया । उसे पहलेकी तरह अब निकम्मा बैठे रहना अच्छा न लगने लगा । सुमित्राने तब कुछ वसीला लगाकर वासुदेवको राजाका अगरक्षक नियत करा दिया ।

एक दिन चक्रवर्त्ती हवा-खोरीके लिये घोडे पर सवार हो शहर बाहर

हुए । जिस घोड़े पर वे वैठे थे वह वड़े दुष्ट स्वभावको लिए था । सो जरा ही पाँवकी ऐड़ी लगाने पर वह चक्रवर्तीको लेकर हवा हो गया । वड़ी दूर जाकर उसने उन्हें एक वड़ी भयावनी वनमें ला गिराया । इस समय चक्रवर्ती वड़े कष्टमें थे । भूख-प्याससे उनके प्राण छटपटा रहे थे । पाठकोंको स्मरण है कि इनके अंगरक्षक वासुदेवको उसकी माँने चलने-फिरने और दौड़ने-दुड़ानेके काममें अच्छा हुशियार कर दिया था । यही कारण था कि जिस समय चक्रवर्तीको घोड़ा लेकर भागा, उस समय वसुदेव भी कुछ खाने-पीनेकी वस्तुयें लेकर उनके पीछे-पीछे वेतहाशा भागा गया । चक्रवर्तीको आध-पौन घंटा वनीमें वैठे हुआ होगा कि इतनेमें वासुदेव भी उनके पास जा पहुँचा । खाने-पीनेकी वस्तुएँ उसने महाराजको भेंट की । चक्रवर्ती उससे वहुत सन्तुष्ट हुए । सच है, योग्य समयमें थोड़ा भी दिया हुआ सुखका कारण होता है । जैसे बुझते हुए दीयेमें थोड़ा भी तेल डालनेसे वह झटसे तेज हो उठता है । चक्रवर्तीने खुश होकर उससे पूछा तू कौन है ? उत्तरमें वासुदेवने कहा—महाराज, सहस्रभट सामन्तका मैं पुत्र हूँ । चक्रवर्ती फिर विशेष कुछ पूछ-ताछ न करके चलते समय उसे एक रत्नमयी कंकण देते गये ।

अयोध्यामें पहुँच कर ही उन्होंने कोतवालसे कहा—मेरा कड़ा खो गया है, उसे ढूँढ़कर पता लगाइए । राजाज्ञा पाकर कोतवाल उसे ढूँढ़नेको निकला । रास्तेमें एक जगह इसने वासुदेवको कुछ लोगोंके साथ कड़ेके सम्वन्धकी ही वात-चीत करते पाया । कोतवाल तव उसे पकड़ कर राजा के पास लिवा ले गया । चक्रवर्त्ती उसे देखकर वोले—मैं तुझ पर वहुत खुश हूँ । तुझे जो चाहिए वही माँग ले । वासुदेव वोला—महाराज, इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता कि मैं आपसे क्या माँगूँ । यदि आप आज्ञा करें तो मैं मेरी माँको पूछ आकर चक्रवर्तीसे उसने प्रार्थना की—महाराज, आप मुझे चोल्लक भोजन कराइए । उससे मुझे वड़ी प्रसन्नता होगी । तव चक्रवर्तीने उनसे पूछा—भाई, चोल्लक भोजन किसे कहते हैं ? हमने तो उसका नाम भी आज तक नहीं सुना । वासुदेवने कहा—सुनिए महाराज, पहले तो वड़े आदरके साथ आपके महलमें मुझे भोजन कराया जाय और खूव अच्छे-अच्छे सुन्दर कपड़े, गहने-दागीने दिये जाँय । इसके वाद इसकी तरह आपकी रानियोंके महलोंमे

क्रम-क्रमसे मेरा भोजन हो । फिर आपके परिवार तथा मण्डलेश्वर राजाओंके यहाँ मुझे इसी प्रकार भोजन कराया जाय । इतना सब हो चुकनेपर क्रम-क्रमसे फिर आपहीके यहाँ मेरा अन्तिम भोजन हो । महाराज, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी आज्ञासे मुझे यह सब प्राप्त हो सकेगा ।

भव्यजनो, इस उदाहरणसे यह शिक्षा लेनेकी है कि यह चोल्लक भोजन वासुदेव सरीखे कंगालको शायद प्राप्त हो भी जाय तो भी इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं, पर एक बार प्रमादसे खो-दिया गया मनुष्य जन्म बेशक अत्यन्त दुर्लभ है । फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह सहसा नहीं मिल सकता । इसलिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे दुःखके कारण खोटे मार्गको छोडकर जैनधर्मका शरण ले, जो कि मनुष्य जन्मकी प्राप्ति और मोक्षका प्रधान कारण है ।

२. पाशेका दृष्टान्त

मगध देशमे शतद्वार नामका एक अच्छा शहर था । उसके राजाका नाम भी शतद्वार था । शतद्वारने अपने शहरमें एक ऐसा देखने योग्य दरवाजा बनवाया, कि जिसके कोई ग्यारह हजार खंभे थे । उन एक-एक खम्भेमे छयानवे ऐसे स्थान बने हुए थे जिनमे जुआरी लोग पाशे द्वारा सदा जुआ खेला करते थे । एक सोमशर्मा नामके ब्राह्मणने उन जुआरियोसे प्रार्थना की—भाइयो, मैं बहुत ही गरीब हूँ, इसलिए यदि आप मेरा इतना उपकार करें, कि आप सब खेलनेवालोका दांव यदि किसी समय एक ही सा पड जाय और वह सब धन-माल आप मुझे दे दे, तो बहुत अच्छा हो । जुआरियोने सोमशर्माकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । इसलिए कि उन्हें विश्वास था कि ऐसा होना नितान्त ही कठिन है, बल्कि असभव है । पर देवयोग ऐसा हुआ कि एक बार सबका दाव एक हीसा पड़ गया और उन्हे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सब धन सोमशर्माको दे देना पडा । वह उस धनको पाकर बहुत खुश हुआ । इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा लेनी चाहिए । कि जैसा योग सोमशर्माको मिला था, वैसा योग मिलकर और कर्मयोगसे इतना धन भी प्राप्त हो जाय तो कोई बात नहीं, परन्तु जो मनुष्य-जन्म एक बार प्रमाद वश हो नष्ट कर दिया जाय तो

वह फिर सहजमें नहीं मिल सकता। इसलिए सत्पुरुषोंको निरन्तर ऐसे पवित्र कार्य करते रहना चाहिए, जो मनुष्य-जन्म या स्वर्ग मोक्षके प्राप्त करानेवाले हैं ऐसे कर्म हैं—जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करना, दान देना, परोपकार करना, व्रतोका पालना, ब्रह्मचर्यसे रहना और उपवास करना आदि।

३. धान्य दृष्टान्त

जम्बूद्वीपके बराबर चौड़ा और एक हजार योजन अर्थात् दो हजार कोस या चार कोस गहरा एक बड़ा भारी गड्ढा खोदा जाकर वह सरसोंसे भर दिया जाय। उसमेसे फिर रोज-रोज एक-एक सरसों निकाली जाया करे। ऐसा निरन्तर करते रहनेसे एक दिन ऐसा भी आयगा कि जिस दिन वह कुण्ड सरसोसे खालाी हो जायगा। पर यदि प्रमादसे यह जन्म नष्ट हो गया तो वह समय फिंर आना एक तरह असम्भव सा ही हो जायगा, जिनमें कि मनुष्य-जन्म मिल सके। इसलिए बुद्धिमान्‌ोको उचित है कि वे प्राप्त हुए मनुष्य जन्मको निष्फल न खोकर जिन-पूजा, व्रत, दान, परोपकारादि पवित्र कामोंमें लगावें। क्योकि ये सब परम्परा मोक्षके साधन है।

धान्यका दूसरा दृष्टान्त

अयोध्याके राजा प्रजापाल पर राजगृहके जितपाल राजाने एक बार चढ़ाई की और सारी आयोध्याको सब ओरसे घेर लिया। तब राजाने अपनी प्रजासे कहा—जिसके यहॉ धानके जितने बोरे हो, उन सब बोरोको लाकर और गिनती करके मेरे कोठोमे सुरक्षित रख दें। मेरी इच्छा है कि शत्रुको एक अन्नका दाना भी यहॉसे प्राप्त न हो। ऐसी हालतमे उसे झख मार कर लौट जाना पड़ेगा। सारी प्रजाने राजाकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया। जब अभिमानी शत्रुको अयोध्यासे अन्न न मिला तब थोड़े ही दिनोंमे उसकी अकल ठिकाने पर आ गई। उसकी सेना भूखके मारे मरने लगी। आखिर जितपालको लौट जाना ही पडा। जब शत्रु अयोध्या का घेरा उठा चल दिया तब प्रजाने राजासे अपने-अपने धानके ले-जाने की प्रार्थना की। राजाने कह दिया कि हॉ अपना-अपना धान पहचान कर सब लोग ले जायें। कभी कर्मयोगसे ऐसा हो

जाना भी सम्भव है, पर यदि मनुष्य जन्म एक बार व्यर्थ नष्ट हो गया तो उसका पुनः मिलना अत्यन्त ही कठिन है। इसलिए इसे व्यर्थ खोना उचित नहीं। इसे तो सदा शुभ कामोमे ही लगाये रहना चाहिए।

४. जुआका दृष्टान्त

शतद्वारपुरमें पाँचसौ सुन्दर दरवाजे हैं। उन एक-एक दरवाजोमे जुआ खेलनेके पाँच-पाँचसौ अड्डे हैं। उन एक-एक अड्डोमे पाँच-पाँचसौ जुआरी लोग जुआ खेलते हैं। उनमे एक चयी नामका जुआरी है। ये सब जुआरी कौड़ियाँ जीत-जीत कर अपने अपने गाँवोमे में चले गये। चयी वहीं रहा। भग्यसे इन सब जुआरियोका और इस चयीका फिर भी कभी मुकाबिला होना सम्भव है, पर नष्ट हुए मनुष्य-जन्मका पुण्यहीन पुरुषोंको फिर सहसा मिलना दरअसल कठिन है।

जुआका दूसरा दृष्टान्त

इसी शतद्वारपुरमे निर्लक्षण नामका एक जुआरी था। उसके इतना भारी पापकर्मका उदय था कि वह स्वप्नमे भी कभी जीत नहीं पाता था। एक दिन कर्मयोगसे वह भी खूब धन जीता। जीतकर उस धनको उसने याचकोंको बाँट दिया। वे सब धन लेकर चारो दिशाओंमे जिसे जिधर जाना था उधर ही चले गये। ये सब लोग दैवयोगसे फिर भी कभी इकट्ठे हो सकते हैं, पर गया जन्म फिर हाथ आना दुष्कर है। इसलिए जबतक मोक्ष न मिले तबतक यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होता रहे, इसके लिए धर्मकी शरण सदा लिये रहना चाहिए।

५. रत्न-दृष्टान्त

भरत,सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्त्ती, इनके मुकुटोमे जड़े हुए मणि, जिन्हे स्वर्गोके देव ले गये हैं, और वे चौदह रत्न, नौ निधि तथा वे सब देव, ये सब कभी इकट्ठे नहीं हो सकते; इसी तरह

खोया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुष कभी प्राप्त नहीं कर सकते । यह जानकर बुद्धिवानोंको उचित है, उनका कर्त्तव्य है कि वे मनुष्य जीवन प्राप्त करनेके कारण जैनधर्मको ग्रहण करें ।

६. स्वप्न-दृष्टान्त

उज्जैनमें एक लकड़हारा रहता था । वह जंगलमेंसे लकड़ी काट कर लाता और बाजारमें बेच दिया करता था । उसीसे उसका गुजारा चलता था । एक दिन वह लकड़ीका गट्ठा सिर पर लादे आ रहा था । ऊपरसे बहुत गरमी पड़ रही थी । सो वह एक वृक्षकी छायामें सिर परका गट्ठा उतार कर वहीं सो गया । ठंडी हवा बह रही थी । सो उसे नींद आ गई । उसने एक सपना देखा कि वह सारी पृथिवीका मालिक चक्रवर्ती हो गया । हजारों नौकर-चाकर उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं । जो वह आज्ञा—हुक्म करता है वह सब उसी समय बजाया जाता है । यह सब कुछ हो रहा था इतनेमें उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया । बेचारेकी सब सपनेकी सम्पत्ति आँख खोलते ही नष्ट हो गई । उसे फिर वही लकड़ी का गट्ठा सिर पर लादना पडा । जिस तरह वह लकड़हारा स्वप्नमें चक्रवर्ती बन गया, पर जगने पर रहा लकड़हारा ही । उसके हाथ कुछ भी धन-दौलत न लगी । ठीक इसी तरह जिसने एक बार मनुष्यजन्म प्राप्त कर व्यर्थ गँवा दिया उस पुण्यहीन मनुष्यके लिए फिर यह मनुष्य-जन्म जाग्रद्दशामें लकड़हारेका न मिलनेवाली चक्रवर्तीकी सम्पत्ति की तरह असम्भव है ।

७. चक्र-दृष्टान्त

अब चक्रदृष्टान्त कहा जाता है । बाईस मजबूत खम्भें हैं । एक-एक खम्भे पर एक-एक चक्र लगा हुआ है एक-एक चक्रमें हजार-हजार आरे हैं उन आरों में एक-एक छेद है । चक्र सब उलटे घूम रहे हैं । पर जो वीर पुरुष हैं वे ऐसी हालतमें भी उन खम्भों परकी राधाको बेध देते हैं ।

काकन्दीके राजा द्रुपदकी कुमारीका नाम द्रौपदी था । वह बडी सुन्दरी थी । उसके स्वयंवरमें अर्जुनने ऐसी ही राधा वेध कर द्रौपदीको ब्याहा था । सो

ठीक ही है पुण्यके उदयसे प्राणियोको सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।

यह सब योग कठिन होने पर भी मिल सकता है, पर यदि प्रमादसे मनुष्य जन्म एक बार नष्ट कर दिया जाय तो उसका मिलना बेशक कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है । वह प्राप्त होता है पुण्यसे, इसलिए पुण्यके प्राप्त करनेका यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है ।

८. कछुए का दृष्टान्त

सबसे बड़े स्वयंभूरमण समुद्रको एक बड़े भारी चमड़ेमे छोटा-सा छेद करे उससे ढक दीजिए । समुद्रमे घूमते हुए एक कछुएने कोई एक हजार वर्ष बाद उस चमड़ेके छोटे से छेदमेंसे सूर्यको देखा । वह छेद उससे फिर छूट गया । भाग्यसे यदि फिर कभी ऐसा ही योग मिल जाय कि वह उस छिद्र पर फिर भी आ पहुँचे और सूर्यको देख ले, पर यदि मनुष्य-जन्म इसी तरह प्रमादसे नष्ट हो गया तो सचमुच ही उसका मिलना बहुत कठिन है ।

९. युगका दृष्टान्त

दो लाख योजन चौडे पूर्वके लवणसमुद्र (धुरा) के छेदसे गिरी हुई क्या पश्चिम समुद्रमें बहुत हुए युग (धुरा) के छेदमें समय पाकर प्रवेश कर जाना सम्भव है, पर प्रमाद या विषयभोगो द्वारा गँवाया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुषोंके लिए फिर सहसा मिलना असम्भव है । इसलिए जिन्हे दु खोंसे छूटकर मोक्ष सुख प्राप्त करना है उन्हे तबतक ऐसे पुण्यकर्म करते रहना चाहिए कि जिनसे मोक्ष होने तक बराबर मनुष्य जीवन मिलता रहे ।

१०. परमाणु दृष्टान्त

चार हाथ लम्बे चक्रवर्तीके दण्डरत्नके परमाणु बिखर कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त कर ले और फिर वे ही परमाणु दैवयोगसे फिर कभी दण्डरत्नके रूपमे आ जाएँ तो असम्भव नहीं, पर मनुष्य पर्याय यदि एक बार दुष्कर्मो द्वारा व्यर्थ खो दिया तो इसका फिर उन अभागे जीवोंको प्राप्त हो

जाना जरूर असम्भव है । इसलिए पण्डितोंको मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिके लिए पुण्यकर्म करना कर्त्तव्य है ।

इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जीवनको अत्यन्त दुर्लभ समझ कर बुद्धिमानोको उचित है कि वे मोक्ष सुखके लिए संसारके जीवमात्र के हित करनेवाले पवित्र जैनधर्मको ग्रहण करे ।

☆ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति, कर्त्तव्य में आनन्द मानने वाला व्यवित्त, एक कर्त्तव्य को पूर्ण कर दूसरे कर्त्तव्य की खोज में रहता है ।

☆ यह भारत देश है । यहां न्याय क्षीर-नीर विवेक जैसा चाहिए । न्याय में मात्र वस्तु के अधिकार की बात नहीं होनी चाहिए, वरन् संवदेना को भी महत्व देना चाहिए ।

☆ सत्य उसे मिलता है, जिसकी आत्मा गहरी और शान्त होती है ।

☆ बड़प्पन वही है, जो सही को स्वीकार करे ।

☆ ज्ञान दुर्लभ नहीं, किन्तु वैराग्य दुर्लभ होता है ।

☆ वचनों में दरिद्रता नहीं महानता होनी चाहिए।

☆ मौन, साधना, वचन, शुद्धि के लिए कारण होते हैं ।

१०१. भावानुराग-कथा

सब प्रकार सुखके देनेवाले जिनभगवान्‌को नमस्कार कर धर्ममे प्रेम करनेवाले नागदत्तकी कथा लिखी जाती है ।

उज्जैनके राजा धर्मपाल थे । उनकी रानीका नाम धर्मश्री था । धर्मश्री धर्मात्मा और बड़ी उदार प्रकृतिकी स्त्री थी । यहॉ एक सागरदत्त नामका सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था । सुभद्राके नागदत्त नामका एक लड़का था । नागदत्त भी अपनी माताकी तरह धर्मप्रेमी था । धर्म पर उसकी अचल श्रद्धा थी । इसका ब्याह समुद्रदत्त सेठकी सुन्दर कन्या प्रियंगुश्रीके साथ बड़े ठाटबाटसे हुआ । ब्याहमें खूब दान दिया गया । पूजा उत्सव किया गया । दीन-दुखियोकी अच्छी सहायता की गई ।

प्रियंगुश्रीको इसके मामाका लड़का नागसेन चाहता था और सागरदत्तने उसका ब्याह कर दिया नागदत्तके साथ । इससे नागसेनको बड़ा ना-गवार मालूम हुआ । सो उसने बेचारे नागदत्तके साथ शत्रुता बॉध ली और उसे कष्ट देनेका मौका ढूॅढने लगा ।

एक दिन उपासा नागदत्त धर्मप्रेमसे जिन मन्दिर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था । उसे नागसेनने देख लिया । सो इस दुष्टने अपनी शत्रुताका बदला लेनेके लिये एक षड़यन्त्र रचा । गलेमे से अपना हार निकाल कर इसे इसने नागदत्तके पॉवोके पास रख दिया और हल्ला कर दिया कि मेरा हार चुराकर लिये जा रहा था, सो मैंने इसके पीछे दौड़कर इसे पकड़ लिया । अब ढौंग बनाकर ध्यान करने लग गया, जिससे यह पकड़ा न जाय । नागसेनका हल्ला सुनकर आसपासके बहुतसे लोग इकट्ठे हो गए और पुलिस भी आ जमा गई नागदत्त पकड़ा जाकर राजदरबारमे उपस्थित किया गया । राजाने नागदत्तकी ओरसे कोई प्रमाण न पाकर उसे मारनेका हुक्म दे दिया । नागदत्त उसी समय बध्य-भूमिमे ले जाया गया । उसका सिर काटनेके लिये तलवारका जो बार उस पर किया गया, क्या आश्चर्य कि वह बार उसे ऐसा जान पड़ा मानों किसीने उस पर फूलोंकी माला फैंकी हो । उसे जरा भी चोट न पहुॅची और इसी समय आकाशसे उस पर फूलोकी वर्षा हुई । जय जय, धन्य धन्य,

शब्दोंसे आकाश गूँज उठा । यह आश्चर्य देखकर सब लोग दंग रह गए । सच है, धर्मानुरागसे सत्पुरुषोका, सहनशील महात्माओंका कौन उपकार नहीं करता । इस प्रकार जैनधर्मका सुखमय प्रभाव देखकर नागदत्त और धर्मपाल राजा बहुत प्रसन्न हुए । वे अब मोक्षसुखकी इच्छासे संसारकी सब माया ममताको छोड़कर जिनदीक्षा ले साधु हो गए और बहुतसे लोगोंने—जो जैन नहीं थे, जैनधर्मको ग्रहण किया ।

संसारके बड़े-बड़े महापुरुषोंसे पूजे जानेवाले, जिनेन्द्र भगवान्का उपदेश किया पवित्र धर्म, स्वर्गमोक्षके सुखका कारण है इसीके द्वारा भव्यजन उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त करते हैं । यही पवित्र धर्म कर्मोका नाश कर मुझे आत्मिक सच्चा सुख प्रदान करें ।

- ★ "सत्यमेव-जयते" बस नहीं होना चाहिए किन्तु "सत्यमेव दृश्यते" भी होना चाहिए ।
- ★ जिस ओर हमें बढ़ना चाहिए, उस ओर नहीं बढ़ रहे हैं तो उसका एक कारण है आस्था की कमी ।
- ★ वर्तमान पुरुषार्थ का प्रभाव भूत और भविष्य पर पड़ जाता है ।

१०२. प्रेमानुराग-कथा

जो जिनधर्मके प्रवर्त्तक हैं, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धर्मसे प्रेम करनेवाले सुमित्र सेठकी कथा लिखी जाती है ।

अयोध्याके राजा सुवर्णवर्मा और उनकी रानी सुवर्णश्रीके समय अयोध्यामें सुमित्र नामके एक प्रसिद्ध सेठ हो गये हैं । सेठका जैनधर्मपर अत्यन्त प्रेम था । एक दिन सुमित्र सेठ रातके समय अपने घर हीमे कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे । उनकी ध्यान-समयकी स्थिरता और भावोकी दृढ़ता देखकर किसी एक देवने सशकित हो उनकी परीक्षा करनी चाही कि कहीं यह सेठका कोरा ढोग तो नहीं है । परीक्षामे उस देवने सेठकी सारी सम्पत्ति, स्त्री, बाल-बच्चे आदिको अपने अधिकारमें कर लिया । सेठके पास इस बातकी पुकार पहुँची । स्त्री, बाल-बच्चे रो-रोकर उसके पॉवोंमे जा गिरे और छुड़ाओ, छुड़ाओकी हृदय भेदनेवाली दीन प्रार्थना करने लगे । जो न होनेका था वह सब हुआ । परन्तु सेठजीने अपने ध्यानको अधूरा नहीं छोड़ा, वे वैसे ही निश्चल बने रहे । उनकी यह अलौकिक स्थिरता देखकर उस देवको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने सेठकी शतमुखसे भूरी-भूरी प्रशंसा की । अन्तमे अपने निज स्वरूपमें आ और सेठको एक सॉकरी नामकरी आकाशगामिनी विद्या भेंट कर आप स्वर्ग चला गया । सेठके इस प्रभावको देखकर बहुतेरे भाईयोने जैनधर्मको ग्रहण किया, कितनोने मुनिव्रत, कितनोंने श्रावकव्रत और कितनोंने केवल सम्यग्दर्शन ही लिया ।

जिन भगवान्‌के चरण-कमल परम सुखके देनेवाले हैं और संसारसमुद्रसे पार करनेवाले हैं, इसलिये भव्यजनोंको उचित है कि वे सुख प्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें, स्तुति करें, ध्यान करे, स्मरण करे ।

---

१०३. जिनाभिषेकसे प्रेम करनेवालेकी कथा

इन्द्रादिकों द्वारा जिनके पॉव पूजे जाते हैं, ऐसे जिन भगवान्‌को नमस्कार कर जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले जिनदत्त और वसुमित्रकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा सागरदत्तके समय उनकी राजधानीमें जिनदत्त और वसुमित्र नामके दो प्रसिद्ध और बड़े गुणवान् सेठ हो गये है। जिनधर्म और जिनाभिषेक पर उनका बड़ा ही अनुराग था। ऐसा कोई दिन उनका खाली न जाता था जिस दिन वे भगवान्‌का अभिषेक न करते हों, पूजा प्रभावना न करते हों, दान-व्रत न करते हों।

एक दिन ये दोनों सेठ व्यापारके लिये उज्जैनसे उत्तरकी ओर रवाना हुए। मंजिल दर मंजिल चलते हुये एक ऐसी घनी अटवीमें पहुँच गये, जो दोनों बाजू आकाशसे बातें करनेवाले अवसीर और माला पर्वत नामके पर्वतोंसे घिरी थी और जिसमें डाकू लोगोंका अड्डा था। डाकू लोग इनका सब माल असबाब छीनकर हवा हो गये। अब ये दोनों उस अटवी मैं इधर-उधर घूमने लगे। इसलिये कि इन्हें उससे बाहर होनेका रास्ता मिल जाय। पर इनका सब प्रयत्न निष्फल गया। न तो ये स्वयं रास्तेका पता लगा सके और न कोई इन्हें रास्ता बतानेवाला ही मिला। अपने अटवी केबाहर होनेका कोई उपाय न देखकर अन्तमे इन जिनपूजा औसर जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले महानुभावोंने संन्यास ले लिया और जिन भगवान्‌का ये स्मरण-चिन्तन करने लगे। सच है, सत्पुरुष सुख और दुःखमें सदा समान भाव रखते हैं, विचारशील रहते हैं।

एक अभागा भूला भटका सोमशर्मा नामका ब्राह्मण अटवीमें आ फॅसा। घूमता-फिरता वह इन्हींके पास आ गया। अपनी-सी इस बेचारे ब्राह्मणकी दशा देखकर ये बड़े दिलगीर हुए। सोमशर्मासे इन्होंने सब हाल कहा और यह भी कहा—यहॉसे निकलनेका कोई मार्ग प्रयत्न करने पर भी जब हमें न मिला तो हमने अन्तमें धर्मका शरण लिया इसलिये कि यहाँ हमारी मरने सिवा कोई गति ही नहीं है और जब हमें मृत्युके सामने होना ही है तब कायरता और बुरे भावोंसे क्यों उसका सामना करना, जिससे उसीका ऐसे

समयमे आश्रय लेना परम हितकारी है । हम तुम्हे भी सलाह देते हैं कि तुम भी सुगतिकी प्राप्तिके लिये धर्मका आश्रय ग्रहण करो । इसके बाद उन्होने सोमशर्माको धर्मका सामान्य स्वरूप समझाया—देखो, जो अठारह दोषोसे रहित और सबके देखनेवाले सर्वज्ञ हैं, वे देव कहाते हैं ओर ऐसे निर्दोष भगवान् द्वारा बताये दयामय मार्गको धर्म कहते हैं । धर्मका वैसे सामान्य लक्षण है—जो दुःखोसे छुड़ाकर सुख प्राप्त करावे ऐसे धर्मको आचार्योने दस भागोमे बॉटा है । अर्थात् सुख प्राप्त करनेके दस उपाय है । वे ये हैं—उत्तम क्षमा, मार्दव—हृदयका कोमल होना, आर्जव-हृदयका सरल होना, सच बोलना, शौच-निर्लोभी या संतोषी होना, संयम-इन्द्रियोको वश में करना, तप-व्रत उपवासादि करना, त्याग-पुण्यसे प्राप्त हुए धनको सुकृतके काम जैसे दान, परोपकार आदिमे लगाना, आकिचन-परिग्रह अर्थात् धन-धान्य, चॉदी-सोना, दास-दासी आदि दस प्रकारके परिग्रहकी लालसा कम करके आत्माको शान्तिके मार्ग पर ले जाना और ब्रह्मचर्यका पालना ।

गुरु वे कहलाते हैं जो माया,ममतासे रहित हों, विषयोकी वासना जिन्हें छू तक न गई हो, जो पक्के ब्रह्मचारी हो, तपस्वी हो और संसारके दुःखी जीवोको हितका रास्ता बतला कर उन्हे सुख प्राप्त करानेवाले हो । इन तीनो पर अर्थात् देव, धर्म, गुरु पर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन सुख-स्थान पर पहुॅचनेकी सबसे पहली सीढ़ी है । इसलिये तुम इसे ग्रहण करो । इस विश्वासको जैन शासन या जैनधर्म भी कहते हैं । जैनधर्ममें जीवको, जिसे कि आत्मा भी कहते हैं, अनादि माना है । न केवल माना ही है, किन्तु वह अनादि ही है । नास्तिकोकी तरह वह पचभूत-पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश इनसे बना हुआ नहीं है । क्योकि ये सब पदार्थ जड़ हैं । ये देख जान नहीं सकते । और जीवका देखना जानना ही खास गुण है । इसी गुणसे उसका अस्तित्व सिद्ध होता है । जीवको जैनधर्म दो भागोमें बॉट देता है । एक भव्य—अर्थात् ज्ञानावरणादि आठ कर्मोका, जिन्होने कि आत्माके वास्तविक स्वरूपको अनादिसे ढॉक रक्खा है, नाश कर मोक्ष जानेवाला और दूसरा अभव्य—जिसमें कर्मोके नाश करनेकी शक्ति न हो । इनमे कर्मयुक्त जीवको संसारी कहते हैं और कर्म रहितको मुक्त । जीवके

सिवा संसारमे एक और भी द्रव्य है। उसे अजीव या पुद्‌गल कहते हैं। इसमें जानने देखनेकी शक्ति नहीं होती, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। अजीवको जैनधर्म पॉच भागोंमें वॉटता है, जैसे पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन पॉचोंकी दो श्रेणियॉ की गई है। एक मूर्त्तिक और दूसरी अमूर्त्तिक। मूर्त्तिक उसे कहते हैं जो छुई जा सके, जिसमे कुछ न कुछ स्वाद हो, गन्ध और वर्ण रूप-रग हो। अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये वातें पाई जॉय वह मूर्त्तिक है और जिसमें ये न हों वह अमूर्त्तिक है। उक्त पाँच द्रव्योंमे सिर्फ पुद्‌गल तो मूर्त्तिक है अर्थात् इसमें उक्त चारों वातें सदासे हैं और रहेंगी—कभी उससे जुदा न होंगी। इसके सिवा धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अमूर्त्तिक हैं। इन सव विषयोंका विशेष खुलासा अन्य जैन ग्रन्थोंमें किया है। प्रकरणवश तुम्हें यह सामान्य स्वरूप कहा। विश्वास है अपने हितके लिये इसे ग्रहण करनेका यत्न करोगे।

सोमशर्माको यह उपदेश वहुत पसन्द पड़ा। उसने मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वको स्वीकार कर लिया। इसके वाद जिनदत्त वसुमित्रकी तरह वह भी संन्यास ले भगवान्‌का ध्यान करने लगा। सोमशर्माको भूख-प्यास, डॉस-मच्छर आदिकी वहुत वाधा सहनी पड़ी। उसे उसने वड़ी धीरताके साथ सहा। अन्तमें समाधिसे मृत्यु प्राप्त कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहॉसे श्रेणिक महाराजका अभयकुमार नामका पुत्र हुआ। अभयकुमार वड़ा ही धीर-वीर और पराक्रमी था, परोपकारी था। अन्तमें वह कर्मोका नाश कर मोक्ष गया।

सोमशर्मा मृत्युके कुछ ही दिनो वाद जिनदत्त और वसुमित्रको भी समाधिसे मृत्यु हुई। वे दोनों भी इसी सौधर्म स्वर्गमें, जहॉ कि सोमशर्मा देव हुआ था, देव हुए।

संसारका उपकार करनेवाले और पुण्यके कारण जिनके उपदेश किये धर्मको कष्ट समयमें भी धारण कर भव्यजन उस कठिनसे कठिन सुखको, जिसके कि प्राप्त करनेकी उन्हें स्वप्नमें भी आशा नहीं होती, प्राप्त कर लेते हैं, वे सर्वज्ञ भगवान् मुझे वह निर्मला सुख दें, जिस सुखकी इन्द्र, चक्री और विद्याधर राजे पूजा करते हैं।

---

१०४. धर्मानुराग-कथा

जो निर्मल केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोकके जानने देखनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धर्मसे अनुराग करनेवाले राजकुमार लकुचकी कथा लिखी जाती है ।

उज्जैनके राजा धनवर्मा और उनकी रानी धनश्री लकुच नामका एक पुत्र था । लकुच बड़ा अभिमानी था । पर साथमे वीर भी था । उसे लोग मेघकी उपमा देते थे । इसलिए कि वह शत्रुओंकी मान रूपी अग्निको बुझा देता था, शत्रुओ पर विजय प्राप्त करना उसके बाये हाथका खेल था ।

काल-मेघ नामके म्लेच्छ राजाने एक बार उज्जैन पर चढाई की थी । अवन्ति देशकी प्रजाको तब जन-धनकी बहुत हानि उठानी पड़ी थी । लकुचने इसका बदला चुकानेके लिए काममेघके देश पर भी चढाई कर दी । दोनो ओरसे घमासान युद्ध होने पर विजयलक्ष्मी लकुचकी गोदमें आकर लेटी । लकुचने तब कालमेघको बॉध लाकर पिताके सामने रख दिया । धनवर्मा अपने पुत्रकी इस वीरताको देखकर बड़े खुश हुए । इस खुशीमें धनवर्माने लकुचको कुछ वर देनेकी इच्छा जाहिर की । पर उसकी प्रार्थनासे वरको उपयोगमे लानेका भार उन्होंने उसीकी इच्छा पर छोड़ दिया । अपनी इच्छाके माफिक करनेकी पिताकी आज्ञा पा लकुचकी ऑखे फिर गई । उसने अपनी इच्छाका दुरुपयोग करना शुरू किया । व्यभिचारकी ओर उसकी दृष्टि गई । तब अच्छे-अच्छे घरानेकी सुशील स्त्रियॉ उसकी शिकार बनने लगीं । उनका धर्म भ्रष्ट किया जाने लगा । अनेक सतियोने इस पापीसे अपने धर्मकी रक्षाके लिए आत्महत्याएँ तक कर डालीं । प्रजाके लोग तंग आ गये । वे महाराजसे राजकुमारकी शिकायत तक करने नहीं पाते । कारण राजकुमारके जासूस उज्जैनके कोने-कोनेमे फैल रहे थे, इसलिए जिसने कुछ राजकुमारके विरुद्ध जबान हिलाई या विचार भी किया कि वह बेचारा फौरन ही मौतके मुँहमे फैंक दिया जाता था ।

यहॉ एक पुंगल नामका सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था । नागदत्ता बड़ी खूबसूरत थी । एक दिन पापी लकुचकी इस पर ऑखें

चली गई । बस, फिर क्या देर थी ? उसने उसे प्राप्त कर अपनी नीच मनोवृत्तिकी तृप्ति की । पुगल उसकी इस नीचतासे सिरसे पॉव तक जल उठा । क्रोधकी आग उसके रोम-रोममे फैल गई । वह राजकुमारके दवदवेसे कुछ करने-धरनेको लाचार था । पर उस दिनकी वाट वह वड़ी आशासे जोह रहा था, जिस दिन कि वह लकुचसे उसके कर्मोका भरपूर वदला चुका कर अपनी छाती ठण्डी करे ।

एक दिन लकुच वन क्रीड़ाके लिए गया हुआ था । भाग्यसे वहाँ उसे मुनिराजके दर्शन हो गये । उसने उनसे धर्मका उपदेश सुना । उपदेशका प्रभाव उस पर खूब पड़ा । इसलिए वह वहीं उनसे दीक्षा ले मुनि हो गया । उधर पुंगल ऐसे मौके की आशा लगाये वैठा ही था, सो जैसे ही उसे लकुचका मुनि होना जान पड़ा वह लोहेके वड़े-वड़े तीखे कीलोंको लेकर ल कुच मुनिके ध्याान करनेकी जगह पर आया । इस समय लकुच मुनि ध्यान में थे । पुंगल तब उन कीलोको मुनिके शरीरमें ठोक कर चलता बना । लकुच मुनिने इस दु:सह उपसर्गको बड़ी शान्ति, स्थिरता और धर्मानुरागसे सह कर स्वर्ग लोक प्राप्त किया । सच है, महात्माओंका चरित्र विचित्र ही हुआ करता है । वह अपने जीवनकी गतिको मिनट भरमें कुछको कुछ वदल डालते हैं ।

वे लकुच मुनि जयलाभ करें, कर्मोको जीतें, जिन्होंने असह्रय कष्ट सहकर जिनेन्द्र भगवान रूपी चन्द्रमाकी उपदेश रूपी अमृतमयी किरणोंसे स्वर्गका उत्तम सुख प्राप्त किया, गुणरूपी रत्नोंके जो पर्वत हुए और ज्ञानके गहरे समुद्र कहलाये ।

☆ आस्था के पास विज्ञान को आना पड़ेगा आस्था है तो क्षीर-नीर-विवेक भरे न्याय को होना पड़ेगा । "सत्यमेव जयते" को "सत्यमेव दृश्यते" का रुप लेना पड़ेगा ।

१०५. सम्यक्‌दर्शन पर दृढ़ रहनेवालेकी कथा

सब प्रकारके दोषो रहित जिन भगवानको नमस्कार कर सम्यक् दर्शनको खूब दृढ़ताके साथ पालन करनेवाले जिनदास सेठकी पवित्र कथा लिखी जाती है ।

प्राचीन कालसे प्रसिद्ध पाटालिपुत्र (पटना) मे जिनदत्त नामका एक प्रसिद्ध और जिनभक्त सेठ हो चुका है । जिनदत्त सेठकी स्त्रीकानाम जिनदासी था । जिनदास, जिसकी कि यह कथा है, इसीका पुत्र था । अपनी माताके अनुसार जिनदास भी ईश्वर प्रेमी, हृदयी और अनेक गुणोका धारक था ।

एक बार जिनदास सुवर्ण द्वीपसे धन कमाकर अपने नगरकी ओर आ रहा था । किसी काल नामके देवकी जिनदासके साथ कोई पूर्व जन्मकी शत्रुता होगी इसलिए वह देव इसे मारना चाहता होगा । यही कारण था कि उसने कोई सौ योजन चौड़े जहाज पर बैठे-बैठे ही जिनदाससे कहा—जिनदास, यदि तू यह कह जिनेन्द्र भगवान कोई चीज नहीं, जैनधर्म कोई चीज नहीं, तो तुझे मैं जीता छोड़ सकता हूँ, नहीं तो मार डालूँगा । उस देवका वह डराना सुन जिनदास वगैरहने हाथ जोड़कर श्रीमहावीर भगवानको बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और निडर होकर वे उससे बोले—पापी, यह हम कभी नहीं कह सकते कि जिनभगवान और उनका धर्म कोई चीज नहीं, बल्कि हम यह दृढताके साथ कहते हैं कि केवलज्ञान द्वारा सूर्यसे अधिक तेजस्वी जिनेन्द्र भगवान और ससार द्वारा पूजा जानेवाला उनका मत सबसे श्रेष्ठ है । उनकी समान्ता करनेवाला कोई देव और कोई धर्म ससारमे है ही नहीं । इतना कह कर ही जिनदासने सबके समाने ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी कथा, जो कि पहले पृष्ठ संख्या . ... पर लिखी जा चुकी है, कह सुनाई । उस कथाको सुनकर सबका विश्वास और भी दृढ़ हो गया ।

इन धर्मात्माओ पर इस विपत्तिके आनेसे उत्तरकुरुमे रहनेवाले अनाव्रत नामके यक्षका आसन कॅपा । उसने उसी समय आकर क्रोधसे कालदेवके सिरपर चक्रकी बडी जोरकी मार जमाई और उसे उठाकर बडवानलमे डाल दिया ।

जहाजके लोगोंकी इस अचल भक्तिसे देवी बड़ी प्रसन्न हुई । उसने आकर इन धर्मात्माओंका वड़ा आदर-सत्कार दिया और इनके लिए भक्तिसे अर्घ चढ़ाया । सच है, जो भव्यजन सम्यक्दर्शनका पालन करते हैं, संसारमें उनका आदर, मान कौन नहीं करता । इसके वाद जिनदास वगैरह सव लोग कुशलतासे अपने घर आ गये । भक्तिसे उत्पन्न हुए पुण्य इनकी सहायता की । एक दिन मौका पाकर जिनदासने अवधिज्ञानी मुनिसे कालदेवने ऐसा क्यों किया, इस वावत खुलासा पूछा । मुनिराजने इस वैरका सब कारण जिनदाससे कहा । जिनदासको सुनकर सन्तोष हुआ ।

जो बुद्धिमान् हैं, उन्हें उचित है या उनका कर्त्तव्य है कि वे परम सुखके लिए संसारका हित करनेवाले और मोक्ष के कारण पवित्र सम्यग्दर्शन को ग्रहण करें । इसे छोड़कर उन्हें और वातोंके लिए कष्ट उठाना उचित नहीं, कारण वे मोक्ष के कारण नहीं हैं ।

★ वृद्ध सेवा का परिणाम, चिन्तन की धारा का समृद्ध होना है । वृद्ध एक चलता-फिरता तीर्थ है ।

★ उपास्य के प्रति जिनका समर्पण भाव होता है, वह स्वयं उपास्य रुप हो जाता है ।

१०६. सम्यक्त्वको न छोड़नेवालेकी कथा

जिन्हे स्वर्गके देव नमस्कार करते हैं, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर सम्यक्त्वको न छोड़नेवाली जिनमतीकी कथा लिखी जाती है।

लाटदेशके सुप्रसिद्ध गलगोद्रह नामके शहरमे जिनदत्त नामका एक सेठ हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। इसके जिनमती नामकी एक लड़की थी। जिनमती बहुत सुन्दरी थी। उसकी भुवन-मोहिनी सुन्दरता देखकर स्वर्गकी अप्सराएँ भी लजा जाती थी। पुण्यसे सुन्दरता प्राप्त होती ही है।

यहीं पर एक दूसरा और सेठ रहता था। इसका नाम नागदत्त था। नागदत्तकी स्त्री नागदत्ताके रुद्रदत्त नामका एक लड़का था। नागदत्तने बहुतेरा चाहा कि जिनदत्त जिनमतीका ब्याह उसके पुत्र रुद्रदत्तसे कर दे। पर उसको विधर्मी होनेसे जिनदत्तनेउसे अपनी पुत्री न ब्याही। जिनदत्तका यह हठ नागदत्त को पसन्द न आया। उसने तब एक दूसरी ही युक्ति की। वह यह कि नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्त मुनिसे कुछ व्रतनियम लेकर श्रावक बन गये और श्रावक सरीखी सब क्रियाएँ करने लगे। जिनदत्तको इससे बडी खुशी हुई। और उसे इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही जैनी हो गये हैं तब इसने बड़ी खुशीके साथ जिनमतीका ब्याह रुद्रदत्तसे कर दिया। जहाँ ब्याह हुआ कि इन दोनो पिता-पुत्रोने जैनधर्म छोड़कर पीछा अपना धर्म ग्रहण कर लिया।

रुद्रदत्त अब जिनमतीसे रोज-रोज आग्रहके साथ कहने लगा कि प्रिये, तुम भी अब क्यों न मेरा ही धर्म ग्रहण कर लेती हो। वह बड़ा उत्तम धर्म है। जिनमतीकी जिनधर्म पर गाढ़ श्रद्धा थी। वह जिनेन्द्र भगवानकी सच्ची सेविका थी। ऐसी हालतमें उसे जिनधर्मके सिवा अन्य धर्म कैसे रुच सकता था। उसने तब अपने विचार बड़ी स्वतन्त्रताके साथ अपने स्वामी पर प्रगट किये। वह बोली-प्राणनाथ, आपका जैसा विश्वास हो, उस पर मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। पर मैं अपने विश्वासके अनुसार यह कहूँगी कि संसारमे जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो सर्वोच्च होनेका दावा कर सकता है।

इसलिए कि जीवमात्रका उपकार करनेकी उसमें योग्यता है और बड़े-बड़े राजे-महाराजे, स्वर्गके देव, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि उसे पूजते-मानते हैं फिर मैं ऐसी कोई बेजा बात उसमें नहीं पाती कि जिससे मुझे उसके छोड़नेके लिए बाध्य होना पड़े। बल्कि मैं आपको भी सलाह दूँगी कि आप इसी सच्चे और जीव मात्रका हित करनेवाले जैनधर्मको ग्रहण कर लें तो बड़ा अच्छा हो। इसी प्रकार इन दोनों पति-पत्नी की परस्पर बात-चीत हुआ करती थी। अपने-अपने धर्मकी दोनों ही तारीफ किया करते थे। रुद्रदत्त जरा अधिक हठी था। इसलिए कभी-कभी जिनमती पर वह जरा गुस्सा भी हो जाता था। पर जिनमती बुद्धिमती और चतुर थी, इसलिए वह उसकी नाराजगी पर कभी अप्रसन्नता जाहिर न करती। बल्कि उसकी नाराजीको हँसीका रूप दे झटसे रुद्रदत्तको शान्त कर देती थी। जो हो, पर ये रोज-रोजकी विवाद भरी बातें सुखका कारण नहीं होतीं।

इस तरह बहुत समय बीत गया। एक दिन ऐसा मौका आया कि दुष्ट भीलोंने शहरके किसी हिस्सेमें आग लगा दी। चारों ओर आग बुझाने के लिए दौड़ा-दौड़ पड़ गई। उस भयंकर आगको देखकर लोगोंको अपनी जानका भी सन्देह होने लगा। इस समयको योग्य अवसर देख जिनमतीने अपने स्वामी रुद्रदत्त से कहा—प्राणनाथ, मेरी बात सुनिए। रोज-रोजका जो अपने में वाद-विवाद होता है, मैं उसे अच्छा नहीं समझती। मेरी इच्छा है कि यह झगड़ा रफा हो जाय।

इसके लिए मेरा यह कहना है कि आज अपने शहरमें आग लगी है उस आग को जिसका देव बुझा दे, समझना चाहिए कि वही देव सच्चा है और फिर उसीको हमें परस्परमें स्वीकार कर लेना चाहिए। रुद्रदत्तने जिनमतीकी यह बात मान ली। उसने तब कुछ लोगोंको इस बातका गवाह कर महादेव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंके लिए अर्घ दिया, बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा-स्तुति कर उसने अग्निशान्तिके लिए प्रार्थना की। पर उसकी इस प्रार्थनाका कुछ उपयोग न हुआ। अग्नि जिस भयंकरताके साथ जल रही थी। वह उसी तरह जलती रही। सच है, ऐसे देवोंसे कभी उपद्रवोंकी शान्ति नहीं होती, जिनका हृदय दुष्ट है, जो मिथ्यात्वी हैं।

अब धर्मवत्सला जिनमतीकी बारी आई । उसने बड़ी भक्तिसे पच पर मेष्ठियोके चरण-कमलोको अपने हृदयमे विराजमान कर उनके लिये अर्घ चढ़ाया । इसके बाद वह अपने पति, पुत्र आदि कुटुम्ब वर्गको अपने पास बैठाकर आप कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा पच-नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करने लगी । इसकी इस अचल श्रद्धा और भक्तिको देखकर शासन देवता बड़ी प्रसन्न हुई । उसने तब उसी समय आकर उस भयंकर आगको देखते-देखते बुझा दिया । इस अतिशयको देखकर रुद्रदत्त वगैरह बड़े चकित हुए । उन्हे विश्वास हुआ कि जैनधर्म ही सच्चा धर्म है । उन्होने फिर सच्चे मनसे जैनधर्मकी दीक्षा ले श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये । जैनधर्मकी खूब प्रभावना हुई । सच है, ससार श्रेष्ठ जैनधर्मकी महिमाको कौन कह सकता है जो कि स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है । जिस प्रकार जिनमतीने अपने सम्यक्त्वकी रक्षा की उसी तरह अन्य भव्यजनोंको भी सुख प्राप्तिके लिये पवित्र सम्यग्दर्शनकी सदा सुरक्षा करते रहना चाहिये ।

जिनेन्द्र भगवानके चरणोमे जिनमतीकी अचल भक्ति, उसके हृदयकी पवित्रता और उसका दृढ़ विश्वास देखकर स्वर्गके देवोंने दिव्य वस्त्राभूषणोसे उसका खूब आदर-मान किया । और सच भी है, सच्चे जिनभक्त सम्यदृष्टिकी कौन पूजा नहीं करते ।

अपने में, अपने हित की भावना जागना ही जागृति है, तभी जीवन में सबेरा है । इसीलिए किसीने कहा है" जभी जाग जाओ तभी सबेरा ।

१०७. सम्यग्दर्शनके प्रभावकी कथा

जो सारे संसारके देवाधिदेव हैं और स्वर्गके देव जिनकी भक्ति से पूजा किया करते हैं उन जिन भगवानको प्रणाम कर महारानी चेलिनी और श्रेणिकके द्वारा होनेवाले सम्यक्त्वके प्रभावकी कथा लिखी जाती है ।

उपश्रेणिक मगधके राजा थे राजगृह मगधकी तब खास राजधानी थी । उपश्रेणिककी रानीका नाम सुप्रभा था । श्रेणिक इसीके पुत्र थे । श्रेणिक जैसे सुन्दर थे, जैसे ही उनमें अनेक गुण भी थे । वे बुद्धिमान् थे, बड़े गम्भीर प्रकृतिके थे, शूरवीर थे, दानी थे और अत्यन्त तेजस्वी थे ।

मगध राज्यकी सीमासे लगते ही एक नागधर्म नामके राजाका राज्य था । नागदत्तकी और उपश्रेणिककी पुरानी शत्रुता चली आती थी । नागदत्त उसका बदला लेनेका मौका तो सदा ही देखता रहता था, पर इस समय उसका उपश्रेणिकके साथ कोई भारी मनमुटाव न था । वह कपटसे उपश्रेणिकका मित्र बना रहता था । यही कारण था कि उसने एक बार उपश्रेणिकके लिये एक दुष्ट घोड़ा भेंटमें भेजा । घोड़ा इतना दुष्ट था कि वैसे तो वह चलता ही न था और उसे जरा ही ऐड़ लगाई या लगाम खींची कि बस वह फिर हवासे बातें करने लगता था । दुष्टोंकी ऐसी गति ही होती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । उपश्रेणिक एक दिन इसी घोड़े पर सवार ही हवा खोरी के लिये निकले । इन्होंने बैठते ही जैसे उसकी लगाम तानी कि वह हवा हो गया । बड़ी देर बाद वह एक अटवीमें जाकर ठहरा । उस अटवीका मालिक एक यमदण्ड नामका भील था, जो देखनेमें सचमुच ही यमसा भयानक था । इसके तिलकावती नामकी एक लड़की थी । तिलकावती बड़ी सुन्दरी थी । उसे देख यह कहना अनुचित न होगा कि कोयलेकी खानमें हीरा निकला । कहाँ काला भुसंड यमदण्ड और कहाँ स्वर्गकी अप्सराओंको लजानेवानी इसकी लड़की चन्द्रवदनी तिलकावती । अस्तु, इस भुवन-सुन्दर रूपराशिको देखकर उपश्रेणिक उसपर मोहित हो गये । उन्होंने तिलकावतीके लिए यमदण्डसे मंगनी की । उत्तरमें यमदण्डने कहा—राज-राजेश्वर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ । जब कि एक पृथिवीके सम्राट मेरे जमाई बनते हैं । ओर इसके लिये मुझे

बेहद खुशी है । मैं अपनी पुत्रीका आपके साथ ब्याह करूँ, इसके पहले आपको एक शर्त करनी होगी ओर वह कि आप राज्य तिलकावतीसे होनेवाली सन्तानको दे । उपश्रेणिकने यमदण्डकी इस बातको स्वीकार कर लिया । यमदण्डने भी तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह उपश्रेणिकसे कर दिया । उपश्रेणिक फिर तिलकावतीको साथ ले राजगृह आ गये ।

कुछ समय सुखपूर्वक बीतने पर तिलकावतीके एक पुत्र हुआ । उसका नाम रक्खा गया चिलातपुत्र । एक दिन उपश्रेणिकने विचार कर, कि मेरे इन पुत्रोमें राजयोग किसको है, एक निमित्तज्ञानीको बुलाया और उससे पूछा—पंडितजी, अपना निमित्तज्ञान देखकर बतलाइए कि मेरे इतने पुत्रोमे राज्य-सुख कौन भोग सकेगा ? निमित्तज्ञानीने कहा—महाराज, जो सिहासन पर बैठा हुआ नगाड़ा बजाता रहे और दूर हीसे कुत्तोंको खीर खिलाता हुआ आप भी खाता रहे और आग लगने पर सिंहासन, छत्र, चवॅर आदि राज्य चिन्होको निकाल ले भागे, वह राज्य-लक्ष्मीका सुख भोग करेगा । इसमे आप किसी तरहका सन्देह न समझे । उपश्रेणिकने एक दिन इस बातकी परीक्षा करनेके लिये अपने सब पुत्रोंको खीर खानेके लिये बैठाया । उनके पास ही सिहासन और एक नगाड़ा भी रखवा दिया । पर यह किसीको पता न पड़ने दिया कि ऐसा क्यों किया गया । सब कुमार भोजन करनेको बैठे और खाना उन्होने आरम्भ किया, कि इतनेमे एक ओरसे सैकड़ो कुत्तोंका झुण्डका झुण्ड उन पर आ टूटा । तब वे सब डरके मारे उठ उठकर भागने लगे । श्रेणिक उन कुत्तोसे न डरा, वह जल्दीसे उठकर खीरकी पत्तलोंको एक ऊँचे स्थान पर धरने लगा । थोड़ी ही देरमें उसने बहुत-सी पत्तलें इकट्ठी कर ली । इसके बाद वह स्वयं उस ऊँचे स्थान पर रखे हुये सिहासन पर बैठकर नगाड़ा बजाने लगा, जिससे कुत्ते उसके पास न आ पावे और इकट्ठी की हुई पत्तलोमेसे एक-एक पत्तल उठा-उठा कर दूर-दूर फैंकता गया । इस प्रकार अपनी बुद्धिसे व्यवस्था कर उसने बडी निर्भयताके साथ भोजन किया । इसी प्रकार आग लगने पर श्रेणिकने सिंहासन, छत्र, चॅवर आदि राज्य चिन्होकी रक्षा कर ली ।

उपश्रेणिकको तब निश्चय हो गया कि इन सब पुत्रोमे श्रेणिक ही एक ऐसा भाग्यशाली है जो मेरे राज्यको अच्छी तरह चलायेगा । उपश्रेणिकने तब

उसकी रक्षाके लिये उसे यहाँसे कहीं भेज देना उचित समझा। उन्हें इस वातका खटका था कि मैं राज्यका राज्य मालिक तिलकावतीके पुत्रको वना चुका हूँ, और ऐसी दशामें श्रेणिक यहाँ रहा तो कोई असंभव नहीं कि इसकी तेजस्विता, इसकी वुद्धिमानी, इसकी कार्यक्षमताको देखकर किसीको डाह उपज जाय और उस हालतमें इसका कुछ अभीष्ट हो जाय। इसलिये जव तक यह अच्छा हुशियार न हो जाये तव तक इसका कहीं वाहर रहना ही उत्तम हैं फिर यदि इसमें वल होगा तो यह स्वयं राज्यको हस्तगत कर सकेगा। इसके लिये उपश्रेणिकने श्रेणिकके सिर पर यह अपराध मढ़ा कि इसने कुत्तोंका झूँठा खाया है, इसलिये अव यह राजघरानेमें रहने योग्य नहीं रहा। मैं इसे आज्ञा करता हूँ कि यह मेरे राज्यसे निकल जाये। सच है, राजे लोग वड़े विचारके साथ काम करते हैं। निरपराध श्रेणिक पिताकी आज्ञा पा उसी समय राजगृहसे निकल गया। फिर एक मिनटके लिये भी वह वहाँ न ठहरा।

श्रेणिक यहाँसे चलकर कोई दुपहरके समय नन्द नामक गाँवमें पहुँचा। यहाँके लोगोंको श्रेणिक के निकाले जानेका हाल मालूम हो गया था, इसलिये राजद्रोहके भयसे उन्होंने श्रेणिकको अपने गाँवमें न रहने दिया। श्रेणिकने तव लाचार हो आगेका रास्ता लिया। रास्तेमें इसे एक संन्यासियोंका आश्रम मिला। इसने कुछ दिनों यहीं अपना डेरा जमा दिया। मठमें यह रहता और संन्यासियोंका उपदेश सुनता। मठका प्रधान संन्यासी वड़ा विद्वान् था। श्रेणिक पर उसका वहुत असर पड़ा। उसने तव वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया। श्रेणिक और कुछ दिनों तक यहाँ ठहरा। इसके वाद वह यहाँसे रवाना होकर दक्षिण दिशाकी ओर वढ़ा।

इस समय दक्षिणकी राजधानी काँचीके राजा वसुपाल थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। इनके वसुमित्रा नामकी एक सुन्दर और गुणवती पुत्री थी। यहाँ एक सोमशर्मा व्राह्मण रहता था, सोमशर्माकी स्त्रीका नाम सोमश्री था। इसके भी एक पुत्री थी। इसका नाम अभयमती था। अभयमती वड़ी वुद्धिमती थी।

एक वार सोमशर्मा तीर्थयात्रा करके लौट रहा था। रास्ते में उसे श्रेणिकने देखा। कुछ मेल-मुलाकात और वोल चाल हुए वाद जव ये दोनों चलनेको तैयार हुए तव श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा—मामाजी, आप भी वड़ी

दूरसे आते हैं और मैं भी बडी दूरसे चला आ रहा हूँ, इसलिये हम दोनों ही थक चुके हैं । अच्छा हो यदि आप मुझे अपने कन्धे पर बैठा ले और आप मेरे कन्धे पर बैठकर चले तो । श्रेणिककी यह बे-सिर पैरकी बात सुनकर सोमशर्मा बड़ा चकित हुआ । उसने समझा कि यह पागल हो गया जान पड़ता है । उसने तब श्रेणिककी बातका कुछ जवाब न दिया । थोड़ी दूर चुपचाप आगे बढ़ने पर श्रेणिकने दो गॉवोको देखा । उसने तब जो छोटा गॉव था उसे तो बड़ा बताया और जो बड़ा था उसे छोटा बताया । रास्तेमे श्रेणिक जहॉ सिर पर कड़ी धूप पड़ती वहॉ तो छत्री उतार लेता और जहॉ वृक्षोकी ठंडी छाया आती वहॉ तो छत्री चढ़ा लेता । इसी तरह जहॉ कोई नदी-नाला पड़ता तब तो वह जूतियोको पॉवोंमे पहर लेता और रास्तेमे उन्हे हाथमे लेकर नगे पैरो चलता । आगे चलकर उसने एक स्त्रीको पति द्वार मार खाती देखकर सोमशर्मासे कहा—क्यो मामाजी, यह जो स्त्री पिट रही है वह बॅधी है या खुली ? आगे एक मरे पुरुषको देखकर उसने पूछा कि यह जीता है या मर गया ? थोड़ी दूर चलकर इने एक एक धान के पके हुये खेतको देखकर कहा—इसे इसके मालिकोने खा लिया है । या वे अब खायेगे ? इसी तरह सारे रास्तेमें एकसे एक अंसगत और बे-मतलबके प्रश्न सुनकर बेचारा सोमशर्मा ऊब गया । राम-राम करते वह घर पर आया । श्रेणिकको वह शहर बाहर ही एक जगह बैठाकर यह कह आया कि मैं अपनी लड़कीसे पूछकर अभी आता हूँ, तबतक तुम यहीं बैठना ।

अभयमती अपने पिताको आया देख कर खुश हुई । उन्हें कुछ खिला-पिला कर उसने पूछा—पिताजी, आप अकेले गये थे और अकेले ही आये हैं क्या ? सोमशर्माने कहा—बेटा, मेरे साथ एक बड़ा ही सुन्दर लडका आया है । पर बड़े दु:खकी बात है कि वह बेचारा पागल हो गया जान पड़ता है । उसकी देवकुमारसी सुन्दर जिन्दगी धूलधानी हो गई । कर्मोंकी लीला बड़ी ही विचित्र है । मुझे तोउसकी वह स्वर्गीय सुन्दरता और साथ ही उसका वह पागलपन देखकर उस पर बड़ी दया आती है । मैं उसे शहर बाहर एक स्थान पर बैठा आया हूँ । अपने पिताकी बाते सुनकर अभयमतीको बड़ा कौतुक हुआ । उसने सोमशर्मासे पूछा—हॉ तो पिताजी उसमे किस तरहका पागलपन

है ? मुझे उसके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो गई है । आप बतलावे । सोमशर्माने तब अभयमतीसे श्रेणिककी वे सब चेष्टाएँ—कन्धे पर चढ़ना-चढ़ाना, छोटे गॉवको बड़ा और बड़े को छोटा कहना, वृक्षके नीचे छत्री चढ़ा लेना और धूपमे उतार देना, पानीमे चलते समय जूते पहर लेना और रास्तेमें चलते उन्हे हाथमें ले लेना आदि कह सुनाई । अभमती ने उन सबको सुनकर अपने पितासे कहा—पिताजी, जिस पुरुषने ऐसी बातें की हैं, उसे आप पागल या साधारण पुरुष न समझें । वह तो बड़ा ही बुद्धिमान् है । मुझे मालूम होता है उसकी बातोके रहस्य पर आपने ध्यानसे विचार न किया इसीसे आपको उसकी बातें बे-सिर पैरकी जान पड़ीं पर ऐसा नहीं है । उन सबमें कुछ न कुछ रहस्य जरूर है । अच्छा, वह सब मैं आपको समझाती हूँ—पहले ही उसने जो यह कहा था कि आप मुझे अपने कन्धे पर चढ़ा लीजिए और आप मेरे कन्धों पर चढ़ जाइये, इससे उसका मतलब था, आप हम दोनो एक ही रास्तेंसे चलें । क्योंकि स्कन्ध शब्द का अर्थ रास्ता भी होता है । और यह उसका कहना ठीक भी था । इसलिये कि दो जने साथ रहनेसे हर तरह बड़ी सहायता मिलती रहती है ।

दूसरे उसने दो को ग्रामों देखकर बड़ेको तो छोटा और छोटेको बड़ा कहा था । इसमें उसका अभिप्राय यह है कि छोटे गॉवके लोग सज्जन है, धर्मात्मा हैं, दयालु हैं, परोपकारी हैं और हर एकको सहायता करनेवाले हैं । इसलिए यद्यपि वह गॉव छोटा था, पर तब भी उसे बड़ा ही कहना चाहिए । क्योंकि बड़प्पन गुणों और कर्त्तव्य पालनसे कहलाता है । केवल बाहरी चमक दमकसे नहीं । और बड़े गॉवको उसने तब छोटा कहा, इससे उसका मतलब स्पष्ट ही है कि उसके रहवासी अच्छे लोग नहीं हैं, उनमे बड़प्पन के जो गुण होने चाहिये वे नहीं हैं ।

तीसरे उसने वृक्षके नीचे छत्रीको चढ़ा लिया था और रास्तेमें उसे उतार लिया था । ऐसा करनेसे उसकी मंशा यह थी । रास्तेमे छत्रीको न लगाया जाय तो भी कुछ नुकसान नहीं और वृक्षके नीचे न लगानेसे उस पर बैठे हुए पक्षियोंके बीट वगैरहके करनेका डर बना रहता है । इसलिये वहॉ छत्री का लगाना आवश्यक है ।

चौथे उसने पानीमें चलते समय तो जूतोको पहर लिया और रास्तेमे चलते समय उन्हें हाथमे ले लिया था। इससे वह यह बतलाना चाहता है—पानीमे चलते समय यह नहीं देख पड़ता है कि कहॉ क्या पड़ा है। कॉटे, कीले और कंकर-पत्थरोके लग जानेका भय रहता है, जल जन्तुओके काटनेका भय रहता है। अतएव पानी मे उसने जूतोकी पहर कर बुद्धिमानोका ही काम किया। रास्तेमे अच्छी तरह देख-भाल कर चल सकते हैं, इसलिय यदि वहॉ जूते न पहरे जायँ तो उतनी हानिकी संभावना नहीं।

पॉचवें उसने एक स्त्रीको मार खाते देखकर पूछा था कि यह स्त्री बॅधी है या खुली ? इस प्रश्नसे मतलब था—उस स्त्रीका ब्याह हो गया है या नहीं ?

छठे—उसने एक मुर्देको देखकर पूछा था—यह मर गया है या जीता है ? पिताजी, उसका यह पूछना बड़ा मार्केका था। इससे वह यह जानना चाहता था कि यदि यह संसारका कुछ काम करके मरा है, यदि इसने स्वार्थ त्याग अपने धर्म, अपने देश और अपने देशके भाई—बन्धुओके हितमे जीवनका कुछ हिस्सा लगाकर मनुष्य जीवनका कुछ कर्त्तव्य पालन किया है, तब तो वह मरा हुआ भी जीता ही हे। क्योंकि उसकी वह प्राप्त की हुई कीर्ति मौजूद है, सारा संसार उसे स्मरण करता है, उसे हो अपना पथ प्रदर्शक बनाता है। फिर ऐसी हालतमे उसे मरा कैसे कहा जाय ? और इससे उलटा जो जीता रह कर भी संसारका कुछ काम नहीं करता, जिसे सदा अपने स्वार्थकी ही पड़ी रहती है ओर जो अपनी भलाई के सामने दूसरोंके होनेवाले अहित या नुकसानको नहीं देखता; बल्कि दूसरोंका बुरा करनेकी कोशिश करता है ऐसे पृथिवीके बोझको कौन जीता कहेगा ? उससे जब किसीको लाभ नहीं तब उसे मरा हुआ ही समझना चाहिए।

सातवें उसने पूछा कि यह धानका खेत मालिकों द्वारा खा-लिया गया है या खाया जायगा ? इस प्रश्नसे उसका यह मतलब था कि इसके मालिकोंने कर्ज लेकर इस खेतको बोया है या इसके लिए उन्हें कर्ज लेनेकी जरूरत न पडी अर्थात् अपना ही पैसा उन्होंने इसमें लगाया है ? यदि कर्ज लेकर उन्होंने इसे तैयार किया तब तो समझना चाहिए कि यह खेत पहले ही खा लिया गया और यदि कर्ज नहीं लिया गया तो अब वे इसे खॉयेंगे—अपने उपयोग में लावेंगे।

इस प्रकार श्रेणिकके सब प्रश्नोंका उत्तर अभयमतीने अपने पिताको समझाया । सुनकर सोमशर्माको बड़ा ही आनन्द हुआ । सोमशर्मा तव अभयमतीसे कहा—तो बेटा, ऐसे गुणवान् ओर रूपवान् लड़केको तो अपने घर लाना चाहिए । और अभयमती, वह जब पहले ही मिला तब उसने मुझे मामाजी कह कर पुकारा था । इसलिए उसका कोई अपने साथ सम्वन्ध भी होगा । अच्छा तो मैं उसे बुलाये लाता हूँ ।

अभयमती बोली—पिताजी, आपको तकलीफ उठानेकी कोई आवश्यकता नहीं । मैं अपनी दासीको भेजकर, उसे अभी बुलवा लेती हूँ । मुझे अभी एक दो बातों द्वारा और उसकी जॉच करना है । इसके लिए मैं निपुणमतीको भेजती हूँ । अभयमतीने इसके बाद निपुणमतीको कुछ थोड़ासा उबटन चूर्ण देकर भेजा और कहा तू उस नये आगन्तुकसे कहना कि मेरी मालिकनने आपकी मालिशके लिए यह तेल और उबटन चूर्ण भेजा है, सो आप अच्छी तरह मालिश तथा स्नान करके फलॉ रास्तेसे घर पर आवें । निपुणमतीने श्रेणिकके पास पहुँच कर सब हाल कहा और तेल तथा उबटनको देखकर, जिससे कि एक हाथका भी मालिश होना असंभव था, दंग रह गया । उसने तब जान लिया कि सोमशर्मासे मैंने जो-जो प्रश्न किये थे उसने अपनी लड़कीसे अवश्य कहा है और इसीसे उसकी लड़कीने मेरी परीक्षाके लिए यह उपाय रचा है । अस्तु कुछ परवा नहीं । यह विचार कर उस तुरंत-बुद्धि श्रेणिकने तेल और उबटन चूर्णके रखनेको अपने पॉवके अँगूठेसे दो गढ़े बनाकर निपुणमतीसे कहा—आप तेल और चूर्णके लिए बरतन चाहती हैं । अच्छी बात है, ये (गढ़ेकी और इशारा करके) बरतन हैं । आप इनमें तेल और चूर्ण रख दीजिए । मैं थोड़ी ही देर बाद स्नान करके आपकी मालिकनकी आज्ञाका पालन करूँगा । निपुणमती श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर दंग रह गई । वह फिर श्रेणिकके कहे अनुसार तेल और चूर्ण रखकर चली गई ।

अभयमतीने श्रेणिकको जिस रास्तेसे बुलाया था, उसमें उसने कोई घुटने-घुटने तक कीचड़ करवा दिया था । और कीचड़ बाहर होनेके स्थान पर वाँसकी एक छोटी सी पतली छोई (कमची) और बहुत ही थोड़ासा जल रख दिया था । इसलिए कि श्रेणिक अपने पॉवोंको साफ कर भीतर आये ।

श्रेणिकने घर पहुँच कर देखा तो भीतर जानेके रास्तेमे बहुत कीचड़ हो रहा है। वह कीचड़मे होकर यदि जाये तो उसके पाँव भरते हैं और दूसरी ओरसे भीतर जानेका रास्ता उसे मालूम नहीं है। यदि वह मालूम भी करे तो उससे कुछ लाभ नहीं। अभयमतीने उसे इसी रास्ते बुलाया है। वह फिर कीचड़में हो होकर गया। बाहर होते ही उसे पाँव धोनेके लिए थोड़ा जल रखा हुआ मिला। वह बड़े आश्चर्यमें आ गया कि कीचड़से ऐसे लथपथ भरे पाँवोंको मैं इस थोड़ेसे पानीसे कैसे धो सकूँगा। पर इसके सिवा उसके पास और कुछ उपाय भी न था। तब उसने पानीके पास ही रखी हुई उस छाई को उठाकर पहले उससे पाँवोका कीचड़ साफ कर लिया और फिर उस थोड़ेसे जलसे धोकर एक कपड़ेसे उन्हे पोछ लिया। इन सब परीक्षाओमे पास होकर जब श्रेणिक अभयमतीके सामने आया तब अभयमतीने उसके सामने एक ऐसा मूँगेका दाना रक्खा कि जिसमें हजारो बांके-सीधे छेद थे। यह पता नहीं पड़ पाता था किस छेदमें सूतका धागा पिरोनेसे उसमें पिरोया जा सकेगा और साधारण लोगोंके लिए यह बड़ा कठिन भी था। पर श्रेणिकने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे उस मूँगेमेबहुत जल्दी धागा पिरो दिया। श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर अभयमती दग रह गई। उसने तब मन ही मन सकल्प किया कि मैं अपना ब्याह इसीके साथ करूँगी। इसके बाद उसने श्रेणिकका बड़ी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया, खूब आनन्दके साथ उसे अपने ही घर पर जिमाया और कुछ दिनोके लिऐ उसे वहीं ठहरा भी लिया। अभयमतीकी मंशा उसकी सखी द्वारा जानकर उसके माता-पिताको बडी प्रसन्नता हुई। घर बैठे उन्हे ऐसा योग्य जँवाई मिल गया, इससे बढ़कर और प्रसन्नताकी बाते उनके लिए हो भी क्या सकती थी। कुछ दिनो बाद श्रेणिकके साथ अभयमतीका ब्याह भी हो गया। दोनोने नए जीवनमे प्रवेश किया। श्रेणिकके कष्ट भी बहुत कम हो गए। वह अब अपनी प्रियाके साथ सुखसे दिन बिताने लगा।

सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण एक अटवीमे जिनदत्त मुनिके पास दीक्षा लेकर सन्याससे मरा था। उसका उल्लेख अभिषेकविधिसे प्रेम करने वाले जिनदत्त और वसुमित्रकी १०३ वीं कथामे आ चुका है। यह सोमशर्मा यहाँसे मरकर सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ।। जब इसकी स्वर्गायु पूरी हुई तब

यह कांचीपुरमें हमारे इस कथानायक श्रेणिकके अभयकुमार नामका पुत्र हुआ। अभयकुमार बड़ा वीर और गुणवान था और सच भी है जो कर्मोंका नाशकर मोक्ष जानेवाला है, उसकी वीरताका क्या पूछना ?

कांचीके राजा वसुपाल एक बार दिग्विजय करनेको निकले। एक जगह उन्होने एक बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर देखा। उसमे विशेषता यह थी कि वह एक ही खम्भेके ऊपर बनाया गया था—उसका आधार एक ही खम्भा था। वसुपाल उसे देखकर बहुत खुश हुए। उनकी इच्छा हुई कि ऐसा मन्दिर कांचीमे भी बनवाया जाय। उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित सोमशर्माको एक पत्र लिखा। उसमें लिखा कि—"अपने यहाँ एक ऐसा सुन्दर जिन मंदिर तैयार करवाना, जिसकी इमारत भव्य और बड़ी मनोहर हो। सिवा इसके उसमें यह विशेषता भी हो कि मंदिर की सारी इमारत एक ही खम्भे पर खड़ी की जाए। मैं जब तक आऊँ तब तक मंदिर तैयार हो जाना चाहिए।" सोमशर्मा पत्र पढ़कर बड़ी चिन्ता में पड़ गया। वह इस विषयमे कुछ जानता न था, इसलिए वह क्या करे ? कैसा मंदिर बनबावे ? इसकी उसे कुछ सूझ न पड़ती थी। चिन्ता उसके मुँह पर सदा छाई रहती थी। उसे इस प्रकार उदास देखकर श्रेणिकने उससे उसकी उदासीका कारण पूछा। सोमशर्माने तब वह पत्र श्रेणिकके हाथमें देकर कहा—यही पत्र मेरी चिन्ताका मुख्य कारण है। मुझे इस विषयेंका किंचित् भी ज्ञान नहीं तब मैं मन्दिर बनवाऊँ भी तो कैसा ? इसीसे मैं चिन्तामग्न रहता हूँ ! श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा—आप इस विषयकी चिन्ता छोड़कर इसका सारा भार मुझे दे दीजिए। फिर देखिए, मैं थोड़े ही समयमें महाराजके लिखे अनुसार मंदिर बनवाए देता हूँ। सोमशर्माको श्रेणिकके इस साहस पर आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसे श्रेणिक की बुद्धिमानीका परिचय पहले हीसे मिल चुका था; इसलिए उसे कुछ सोच-विचार न कर सब काम श्रेणिकके हाथ सौंप दिया। श्रेणिकने पहले मन्दिरका एक नक्शा तैयार किया। जब नक्शा उसके मनके माफिक बन गया तब उसने हजारों अच्छे-अच्छे कारीगरोंको लगाकर थोड़े ही समयमें मन्दिरकी विशाल और भव्य इमारत तैयार करवा ली। श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको जो देखता वही उसकी शतमुखसे तारीफ करता और वास्तवमे श्रेणिकने यह कार्य

प्रशंसाके लायक किया भी था। सच है, उत्तम ज्ञान, कला-चतुराई ये सब बाते बिना पुण्यके प्राप्त नहीं होती।

जब वसुपाल लौटकर कांची आये और उन्होने मन्दिरकी उस भव्य इमारतको देखा तो वे बड़े खुश हुए। श्रेणिक पर उनकी अत्यन्त प्रीति हो गई। उन्होंने तब अपनी कुमारी वसुमित्राका उसके साथ ब्याह भी कर दिया। श्रेणिक राजजमाई बनकर सुखके साथ रहने लगा।

अब राजगृहकी कथा लिखी जाती है—

उपश्रेणिकको, उसकी रक्षा ही उसके लिए, देश बाहर कर दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक उन्होने और राज्य किया। फिर कोई कारण मिल जानेसे उन्हे संसार-विषय-भोगादिसे बड़ा वैराग्य हो गया। इसलिए वे अपनी प्रतिज्ञाकेअनुसार, चिलातपुत्रकी सब राज्यभार सौंपकर दीक्षा ले, योगी हो गये। राज्यसिहासनको अब चिलातपुत्रने अलंकृत किया।

प्रायः यह देखा जाता है कि एक छोटी जातिके या विषयोंके कीड़े स्वार्थी, अभिमानी, मनुष्यको कोई बड़ा अधिकार या खूब मनमानी दौलत मिल जाती है तो फिर उसका सिर आसमानमे चढ़ जाता है, ऑखे उसकी अभिमानके मारे नीची देखती ही नहीं। ऐसा मनुष्य ससारमे फिर सब कुछ अपनेको ही समझने लगता है। दूसरोकी इज्जत-आबरूकी वह कुछ भी परवा न कर उनका कौड़ीके भाव भी मोल नहीं समझता। चिलातपुत्र भी ऐसे ही मनुष्योमें था। बिना परिश्रम या बिना हाथ-पॉव हिलाये उसे एक विशाल राज्य मिल गया और मजा यह कि अच्छे शूरवीर और गुणवान् भाइयोंके बैठे रहते। तब उसे क्यों न राजलक्ष्मीका अभिमान हो ? क्यो न वह गर[illegible] प्रजाको पैरो नीचे कुचलकर इस अभिमानका उपयोग करे ? उसकी मॉ भीलकी लड़की, जिसका कि काम दिन-रात लूट-खसोट करने और लोगोको मारने-काटनेका रहा, उसके विचार गन्दे, उसकी वासनाएँ नीचातिनीच, तब वह अपनी जाति, अपने विचार और अपनी वासनाके अनुसार यदि काम करे तो इसमें नई बात क्या ? कुछ लोग ऐसा कहें कि यह सब कुछ होने पर भी अब राजा है, प्रजाका प्रतिपालक है, तब उसे तो अच्छा होना ही चाहिए। इसका यह उत्तर

है कि ऐसा होना आवश्यक है और एक ऐसे मनुष्यको, जिसका कि अधिकार वहुत वड़ा है—हजारों लाखों अच्छे-अच्छे इज्जत-आवरूदार, धनी, गरीव, दीन, दुःखी जिसकी कृपाकी चाह करते हैं, विशेष कर शिष्ट और सवका हितैषी होना ही चाहिए । हॉ ये सव वातें उसमें हो सकती हैं, जिसमें दयालुता, परोपकारता, कुलीनता, निरभिमानता, सरलता, सज्जनता आदि गुण कुल-परम्परासे चले आते हों । और जहॉ इनका मूलमें ही कुछ ठिकाना नहीं वहॉ इन गुणोंका होना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है । आप एक कौएको मोर के पींखोंसे खूव सजाकर सुन्दर वना दीजिए, पर रहेगा वह कौआका कौआ ही । ठीक इसी तरह चिलातपुत्र आज एक विशाल राज्यका मालिक जरूर वन गया, पर उसमें जो भील-जातिका अंश है वह अपने चिर संस्कारके कारण इसमें पवित्र गुणोंकी दाल गलने नहीं देता । और यही कारण हुआ कि राज्याधिकार प्राप्त होते ही उसकी प्रवृत्ति अच्छी ओर न होकर अन्यायकी ओर हुई । प्रजाको उसने हर तरह तंग करना शुरू किया । कोई दुर्व्यसन, कोई कुकर्म उससे न छूट पाया । अच्छे-अच्छे घरानेकी कुलशील सतियोंकी इज्जत ली जाने लगी । लोगोंका धन-माल जबरन लूटा-जाने लगा । उसकी कुछ पुकार नहीं, सुनवाई नहीं, जिसे रक्षक जानकर नियम किया वही जव भक्षक वन वैठा तव उसकी पुकार, की भी कहॉ जाये ? प्रजा अपनी ऑखोंसे घोरसे घोर अन्याय देखती, पर कुछ करने-धरनेको समर्थ न होकर वह मन मसोस कर रह जाती । जव चिलात वहुत ही अन्याय करने लगा तव उसकी खवर वड़ी-वड़ी दूर तक वात सुन पड़ने लगी । श्रेणिकको भी प्रजा द्वारा यह हाल मालूम हुआ । उसे अपने पिताकी निरीह प्रजा पर चिलातका यह अन्याय सहन नहीं हुआ । उसने तव अपने श्वसुर वसुपालसे कुछ सहायता लेकर चिलात पर चढाई कर दी । प्रजाको जब श्रेणिककी चढ़ाईका हाल मालूम तो उसने वड़ी खुशी मनाई, और हृदयसे उसका स्वागत किया । श्रेणिकने प्रजाको सहायतासे चिलातको सिंहासनसे उतार देश वाहर किया और प्रजा की अनुमतिसे फिर आप ही सिंहासन पर वैठा । सच है, राज्यशासन वही कर सकता है और वही पात्र भी है जो वुद्धिमान् हो, समर्थ हो और न्यायप्रिय हो । दुर्वुद्धि, दुराचारी, कायर और अकर्मण्य पुरुष उसके योग्य नहीं ।

इधर कई दिनोंसे अपने पिताको न देखकर अभयकुमारने अपनी मातासे एक दिन पूछा—माँ, बहुत दिनोसे पिताजी देख नहीं पड़ते, सो वे कहाँ हैं अभयमतीने उत्तरमे कहा—बेटा, वे जाते समय कह गये थे कि राजगृहमे 'पाण्डुकुटि' नामका महल है । प्रायः मैं वहीं रहता हूँ । सो मैं जब समाचार दूँ तब वहीं आ जाना । तबसे अभी तक उनका कोई पत्र न आया । जान पड़ता है राज्यके कामोसे उन्हे स्मरण न रहा । माता द्वारा पिताका पता पा अभयकुमार अकेला ही राजगृहको रवाना हुआ । कुछ दिनोमे वह नन्दगाँवमे पहुँचा ।

पाठकोंको स्मरण होगा कि जब श्रेणिकको उसके पिता उपश्रेणिकने देश बाहर हो जानेकी आज्ञा दी थी और श्रेणिक उसके अनुसार राजगृहसे निकल गया था तब उसे सबसे पहले रास्तेमे यही नन्दगाँव पडा था । पर यहाँके लोगोने राजद्रोहके भयसे श्रेणिकको गाँवोमे आने नहीं दिया था । श्रेणिक इससे उन लोगो पर बड़ा नाराज हुआ था । इस समय उन्हे उनकी असहानुभूतिकीसजा देनेके अभिप्रायसे श्रेणिकने उन पर एक हुक्मनामा भेजा और उसमे लिखा कि "आपके गाँवमें एक मीठे पानीका कुँआ है। उसे बहुत जल्दी मेरे यहाँ भेजो, अन्यथा इस आज्ञाका पालन न होनेसे तुम्हे सजा दी जायगी ।" बेचारे गाँवके रहनेवाले स्वभावसे डरपोक ब्राह्मण राजाके इस विलक्षण हुक्मनामेको सुनकर बड़े घबराये । जो ले जानेकी चीज होती है वही ले-जाई जाती है, पर कुँआ एक स्थानसे अन्य स्थान पर कैसे-ले जाया जाय ? वह कोई ऐसी छोटी-मोटी वस्तु नहीं जो यहाँसे उठाकर वहाँ रख दी जाय । तब वे बड़ी चिन्तामे पड़े । क्या करे, और क्या न करे, यह उन्हे बिलकुल न सूझ पड़ा, न वे राजाके पास ही जाकर कह सकते हैं कि—महाराज, यह असम्भव बात कैसे हो सकती है ! कारण गाँवके लोगोंमे इतनी हिम्मत कहाँ ? सारे गाँवमे यही एक चर्चा होने लगी । सबके मुँह पर मुर्दनी छा गई । और बात भी ऐसी ही थी । राजाज्ञा न पालने पर उन्हे दण्ड भोगना चाहिये । यह चर्चा घरो घर हो रही थी कि इसी समय अभयकुमार यहाँ आ पहुँचा, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है । उसने इस चर्चाका आदि अन्त मालूम कर गाँवके सब लोगोनको इकट्ठा कर कहा—इस साधारण बातके लिये आप लोग ऐसा चिन्तामें पड़ गये । घबराने करनेकी कोई बात नहीं । मैं जैसा कहूँ वैसा

कीजिये । आपका राजा उससे खुश होगा । तब उन लोगोंने अभयकुमारकी सलाहसे श्रेणिककी सेवामे एक पत्र लिखा । उसमें लिखा कि—"राजराजेश्वर, आपकी आज्ञाको सिर पर चढ़ाकर हमने कुॅएसे वहुत-बहुत प्रार्थनायें कर कहा कि—महाराज तुझ पर प्रसन्न है । इसलिये वे तुझे अपने शहरमे बुलाते हैं, तू राजगृह जा ! पर महाराज, उसने हमारी एक भी प्रार्थना न सुनी और उलटा रूठकर गॉव बाहर चल दिया । सो हमारे कहने सुननेसे तो वह आता नहीं देख पड़ता । पर हॉ उसके ले जानेका एक उपाय यह है कि पुरुष स्त्रियोंका गुलाम होता है, स्त्रियों द्वारा वह जल्दी वश हो जाता है । इसलिये आप अपने शहरकी उदुम्बर नामकी कुईको इसे लेनेको भेजे तो अच्छा हो । वहुत विश्वास है कि उसे देखते ही हमारा कुॅआ उसके पीछे-पीछे हो जायगा ।" श्रेणिक पत्र पढ़कर चुप रह गये । उनसे उसका कुछ उत्तर न बन पड़ा । सच है, जब जैसे को तैसा मिलता है तब अकल ठिकाने पर आती है । और धूर्त्तोंको सहजमे काबूमे ले लेना कोई हॅसी खेल थोड़े ही है ?

कुछ दिनो बाद श्रेणिकने उनके पास एक हाथी भेजा और लिखा कि इसका ठीक-ठीक तोल कर जल्दी खबर दो कि यह वजनमें कितना है ? अभयकुमार उन्हे बुद्धि सुझानेवाला था ही, सो उसके कहे अनुसार उन लोगोने नावमें एक ओर तो हाथीको चढा दिया और दूसरी ओर खूब पत्थर रखना शुरू किया । जब देखा कि दोनों ओरका वजन समतोल हो गया तब उन्होने उन सब पत्थरोको अलग तोलकर श्रेणिकको लिख भेजा कि हाथी का तोल इतना है । श्रेणिक अब भी चुप रह जाना पड़ा ।

तीसरी बार तब श्रेणिकने लिख भेजा कि "आपका कुॅआ गॉवके पूर्वमें है, उसे पश्चिमकी ओर कर देना । मैं बहुत जल्दी उसे देखनेको आऊॅगा ।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें युक्ति सुझाकर गॉव को ही पूर्वकी ओर बसा दिया । इससे कुॅआ सुतरां पश्चिममे हो गया ।

चौथी बार श्रेणिकने एक मेढ़ा भेजा कि "यह मेढ़ा न दुर्बल हो, न बढ़ जाय और न इसके खाने पिलानेमें किसी तरह की असावधानी की जायं । मतलब यह कि जिस स्थितिमे यह अब है इसी स्थितिमे बना रहे । मैं कुछ दिनो बाद इसे वापिस मगा लूॅगा ।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें यह युक्ति

बताई कि मेंढ़ेको खूब खिला-पिला कर घण्टा दो घण्टाके लिये उसे सिह के सामने बॉध दिया करिए, ऐसा करनेसे न यह बढ़ेगा और न घटेगा ही। वैसा ही किया गया। मेढ़ा जैसा था वैसा ही रहा। श्रेणिक को इस युक्तिमे भी सफलता प्राप्त न हुई।

पॉचवीं बार श्रेणिकने उनसे घड़ेमें रखा एक कोला (कद्दू) मॅगाया। इसके लिये अभयकुमारने बेल पर लगे हुए एक छोटे कोलेको घडेमें रखकर बढ़ाना शुरू किया और जब उससे घड़ा भर गया तब उसे घड़ेको श्रेणिकके पास पहुॅचा दिया।

छठी बार श्रेणिकने उन्हे लिख भेजा कि "मुझे बालूरेतकी रस्सीकी दरकार है, सो तुम जल्दी बनाकर भेजो।" अभयकुमारने इसके उत्तरमे यह लिखवा भेजा कि "महाराज, जैसी रस्सी आप तैयार करवाना चाहते हैं कृपा कर उसका नमूना भिजवा दीजिये। हम वैसी ही रस्सी फिर तैयार कर सेवामे भेज देंगे।" इत्यादि कई बाते श्रेणिकने उनसे करवाई। सबका उत्तर उन्हे बराबर मिला। उत्तर ही न मिला किन्तु श्रेणिकको हतप्रभ भी होना पड़ा। इसलिये कि वे उन ब्राह्मणोको इस बातकी सजा देना चाहते थे कि उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति क्यो न बतलाई ? पर वे सजा दे नहीं पाये। श्रेणिकको जब यह मालूम हुआ कि कोई एक विदेशी नन्द गॉवमे है। वही गॉवके लोगोको यह सब बातें सुझाया करता है। उन्हे उस विदेशीकी बुद्धि देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी हुआ। श्रेणिककी उत्कण्ठा तब उसके देखनेके लिये बढ़ी। उन्होंने एक पत्र लिखा। उसमे लिखा कि "आपके यहॉ जो एक विदेशी आकर रहा है, उसे मेरे पास भेजिये। पर साथमे उसे इतना और समझा देना कि वह न तो रातमे आये, और न दिनमे, न सीधे रास्तेसे आये और न टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे।

अभयकुमारको पहले तो कुछ जरा विचारमें पड़ना पडा, फिर उसे इसके लिये भी युक्ति सूझ गई और अच्छी सूझी। वह शामके वक्त गाडीके एक कोनेमें बैठकर श्रेणिकके दरबारमे पहुॅचा। वहॉ वह देखता है तो सिंहासन पर एक साधारण पुरुष बैठा है—उस पर श्रेणिक नहीं है वह बडा आश्चर्यमे पड़ गया। उसे ज्ञात हो गया कि यहॉ भी कुछ न कुछ चाल खेली

गई है । बात यह थी कि श्रेणिक अंगरक्षक पुरुषोंके साथ बैठ गये थे । उनकी इच्छा थी कि अभयकुमार मुझे न पहचान कर लज्जित हो । इसके बाद ही अभयकुमार ने एक बार अपनी दृष्टि राजसभा पर डाली । उसे कुछ गहरी निगाहसे देखनेपर जान पडा कि राजसभामें बैठे हुए लोगोंकी नजर बार-बार एक पुरुष पर पड़ रही है और वह लोगोंकी अपेक्षा सुन्दर और तेजस्वी है । पर आश्चर्य यह कि वह राजाके अंगरक्षक लोगोंमें बैठा है । अभयकुमारको उसी पर कुछ सन्देह गया । तब उसके कुछ चिन्होंको देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि यही मेरे पूज्य पिता श्रेणिक है । तब उसने जाकर उनके पॉवोंमें अपना सिर रख लिया । श्रेणिकने उठाकर झट उसे छातीसे लगा लिया । वर्षोबाद पिता पुत्रका मिलाप हुआ । दोनोंको ही बड़ा आनन्द हुआ । इसके बाद श्रेणिकने पुत्रप्रवेशके उपलक्ष्यमें प्रजाको उत्सव मनानेकी आज्ञा की । खूब आनन्द-उत्सव मनाया गया । दुखी, अनाथोंको दान किया गया । पूजा-प्रभावना की गई । सच है, कुलदीपक पुत्रके लिये कौन खुशी नहीं मनाता ? इसके बाद ही श्रेणिकने अपने कुछ आदमियोंको भेजकर कांचीसे अभयमती और वसुमित्रा इन दोनों प्रियाओंको भी बुलवा लिया । इस प्रकार प्रिया-पुत्र सहित श्रेणिक सुखसे राज्य करने लगे । अब इसके आगे की कहानी लिखी जाती है—

सिन्धु देशकी विशाला नगरीके राजा चेटक थे । वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे । जिन भगवान् पर उनकी बड़ी भक्ति थी । उनकी रानीका नाम सुभद्रा था । सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और सुन्दरी थी इसके सात लड़कियॉ थीं । इनमें पहली लड़की प्रियकारिणी थी । इसके पुण्यका क्या कहना, जो इसका पुत्र संसारका महान् नेता तीर्थंकर हुआ । दूसरी मृगावती, तीसरी सुप्रभा, चौथी प्रभावती, पॉचवीं चेलिनी, छठी ज्येष्ठा और सातवीं चन्दना थी । इनमें अन्तमें चन्दनाको बडा उपसर्ग सहना पड़ा । उस समय बडी वीरतासे अपनी सतीधर्मकी रक्षा की ।

चेटक महाराजका अपनी इन पुत्रियोंपर बड़ा प्रेम था । इससे उन्होंने इन सबकी एक साथ तस्वीर बनवाई । चित्रकार बडा हुशियार था, सो उसने उन सबका बड़ा ही सुन्दर चित्र बनाया । चित्रपटको चेटक महाराज बड़ी

बारीकीके साथ देख रहे थे। देखते हुए उनकी नजर चेलिनीकी जॉघ पर पड़ी, चेलिनीकी जॉघ पर जैसा तिलका चिन्ह था, चित्रकारने चित्रमे भी वैसा ही तिलको देखा उन्हे चित्रकार पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उसी समय उसे बुलाकर पूछा कि—तुझे इस तिलका हाल कैसे जान पड़ा। महाराजकी क्रोध भरी ऑखे देखकर वह बड़ा घबराया। उसने हाथ जोड़कर कहा—राजाधिराज, इस तिलको मैंने कोई छह सात बार मिटाया, पर मैं ज्यो ही चित्रके पास लिखनेको कलम ले जाता त्यो ही उसमेसे रगकी बूँद इसी जगह पड जाती। तब मेरी मनमे दृढ विश्वास हो गया कि ऐसा चिन्ह राजकुमारी चेलिनीके होना ही चाहिये और यही कारण है कि मैंने फिर उसे न मिटाया। यह सुनकर चेटक महाराज बड़े खुश हुए। उन्होंने फिर चित्रकारको बहुत पारितोषिक दिया। सच है बड़े पुरुषोका खुश होना निष्फल नहीं जाता।

अबसे चेटक महाराज भगवान्की पूजन करते समय पहले इस चित्रपटको खोलकर भगवान्की प्रतिमाके पास ही रख लेते हैं और फिर बड़ी भक्तिके साथ जिनपूजा करते रहते हैं। जिन पूजा सब सुखोकी देनेवाली और भव्यजनोंके मनको आनन्दित करने वाली है।

एक बार चेटक महाराज किसी खास कारण वश अपनी सेनाको साथ लिये राजगृह आये। वे शहर बाहर बगीचेमें ठहरे। प्रातःकाल शौच मुख मार्जनादि आवश्यक क्रियोओंसे निबट उन्होने स्नान किया और निर्मल वस्त्र पहर भगवान की विधिपूर्वक पूजा की। रोजके माफिक आज भी चेटक महाराजने अपनी राजकुमारियोके उस चित्रपटको पूजन करते समय अपने पास रख लिया था और पूजनके अन्तमे उस पर फूल वगैरह डाल दिये थे।

इसी समय श्रेणिक महाराज भगवान्के दर्शन करनेको आये। उन्होंने इस चित्रपटको देखकर पास खड़े हुए लोगोंसे पूछा—यह किनका चित्रपट है ? उन लोगोंने उत्तर दिया—राजराजेश्वर, ये जो विशालाके चेटक महाराज आये हैं, उनकी लड़कियोका यह चित्रपट है। इनमे चार लड़कियोका तो ब्याह हो चुका है और चेलिनी तथा ज्येष्ठा ये दो लड़कियॉ ब्याह योग्य हैं। सातवीं चन्दना अभी बिलकुल बालिका है। ये तीनो ही इस समय विशालामे है यह सुन श्रेणिक महाराज चेलिनी और ज्येष्ठा पर मोहित हो गये। इन्होंने महल

पर आकर अपने मनकी बात मंत्रियोंसे कही। मंत्रियोंने अभयकुमारसे कहा—आपके पिताजीने चेटक महाराजसे इनकी दो सुन्दर लड़कियोंके लिये मँगनी की थी, पर उन्होंने अपने महाराज की अधिक उमर देख उन्हें अपनी राजकुमारियोंके देनेसे इन्कार कर दिया। अब तुम बतलाओ कि क्या उपाय किया जाये जिससे काम पूरा पड़ ही जाय।

बुद्धिमान् अभयकुमार मंत्रियोंके वचन सुनकर बोला—आप इस विषयकी चिन्ता न करें जबतक कि सब कामोंको करने वाला मैं मौजूद हूँ। यह कहकर अभयकुमारने अपने पिताका एक बहुत सुन्दर चित्र तैयार किया और उसे लेकर साहूकारके वेषमें आप विशाला पहुँचा। किसी उपायसे उसने वह चित्रपट दोनों राजकुमारियोंको दिखलाया। वह इतना बढ़िया बना था कि उसे यदि एक वार देवांग्नाएँ देख पातीं तो उनसे भी अपने आपेमें न रहा जाता तब ये दोनों कुमारियाँ उसे देखकर मुग्ध हो जाँय, इसमें आश्चर्य क्या। उन दोनोंका श्रेणिक महाराज पर मुग्ध देख अभयकुमार उन्हें सुरंगके रास्तेसे राजगृह ले जाने लगा। चेलिनी बड़ी धूर्त थी। उसे स्वयं तो जाना पसन्द था, पर वह ज्येष्ठाको ले जाना न चाहती थी। सो जब ये थोड़ी ही दूर आई होंगी कि चेलिनीने ज्येष्ठा से कहा—हाँ, बहिन मैं तो अपने सब गहने-दागीने महल मेंही छोड़ आई हूँ, तू जाकर उन्हें ले-आ न ? तबतक मैं यही खड़ी हूँ बेचारी भोली-भाली ज्येष्ठा इसके झाँसेमें आकर चली गई। वह आँखोंकी ओट हुई होगी कि चेलिनी वहाँसे रवाना होकर अभयकुमारके साथ राजगृह आ गई।

फिर बड़े उत्सवके साथ यहाँ इसका श्रेणिक महाराजके साथ ब्याह हो गया। पुण्यके उदयसे श्रेणिककी सब रानियो में चेलिनीके ही भाग्यका सितारा चमका—पट्टरानी यही हुई।

यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है—श्रेणिक एक संन्यासीके उपदेशसे वैष्णवधर्मी हो गये थे और तबसे वे इसी धर्मको पालते थे। महारानी चेलिनी जैनी थी। जिनधर्म पर जन्मसे ही उसकी श्रद्धा थी। इन दो धर्मोको पालनेवाने पति-पत्नीका अपने-अपने धर्मकी उच्चता बाबत रोज-रोज थोड़ा बहुत वार्तालाप हुआ करता था। पर वह बड़ी शान्तिसे। एक दिन श्रेणिकने चेलिनीसे कहा—प्रिये, उच्च घरानेकी सुशील स्त्रियोंका देव तो पति है तब तुम्हें मैं जो

कहूँ वह करना चाहिए। मेरी इच्छा है कि एक बार तुम इन विष्णुभक्त सच्चे गुरुओंको भोजन दो। सुनकर महारानी चेलिनीने बड़ी नम्रताके साथ कहा—अच्छा नाथ, दूँगी।

इसके कुछ दिनों बाद चेलिनीने कुछ भागवत् साधुओका निमत्रण किया और बड़े गौरवके साथ उन्हे अपने यहाँ बुलाया। आकर वे लोग अपना ढोग दिखलानेके लिये कपट, मायाचारीसे ईश्वराराधन करनेको बैठे। उस समय चेलिनीने उनसे पूछा—आप लोग क्या करते हैं ? उत्तरमे उन्होने कहा—देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओसे भरे इस शरीरको छोड़कर अपने आत्माको विष्णु अवस्था में प्राप्त कर स्वानुभवका सुख भोगते हैं।

सुनकर चेलिनीने उस मंडपमें, जिसमे कि सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवा दी। आग लगते ही वे सब भाग खड़े हुए। यह देख श्रेणिकने बड़े क्रोधके साथ चेलिनिसे कहा—आज तुमने साधुओके साथ अनर्थ किया। यदि तुम्हारी उन पर भक्ति नहीं थी, तो क्याउसका यह अर्थ है कि उन्हे जानसे मार डालना ? बताओ उन्होंने तुम्हारा क्या अपराध किया जिससे तुम उनके जीवनकी ही प्यासी हो उठी ?

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिए सुखका कारण था। मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था। जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं, तब उन्होने मुझे कहा कि—हम अपवित्र शरीरको छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपदको प्राप्त करते हैं। तब मैंने सोचा कि—ओहो, ये जब शरीर छोडकर विष्णुपद प्राप्त करते हैं तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे यह और उत्तम होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु ही बने रहे। संसारमे बार-बार आने-जानेका इनके पीछे पचड़ा क्यो ? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमे रहकर सुख भोगे इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मण्डप मे आग लगवा दी। तब आप ही विचार कर बतलाइए कि इसमे मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया ? और सुनिए, मेरे वचनो पर आपको विश्वास हो, इसके लिए मै। एक कथा आपको सुना दूँ।

"जिस समयकी यह कथा है, उसे समय् वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे। वे अपना राज्यशासन नीतिके साथ करते हुए सुखसे समय बिताते थे। कोशाम्बीसे दो सेठ रहते थे। उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त। दोनों सेठोंमें परस्पर बहुत प्रेम था। उनका प्रेम सदा ऐसा ही दृढ़ बना रहे, इसके लिए उन्होंने परस्परमें एक शर्त की। वह यह कि—"मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़कीका ब्याह उसके साथकर देना पड़ेगा।

दोनोंनेउक्त शर्त स्वीकार की। इसके कुछ दिनों वाद सागरदत्तके घर पुत्र जन्म हुआ। उसका नाम वसुमित्र रक्खा। पर उसमें एक वड़े आश्चर्यकी बात थी। वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई। उसका नाम रक्खा गय नागदत्ता। वह बड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी। उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह वसुमित्रके साथ कर दिया सच है—

नैव वाचा चलत्वं स्यात्सता कष्टशतैरपि।

सत्पुरुष सैकड़ों कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते। वसुमित्रका ब्याह हो गया। वह अब प्रतिदिन दिनमें तो सर्प वनकर एक पिटारेमें रहता और रातमें एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोपभोग करता। सचमुच संसारकी विचित्र ही स्थिति होती है। इसी तरह उसे कई दिन बीत गये। एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्था में पदार्पण करती और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली—हाय ! देवकी कैसी विडम्बना है, जो कहाँ तो देवकुमारी सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प ! उसकी दु:ख भरी आहको नागदत्ताने सुन लिया। वह दौड़ी आकर अपनी माँसे बोली—माँ, इसके लिए आप क्यों दुःख करती है। मेरा जब भाग्य ही ऐसा है, तब उसके लिए दुःख करना व्यर्थ है और

अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है। इसके बाद नागदत्ताने अपनी मॉको स्वामीके उद्धारके सम्बन्धकी बात समझा दी।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्प-शरीर छोडकर मनुष्य रूपमे आया और अपने शय्या-भवनमे पहुँचा। इधर समुद्रदत्ता छुपे हुए आकर वसुदत्तके पिटारेको वहॉसे उठा ले-आई और उसी समय उसने उसे जला डाला। तबसे वसुमित्र मनुष्य रूपमे ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्दसे बिताने लगा।" नाथ, उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोकमे रहकर सुख भोगे यह मेरी इच्छा थी, इसलिए मैंने वैसा किया था। महारानी चेलनीकी कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उस पर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोधको उस समय दबा गये।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिए गये हुए थे। उन्होने वनमें यशोधर मुनिराजको देखा। वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे। श्रेणिकने उन्हे शिकारके लिए विघ्नरूप समझ कर मारनेका विचार किया और बड़े गुस्सेमें आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तोको उन पर छोड़ दिया। कुत्ते बड़ी निर्दयताके साथ मुनिके खानेको झपटे। पर मुनिराजको तपस्याके प्रभावसे वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके। बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पॉवोके पास खड़े रह गये। यह देख श्रेणिकको और भी क्रोध आया। उन्होने क्रोधान्ध होकर मुनि पर बाण चलाना आरम्भ किया। पर यह कैसा आश्चर्य जो बाणोके द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानो किसीने उन पर फूलोंकी वर्षा की है। सच, बात यह है कि तपस्वियोका प्रभाव कौन कह सकता है। श्रेणिकने उन मुनिहिंसारूप तीव्र परिणामो द्वारा उस समय सातवे नरकी आयुका बन्ध किया, जिसकी स्थिति तेतीस सागर की है।

इन सब अलौकिक घटनाओको देखकर श्रेणिकका पत्थरके समान कठोर हृदय फूल-सा कोमल हो गया, उनके हृदयकी सब दुष्टता निकल कर उसमे मुनिके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया, वे मुनिराजके पास गये और

भक्तिसे मुनिके चरणोंको नमस्कार किया । यशोधर मुनिराजने श्रेणिकके हितके लिए इस समयको उपयुक्त समझ उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासनका उपदेश दिया । उसका श्रेणिकके हृदय पर बहुत असर पड़ा । उनके परिणामोंमें विलक्षण परिवर्तन हो गया । उन्हें अपने कृत कर्म पर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ । मुनिराजके उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया । उसके प्रभावसे, उन्होंने जो सातवें नर्ककी आयुका वन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरकाका रह गया । यहाँकी स्थिति चौरासी हजार वर्षोंकी है । ठीक है सम्यग्दर्शनके प्रभावसे भव्यपुरुषको क्या प्राप्त नहीं होता ।

इसके वाद श्रेणिकने श्रीचित्रगुप्त मुनिराजके पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया । और अन्तमें भगवान वर्धमान स्वामीके द्वारा शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, जो कि मोक्षका कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया । श्रेणिक महाराज अव तीर्थकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे ।

इसलिए भव्यजनों इस स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले तथा संसारका हित करनेवाले सम्यग्दर्शन रूप रत्न द्वारा अपनेको भूषित करना चाहिए । यह सम्यग्दर्शन रूप रत्न-इन्द्र, चक्रवर्त्ती आदिके सुखका देनेवाला, दुःखोंका नाशक करनेवाला और मोक्षका प्राप्त करानेवाला है । विद्वज्जन आत्महितके लिए इसीको धारण करते हैं । उस सम्यग्दर्शनका स्वरूप श्रुतसागर आदि मुनिराजोंने कहा । जिनभगवानके कहे हुए तत्वोंका श्रद्वान करना ऐसा विश्वास करना कि भगवान्ने जैसा कहा वही सत्यार्थ है । तव आप लोग भी इस समयग्दर्शनको ग्रहण कर आत्म-हित करें, यह मेरी भावना है ।

---

१०८. रात्रिभोजन-त्याग-कथा

जिन भगवान, जिनवाणी और गुरुओको नमस्कार कर रात्रि भोजनका त्याग करनेसे जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ।

जो लोग धर्मरक्षाके लिए रात्रिभोजनका त्याग करते हैं, वे दोनो लोकों मे सुखी होते हैं, यशस्वी होते हैं, दीर्घायु होते हैं, कान्तिमान होते हैं और उन्हे सब सम्पदाएँ तथा शान्ति मिलती है, और जो लोग रातमें भोजन करने वाले हैं, वे दरिद्री होते हैं जन्मान्ध होते हैं अनेक रोग और व्याधियॉ उन्हे सदा सताए रहती हैं, उनके संतान नहीं होती । रातमे भोजन करनेसे छोटे जीव जन्तु नहीं दिखाई पड़ते । वे खानेमें आ जाते हैं । उससे बड़ा पापबन्ध होता है । जीवहिंसा का पाप लगता है। मॉस का दोष लगता है । इसलिए रात्रि भोजनको छोड़ना ही चाहिए जो मॉस नहीं खाते । धर्मात्मा श्रावको को दिन निकले दो घड़ी बाद सबेरे ओर दो घड़ी दिन बाकी रहे तब शाम को भोजन वगैरहसे निवृत्त हो जाना चाहिए । समन्तभद्रस्वामीका भी ऐसा ही मत है—"रात्रि भोजन का त्याग करनेवालेको सबेरे ओर शामको आरम्भ और अन्तमें दो दो घड़ी छोड़कर भोजन करना चाहिए ।" जो नैष्ठिक श्रावक नहीं हैं उनके लिए पान, सुपारी, इलायची, जल और पवित्र औषधि आदिका सेवन विशेष दोषके कारण नहीं हैं । इन्हें छोड़कर और अन्नकी चीजे या मिठाई,फलादिक ये सब कष्ट पड़ने पर भी कभी न खाना चाहिए । जो भव्य जीवन भरके लिए चारो प्रकारके आहार का रातमें त्याग कर देते हैं उन्हें वर्षभरमे छह माहके उपवास का फल होता है । रात्रिभोजन को त्याग करनेसे प्रीतिंकर कुमारको फल प्राप्त हुआ था उसकी विस्तृत कथा अन्य ग्रन्थोमें प्रसिद्ध है । यहॉ उसका सार लिखा जाता है ।

मगध मे सुप्रतिष्ठपुर अच्छा प्रसिद्ध शहर था । अपनी सम्पत्ति और सुन्दरतासे वह स्वर्गसे टक्कर लेता था । जिनधर्म का वहॉ विशेष प्रचार था । जिस समय की यह कथा है, उस समय उसके राजा जयसेन थे । जयसेन धर्मज्ञ नीतिपरायण और प्रजाहितैषी थे ।

यहॉ धनमित्र नामका एक सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा

था । दोनोंही की जैनधर्म पर अखण्ड प्रीति थी । एक दिन सागरसेन नामके अवधिज्ञानी मुनिको आहार देकर इन्होंने उनसे पूछा—प्रभो ! हमें पुत्रसुख होगा या नहीं ? यदि न हों तो हमें व्यर्थकी आशासे अपने दुर्लभ मनुष्य-जीवनको संसारके मोह-मायामें फँसा रखकर, उसका क्यों दुरुपयोग करें ? फिर क्यों न हम पापोंके नाश करनेवाली पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्महित करें ? मुनिने इनके प्रश्नके उत्तरमें कहा—हाँ अभी तुम्हारी दीक्षाका समय नहीं आया । कुछ दिन गृहवास में तुम्हें अभी और ठहरना पड़ेगा । तुम्हें एक महाभाग और कुलभूषण पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी । वह बड़ा तेजस्वी होगा । उसके द्वारा अनेक प्राणियोंका उद्धार होगा और वह इसी भवसे मोक्ष जाएगा । अवधिज्ञानी मुनिकी यह भविष्यवाणी सुनकर दोनों को अपार हर्ष हुआ । सच है, गुरुओंके वचनामृतका पान कर किसे हर्ष नहीं होता ।

अबसे ये सेठ-सेठानी अपना समय जिनपूजा, अभिषेक, पात्रदान आदि पुण्य कर्मोमें अधिक देने लगे । कारण इनका यह पूर्ण विश्वास था कि सुखका कारण धर्म ही है । इस प्रकार आनन्द उत्सवके साथ कुछ दिन बीतने पर धनमित्राने एक प्रतापी पुत्र प्रसव किया । मुनिकी भविष्यवाणी सच हुई । पुत्र जन्मके उपलक्षमें सेठने बहुत उत्सव किया, दान दिया, पूजा प्रभावना की । बन्धु-बाँधवोंको बड़ा आनन्द हुआ । इस नवाजात शिशुको देखकर सबको अत्यन्त प्रीति हुई । इसलिये इसका नाम भी प्रीतिंकर रख दिया गया । दूजेके चाँदकी तरह यह दिनो-दिन बढने लगा । सुन्दरतामें यह कामदेवसे कहीं बढ़कर था, बड़ा भाग्यवान् था और इसके बलके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या, जबकि यह चरम शरीरका धारी—इसी भवसे मोक्ष जानेवाला हैं जब प्रीतिकर पाँच वर्षका हो गया तब इसके पिताने इसे पढानेके लिये गुरुको सौंप दिया । इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी पढ़ लिखकर योग्य विद्वान् बन गया । कई शास्त्रोंमें इसकी अबाधगति हो गई गुरु सेवा रूपी नाव द्वारा इसने शास्त्ररूपी समुद्रका प्राय· अधिकांश पार कर लिया । विद्वान् और धनी होकर भी इसे अभिमान छू तक न गया था । यह सदा लोगोंको धर्मका उपदेश दिया करता और पढाता-लिखाता था । इसमे आलस्य, ईर्ष्या, मत्सरता आदि दुर्गणोंका नाम निशान भी न था । यह सबसे प्रेम करता था । सबके दुःख सुखमे

सहानुभूति रखता । यही कारण था कि इसे सब ही छोटे-बड़े हृदयसे चाहते थे । जयसेन इसको ऐसी सज्जनता और परोपकार बुद्धि देखकर बहुत खुश हुए । उन्होने स्वय इसका वस्त्राभूषणोसे आदर सत्कार किया—इसकी इज्जत बढ़ाई ।

यद्यपि प्रीतिंकरको धन दौलतकी कोई कमी नहीं थी परन्तु तब भी एक दिन बैठे-बैठे इसके मनमे आया कि अपनेको भी कमाई करनी चाहिये । कर्त्तव्यशीलोका यह काम नहीं कि बैठे-बैठे अपने बाप-दादोकी सम्पत्ति पर मजा-मौज उड़ाकर आलसी और कर्त्तव्यहीन बने । और न सपूतोका यह काम ही है । इसलिये मुझे धन कमानेके लिए प्रयत्न करना चाहिये । यह विचार कर उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं स्वयं कुछ न कमा लूँगा तब तक ब्याह न करूँगा । प्रतिज्ञाके साथ ही वह विदेशके लिये रवाना हो गया । कुछ वर्षो तक विदेशमे ही रहकर इसने बहुत धन कमाया । खूब कीर्ति अर्जित की । इसे अपने घरसे गए कई वर्ष बीत गये थे, इसलिये अब इसे अपने माता-पिताकी याद आने लगी । फिर यह बहुत दिनो बाहर न रहकर अपना सब माल असबाब लेकर घर लौट आया । सच है पुण्यवानोकी लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्न से मिल जाती है । प्रीतिंकर अपने माता-पितासे मिला । सबहीको बहुत आनन्द हुआ । जयसेनका प्रीतिंकरकी पुण्यवयानी और प्रसिद्धि सुनकर उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया । उन्होंने तब अपनी कुमारी पृथिवीसुन्दरी, और एक दूसरे देशसे आई हुई वसुन्धरा तथा और भी गई सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियोका ब्याह इस महाभागके साथ बड़े ठाट-बाटसे कर दिया । इसके साथ जयसेनने अपना आधा राज्य भी इसे दे दिया । प्रीतिंकरके राज्य प्राप्ति आदिके सम्बन्धकी विशेष कथा यदि जानना हो तो महापुराणका स्वाध्याय करना चाहिये ।

प्रीतिंकर पुण्योदयसे जो राज्यविभूति प्राप्त हुई उसे सुखपूर्वक भोगने लगा । उसके दिन आनन्द-उत्सवके साथ बीतने लगे । इससे यह न समझना चाहिये कि प्रीतिंकर सदा विषयोमें ही फँसा रहता है । वह धर्मात्मा भी सच्चा था । क्योंकि वह निरन्तर जिन भगवानकी अभिषेक-पूजा करता, जो कि स्वर्ग या मोक्षका सुख देनेवाली और बुरे भावों या पापकर्मोका नाश करनेवाली है । वह श्रद्धा, भक्ति आदि गुणोंसे युक्त हो पात्रोको दान देता, जो दान महान्

सुखका कारण है । वह जिनमन्दिरों, तीर्थक्षेत्रों, जिन प्रतिमाओं आदि सप्त क्षेत्रोकी, जो कि शान्तिरूपी धनके प्राप्त करानेके कारण हैं, जरूरतोंको अपने धनरूपी जल-वर्षासे पूरी करता, परोपकार करना उसके जीवनका एक मात्र उद्देश्य था । वह स्वभावका बड़ा सरल था । विद्वानोंसे उसे प्रेम था । इस प्रकार इस लोक सम्बन्धी और पारमार्थिक कार्योंमें सदा तत्पर रहकर वह अपनी प्रजाका पालन करता रहता था । प्रीतिंकरका समय इस प्रकार बहुत सुखसे बीतता था । एक बार सुप्रतिष्ठ पुरके सुन्दर बगीचेमें सागरसेन नामके मुनि आकर ठहरे थे । उनका वहीं स्वर्गवास हो गया था । उनके बाद फिर इस बगीचेमें आज चारणऋद्धि धारी ऋजुमति ओर विपुलमति मुनि आये । प्रीतिंकर तब बड़े वैभवके साथ भव्यजनोंको लिये उनके दर्शनोंको गया । मुनिराजकी चरणोकी आठ द्रव्योंसे पूजा की और नमस्कार कर बड़े विनयके साथ धर्मका स्वरूप पूछा—तब ऋजुमति मुनिने उसे इस प्रकार संक्षेपमें धर्मका स्वरूप कहा—

प्रीतिंकर, धर्म उसे कहते हैं जो संसारके दुःखोंसे रक्षाकर उत्तम सुख प्राप्त करा सके । ऐसे धर्मके दो भेद हैं । एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थ धर्म । मुनियोंका धर्म सर्व त्याग रूप होता है । सांसारिक माया-ममतासे उनका कुछ सम्वन्ध नहीं रहता । और वह उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि दस आत्मिक शक्तियोसे युक्त होता है । गृहस्थधर्ममें संसारके साथ लगाव रहता है । घरमें रहते हुए धर्मका पालन करना पड़ता है । मुनिधर्म उन लोगोंके लिये है जिनका आत्मा पूर्ण बलवान् है, जिनमें कष्टोंके सहनेकी पूरी शक्ति है और गृहस्थ धर्म मुनिधर्मके प्राप्त करनेकी सीढ़ी है । जिस प्रकार एक साथ सौ-पचास सीढ़ियॉ नहीं चढ़ी जा सकतीं उसी प्रकार साधारण लोगोंमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वे एकदम मुनिधर्म ग्रहण कर सके । उसके अभ्यासके लिये वे क्रम-क्रमसे आगे बढ़ते जॉय, इसलिये पहले उन्हे गृहस्थधर्मका पालन करना पड़ा है । मुनिधर्म और गृहस्थधर्ममे सबसे बड़ा भेद यह है कि, पहला साक्षात् मोक्षका कारण है और दूसरा परम्परासे । श्रावकधर्मका मूल कारण है—सम्यग्दर्शनका पालन । यही मोक्ष-सुखका बीज है । बिना इसके प्राप्त किये ज्ञान, चारित्र वगैरहकी कुछ कीमत नहीं । इस सम्यग्दर्शनको आठ अंगों

सहित पालना चाहिये । सम्यक्त्व पालनेके पहले मिथ्यात्व छोड़ा जाता है । क्योकि मिथ्यात्व ही आत्माका एक ऐसा प्रबल शत्रु है जो संसारमे इसे अनन्त काल तक भटकाये रहता है और कुगतियोंके असह दुःखोंको प्राप्त कराता है । मिथ्वात्वका संक्षिप्त लक्षण है—जिन भगवान्के उपदेश किये तत्व या धर्मसे उलटा चलना और यही धर्मसे उलटापन दु:खका कारण है । इसलिये उन पुरुषोंको, जो सुख चाहते हैं, मित्यात्वके परित्याग पूर्वक शास्त्राभ्यास द्वारा अपनी बुद्धिको कॉचके समान निर्मल बनानी चाहिये । इसके सिवा श्रावकोको मद्य, मांस और मधु (शहद) का त्याग करना चाहिये । क्यांकि इनके खानेसे जीवोको नरकादि दुर्गतियोंमें दु:ख भोगने पड़ते हैं । श्रावकोंके पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रत हैं, उन्हें धारण करना चाहिए । रातके भोजनका, चमड़ेमें रखे हुये हींग, जल, घी, तैल आदिका तथा कन्दमूल, आचार और मक्खनका श्रावकोको खाना उचित नहीं । इनके खानेसे मांस-त्याग-व्रतमे दोष आता है । जुआ खेलना, चोरी करना, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, शिकार करना, मांस खाना, मदिरा पीना, ये सात व्यसन—दुःखोंको देनेवाली आदतें हैं । कुल, जाति, धन, जन, शरीर सुख, कीर्त्ति, मान-मर्यादा आदिकी नाश करनेवाली है । श्रावकोको इन सबका दूरसे ही काला मुँह कर देना चाहिये । इसके सिवा जलका छानना, पात्रोको भक्तिपूर्वक दान देना, श्रावकोंका कर्त्तव्य होना चाहिए । ऋषियोंने पात्र तीन प्रकार बतलाये हैं । उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र व्रती श्रावक और जघन्य पात्र —अविरत-सम्यग्दृष्टि । इनके सिवा कुछ लोग और ऐसे हैं, जो दान पात्र होते हैं—दु:खी, अनाथ, अपाहिज आदि, जिन्हें कि दयावृद्धिसे दान देना चाहिये । पात्रोको जो थोड़ा भी दान देते हैं उन्हें उस दानका फल बटबीजकी तरह अनन्त गुणा मिलता है । श्रावकोके और भी आवश्यक कर्म हैं, जैसे—स्वर्ग मोक्षके सुखकी कारण जिन भगवानकी जलादि द्रव्यों द्वारा पूजा करना, दूध, दही, घी, सांठेका रस आदि से अभिषेक करना, जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा करना आदि । ये सब सुखके कारण और दुर्गतिके दु:खोंके नाश करनेवाले हैं । इस प्रकार धार्मिक जीवन बना कर अन्तमें भगवान्का स्मरण-चितन पूर्वक संन्यास लेना चाहिये । यही जीवनके सफलताका सीधा और सच्चा मार्ग है । इस प्रकार मुनिराज द्वारा

धर्मका उपदेश सुनकर बहुतेरे सज्जनोंने व्रत, नियमादिको ग्रहण किया। जैनधर्म पर उनकी गाढ़ श्रद्धा हो गई। प्रीतिंकरने मुनिराजको नमस्कार कर पुनः प्रार्थना की—हे करुणाके समुद्र योगिराज कृपाकर मुझे मेरे पूर्वभवका हाल सुनाइए। मुनिराजने तब यों कहना शुरू किया—

'प्रीतिंकर, इसी बगीचेमें पहले तपस्वी सागरसेन मुनि आकर ठहरे थे। उनके दर्शनोंके लिये राजा वगैरह प्रायः सब ही नगर निवासी बड़े गाजे-बाजे और आनन्द उत्सवके साथ आये थे। वे मुनिराजकी पूजा-स्तुति कर वापिस शहरमें चले गये। इसी समय एक सियारने इनके गाजे-बाजेके शब्दोंको सुनकर यह समझा कि ये लोग किसी मुर्देको डाल कर गये हैं। सो वह उसे खानेके लिए आया। उसे आता देख मुनिने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह मुर्देको खानेके अभिप्रायसे इधर आ रहा है। पर यह है भव्य और व्रतोंको धारण कर मोक्ष जायगा। इसलिये इसे सुलटाना आवश्यक है। यह विचार कर मुनिराजने उसे समझाया—अज्ञानी पशु, तुझे मालूम नहीं कि पापका परिणाम बहुत बुरा होता है। देख, पापके ही फलसे तुझे आज इस पर्यायमें आना पड़ा और फिर भी तू पाप करनेसे मुंह न मोड़कर मुर्देको खानेके लिए इतना व्यग्र हो रहा है, यह कितने आश्चर्यकी बात है। तेरी इस इच्छाको धिक्कार है। प्रिय, जब तक तू नरकोंमें न गिरे इसके पहले ही तुझे यह महा पाप छोड़ देना चाहिए। तूने जिनधर्मको न ग्रहण कर आजतक दुःख उठाया, पर अब तेरे लिए बहुत अच्छा समय उपस्थित है। इसलिए तू इस पुण्य-पथ पर चलना सीख। सियारका होनहार अच्छा था या उसकी काललब्धि आ गई थी। यही कारण था कि मुनिके उपदेशको सुनकर वह बहुत शान्त हो गया। उसने जान लिया कि मुनिराज मेरे हृदयकी वासनाको जान गए। उसे इस प्रकार शान्त देखकर मुनि फिर बोले—प्रिय, तू और व्रतोंको धारण नहीं कर सकता, इसलिए सिर्फ रातमे खाना-पीना ही छोड दे। यह व्रत सर्व व्रतोंका मूल है, सुखका देनेवाला है और चित्तका प्रसन्न करनेवाला है। सियारने उपकारी मुनिराजके वचनोंको मानकर रात्रिभोजन-त्याग-व्रत ले लिया। कुछ दिनों तक तो इसने केवल इसी व्रतको पाला। इसके बाद इसने मांस वगैरह भी छोड़ दिया। इसे जो कुछ थोडा पवित्र खाना मिल जाता, यह उसीको खाकर रह

जाता । इस वृत्तिसे इसे सन्तोष बहुत हो गया था । बस यह इसी प्रकार समय बिताता और मुनिराजके चरणोका स्मरण किया करता ।

इस प्रकार कभी खानेको मिलने और कभी न मिलनेसे यह सियार बहुत ही दुबला हो गया । ऐसी दशामे एक दिन इसे केवल सूखा भोजन खानेको मिला । समय गर्मीका था । इसे बड़े जोरकी प्यास लगी । इसके प्राण छटपटाने लगे । यह एक कुँए पर पानी पीनेको गया । भाग्यसे कुँएका पानी बहुत नीचा था । जब यह कुँएमें उतरा तो इसे अँधेरा ही अँधेरा दीखने लगा । कारण सूर्यका प्रकाश भीतर नही पहुँच पाता था । इसलिए सियारने समझा कि रात हो गई, सो वह बिना पानी पीए ही कुँएके बाहर आ गया । बाहर आकर जब उसने दिन देखा तो फिर वह भीतर उतरा और भीतर पहलेसा अँधेरा देखकर रातके भ्रमसे फिर लौट आया । इस प्रकार वह कितनी ही बार आया-गया, पर जल नहीं पी पाया । अन्तमें वह इतना अशक्त हो गया कि उससे कुँएसे बाहर नहीं आया गया । उसने तब उसे घोर अँधेरेको देखकर सूरजको अस्त हुआ समझ लिया और वहीं वह संसार समुद्रसे पार करनेवाले अपने गुरु मुनिराजका स्मरण-चिन्तन करने लगा । तृषा रूपी आग उसे जलाए डालती थी, तब भी वह अपने व्रतमें बड़ा दृढ़ रहा । उसके परिणाम क्लेशरूप या आकुल-व्याकुल न होकर बड़े शान्त रहे । उसी दशामें वह मरकर कुबेरदत्त और उसकी स्त्री धनमित्राके तू प्रीतिंकर पुत्र हुआ है । तेरा यही अन्तिम शरीर है । अब तू कर्मोका नाश कर मोक्ष जायगा । इसलिए सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि वे कष्ट समयमें व्रतोकी दृढ़तासे रक्षा करें ।" मुनिराज द्वारा प्रीतिंकरका यह पूर्व जन्मका हाल सुन उपस्थित मडलीकी जिनधर्म पर अचल श्रद्धा हो गई । प्रीतिंकरको अपने इस वृत्तान्तसे बड़ा वैराग्य हुआ । उसने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की और अन्तमे उन स्वपरोपकारके करनेवाले मुनिराजोंको भक्तिसे नमस्कार कर व्रतोके प्रभावकी हृदयमें विचारता हुआ वह घर पर आया ।

मुनिराजके उपदेशका उस पर बहुत गहरा असर पड़ा । उसे अब संसार अस्थिर, विषयभोग दु खोके देनेवाले, शरीर अपवित्र वस्तुओसे भरा, महाघिनौना और नाश होनेवाला, धन-दौलत बिजलीकी तरह चंचल और

केवल बाहरसे सुन्दर देख पड़नेवाली तथा स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि ये सब अपने आत्मासे पृथक् जान पड़ने लगे । उसने तब इस मोहजालकी, जो केवल फँसाकर संसारमे भटकानेवाला है, तोड़ देना ही उचित समझा । इस शुभ संकल्प दृढ़ के होते ही पहले प्रीतिकरने अभिषेक पूर्वक भगवान्की सब सुखों को देनेवाली पूजा की, खूब दान किया और दुखी, अनाथ, अपाहिजोंकी सहायता की । अन्तमें वह अपने प्रियंकर पुत्रको राज्य देकर अपने बन्धु, बान्धवोंकी सम्मति योग लेनेके लिए विपुलाचल पर भगवान् वर्द्धमानके समवशरणमें गया और उन त्रिलोक पूज्य भगवान्के पवित्र दर्शन कर उसने भगवानके द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । इसके बाद प्रीतिकर मुनिने खूव दुःसह तपस्या की और अन्तमे शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोका नाश केवलज्ञान प्राप्त किया । अब वे लोकालोकके सब पदार्थोको हाथकी रेखाओंके समान साफ-साफ जानने देखने गये । उन्हे केवलज्ञान प्राप्त किया सुन विद्याधर, चक्रवर्त्ती, स्वर्गके देव आदि बड़े-बड़े महापुरुष उनके दर्शन-पूजनको आने लगे । प्रीतिंकर भगवान्ने तब ससारतापको नाश करनेवाले परम पवित्र उपदेशामृतसे अनेक जीवोको दुःखोसे छुटाकर सुखी बनाये । अन्तमे अघातिया कर्मोका नाश कर वे परम धाम-मोक्ष सिधार गये । आठ कर्मोका नाश कर आठ आत्मिक महान् शक्तियोको उन्होने प्राप्त किया । अब वे संसारमे न आकर अनन्त काल तक वहीं रहेगे । वे प्रीतिंकर स्वामी मुझे शांति प्रदान करे । प्रीतिंकरका यह पवित्र और कल्याण करनेवाला चरित आप भव्यजनोको और मुझे सम्यग्ज्ञानके लाभ का कारण हो । यह मेरी पवित्र भावना है ।

एक अत्यन्त अज्ञानी पशुओंमे जन्में सियारने भगवान्के पवित्र धर्मका थोड़ा सा आश्रय पर अर्थात् केवल रात्रि-भोजन-त्याग व्रत स्वीकार कर मनुष्य जन्म लिया और उसमे खूब सुख भोगकर अन्तमे अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की । तब आप हम लोग भी क्यो न इस अनन्त सुखको प्राप्ति लिए पवित्र जैनधर्ममें अपने विश्वास को दृढ़ करे ।

---

१०९. दान करनेवालोंकी कथा

जगद्गुरु तीर्थंकर भगवानको नमस्कार कर पात्र दानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

जिन भगवानने मुखरूपी चन्द्रमासे जन्मी पवित्र जिनवाणी ज्ञानरूपी महा समुद्रसे पार करनेके लिए मुझे सहायता दें, मुझे ज्ञान-दान दें ।

उन साधु रत्नोको मैं भक्तिसे नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्रके धारक हैं, परिग्रह कनक-कामिनी आदिसे रहित वीतरागी हैं और सासारिक सुख तथा सुखकी प्राप्तिके कारण हैं ।

पूर्वाचार्योंने दानको चार हिस्सोंमें बॉटा है, जैसे आहार-दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान । और ये ही दान पवित्र हैं । योग्य पात्रोको यदि ये दान दिये जायॅ तो इनका फल अच्छी जमीनमे बोये हुए बडके बीजकी तरह अनन्त गुणा होकर फलता है । जैसे एक ही बावड़ीका पानी अनेक वृक्षोमे जाकर नाना रूपमे परिणत होता है उसी तरह पात्रोके भेदसे दानके फलमे भी भेद हो जाता है । इसलिए जहॉतक बने अच्छे सुपात्रोंको दान देना चाहिए । सब पात्रोमे जैनधर्मका आश्रय लेनेवालेको अच्छा पात्र समझना चाहिए, औरोको नहीं । क्योकि जब एक कल्पवृक्ष हाथ लग गया फिर औरोंसे क्या लाभ ? जैनधर्ममें पात्र तीन बतलाये गये हैं । उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र—व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अव्रतसम्यग्दृष्टि । इन तीन प्रकारके पात्रोको दान देकर भव्य पुरुष जो सुख लाभ करते हैं उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जा सकता । परन्तु संक्षेपमे यह समझ लीजिए कि धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, खान-पान, भोग-उपभोग आदि जितनी उत्तम-उत्तम सुख सामग्री है वह तथा इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्त्ती आदि महापुरुषोकी पदवियॉ, अच्छे सत्पुरुषोंकी सगति, दिनो-दिन ऐश्वर्यादिकी बढ़वारी, वे सब पात्रदानके फलसे प्राप्त होते हैं । न यही, किन्तु इस पात्रदानके फलसे मोक्ष प्राप्तिभी सुलभ है । राजा श्रेयांसने दानके ही फलसे मुक्ति लाभ किया था । इस प्रकार पात्रदानका अनन्त फल जानकर बुद्धिवानोको इस ओर अवश्य अपने ध्यानको खींचना चाहिए । जिन-जिन सत्पुरुषोने पात्रदानका आज तक फल पाया है, उन सबके नाम

मात्रका उल्लेख भी जिन भगवान्के बिना और कोई नहीं कर सकता, तब उनके सम्बन्धमे कुछ कहना या लिखना मुझसे मतिहीन मनुष्योंके लिए तो असंभव ही है । आचार्यो ने ऐसे दानियोमें सिर्फ चार जनोका उल्लेख शास्त्रोमे किया है । इस कथामे उन्हीं का संक्षिप्त चरित मैं पुराने शास्त्रोके अनुसार लिखूँगा । उन दानियोके नाम हैं—श्रीषेण, वृषभसेना, कौण्डेश और एक पशु बराह-सूअर । इनमे श्रीषेणने आहारदान, वृषभसेनाने औषधिदान, कौण्डेशने शास्त्रदान और सूअरने अभयदान दिया था । उनकी क्रमसे कथा लिखी जाती है ।

प्राचीन कालमे श्रीषेण राजाने आहारदान दिया । उसके फलसे वे शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए । श्रीशान्तिनाथ भगवान् जय लाभ करे, जो सब प्रकारका सुख देकर अन्तमे मोक्ष सुखके देनेवाले हैं और जिनका पवित्र चरितका सुनना परम शान्तिका कारण है । ऐसे परोपकारी भगवान्का परम पवित्र और जीव मात्रका हित करनेवाला चरित आप लोग भी सुने, जिसे सुनकर आप सुखलाभ करेंगे ।

प्राचीन कालमे इसी भारतवर्षमे मलय नामका एक अति प्रसिद्ध देश था । रत्नसंचयपुर इसीकी राजधानी थी । जैनधर्मका इस सारे देशमें खूब प्रचार था । उस समय इसके राजा श्रीषेण थे । श्रीषेण धर्मज्ञ, उदारमना, न्यायप्रिय, प्रजाहितैषी, दानी और बड़े विचारशील थे । पुण्यसे प्राय· अच्छे-अच्छे सभी गुण उन्हें प्राप्त थे । उनका प्रतिद्वंद्वी या शत्रु कोई न था । वे राज्य निर्विघ्न किया करते थे । सदाचारमें उस समय उनका नाम सबसे ऊँचा था। उनकी दो रानियाँ थीं । उनके नाम थे सिंहनन्दिता और अनन्दिता । दोनो ही अपनी-अपनी सुन्दरतामें अद्वितीय थीं, विदुषी और सती थीं । इन दोनोके पुत्र हुए । उनके नाम इन्द्रसेन और और उपेन्द्रसेन थे । दोनों ही भाई सुन्दर थे, गुणी थे, शूरवीर थे और हृदयके बड़े शुद्ध थे । इस प्रकार श्रीषेण धन-सम्पत्ति, राज्य-वैभव, कुटुम्ब-परिवार आदिसे पूरे सुखी थे । प्रजाका नीतिके साथ पालन करते हुए वे अपने समयकी बड़े आनन्दके साथ बिताते थे ।

यहाँ एक सात्यकि ब्राह्मण रहता था । इसकी स्त्रीका नाम जंघा था । इसके सत्यभामा नामकी एक लड़की थीं । रत्नसचयपुरके पास बल नामका

एक गॉव बसा हुआ था । उसमे धरणीजट नामका ब्राह्मण वेदोंका अच्छा विद्वान् था । अग्नीला इसकी स्त्री थी अग्नीलासे दो लडके हुए । उनके नाम इन्द्रभूति और अग्निभूति थे । इसके यहॉ एक दासी-पुत्र (शुद्र) का लड़का रहता था । उसका नाम कपिल था । धरणीजट जब अपने लड़कोको वेदादिक पढाया करता, उस समय कपिल भी बडे ध्यानसे उस पाठको चुपचाप छुपे हुए सुन लिया करता था । भाग्यसे कपिलकी बुद्धि बड़ी तेज थी । सो वह अच्छा विद्वान बन गया, इसका धरणीजटको बड़ा आश्चर्य हुआ । पर सच तो यह है कि बेचारा मनुष्य करे भी क्या, बुद्धि तो कर्मोके अनुसार होती है न ? जब सर्व साधारणमे कपिलके विद्वान ही जानेकी चर्चा उठी तो धरणीजट पर ब्राह्मण लोग बड़े बिगडे और उसे डराने लगे कि तूने यह बड़ा भारी अन्याय किया जो दासी-पुत्रको पढाया । इसका फल तुझे बहुत बुरा भोगना पड़ेगा । अपने पर अपने जातीय भाइयोको इस प्रकार क्रोध उगलते देख धरणीजट बडा घबराया । तब डरसे उसने कपिलको अपने घरसे निकाल दिया । कपिल उस गॉवसे निकल रास्तेमे ब्राह्मण बन गया और इसी रूपमे वह रत्नसचयपुर आ गया । कपिल विद्वान् और सुन्दर था । इसे उस सात्यकि ब्राह्मणने देखा, जिसका कि ऊपर जिकर आ चुका है । इसके गुण रूपको देखकर सात्यकि बहुत प्रसन्न हुआ । उसके मन पर यह बहुत चढ़ गया । तब सात्यकि इसे ब्राह्मण ही समझ अपनी लड़की सत्यभामाका इसके साथ ब्याह कर दिया । कपिल अनायास इस स्त्री-रत्नको प्राप्त कर सुखसे रहने लगा । राजाने इसके पाण्डित्यकी तारीफ सुन इसे अपने यहॉ पुराण कहनेको रख लिया । इस तरह कुछ वर्ष बीते । एक बार सत्यभामा ऋतुमती हुई । सो उस समय भी कपिलने उससे संसर्ग करना चाहा । उसके इस दुराचारको देखकर सत्यभामाको इसके विषयमें सन्देह हो गया । उसने इस पापीको ब्राह्मण न समझ इससे प्रेम करना छोड दिया । वह इससे अलग रह दु-खके साथ अपनी जिन्दगी बिताने लगी ।

इधर धरणीजटके कोई ऐसा पापका उदय आया कि जिसे उसकी सब धन-दौलत बरबाद हो गई । वह भिखारी-सा हो गया । उसे मालूम हुआ कि कपिल रत्नसचयपुरमे अच्छी हालतमे है । राजा द्वारा उसे धन-मान खूब प्राप्त है । वह तब उसी समय सीधा कपिलके पास आया । उसे दूर हीसे देखकर

कपिल मन ही मन धरणीजट पर बड़ा गुस्सा हुआ । अपनी बढ़ी हुई मान-मर्यादाके समय इसका अचानक आ जाना कपिलको बहुत खटका । पर वह कर क्या सकता था । उसे साथ ही उस बातका बड़ा भय हुआ । कि कहीं वह मेरे सम्बन्धमे लोगोंको भड़का न दें । यही सब विचार कर वह उठा और बड़ी प्रसन्नतासे सामने जाकर धरणाजटको इसने नमस्कार किया और बड़े मानसे लाकर उसे उँचे आसन पर बैठाया । इसके बाद उसने—पिताजी, मेरी माँ, भाई आदि सब सुखसे तो हैं न ? इस प्रकार कुशल समाचार पूछ कर धरणीजटको स्नान, भोजनादि कराया और उसका वस्त्रादिसे खूब सत्कार किया । फिर सबसे आगे एक खास मानकी जगह बैठाकर कपिलने सब लोगों का धरणीजटका परिचय कराया कि ये ही मेरे पिताजी हैं । बड़े विद्वान् और आचार-विचारवान् हैं । कपिलने यह सब समाचार इसीलिए किया था कि कहीं उसकी माताका सब भेद खुल न जाय । धरणीजट द्ररिद्री हो रहा था । धनकी उसे चाह थी ही, सो उसने उसे अपना पुत्र मान लेनेमें कुछ भी आनाकानी न की । धनके लोभसे उसे यह पाप स्वीकार कर लेना पड़ा । ऐसे लोभको धिक्कार है, जिसके वश हो मनुष्य हर एक पापकर्म कर डालता है । तब धरणीजट वहीं रहने लग गया । यहाँ रहते इसे कई दिन हो चुके । सबके साथ इसका थोड़ा बहुत परिचय भी हो गया । एक दिन मौका पाकर सत्यभामाने इसे कुछ थोडा बहुत द्रव्य देकर एकान्तमें पूछा—महाराज, आप ब्राह्मण हैं और मेरा विश्वास है कि ब्राह्मण देव कभी झूठ नहीं बोलते । इसलिए कृपाकर मेरे सन्देहको दूर कीजिए । मुझे आपके इन कपिलजीका दुराचार देख यह विश्वास नहीं होता कि ये आप सरीखे पवित्र ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न हुए हो, तब क्या वास्तवमे ये ब्राह्मण ही हैं या कुछ गोलमाल है । धरणीजटको कपिलसे इसलिए द्वेष हो ही रहा था कि भरी सभामे कपिलने उसे अपना पिता बता उसका अपमान किया था । और दूसरे उसे धनकी चाह थी, सो उसके मनके माफिक धन सत्यभामाने उसे पहले ही दे दिया था । तब वह कपिलकी सच्ची हालत क्यो छिपायेगा ? जो हो, धरणीजट सत्यभामाको सब हाल कहकर और प्राप्त धन लेकर रत्नसंचयपुरसे चल दिया । सुनकर कपिल पर सत्यभामाकी घृणा पहलेसे कोई सौ गुणी बढ़ गई । उसने तब उससे

बोलना-चालना तक छोड़कर एकान्तवास स्वीकार कर लिया, पर अपने कुलाचारकी मान-मर्यादाको न छोड़ा। सत्यभामाको इस प्रकार अपनेसे घृणा करते देख कपिल उससे बलात्कार करने पर उतारू हो गया। तब सत्यभामा घरसे भागकर श्रीषेण महाराजको शरण आ गई और उसने सब हाल उनसे कह दिया। श्रीषेणने तब उस पर दयाकर उसे अपनी लड़कीकी तरह अपने यहीं रख लिया। कपिल सत्यभामाके अन्यायकी पुकार लेकर श्रीषेणके पास पहुँचा। उसके व्यभिचारकी हालत उन्हें पहले ही मालूम हो चुकी थी, इसलिए उसकी कुछ न सुनकर श्रीषेणने उसे लम्पटी और कपटी ब्राह्मणको अपने देश हीसे निकाल दिया। सो ठीक ही है राजाको सज्जनोकी रक्षा और दुष्टोको सजा करनी ही चाहिए। ऐसा न करने पर वे अपने कर्त्तव्यसे च्युत होते है और प्रजाके धनहारी हैं।

एक दिन श्रीषेणके यहाँ आदित्यगति और अरिंजय नामके दो चारणऋद्धिके धारी मुनिराज पृथिवी को अपने पाँवोंसे पवित्र करते हुए आहारके लिये आये। श्रीषेणने बड़ी भक्तिसे उनका सम्मान कर उन्हे पवित्र आहार कराया। इस पात्रदानसे उनके यहाँ स्वर्गके देवोने रत्नोंकी वर्षा की, कल्पवृक्षों ने सुन्दर और सुगन्धित फूल बरसाये, दुन्दुभी बाजे बजे, मन्द-सुगन्ध वायु बहा और जय-जयकार हुआ, खूब बधाइयाँ मिलीं। और सच है, सुपात्रोको दिये दानके फलसे क्या नहीं हो पाता। इसके बाद श्रीषेणने और बहुत वर्षोंतक राज्य-सुख भोगा। अन्तमें मरकर वे धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वभागकी उत्तर-कुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुए। सच है, साधुओकी संगतिसे जब मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है तव कौन ऐसी उससे भी बढ़कर वस्तु होगी जो प्राप्त न हो। श्रीषेणकी दोनों रानियाँ तथा सत्यभामा भी इसी उत्तरकुरु भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुई। से सब इस भोगभूमिमे दस प्रकारके कल्पवृक्षसे मिलनेवाले सुखोको भोगते हैं और आनन्दसे रहते हैं। यहाँ इन्हे कोई खाने-कमानेकी चिन्ता नहीं करना पडती है। पुण्योदयसे प्राप्त हुए भोगोको निराकुलतासे ये आयु पूर्ण होनेतक भोगेगे। यहाँकी स्थिति बड़ी अच्छी है। यहाँके निवासियोको कोइ प्रकारकी बीमारी, शोक, चिन्ता, दरिद्रता आदिसे होनेवाले कष्ट नही सता पाते। इनकी कोई प्रकारके अपघातसे मौत नहीं होती। यहाँ किसीके

साथ शत्रुता नहीं होती । यहाँ न अधिक जाड़ा पडता और न अधिक गर्मी होती है; किन्तु सदा एकसी सुन्दर ऋतु रहती है । यहाँ न किसीकी सेवा करनी पड़ती है और किसीका वैरी ही है । यहाँके लोगोंके भाव सदा पवित्र रहते हैं । आयु पूरी होने तक ये इसी तरह सुखसे रहते हैं । अन्तमें स्वाभाविक सरल भावोंसे मृत्यु लाभ कर ये दानी महात्मा कुछ बाकी बचे पुण्य फलसे स्वर्गमें जाते हैं । श्रीषेणने भी भोग भूमिका खूब सुख भोगा । अन्तमें वे स्वर्गमें गये । स्वर्गमें भी मनचाहा दिव्य सुख भोगकर अन्तमें वे मनुष्य हुए । इस जन्ममें ये कई बार अच्छे-अच्छे राजघरानेमें उत्पन्न हुए । पुण्यसे फिर स्वर्ग गये । वहाँकी आयु पूरी कर अबकी बार भारतवर्षके सुप्रसिद्ध शहर हस्तिनापुर के राजा विश्वसेनकी रानी ऐराके यहाँ इन्होंने अवतार लिया । यही सोलहवें श्रीशान्तिनाथ तीर्थंकरके नामसे संसारमें प्रख्यात हुए । इनके जन्म समयमें स्वर्ग के देवोंने आकर बड़ा उत्सव किया था, इन्हें सुमेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीरसमुद्र स्फटिकसे पवित्र और निर्मल जलसे इनका अभिषेक किया था । भगवान् शान्तिनाथने अपना जीवन बड़ी ही पवित्रताके साथ बिताया । उनका जीवन ससारका आदर्श जीवन है । अन्तमें योगी हो इन्होंने धर्मका पवित्र उपदेश देकर अनेक जनोंको संसारसे पार किया, दुःखोंसे उनकी रक्षा कर उन्हें सुखी किया । अपना संसारके प्रति जो कर्त्तव्य था उसे पूरा कर इन्होंने निर्वाण लाभ किया । यह सब पात्रदानका फल है । इसलिये जो लोग पात्रोंको भक्तिसे दान देंगे वे भी नियमसे ऐसा ही उच्च सुख लाभ करेंगे । यह बात ध्यानमें रखकर सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है, कि वे प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करें । यही दान स्वर्ग और मोक्षके सुखका देनेवाला है ।

मूलसंघमें कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए । रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारी थे । इन्हीं गुरु महाराज की कृपासे मुझ अल्पबुद्धि नेमिदत्त ब्रह्मचारीने पात्रदानके सम्बन्धमें श्रीशान्तिनाथ भगवानको पवित्र कथा लिखी है । यह कथा मेरे परम शान्तिकी कारण हो ।

---

११०. औषधिदानकी कथा

जिन भगवान जिनवाणी और जैन साधुओंके चरणोको नमस्कार कर औषधिदानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

निरोगी होना, चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहना, धनादि विभूतिका मिलना, ऐश्वर्यका प्राप्त होना, सुन्दर होना, तेजस्वी और बलवान् होना और अन्तमें स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करना ये सब औषधिदानके फल हैं । इसीलिये जो सुखी होना चाहते है। उन्हें निर्दोष औषधिदान करना उचित है । इस औषधिदानके द्वारा अनेक सज्जनोंने फल प्राप्त किया है, उन सबके सम्बन्धसमे लिखना औरोंके लिये नहीं तो मुझ अल्पबुद्धिके लिये तो अवश्य असम्भव है । उनमेंसे एक वृषभसेनाका पवित्र चरित यहाँ संक्षिप्तमे लिखा जाता है । आचार्योंने जहाँ औषधिदान देनेवालेका उल्लेख किया है वहाँ वृषभसेनाका ही प्रायः कथन आता है । उन्हींका अनुकरण मैं भी करता हूँ ।

भगवानके जन्मसे पवित्र इस भारतवर्षका जनपद नामके देशमें नाना प्रकार उत्तमोत्तम सम्पत्तिसे भरा अतएव अपनी सुन्दरतासे स्वर्गकी शोभाको नीची करनेवाला कावेरी नामका नगर है । जिस समयकी वह कथा है, उस समय कावेरी नगरके राजा उग्रसेन थे । उग्रसेन प्रजाके सच्चे हितैषी ओर राजनीतिके अच्छे पण्डित थे ।

यहाँ धनपति नामका एक अच्छा सद्‌गृहस्थ सेठ रहता था । जिन भगवान की पूजा-प्रभावनादिसे उसे अत्यन्त प्रेम था । इसकी स्त्री धनश्री इसके घरकी मानो दूसरी लक्ष्मी थी । धनश्री सती और बड़े सरल मनकी थी । पूर्व पूण्यसे इसके वृषभसेना नामकी एक देवकुमारीसी सुन्दरी और सौभाग्यवती लड़की हुई । सच है, पुण्यके उदयसे क्या प्राप्त नही होता । वृषभसेनाकी धाय रूपवती इसे सदा नहाया-धुलाया करती थी । इसके नहानेका पानी बह-बह कर एक गड्डेमें जमा हो गया था । एक दिनकी बात है कि रूपमती वृषभसेनाको नहला रही थी । इसकी समय एक महारोगी कुत्ता उस गड्डेमे, जिसमे कि वृषभसेनाके नहानेका पानी इकट्ठा हो रहा था, गिर पड़ा । क्या आश्चर्यकी बात है कि जब वह उस पानीमेसे निकला तो बिलकुल नीरोग देख पड़ा ।

रूपवती उसे देखकर चकित हो रही है । उसने सोचा—केवल साधारण जर
इस प्रकार रोग नहीं जा सकता । पर यह वृषभसेनाके नहानेका पानी है । इ
इसके पुण्यका कुछ भाग जरूर होना चाहिये । जान पडता है वृषभसेना ब
बड़ी भाग्यशालिनी लड़की है । ताज्जुब नहीं कि यह मनुष्य रूपिणी कोई दे
हो ! नहीं तो इसके नहानेके जलमें ऐसी चकित करनेवाली करामात हो
नहीं सकती । इस पानीकी और परीक्षा कर देख लूँ, जिससे. और भी
विश्वास हो जायगा कि यह पानी सचमुच ही क्या रोगनाशक है ?

तब रूपवती थोड़ेसे उस पानीको लेकर अपनी माँके पास आई
इसकी मॉकी ऑखें कोई बारह वर्षोसे खराब हो रही थी । इससे वह ब
दुःखमें थी । आँखोंको रूपवतीने इस जलसे धोकर साफ किया और देखा
उनका रोग बिलकुल जाता रहा । वे पहलेसी बड़ी सुन्दर हो गई । रूपवती
वृषभसेनाके पुण्यवती होनेमें जब कोई सन्देह न रह गया । इस रोग न
करनेवाले जलके प्रभावसे रूपवतीको चारों ओर बड़ा प्रसिद्धि हो गई
बड़ी-बड़ी दूरके रोगी अपने रोग का इलाज करानेको आने लगे । क
ऑखके रोगको, क्या पेटके रोगको, क्या सिर सम्बन्धी पीड़ाओंकी और क
कोढ़ वगैरह रोगोंको, यही नहीं किन्तु जहर सम्बन्धी असाध्यसे असा
रोगोंको भी रूपवती केवल एक इसी पानीसे आराम करने लगी । रूपवती
इससे बड़ी प्रसिद्ध हो गई ।

उग्रसेन और मेघसिगल राजाकी पुरानी शत्रुता चली आ रही थी
इस समय उग्रसेनने अपने मन्त्री रणपिंगलको मेघपिंगल पर चढ़ाई करने
आज्ञा दी । रणपिंगल सेना लेकर मेघपिंगल पर जा चढ़ा और उसके स
देशको उसने घेर लिया । मेघपिंगलने शत्रुको युद्धमें पराजित करना कठि
समझ दूसरी ही युक्तिसे उसे देशसे निकाल बाहर करना विचारा और इस
लिये उसने यह योजना की कि शत्रुकी सेनामें जिन-जिन कुँए, बावड़ीसे पीने
जल आता था उन सबमें अपने चतुर जासूसों द्वारा विष घुलवा दिया । फल य
हुआ कि रणपिंगलकी बहुतसी सेना तो मर गई और बची हुई सेनाको स
लिये वह स्वयं भी भाग कर अपने देश लौट आया । उसकी सेना पर त
उस पर जो विषका असर हुआ था, उसे रूपवतीने उसी जलसे आराम किया

गुरुओंके वचनामृतसे जैसे जीवोंको शान्ति मिलती है रणपिंगलको उसी प्रकार शान्ति रूपवतीके जलसे मिली और वह रोगमुक्त हुआ ।

रणपिंगलका हाल सुनकर उग्रसेन को मेघपिंगल पर बडा क्रोध आया तब स्वयं उन्होंने उस पर चढ़ाई की । उग्रसेनने अबकी बार अपने जानते सावधानी रखनेमें कोई कसर न की । पर भाग्यका लेख किसी तरह नहीं मिटता । मेघपिंगलका चक्र उग्रसेन पर भी चल गया । जहर मिले जलको पीकर उनकी भी तबियत बहुत बिगड़ गई । तब जितनी जल्दी उनसे बनसका अपनी राजधानीमें उन्हे लौट आना पड़ा । उनका भी बड़ा ही अपमान हुआ । रणपिंगलसे उन्होंने, वह कैसे आराम हुआ था, इस बाबत पूछा । रणपिंगलने रूपवतीका जल बतलाया । उग्रसेन तब उसी समय अपने आदिमियोंको जल ले आनेके लिये सेठके यहाँ भेजा । अपनी लड़की का स्नान-जल लेनेको राजाके आदमियोंको आया देख सेठानी धनश्रीने अपने स्वामीसे कहा—क्योजी, अपनी वृषभसेनाका स्नान-जल राजाके सिर पर छिड़का जाय यह तो उचित नहीं जान पड़ता । सेठने कहा—तुम्हारा यह कहना ठीक है, परन्तु जिसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं तब क्या किया जाय । इसमें अपने बसकी क्या बात है ? हम तो न जान-बूझकर ऐसा करते हैं और न सच्चा हाल किसीसे छुपाते ही हैं, तब इससे अपना तो कोई अपराध नहीं हो सकता । यदि राजा साहबने पूछा तो हम सब हाल उनसे यथार्थ कह देंगे । सच है, अच्छे पुरुष प्राण जाने पर भी झूठ नहीं बोलते । दोनोने विचार कर रूपवतीको जल देकर उग्रसेनके महल पर भेजा । रूपवतीने उस जलको राजाके सिर पर छिड़क कर उन्हें आराम कर दिया । उग्रसेन रोगमुक्त हो गये । उन्हें बहुत खुशी हुई । रूपवतीसे उन्होंने उस जलका हाल पूछा । रूपवती कोई बात न छुपाकर जो बात सच्ची थी वह राजासे कह दी । सुनकर राजाने धनपति सेठको बुलाया ओर उसका बड़ा आदर-सम्मान किया । वृषभसेनाका हाल सुनकर ही उग्रसेनकी इच्छा उसके साथ ब्याह करनेकी हो गई थी और इसीलिये उन्होने मौका पाकर धनपतिसे अपनी इच्छा कह सुनाई । धनपतिनेउसके उत्तरमें कहा—राजराजेश्वर, मुझे आपकी आज्ञा मान लेनेमे कोई रुकावट नहीं है । पर इसके साथ आपको स्वर्ग-मोक्षकी देनेवाली और जिसे इन्द्र, स्वर्गवासी देव, चक्रवर्ती, विद्याधर,

राजे-महाराजे आदि महापुरुष बड़ी भक्तिके साथ करते है। ऐसी अष्टाह्निक पूजा करनी होगी और भगवान्का खूब उत्सवके साथ अभिषेक करना होगा। सिवा इसके आपके यहाँ जो पशु-पक्षी पींजरोंमें बन्द हैं, उन्हें तथा कैदियोंको छोड़ना होगा । ये सब बातें आप स्वीकार करें तो मैं वृषभसेनाका ब्याह आपके साथ कर सकता हूँ । उग्रसेनने धनपतिकी सब बातें स्वीकार कीं । और उसी समय उन्हें कार्यमें भी परिणत कर दिया ।

वृषभसेनाका ब्याह हो गया । सब रानियोंमें पट्टरानीका सौभाग्य उसे ही मिला । राजाने अब अपना राजकीय कामोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध कम कर दिय । उनका प्रायः समय वृषभसेनाके साथ सुखोपभोगमें जाने लगा । वृषभसेना पुण्योदयसे राजाकी खास प्रेम-पात्र हुई । स्वर्ग सरीखे सुखोंको वह भोगने लगी । यह सब कुछ होने पर भी वह अपने धर्म-कर्मको थोड़ा भी न भूल गई थी । वह जिन भगवानकी सदा जलादि आठ द्रव्योंसे पूजा करती, उनका अभिषेक करती, साधुओंको चारों प्रकारका दान देती, अपनी शक्तिके अनुसार व्रत, तप, शील, संयमादिका पालन करती और धर्मात्मा सत्पुरुषोंका अत्यन्त प्रेमके साथ आदर-सत्कार करती । और सच है, पुण्योदयसे जो उन्नति हुई, उसका फल तो यही है कि साधर्मियोंसे प्रेम हो, हृदयमें उनके प्रति उच्च भाव हों । वृषभसेना अपना जो कर्त्तव्य था, उसे पूरा करती, भक्तिसे जिनधर्मकी जितनी बनती उतनी सेवा करती और सुखसे रहा करती थी ।

राजा उग्रसेनके यहाँ बनारसका राजा पृथिवीचन्द्र कैद था । और वह अधिक दुष्ट था । पर उग्रसेनका तो तब भी यही कर्त्तव्य था कि वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्याहके समय उसे भी छोड़ देते । परऐसा उन्होंने नहीं किया । यह अनुचित हुआ । अथवा यों कहिये कि जो अधिक दुष्ट होते हैं उनका भाग्य ही ऐसा होता है जो वे मौके पर भी बन्धन मुक्त नहीं हो पाते ।

पृथिवीचन्द्रकी रानीका नाम नारायणदत्ता था । उसे आशा थी कि उग्रसेन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वृषभसेनाके साथ ब्याहके समय मेरे स्वामीको अवश्य छोड़ देंगे । पर उसकी वह आशा व्यर्थ हुई । पृथिवीचन्द्र तब भी न छोड़े गये । यह देख नारायणदत्ताने अपने मंत्रियोसे सलाह ले पृथिवीचन्द्रको छुड़ानेके लिए एक दूसरी ही युक्ति की और उसमे उसे मनचाही सफलता भी

प्राप्त हुई । उसने अपने यहाँ वृषभसेनाके नामसे कई दानशालाएँ बनवाई । कोई विदेशी या स्वदेशी ही सबको उनमें भोजन करनेको मिलता था । उन दानशालाओमें बढ़िया से बढ़िया छहों रसमय भोजन कराया जाता था । थोड़े ही दिनोंमे इन दानशालाओंकी प्रसिद्धि चारो ओर हो गई । जो इनमें एक बार भी भोजन कर जाता वह फिर इनकी तारीफ करनेमे कोई कमी न करता था । बड़ी-बड़ी दूरसे इनमे भोजन करनेको लोग आने लगे । कावेरीके भी बहुतसे ब्राह्मण यहाँ भोजन कर जाते थे । उन्होने इन शालाओंकी बहुत तारीफ की ।

रूपवतीको इन वृषभसेनाके नामके स्थापित की गई दानशालाओंका हाल सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही उसे वृषभसेना पर इस बातसे बड़ा गुस्सा आया कि मुझे बिना पूछे उसने बनारसमे ये शालाएँ बनवाई ही क्यो ? और इसका उसने वृषभसेनाको उलाहना भी दिया । वृषभसेनाने तब कहा—माँ, मुझ पर तुम व्यर्थ ही नाराज होती हो । न तो मैंने कोई दानशाला बनारसमें बनवाई और न मुझे उनका कुछ हाल ही मालूम है । यह सम्भव हो सकता है कि किसीने मेरे नामसे उन्हें बनाया हो । पर इसका शोध लगाना चाहिए कि किसने तो ये शालाएँ बनावाई और क्यो बनवाई ? आशा है पता लगानेसे सब रहस्य ज्ञात हो जायगा । रूपवतीने तब कुछ जासूसोको उन शालाओंकी सच्ची हकीकत जाननेको भेजा । उनके द्वारा रूपवती को मालूम हुआ कि वृषभसेनाके ब्याह समय उग्रसेन ने सब कैदियोको छोड़नेकी प्रतिज्ञा की थी । उस प्रतिज्ञाके अनुसार पृथिवीचन्द्रको उन्होंने न छोडा । यह बात वृषभसेनाको जान पड़े, उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हो इसलिये ये दान-शालाएँ उसके नामसे पृथिवीचन्द्रकी रानी नारायणदत्ताने बनवाई हैं । रूपवतीने यह सब हाल वृषभसेनासे कहा । वृषभसेनाने तब उग्रसेनसे प्रार्थना कर उसी समय पृथिवीचन्द्रके छुड़वा दिया । पृथिवीचन्द्र वृषभसेनाके इस उपकारसे बड़ा कृतज्ञ हुआ । उसने इस कृतज्ञताके वश हो उग्रसेन और वृषभसेनाका एक बहुत ही बढ़िया चित्र तैयार करवाया । उस चित्रमें दोनो राजारानीके पाँवोंमें सिर झुकाया हुआ अपना चित्र भी पृथिवीचन्द्रने खिंचवाया । वह चित्र फिर उनकी भेट कर उसने वृषभसेनासे कहा—माँ, तुम्हारी कृपासे मेरा जन्म सफल हुआ । आपकी इस दयाका मैं जन्म-जन्ममें ऋणी रहूँगा ।

आपने इस समय मेरा जो उपकार किया उसका बदला तो मैं क्या चुका सकूँगा पर उसकी तारीफमें कुछ कहने तकके लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। पृथिवीचन्द्रकी यह नम्रता यह विनयशीलता देखकर उग्रसेन उस पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसका तब बड़ा आदर-सत्कार किया।

मेघपिंगल उग्रसेनका शत्रु था, इसका जिकर ऊपर आया है। जो हो, उग्रसेनसे वह भले ही बिलकुल न डराता हो, पर पृथिवीचन्द्रसे बहुत डरता था। उसका नाम सुनते ही वह कॉप उठता था। उग्रसनेको यह बात मालूम थी। इसलिए अबकी बार उन्होंने पृथिवीचन्द्रको उस पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की। उनकी आज्ञा सिर पर चढ़ा पृथिवीचन्द्र अपनी राजधानीमें गया। और तुरंत उसने अपनी सेनाको मेघपिंगल पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की। सेनाके प्रयाणका बाजा बजनेवाला ही था कि कावेरी नगरसे खबर आ गई—"अब चढ़ाईकी कोई जरूरत नहीं। मेघपिंगल स्वयं महाराज उग्रसेनके दरबारमें उपस्थित हो गया है।" बात यह थी कि मेघपिंगल पृथिवीचन्द्रके साथ लड़ाईमें पहले कई बार हार चुका था। इसलिए वह उससे बहुत डरता था। यही कारण था कि उसने पृथिवीचन्द्रसे लड़ना उचित न समझा। तब अगत्या वह उग्रसेनका सामन्त राजा बन गया। सच है, पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

एक दिन दरबार लगा हुआ था। उग्रसेन सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उस समय उन्होंने एक प्रतिज्ञा की—आज सामन्त-राजाओं द्वारा जो भेंट आयेगी, वह आधी मेघपिंगलकी और आधी श्रीमती वृषभसेनाकी भेंट होगी। इसलिए कि उग्रसेन महाराजकी अपने मेघपिंगल पर पूरी कृपा हो गई थी। आज और बहुत-सी धन-दौलतके सिवा दो बहुमूल्य सुन्दर कम्बल उग्रसेनकी भेट मे आये। उग्रसेनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भेटका आधा हिस्सा मेघपिंगलके यहॉ और आधा हिस्सा वृषभसेनाके यहॉ पहुँचा दिया। धन-दौलत, वस्त्राभूषण, आयु आदि ये सब नाश होनेवाली वस्तुऍ हैं, तब इनका प्राप्त करना सफल तभी हो सकता है जब कि ये परोपकारमें लगाई जायॅ, इनके द्वारा दूसरों का भला हो।

एक दिन मेघपिंगलकी रानी इस कम्बलको ओढ़ किसी आवश्यक कार्यके लिए वृषभसेनाके महल आई। पाठकोको याद होगा कि ऐसा ही एक कम्बल वृषभसेनाके पास भी था। आज वस्त्रोंके उतारने और पहरनेमें भाग्यसे मेघपिगंलकी रानीका कम्बल वृषभसेनाके कम्बलसे बदल गया। उसे इसका कुछ खयाल न रहा ओर वह वृषभसेनाका कम्बल ओढ़े ही अपने महल आ गई। कुछ दिनों बाद मेघपिंगलको राज-दरबारमे जानेका काम पड़ा। वह वृषभसेनाके इसी कम्बलको ओढ़े चला गया। कम्बलको ओढ़े मेघपिंगलको देखते ही उग्रसेनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने वृषभसेनाके कम्बलको पहचान लिया। उनकी ऑखोसे आगकी-सी चिनगारियॉ निकलने लगीं। उन्हें काटो तो खून नहीं। महारानी वृषभसेनाका कम्बल इसके पास क्यो और कैसे गया ? इसका कोई गुप्त कारण जरूर होना ही चाहिए। बस, यह विचार उनके मनमें आते ही उनकी अजब हालत हो गई। उग्रसेनका अपने पर अकारण क्रोध देखकर मेघपिंगलको समझमें इसका कुछ भी कारण न आया। पर ऐसी दशामें उसने अपना वहॉ रहना उचित न समझा। वह उसी समय वहॉसे भागा और एक अच्छे तेज घोड़े पर सवार हो बहुत दूर निकल गया। जैसे दुर्जनोंसे डरकर सत्पुरुष दूर जा निकलते हैं। उसे भागता देख उग्रसेनका सन्देह और बढ़ा। उन्होंने तब एक ओर तो मेघपिंगलको पकड़ लानेके लिए अपने सवारोंको दौड़ाया और दूसरी ओर क्रोधाग्निसे जलते हुए आप वृषभसेनाके महल पहुँचे। वृषभसेनासे कुछ न कह सुनकर कि तूने अमुक अपराध किया है, एक साथ उसे समुद्रमे फिकवानेका उन्होने हुक्म दे दिया। बेचारी निर्दोष वृषभसेना राजाज्ञाके अनुसार समुद्रमें डाल दी गई। उस क्रोधको धिक्कार ! उस मूर्खताको धिक्कार ! जिसके वश हो लोग योग्य और अयोग्य कार्यका भी विचार नहीं कर पाते। अजान मनुष्य किसी को कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे, दु:खोकी कसौटी पर उसे कितना ही क्यो न चढ़ावें, उसकी निरपराधताको अपनी क्रोधाग्निमे क्यो न झोक दें, पर यदि वह कष्ट सहने वाला मनुष्य निरपराध है, निर्दोष है, उसका हृदय पवित्रतासे भरा है, रोम-रोममें उसके पवित्रताका वास है तो नि सन्देह उसका कोई बाल बॉका नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्योको कितना ही कष्ट हो, उससे उनका हृदय रत्ती

भर भी विचलित न होगा। वल्कि जितना-जितना वह इस परीक्षाकी कसौटी पर चढ़ता जायगा उतना-उतना ही अधिक उसका हृदय वलवान् और निर्भीक वनता जायगा। उग्रसेन महाराज भले ही इस वातको न समझें कि वृषभसेना निर्दोष है, उसका कोई अपराध नहीं, पर पाठकोंको अपने हृदयमें इस वातका अवश्य विश्वास है, न केवल विश्वास ही है, किन्तु वात भी वास्तवमें यही सत्य है कि वृषभसेना निरपराध है। वह सती है, निष्कलंक है। जिस कारण उग्रसेन महाराज उस पर नाराज हुए थे, वह कारण निर्भ्रान्त नहीं था। वे यदि जरा गम खाकर कुछ शान्तिसे विचार करते तो उनकी समझमें भी वृषभसेना की निर्दोषता वहुत जल्दी आ जाती। पर क्रोधने उन्हें आपेमें न रहने दिया। और इसीलिए उन्होंने एकदम क्रोधसे अन्धे हो एक निर्दोष व्यक्तिको कालके मुँहमें फेंक दिया। जो हो, वृषभसेनाकी पवित्र जीवनकी उग्रसेनने तो कुछ कीमत न समझी, उसके साथ महान् अन्याय किया, पर वृषभसेनाको अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह जानती थी कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। फिर मुझे कोई ऐसी वात नहीं देख पड़ती कि जिसके लिए मैं दुःख कर अपने आत्माको निर्वल वनाऊँ। वल्कि मुझे इस वातकी प्रसन्नता होनी चाहिए कि सत्यके लिए मेरा जीवन गया। उसने ऐसे ही और वहुतसे विचारोंसे अपने आत्माको खूव वलवान् और सहनशील बना लिया। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि सत्यता और पवित्रताके सामने किसीकी नहीं चलती। वल्कि सवको उनके लिए अपना मस्तक झुकाना पड़ता है। वृषभसेना अपनी पवित्रता पर विश्वास रखकर भगवान्के चरणोंका ध्यान करने लगी। अपने मनको उसने परमात्म-प्रेममें लीन कर लिया। उसने साथ ही प्रतिज्ञा की कि यदि इस परीक्षामें मैं पास होकर नया जीवन लाभ कर सकूँ तो अव मैं संसारकी विषयवासनामें न फँसकर अपने जीवनको तपके पवित्र प्रवाहमें वहा दूँगी, जो तप जन्म और मरण ही नाश करनेवाला है। उस सयम वृषभसेनाकी वह पवित्रता, वह दृढ़ता, वह शीलका प्रभाव, वह स्वभावसिद्ध प्रसन्नता आदि वातोंने उसे एक प्रकाशमान उज्जवल ज्योतिके रूपमें परिणत कर दिया था। उसके इस अलौकिक तेजके प्रकाशने स्वर्गके देवोंकी आँखों तक में चकाचौंध पैदा कर दी। उन्हें भी इस तेजस्विता देवीको सिर झुकाना पड़ा। वे वहाँसे

उसी समय आये और वृषभसेनाको एक मूल्यवान सिहासन पर अधिष्ठित कर उन्होंने उस मनुष्यरूपचारिणी पवित्रताकी मूर्तिमान देवीकी बड़े भक्ति भावोसे पूजा की, उसका जय-जयकार मनाया, बहुत सत्य है, पवित्रशीलके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है। यही शील आगको जल, समुद्रको स्थल, शत्रुको मित्र, दुर्जनको सज्जन और विषको अमृतके रूपमें परिणत कर देता है। शीलका प्रभाव अचिन्त्य है। इसी शीलके प्रभावसे धन-सम्पत्ति, कीर्ति, पुण्य, ऐश्वर्य, स्वर्ग-सुख आदि जितनी ससारमे उत्तम वस्तुएँ हैं वे सब अनायास बिना परिश्रम किये प्राप्त हो जाती हैं। न यही किन्तु शीलवान् मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए बुद्धिवानोको उचित है कि वे अपने चंचल मनरूपी बन्दरको वश कर उसे कहीं न जाने देकर पवित्र शीलव्रतकी, जिसे कि भगवानने सब पापोका नाश करनेवाला बतलाया है, रक्षामे लगावे।

वृषभसेनाके शीलका महात्म्य जब उग्रसेनको जान पड़ा तो उन्हे बहुत दु:ख हुआ। अपनी बे-समझी पर वे बहुत पछताये। वृषभसेनाके पास जाकर उससे उन्होने अपने इस अज्ञानकी क्षमा कराई और महल पर चलनेके लिए उससे प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेनाने पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि इस कष्टसे छुटकारा पाते ही मैं योगिनी बनकर आत्महित करूँगी और इस पर वह दृढ़ भी वैसी ही थी; परन्तु इस समय जब कि खुद महाराज उसे लिवानेको आये तब उनका अपमान न हो; इसलिए उसने एक बार महल जाकर एक-दो दिन बाद फिर दीक्षा लेना निश्चय किया। वह बड़ी वैरागिन होकर महाराजके साथ महल आ रही थी। पर जिसके मन जैसी भावना होती है और वह यदि सच्चे हृदयसे उत्पन्न हुई होती है वह नियमसे पूरी होती ही है। वृषभसेनाके मनमे जो पवित्र भावना थी वह सच्चे संकल्पसे की गई थी। इसलिए उसे पूरी होना ही चाहिए था और वह हुई भी। रास्तेमे वृषभसेनाको एक महा तपस्वी ओर अवधिज्ञानी गुणधर नामके मुनिराजके पवित्र दर्शन हुए। वृषभसेनाने बडी भक्तिसे उन्हे हाथ जोड़ सिर नवाया। इसके बाद उसने उनसे पूछा—हे दयाके समुद्र योगिराज, क्या आप कृपाकर मुझे यह बतलावेगे कि मैंने पूर्व जन्मोमे क्या-क्या कर्म किये हैं, जिनका मुझे यह फल भोगना पडा ? मुनि बोले—पुत्रि, सुन तुझे तेरे पूर्व जन्मका हाल सुनाता हूँ। तू पहले जन्ममे ब्राह्मणकी लडकी

थी । तेरा नाम नागश्री था । इसी राजघराने में तू बुहारी दिया करती थी । एक दिन मुनिदत्त नामके योगिराज महलके कोटके भीतर एक वायु रहित पवित्र गढ़ेमें बैठे ध्यान कर रहे थे । समय सन्ध्याका था । इसी समय तू बुहारी देती हुई इधर आई । तूने मूर्खतासे क्रोध कर मुनिसे कहा--ओ नंगे ढोंगी, उठ यहाँसे, मुझे झाड़ने दे । आज महाराज इसी महलमें आवेंगे । इसलिए इस स्थानको मुझे साफ करना है । मुनि ध्यानमें थे, इसलिए वे उठे नहीं; ओर न ध्यान पूरा होने तक उठ ही सकते थे । वे वैसेके वैसे ही अडिग बैठे रहे । इससे तुझे और अधिक गुस्सा आया । तूने तव सव जगहका कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर मुनिको उससे ढंक दिया । बाद तू चली गई । वेटा तू तव मूर्ख थी, कुछ समझती न थी । पर तूने वह काम बहुत बुरा किया था । तू नहीं जानती थी कि साधु-सन्त तो पूजा करने योग्य होते हैं, उन्हें कष्ट देना उचित नहीं । जो कष्ट देते हैं वे वड़े मूर्ख और पापी हैं । अस्तु, सबेरे राजा आये । वे इधर होकर जा रहे थे । उनकी नजर इस गढ़े पर पड़ गई । मुनिके साँस लेनेसे उन परका वह कूड़ा-कचरा ऊँचा-नीचा हो रहा था । उन्हें कुछ सन्देहसा हुआ । तव उन्होंने उसी समय उस कचरेको हटाया । देखा तो उन्हें मुनि देख पड़े । राजाने उन्हें निकाल लिया । तुझे जव यह हाल मालूम हुआ और आकर तूने उन शान्तिके मन्दिर मुनिराजको पहलेसा ही शान्त पाया तब तुझे उनके गुणोंकी कीमत जान पड़ी । तू तब वहुत पछताई । अपने कर्मोंको तूने वहुत धिक्कारा । मुनिराजसे अपने अपराधकी क्षमा कराई तब तेरी श्रद्धा उन पर बहुत ही हो गई । मुनिके उस कष्टके दूर करनेका तूने बहुत यत्न किया, उनकी औषधि की और भरपूर सेवा की । उस सेवाके फलसे तेरे पापकर्मोंकी स्थिति बहुत कम रह गई । बहिन, उसी मुनि सेवाके फलसे तू इस जन्ममें धनपति सेठकी लड़की हुई । तूने जो मुनिको औषधिदान दिया था उससे तो तुझे वह सर्वोषधि प्राप्त हुई जो तेरे स्नानके जलसे कठिनसे कठिन रोग क्षण-भरमें नाश हो जाते हैं और मुनिको कचरेसे ढककर जो उन पर घोर उपसर्ग किया था, उससे तुझे इस जन्ममें झूठा कलंक लगा । इसलिये बहिन, साधुओंको कभी कष्ट देना उचित नहीं । किन्तु ये स्वर्ग या मोक्षसुखकी प्राप्ति के कारण हैं, इसलिए इनकी तो वड़ी भक्ति और श्रद्धासे सेवा-पूजा करनी चाहिये । मुनिराज द्वारा अपना पूर्वमत

सुनकर वृषभसेनाका वैराग्य और बढ़ गया। उसने फिर महल पर न जाकर अपने स्वामीसे क्षमा कराई और संसारकी सब माया ममताका पेचीला जाल तोड़कर परलोक-सिद्धिके लिये इन्हीं गुणधर मुनि द्वारा योग-दीक्षा ग्रहण कर ली। जिस प्रकार वृषभसेनाने औषधिदान देकर उसके फलसे सर्वोषधि प्राप्त की उसी तरह और बुद्धिमानोको भी उचित है कि वे जिसे जिस दानकी जरूरत समझें उसीके अनुसार सदा हर एककी व्यवस्था करते रहें। दान महान् पवित्र कार्य है और पुण्यका कारण है।

गुणधर मुनिके द्वारा वृषभसेनका पवित्र और प्रसिद्ध चरित्र सुनकर बहुतसे भव्यजनोने जैनधर्मको धारण किया, जिनको जैनधर्मके नाम तकसे चिढ़ थी। वे भी उससे प्रेम करने लगे। इन भव्यजनोंको तथा मुझे सती वृषभसेना पवित्र करे, हृदयमें चिरकालसे स्थानसे किये राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, मत्सरता आदि दुर्गुणोंको, जो आत्मप्राप्तिसे दूर रखनेवाले हैं, नाश करे उनकी जगह पवित्रताकी प्रकाशमान ज्योतिको जगावे।

★ मानव सही पुरुषार्थ करे तो महान कार्य कर, महान बन सकता है।

★ परोपकार रुपी वेदी पर चढ़ाया हुआ फल कभी निष्फल नहीं होता।

१११. शास्त्र-दानकी कथा

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर सुख। प्राप्तिकी कारण शास्त्र-दानकी कथा लिखी जाती है ।

मैं उस भारती सरस्वतीको नमस्कार करता हूँ, जिसके प्रगटकर्त्ता जिन भगवान हैं और जो आँखोंके आड़े आनेवाले, पदार्थोंका ज्ञान न होने देनेवाले अज्ञान-पटलको नाश करनेवाली सलाई है । भावार्थ—नेत्ररोग दूर करनेके लिये जैसे सलाई द्वारा सुरमा लगाया जाता है या कोई सलाई ही ऐसी वस्तुओंकी बनी होती है जिसके द्वारा सब नेत्र-रोग नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह अज्ञानरूपी रोगको नष्ट करनेके लिये सरस्वती—जिनवाणी सलाईका काम देनेवाली है। इसकी सहायतासे पदार्थोंका ज्ञान बड़े सहजमें हो जाता है ।

उन मुनिराजोंको मैं नमस्कार करता हूँ, जो मोहको जीतनेवाले हैं रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रसे विभूषित हैं और जिनके चरण-कमल लक्ष्मीके—सब सुखोंके स्थान हैं ।

इस प्रकार देव, गुरु और शास्त्रको नमस्कार कर शास्त्रदान करनेवालेकी कथा संक्षेपमें यहाँ लिखी जाती है । इसलिये कि इसे पढ़कर सत्पुरुषोंके हृदयमें ज्ञानदानकी पवित्र भावना जाग्रत हो । ज्ञान जीवमात्रका सर्वोत्तम नेत्र है। जिसके यह नेत्र नहीं उसके चर्म नेत्र होने पर भी वह अन्धा है, उसके जीवनका कुछ मूल्य नहीं होता । इसलिये अकिंचित्कर जीवनको मूल्यवान् बनानेके लिए ज्ञान-दान देना ही चाहिये । यह दान सब दानोंका राजा हैं ओर दानों द्वारा थोड़े समय की और एक ही जीवनकी ख्वाइशें मिटेंगी, पर ज्ञान-दानसे जन्म-जन्मकी ख्वाइशें मिटकर वह दाता और वह दान लेनेवाला ये दोनों ही उस अनन्त स्थानको पहुँच जाते हैं, जहाँ सिवा ज्ञानके कुछ नहीं है, ज्ञान ही जिनका आत्मा हो जाता है । यह हुई परलोकको बात । इसके सिवा ज्ञानदानसे इस लोकमें भी दाताकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल जाती है । सारा संसार उसकी शत-मुखसे बड़ाई करता है । ऐसे लोग जहाँ जाते हैं । वहीं उनक मनमाना आदरमान होता है । इसलिये ज्ञान-दान भुक्ति और मुक्ति इ- दोनोंका ही देनेवाला है । अतः भव्यजनोंको उचित है, उनका कर्त्तव्य है वि

वे स्वयं ज्ञान-दान करे और दूसरोको भी इस पवित्र मार्गमे आगे करे । इस ज्ञान-दानके सम्बन्धमे एक बात ध्यान देनेकी यह है कि यह सम्यक्पनेको लिये हुए हो अर्थात् ऐसा हो कि जिससे किसी जीवका अहित, बुरा न हो, जिसमें किसी तरहका विरोध या दोष न हो । क्योकि कुछ लोग उसे भी ज्ञान बतलाते हैं । जिसमे जीवोकी हिंसाको धर्म कहा गया है, धर्मके बहाने जीवोको अकल्याणका मार्ग बतलाया जाता है और जिसमे कहीं कुछ कहा गया है और कहीं कुछ कहा गया है जो परस्पर विरोधी है । ऐसा ज्ञान सच्च ज्ञान नहीं किन्तु मिथ्याज्ञान है । इसलिए सच्चे-सम्यग्ज्ञान दान देनेकी आवश्यकता हैं । जीव आनादिसे कर्मोके वश हुआ अज्ञानी बनकर अपने निज ज्ञानमय शुद्ध स्वरूपको भूल गया है और माया-ममताके पेंचीले जालमे फॅस गया है, इसलिए प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि जिससे यह अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर सके । ऐसी दशामे इसे असुखका रास्ता बतलाना उचित नहीं है । सुख प्राप्त करनेका सच्चा प्रयत्न सम्यग्ज्ञान है । इसलिये दान, मान पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन आदिसे इस सम्यग्ज्ञानकी आराधना करना चाहिये । ज्ञान प्राप्त करनेकी पॉच भावनाऍ ये हैं—उन्हें सदा उपयोगमे लाते रहना चाहिए । वे भावनाऍ हैं—वाचना—पवित्र ग्रन्थका स्व्य अध्ययन करना या दूसरे पुरुषोको कराना, पृच्छना—किसी प्रकारके सन्देहको दूरक करनेके लिए परस्परमे पूछ-ताछ करना, अनुप्रेक्षा—शास्त्रोमे जो विषय पढ़ा हो या सुना हो उसका बार-बार मनन-चिन्तन करना, आम्नाय—पाठका शुद्ध पढ़ना या शुद्ध ही पढ़ाना और ध र्मोपदेश—पवित्र धर्मका भव्यजनको उपदेश करना । ये पॉचो भावनाऍ ज्ञान बढ़ाने की कारण है । इसलिये इनके द्वारा सदा अपने ज्ञानकी वृद्धि करते रहना चाहिये । ऐसा करते रहनेसे एक दिन वह आयगा जब कि केवलज्ञान भी प्राप्त हो जायगा । इसीलिये कहा गया कि ज्ञान सर्वोत्तम दान है । और यही संसारके जीवमात्रका हित करनेवाला है । पुरा कालसे जिन-जिन भव्य जनोने ज्ञानदान किया आज तो उनके नाम मात्रका उल्लेख करना भी असंभव है, तब उनका चरित लिखना तो दूर रहा । अस्तु, कोण्डेशका चरित ज्ञानदान करनेवालोमे अधिक प्रसिद्ध है । इसलिए उसीका चरित संक्षेपमें लिखा जाता है ।

जिनधर्मके प्रचार या उपदेशादिसे पवित्र हुए भारतवर्षमे कुरुमरी

गॉवमें गोविन्द नामका एक ग्वाल रहता था। उसने एक वार जंगलमें एक वृक्ष कोटरमें जैनधर्मका एक पवित्र ग्रन्थ देखा। उसे वह अपने घर पर ले आया और रोज-रोज उसकी पूजा करने लगा। एक दिन पद्मनंदि नामके महात्माको गोविन्दने जाते देखा। इसने वह ग्रन्थ इन मुनिको भेंट कर दिया।

यह जान पड़ता है कि इस ग्रंथ द्वारा पहले भी मुनियेंाने यहॉ भव्यजनोंको उपदेश किया है, इसके पूजा महोत्सव द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना की है और अनेक भव्यजनोंको कल्याण मार्गमें लगाकर सच्चे मार्गका प्रकाश किया है। अन्तमें वे इस ग्रंथको इसी वृक्षकी कोटरमें रखकर विहार कर गए हैं। उनके वाद जबसे गोविन्दने इस ग्रन्थको देखा तभीसे वह इसकी भक्ति और श्रद्धासे निरन्तर पूजा किया करता था। इसी समय अचानक गोविन्दकी मृत्यु हो गई। वह निदान करके इसी कुरुमरी गॉवमें गाँवके चौधरीके यहाँ लड़का हुआ। इसकी सुन्दरता देखकर लोगोंकी ऑखे इस परसे हटती ही न थी, सव इससे वड़े प्रसन्न होते थे। लोगोंके मनको प्रसन्न करना, उनकी अपने पर प्रीति होना यह सब पुण्यकी महिमा है। इसके पल्लेमें पूर्व जन्मका पुण्य था। इसलिये इसे ये सव एक बातें सुलभ थीं।

एक दिन इसने उन्हीं पद्मनन्दि मुनिको देखा, जिन्हें कि इस गोविन्द ग्वालके भवमें पुस्तक भेंट की थी। उन्हें देखकर इसे जातिस्मरणज्ञान हो गया। मुनिको नमस्कार कर सव धर्मप्रेमसे इसने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसकी प्रसन्नता का कुछ पार न रहा। यह बड़े उछाहसे तपस्या करने लगा। दिनों-दिन इसके हृदयकी पवित्रता वढ़ती ही गई। आयुके अन्तमें शान्तिसे मृत्यु लाभ कर यह पुण्यके उदयसे कौण्डेश नामका राजा हुआ। कौण्डेश बड़ी ही वीर था। तेजमें वह सूर्यसे टक्कर लेता था। सुन्दरता उसकी इतनी वढ़ी-चढ़ी थी कि उसे देखकर कामदेवको भी नीचा मुँह कर लेना पड़ता था। उसकी स्वभाव-सिद्ध क्रान्तिको देखकर तो लज्जाके मारे वेचारे चन्द्रमाका हृदय ही काला पड़ गया। शत्रु उसका नाम सुनकर कॉपते थे। यह बड़ा ऐश्वर्यवान् था, भाग्यशाली था, यशस्वी था और सच्चा धर्मज्ञ था। वह अपनी प्रजाका शासन प्रेम और नीतिके साथ करता था। अपनी सन्तानके माफिक ही उसका प्रजा पर प्रेम था। इस प्रकार बड़े ही सुख-शान्तिसे उसका समय वीतता था।

इस तरह कौण्डेशका बहुत समय बीत गया। एक दिने उसे कोई ऐसा कारण मिल गया कि जिससे उसे संसारमें बड़ा वैराग्य हो गया। वह संसारको अस्थिर, विषयभोगोंको रोगके समान, सम्पत्तिको बिजलीकी तरह चंचल—तत्काल देखते-देखते नष्ट होनेवाली, शरीरको मांस, मल रुधिर आदि महा अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ, दुःखोंका देनेवाला घिनौना और नाश होनेवाला जानकर सबसे उदासीन हो गया। इस जैनधर्मके रहस्यको जाननेवाले कौण्डेशके हृदयमें वैराग्य भावनाकी लहरें लहराने लगीं। उसे अब घरमें रहना कैद खानेके समान जान पड़ने लगा। वह राज्याधिकार पुत्रको सौंप कर जिनमन्दिर गया। वहाँ उसने जिन भगवानकी पूजा की, जो सब सुखोंकी कारण है। इसके बाद निर्ग्रन्थ गुरुको नमस्कार कर उनके पास वह दीक्षित हो यगा। पूर्व जन्ममें कौण्डेशने जो दान किया था, उसके फलसे वह थोड़े ही समयेमें श्रुतकेवली हो गया। यह श्रुतकेवली होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि ज्ञानदान तो केवलज्ञानका भी कारण है। जिस प्रकार ज्ञान-दानसे एक ग्वाल श्रुतज्ञानी हुआ उसी तरह अन्य भव्य पुरुषोंको भी ज्ञान-दान देकर, अपना आत्महित करना चाहिये। जो भव्यजन, संसारके हित करनेवाले इस ज्ञान-दानकी भक्तिपूर्वक पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन लिखने-लिखाने, दान-मान, स्तवन-जपन आदि सम्यक्त्वके कारणोंसे आराधना किया करते हैं वे धन, जन, यश, ऐश्वर्य, उत्तम कुल, गोत्र, दीर्घायु आदिका मनचाहा सुख प्राप्त करते हैं। अधिक क्या कहा जाय किन्तु इसी ज्ञानदान द्वारा वे स्वर्ग या मोक्षका सुख भी प्राप्त कर सकेंगे। अठारह दोष रहित जिन भगवान्के ज्ञानका मनन, चिन्तन करना उच्च सुखका कारण है।

मैंने जो यह दानकी कथा लिखी है वह आप लोगोंको तथा मुझे केवलज्ञानके प्राप्त करनेकी सहायक हो।

मूलसघ सरस्वती गच्छमें भट्टारक मल्लिभूषण हुए। वे रत्नत्रयसे युक्त थे। उनके प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी नेमिदत्तने यह ज्ञानदानकी कथा लिखी है। यह निरन्तर आप लोगोंके संसारको शान्ति करें। अर्थात् जन्म, जरा, मरण मिटाकर अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्त कराये।

-----

११२. अभयदानकी कथा

मोक्षकी प्राप्तिके लिये भगवानके चरणोंको नमस्कार कर अभय-दान द्वारा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा जैनग्रन्थोंके अनुसार यहाँ सक्षेपमे लिखी जाती है ।

भव्यजनो द्वारा भक्तिसे पूजी जानेवाली सरस्वती श्रुतज्ञान रूपी महासमुद्रके पार पहुँचानेके लिये नावकी तरह मेरी सहायता करें ।

परब्रह्म स्वरूप आत्मा का निरन्तर ध्यान करनेवाले उन योगियोको शान्तिके लिए मैं सदा याद करता हूँ, जिनकी केवल भक्तिसे भव्यजन सन्मार्ग लाभ करते हैं, सुखी होते हैं ।

इस प्रकार मगलमय जिन भगवान, जिनवाणी और जैन योगियोंका स्मरण कर मैं वसतिदान—अभयदानकी कथा लिखता हूँ ।

धर्म-प्रचार, धर्मोपदेश, धर्म-क्रिया आदि द्वारा पवित्रता लाभ किये हुए इस भारतवर्षमे मालवा बहुत कालसे प्रसिद्ध और सुन्दर देश है । अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पदा और ऐश्वर्यसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों सारे संसारकी लक्ष्मी यहीं आकर इकट्ठी हो गई है । वह सुख देनेवाले बगीचों, प्रकृति-सुन्दर पर्वतो और सरोवरीकी शोभासे स्वर्गके देवोंको भी अत्यन्त प्यारा है । वे यहाँ आकर मनचाहा सुख लाभ करते हैं । यहाँके स्त्री-पुरुष सुन्दरतामे अपनी तुलनामे किसीको न देखते थे । देशके सब लोग खूब सुखी थे, भाग्यशाली थे और पुण्यवान् थे । मालवेके सब शहरोंमें, पर्वतोंमें ओर सब वनोंमें बड़े-बड़े ऊँचे विशाल और भव्य जिनमन्दिर बने हुए थे । उनके ऊँचे शिखरोंमे लगे हुए सोनेके चमकते कलश बड़े सुन्दर जान पड़ते थे । रातमे तो उनकी शोभा बड़ी ही विलक्षणता धारण करती थी । वे ऐसे जान पड़ते थे मानो स्वर्गोके महलो मे दीये जगमगा रहे हों । हवाके झकोरोंसे इधर-उधर फड़क रही उन मन्दिरो परकी ध्वजाएँ ऐसी देख पड़ती थीं मानो वे पथिकोको हाथोंके इशारेसे स्वर्ग जानेका रास्ता बतला रही हैं । उन पवित्र जिन मन्दिरोके दर्शन मात्रसे पापोका नाश होता था तब उनके सम्बन्धमें और अधिक क्या लिखे । जिनमे बैठे हुए रत्नत्रय धारी साधु-तपस्वियोंको उपदेश करते हुए

देखकर यह कल्पना होती थी कि मानो वे मोक्षके रास्ते हों।

मालवेमें जिन भगवानके पवित्र और सुख देनेवाले धर्मका अच्छा प्रचार है। सम्यक्त्वकी जगह-जगह चर्चा है। अनेक सम्यक्त्वरत्नके धारण करनेवाले भव्यजनोसे वह युक्त हैं। दान-व्रत, पूजा-प्रभावना आदि वहाँ खूब हुआ करते हैं। वहाँके भव्यजनोंका निर्भ्रान्त विश्वास है कि अठारह दोष रहित जिन भगवान ही सच्चे देव हैं। वे ही केवलज्ञानी-सर्वज्ञ हैं। उनकी स्वर्गके देव तक सेवा-पूजा करते हैं। सच्च धर्म दसलक्षण मय है और उनके प्रकटकर्ता जिनदेव हैं। गुरु परिग्रह रहित और वीतरागी हैं। तत्व वही सच्चा है जिसे जिन भगवानने उपदेश किया है। वहाँके भव्यजन अपने नित्य-नेमिदत्तक कर्मोंमें सदा प्रयत्नवान रहते हैं। वे भगवान्की स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाली पूजा सदा करते हैं, पात्रोको भक्तिसे पवित्र दान देते हैं, व्रत, उपवास, शील, संयमको पालते है। इस प्रकार मालवा उस समय धर्मका प्रधान बन रहा था, जिस समयकी यह कथा है।

मालवेमें तब एक घटगाँव नामका सम्पत्ति शाली शहर था। इस शहरमें देविल नामका एक धनी कुम्हार और एक धर्मिल नामका नाई रहता था। इन दोनेंने मिलकर बाहरके आनेवाले यात्रियोंको ठहरनेके लिए एक धर्मशाला बनवा दी। एक दिन देविलने एक मुनिको लाकर इस धर्मशाला मे ठहरा दिया। धर्मिलको जब मालूम हुआ तो उसने मुनिको हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दिया और वहाँ संन्यासीको लाकर ठहरा दिया। सच है, जो दुष्ट है, दुराचारी है, पापी है, उन्हें साधु-सन्त अच्छे नहीं लगते, जैसे उल्लूको सूर्य। धर्मिलने मुनिको निकाल दिया, उनका अपमान किया, पर मुनिने इसका कुछ बुरा न माना। वे जैसे शान्त थे वैसे ही रहे। धर्मशालासे निकल कर वे एक वृक्षके नीचे आकर ठहर गये। रात इन्होंने वहीं पूरी की। डास, मच्छर वगैरहका इन्हे बहुत कष्ट सहना पड़ा। इन्होने सब सहा और बडी शान्तिसे सहा। सच है, जिनका शरीरसे रत्तीभर मोह नहीं उनके लिए तो कष्ट कोई चीज ही नहीं। सबेरे जब देविल मुनिके दर्शन करनेको आया और उनहें धर्मशालामें न देखकर एक वृक्षके नीचे बैठे देखा तो उसे धर्मिलकी इस दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया। धर्मिलका सामना होनेपर उसनेउसे फटकारा।

देविलकी फटकार धर्मिल न सह सका और बातें बहुत बढ़ गई । यहाँतक कि परस्परमें मारामारी हो गई । दोनों ही परस्परमें लड़कर मर मिटे । क्रूर भावोंसे मरकर ये दोनों क्रमसे सूअर और व्याघ्र हुए । देविलका जीव सूअर विंध्य पर्वतकी गुफामें रहता था । एक दिन कर्मयोगसे गुप्त और त्रिगुप्ति नामके दो मुनिराज अपने विहारसे पृथिवीको पवित्र करते इसी गुफामें आकर ठहरे । उन्हें देखकर इस सूअर को जातिस्मरण हो गया । इसने उपदेश करते हुए मुनिराज द्वारा धर्मका उपदेश सुन कुछ व्रत ग्रहण किये । व्रत ग्रहण कर यह बहुत सन्तुष्ट हुआ ।

इसी समय मनुष्योंकी गन्ध पाकर धर्मिलका जीव व्याघ्र मुनियोंको खानेके लिए झपटा हुआ आया । सूअर उसे दूर हीसे देखकर गुफाके द्वार पर आकर डट गया । इसलिए कि वह भीतर बैठे हुए मुनियोंकी रक्षा कर सके । व्याघ्रने गुफाके भीतर घुसनेके लिए सूअर पर बड़ा जोरका आक्रमण किया । सूअर पहलेसे ही तैयार बैठा था । दोनोंके भावोंमें बड़ा अन्तर था । एकके भाव थे मुनिरक्षा करनेके और दूसरेके उनको खा जाने के । इसलिए देविलका जीव सूअर तो मुनिरक्षा रूप पवित्र भावोंसे मर कर सौधर्म स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंका धारी देव हुआ । जिसके शरीरकी चमकती हुई कान्ति गाढ़से गाढ़े अन्धकारको नाश करनेवाली है, जिसकी रूप-सुन्दरता लोगोंके मनको देखने मात्रसे मोह लेती है, जो स्वर्गीय दिव्य वस्त्रों और मुकुट, कुण्डल, हार आदि बहुमूल्य भूषणोंको पहरता है, अपनी स्वभाव-सुन्दरतासे जो कल्पवृक्षोंको नीचा दिखाता है, जो अणिमादि ऋद्धि-सिद्धियोंका धारक है, अवधिज्ञानी है, पुण्यके उदयसे जिसे सब दिव्य सुख प्राप्त हैं, अनेक सुन्दर-सुन्दर देव-कन्याएँ और देवगण जिसकी सेवामें सदा उपस्थित रहते हैं, जो महा वैभवशाली हैं, महा सुखी हैं स्वर्गोंके देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं ऐसे जिन भगवानकी, जिन प्रतिमाओंकी और कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिन मन्दिरोंकी जो सदा भक्ति और प्रेमसे पूजा करता है, दुर्गतिके दुःखोंको नाश करनेवाले तीर्थोंकी यात्रा करता है, महामुनियोंकी भक्ति करता है और धर्मात्माओंके साथ वात्सल्यभाव रखता है । ऐसी उसकी सुखमय स्थिति है । जिस प्रकार यह सूअर धर्मके प्रभावसे उक्त प्रकार सुखका भोगनेवाला हुआ उसी प्रकार जो

और भव्यजन इस पवित्र धर्मका पालन करेगे वे भी उसके प्रभावसे सब सुख-सम्पत्ति लाभ करेगे । समझिए, ससारमें जो-जो धनप्राप्त होती है, स्त्री, पुत्र, सुख, ऐश्वर्य आदि अच्छी-अच्छी आनन्द भोगकी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं, उनका कारण एक मात्र धर्म है । इसलिए सुखकी चाह करनेवाले भव्यजनोंका जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, सयम आदि धर्मका निरन्तर पवित्र भावोंसे सेवन करना चाहिए ।

देविल तो पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग गया और धर्मिलने मुनियोंको खा जाना चाहा था, इसलिए वह पापके फलसे मरकर नरक गया । इस प्रकार पुण्य और पापका फल जानकार भव्यजनोको उचित है कि वे पुण्यके कारण पवित्र जैनधर्ममे अपनी बुद्धि दृढ़ करे ।

इस प्रकार परम सुख-मोक्षके कारण, पापोका नाश करनेवाले और पात्र-भेदसे विशेष योग्य इस पवित्र अभयदानकी कथा अन्य जैन शास्त्रोके अनुसार सक्षेपमें यहाँ लिखी गई । यह सत्यकथा संसारमे प्रसिद्ध होकर सबका हित करे ।

★ समाजवाद का वास्तविक अर्थ है । सबके साथ वात्सल्य, प्रेम-मय व्यवहार करना, सबका हित देखना, अनुभव करना हिलमिल कर चलना ।

११३. करकण्डु राजाकी कथा

संसार द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर करकण्डु राजाका सुखमय पवित्र चरित लिखा जाता है ।

जिसने पहले केवल एक कमलसे जिन भगवानकी पूजा कर जो महान् फल प्राप्त किया, उसका चरित जैसा और ग्रन्थोंमें पुराने ऋषियोंने लिखा है उसे देखकर या उनकी कृपासे उसका थोड़ेमें मैं सार लिखता हूँ ।

नीला और महानील तेरपुर राजा थे । तेरपुर कुन्तल देशकी राजधानी थी । यहाँ वसुमित्र नामका एक जिनभक्त सेठ रहता था । सेठानी वसुमती उसकी स्त्री थी । धर्मसे उसे वड़ा प्रेम था । इन सेठ-सेठानीके यहॉ धनदत्त नामका एक ग्वाल नौकर था । वह एक दिन गोंएँ चारानेको जंगलमें गया हुआ था । एक तालावमें इसने कोई हजार पंखुड़ियों वाला एक वहुत सुन्दर कमल देखा । उस पर यह मुग्ध हो गया । तव तालावमें कूद कर इसने उस कमलको तोड़ लिया । उस समय नागकुमारीने इससे कहा—धनदत्त, तूने मेरा कमल तोड़ा तो है, पर इतना तू ध्यानमें रखना कि यह उस महापुरुषको भेंट किया जाय, जो संसारमें सवसे श्रेष्ठ हो । नागकुमारीका कहा मानकर धनदत्त कमल लिये अपने सेठके पास गया और उनसे सब हाल इसने कहा । वसुमित्रने तब राजाके पास जाकर उनसे यह सब हाल कहा । सवसे श्रेष्ठ कौन है और यह कमल किसकी भेंट चढ़या जाय, यह किसीकी समझमें न आया । तब सब विचार कर चले कि इसका हाल मुनिराजसे कहें । संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, इस वातका पता वे अपनेको देंगे । यह निश्चय कर राजा, सेठ, ग्वाल तथा और भी वहुतसे लोक सहस्त्रकूट नामके जिन मन्दिरोंमें गये । वहॉ सुगुप्ति मुनिराज ठहरे हुए थे । उनसे राजाने पूछा—हे करुणाके समुद्र,, हे पवित्र धर्मके रहस्यको समझनेवाले, कृपा वतलाइए कि संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, जिन्हें यह पवित्र कमल भेंट किया जाय । उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्, सारे ससांरके स्वामी, राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित जिन भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं, क्योंकि संसार उन्हींकी पूजा करता है । सुनकर सवको वड़ा सन्तोष हुआ जिसे वे चाहते थे वह अनायास मिल गया । उसी समय वे सब भगवानके सामने

आये । धनदत्त ग्वालने तब भगवान्‌को नमस्कार कर कहा—हे संसारमें सबसे श्रेष्ठ गिने जाने वाले, आपको यह कमल में आपको भेंट करता हूँ । इसे आप स्वीकार कर मेरी आशाको पूरी करें । यह कहकर वह ग्वाल उस कमलको भगवानके पॉवों पर चढ़ाकर चला गया । इसमे कोई सन्देह नहीं कि पवित्र कर्म मूर्ख लोगोंको भी सुख देनेवाला होता है । इस कथासे सम्बन्ध रखनेवाली एक दूसरी कथा यहाॅ लिखी जाती है उसे सुनिए—

श्रावास्तीके रहनेवाले सागरदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता बड़ी पापिनी थी । उसका चाल-चलन अच्छा न था । एक सोमशर्मा ब्राह्मणके साथ उसका अनुचित बरताव था । सच है, कोई-कोई स्त्रियॉ तो बड़ी दुष्ट ओर कुल-कुलंकिनी हुआ करती है । उन्हें अपने कुलकी मान-मर्यादाकी कुछ लाज-शरम नहीं रहती । अपने उज्जवल कुलरूपी मन्दिरको मलिन करनेके लिए वे काले धुएॅके समान होती है । बेचारा सेठ सरल था और धर्मात्मा था । इसलिए अपनी स्त्री का ऐसा दुराचार देखकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ । उसने फिर ससारका भ्रमण मिटानेवाली जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । यह बहुत ही कंटाल गया था । सागरदत्त तपस्या कर स्वर्ग गया । स्वर्गायु पूरी कर वह अंगदेशकी राजधानी चम्पा नगरी में वसुपाल राजाकी रानी वसुमती दन्तिवाहन नामका राजकुमार हुआ । वसुपाल सुखसे राज करते रहे ।

इधर वह सोमशर्मा मर कर पापके फलसे पहले तो बहुत समय तक दुर्गतियों मे घूमा किया । एकसे एक दुःसह कष्ट उसे सहना पड़ा । अन्तमें वह कलिंग देशके जंगलमे नर्मदातिलक नामका हाथी हुआ । और ठीक ही है पापसे जीवोंको दुर्गतियोके दुःख भोगने ही पड़ते हैं । कर्मसे इस हाथी को किसीने पकड़ लाकर वसुपालको भेट किया ।

उधर इस हाथीके पूर्वभवके जीव सोमशर्माकी स्त्री नागदत्ताने भी पापके उदयसे दुर्गतियोंमें अनेक कष्ट सहे । अन्तमें वह तामिप्तनगरमें भी वसुदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता हुई । उस समय इसके धनवती और धनश्री नामकी दो लड़कियाॅ हुई । ये दोनो ही बहिनें बडी सुन्दर थीं । स्वर्ग कुमारियाॅ इनका रूप देखकर मन ही मन बड़ी कुढा करती थीं । इनमें धनवतीका ब्याह नागानन्द पुरके रहनेवाले वनपाल नामके सेठ पुत्रके साथ हुआ और छोटी

बहिन धनश्री कोशाम्बीके वसुमित्रकी स्त्री हुई । वसुमित्र जैनी था । इसलिए उसके सम्बनधसे धनश्रीको कई बार जैनधर्मके उपदेश सुननेका मौका मिला । वह उपदेश उसे बहुत रुचि कर हुआ और फिर वह भी श्राविका हो गई । लड़कीके प्रेमसे नागदत्ता एक बार धनश्रीके यहाँ गई । धनश्रीने अपनी माँ का खूब आदर-सत्कार किया और उसे कई दिनों तक अच्छी तरह अपने यहीं रक्खा । नागदत्ता धनश्रीके यहाँ कई दिनों तक रही, पर वह न तो कभी मन्दिर गई ओर न कभी उसने धर्मकी कुछ चर्चा की । धनश्री अपनी माँको धर्मसे विमुख देखकर एक दिन उसे मुनिराजके पास ले गई और समझा कर उसे मुनिराज द्वारा पाँच अणुव्रत दिलवा दिये । एक बार इसी तरह नागदत्ताको अपनी वड़ी लड़की धनवतीके यहाँ जाना पड़ा । धनवती बुद्धधर्मको मानती थी । सो उसने इसे बुद्धधर्मकी अनुयायिनी बना लिया । इस तरह नागदत्ताने कोई तीन बार जैनधर्मको छोडा । अन्तमे उसने फिर जैनधर्म ग्रहण किया ओर अबकीवार वह उस पर रही भी बहुत दृढ़ । जन्म भर फिर उसने जैनधर्मको निर्बाहा । आयुके अन्तमे मरकर वह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी रानी वसुमतीके लड़की हुई । पर भाग्य से जिस दिन वह पैदा हुई, वह दिन बहुत खराब था । इसलिए राजाने उसे एक सन्दूक में रखकर और उसके नामकीएक अँगूठी उसकी उँगलीमें पहराकर उस सन्दूक को यमुना में छुड़वा दिया । सन्दूक बहती हुई कुसुमपुरके एक पद्‌महृद नामके तालाबमे पहुँच गई । इस तालाबमे गंगा-यमुना के प्रवाहका एक छोटा-सा, नाला बहकर आता था । उसी नालेमे पड़कर यह सन्दुक तालाबमे आ गई । इसे किसी कुसुमदत्त नामके मालीने देखा । वह निकाल कर उसे अपने घर लिवा लाया । संदूकको खोलकर उसने देखा तोउसमें से यह लडकी निकली । कुमुमदत्तके कोई संतान न थी । इसलिये वह इसे पाकर बहुत खुश हुआ । अपनी स्त्रीको बुलाकर उसने इसे उसकी गोदमें रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे अपनेको यह लड़की अनायास मिल गई । इससे अपनेको बड़ी खुशी मनानी चाहिये । मुझे विश्वास है कि तुम भी इस अमूल्य संधिसे बहुत प्रसन्न होगी । प्रिये, यह मुझे पद्‌महृदमे मिली है । हम इसका नाम भी पद्‌मावती ही क्यो न रक्खे ? क्यो, नाम तो बड़ा ही सुन्दर है । मालिन जिन्दगी भरसे अपनी खाली गोदको आज एकाएक भरी पा बहुत

आनन्दित हुई। वह आनन्द इतना था कि उसके हृदयमे भी न समा सका। यही कारण था कि उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उसने बड़े प्रेमसे इसे छाती से लगाया।

पद्‌मावती इस समय कोई तेरह चौदह वर्षकी है। उसके सुकोमल, सुगन्धित और सुन्दर यौवनरूपी फूलकी कलियाँ कुछ-कुछ खिलने लगी हैं। ब्रह्माने उसके शरीरको लावण्य सुधा-धारासे सींचना शुरू कर दिया है। वह अब थोड़े ही दिनोंमें स्वर्गकी देव कुमारियोसे भी अधिक सुन्दरता लाभ कर ब्रह्माको अपनी सृष्टिका अभिमानी बनावेगी। लोग स्वर्गीय सुन्दरताकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। ब्रह्माको उनकी इस थोथी तारीफसे बड़ी डाह है। इसलिये कि इससे उसकी रचना सुन्दरतामे कमी आती है और उस कमीसे इसे नीचा देखना पड़ता है। ब्रह्माने सर्व साधारणके इस भ्रमको मिटानेके लिए कि जो कुछ सुन्दरता है वह स्वर्ग ही मे है, मानो पद्‌मावतीको उत्पन्न किया है। इसके सिवा इन लोगोकी झूठी प्रशंसासे जो अमरांगनाएँ अभिमानके ऊँचे पर्वत पर चढ़कर सारे ससारको अपनी सुन्दरता की तुलनामें ना-कुछ चीज समझ बैठी हैं, उनके इस गर्वको चूर-चूर करना है। इन्हीं सब अभिमान, ईर्षा, मत्सर आदिके वश हो ब्रह्मा पद्‌मावतीको त्रिभुवन-सुन्दर बनानेमें विशेष यत्नशील है।। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पद्‌मावती कुछ दिनो बाद तो ब्रह्माकी सब तरह आशा पूरी करेगी ही। पर इस समय भी इसका रूप-सौंदर्य इतना मनोमधुर है कि उसे देखते ही रहनेकी इच्छा होती है। प्रयत्न करने पर भी आँखे उस ओरसे हटना पसन्द नहीं करती है। अस्तु।

पद्‌मावतीकी इस अनिंद्य सुन्दरताका समाचार किसीने चम्पाके राजा दन्तिवाहनको कह दिया। दन्तिवाहन इसकी सुन्दरता की तारीफ सुनकर कुसुमपुर आये। पद्‌मावतीको—एक मालीकी लड़कीको इतनी सुन्दरी, इतनी तेजस्विनी देखकर उसके विषयमें उन्हें कुछ सन्देह हुआ। उन्होने तब उस मालीको बुलाकर पूछा—सच कह यह लडकी तेरी ही है क्या ? और यदि तेरी नहीं तो इसे कहाँसे और कैसे लाया ? माली डर गया। उसने राजाके वालोका कुछ उत्तर देते न बना। सिर्फ उसने इतना ही किया कि जिस सन्दूक मे पद्‌मावती निकली थी, उसे राजाके सामने ला रख दिया और कह दिया कि

महाराज, मुझे अधिक तो कुछ मालूम नहीं, पर यह लड़की इस सन्दूकमेंसे निकली थी। मेरे कोई लड़काबाला न होनेसे इसे मैंने अपने यहाँ रख लिया। राजाने सन्दूक खोलकर देखा तो उसमें एक अगूँठी निकली। उस पर कुछ इबारत खुदी हुई थी। उसे पढ़कर राजाको पद्मावतीके सम्बन्धमें कोई सन्देह करने की जगह न रह गई। जैसे वे राजपुत्र हैं वैसे ही पद्मावती भी एक राजघरानेकी राजकन्या है। दन्तिवाहन तब उसके साथ ब्याह कर उसे चम्पामें ले आये और सुखमें अपना समय बिताने लगे।

दन्तिवाहनके पिता वसुपालने कुछ वर्षोंतक और राज्य किया। एक दिन उन्हें अपने सिर पर यमदूत सफेद केश देख पड़ा। उसे देखकर इन्हें संसार, शरीर, विषय-भोगादिसे बड़ा वैराग्य हुआ। वे अपने राज्यका सब भार दन्तिवसाहनको सौंप कर जिनमन्दिर गये। वहाँ उन्होंने भगवानका अभिषेक किया, पूजन की, दान किया, गरीबों को सहायता दी। उस समय उन्हें जो उचित कार्य जान पड़ा उसे उन्होंने खुले हाथों किया बाद वे वहीं एक मुनिराज द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। उन्होंने योगदशामें खूब तपस्या की। अन्त में समाधिसे शरीर छोड़कर वे स्वर्ग गये।

दन्तिवाहन अब राजा हुए प्रजाका शासन ये भी अपने पिताकी भाँति प्रेमके साथ करते थे। धर्म पर इनकी भी पूरी श्रद्धा थी। पद्मावती सी त्रिलोक-सुन्दरीको पा ये अपनेको कृतार्थ मानते थे। दोनों दम्पत्ति सदा बड़े हँस-मुख और प्रसन्न रहते थे। सुखकी इन्हें चाह न थी, पर सुख ही इनका गुलाम बन रहा था।

एक दिन सती पद्मावतीने स्वप्न सिंह हाथी और सूरज को देखा। सबेरे उठकर उसने अपने प्राणनाथसे इस स्वप्न का हाल कहा। दन्तिवाहन ने उसके फलके सम्बन्धमें कहा—प्रिये, स्वप्न तुमने बड़ा ही सुन्दर देखा हैं। तुम्हें एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। सिंहका देखना जनाता है, कि वह बड़ा ही प्रतापी होगा और सूरज यह कहता है कि वह प्रजारूपी कमल-वनका प्रफुल्लित करनेवाला होगा,उसके शासनसे प्रजा बड़ी सन्तुष्ट रहेगी। अपने स्वामी द्वारा स्वप्न फल सुनकर पद्मावतीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। और सच है, पुत्र प्राप्ति किसे प्रसन्नता नहीं होती।

पाठकोंको तेरपुरके रहनेवाले धनदत्त ग्वालाका स्मरण होगा, जिसने कि एक हजार पॅखुरियोंका कमल भगवान्को चढ़ाकर बड़ा पुण्यबन्ध किया था। उसीकी कथा फिर लिखी जाती है। धनदत्तको तैरनेका बड़ा शौक था। वह रोज-रोज जाकर एक तालाबमे तैरा करता था। एक दिन वह तैरनेको गया हुआ था। कुछ होनहार ही ऐसा था जो वह तैरता-तैरता एक बार घनी काईमे बिंध गया। बहुत यत्न किया पर उससे निकलते न बना। आखिर बेचारा मर ही गया। मरकर वह जिनपूजाके पुण्यसे इसी सती पद्मावतीके गर्भमें आया।

उधर वसुमित्र सेठको जब इसके मरनेका हाल ज्ञान हुआ तो उसे बड़ा दुःख हुआ। सेठ उसी समय तालाब पर आया और धनदत्तकी लाशको निकलवा कर उसका अग्नि-संस्कार किया। संसारको यह क्षणभगुंर दशा देखकर वसुमित्रको बड़ा वैराग्य हुआ। वह सुगुप्ति मुनिराज द्वारा योगव्रत लेकर मुनि हो गया। अन्तमे वह तपस्या कर पुण्यके उदयसे स्वर्ग गया।

पद्मावतीके गर्भमे धनदत्तके आने पर उसे दोहला उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि मेघ बरसने लगे और बिजलियॉ चमकने लगे। ऐसे समय पुरुष-वेषमें हाथमें अंकुश लिये मैं स्वयं हाथी पर सवार होऊँ और मेरे साथ स्वामी भी बैठें। फिर हम दोनों घूमनेके लिये शहर बाहर निकले। पद्मावतीने अपनी यह इच्छा दन्तिवाहनसे जाहिर की। दन्तिवाहनने उसकी इच्छाके अनुसार अपने मित्र वायुवेग विद्याधर द्वारा मायामयी कृत्रिम मेघकी काली-काली घटाओं द्वारा आकाश आच्छादित करवाया। कृत्रिम बिजलियॉ भी उन मेघोंमें चमकने लगी। राजा-रानी इस समय उस नर्मदातिलक नामके हाथी पर, जो सोमशर्माका जीव था और जिसे किसीने वसुवानको भेंट किया था, चढ़कर बड़े ठाटबाटसे नौकर-चाकरको साथ लिये शहर बाहर हुए। पद्मावतीका यह दोहला सचमुच ही बड़ा ही आश्चर्यजनक था। जो हो, जब ये शहर बाहर होकर थोड़ी ही दूर गये होगे कि कर्मयोगसे हाथी उन्मत्त हो गया। अंकुश वगैरहकी वह कुछ परवाह न कर आगे चलनेवाले लोगोकी भीड़को चीरता हुआ भाग निकला। रास्तेमें एक घने वृक्षोकी वनीमें होकर वह भागा जा रहा था। सो दन्तिवाहनको उस समय कुछ ऐसी बुद्धि सूझ गई, कि जिससे वे एक वृक्षकी डालीको पकड कर लटक गये। हाथी आगे भागा ही

चला गया । सच है, पुण्य कष्ट समयमें जीवको बचा लेता है । बेचारे दन्तिवाहन उदास मुँह और रोते-रोते अपनी राजाधानीमें आये । उन्हें इस बातका अत्यन्त दुःख हुआ कि गर्भिणी प्रियाकी न जाने क्या दशा हुई होगी । दन्तिवाहनकी यह दशा देखकर समझदार लोगोंने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्पुरुषोंके वचन चन्दनसे कहीं बढ़कर शीतल होते है। और उनके द्वारा दुखियोंके हृदयका दुःख सन्ताप बहुत जल्दी ठण्डा पड़ जाता है ।

उधर हाथी पद्मावतीको लिये भागा ही चला गया । अनेक जंगलों और गाँवोंको लाँघकर वह एक तालाब पर पहुँचा । वह बहुत थक गया था । इसलिये थकावट मिटानेको वह सीधा उस तालाबमें घुस गया । पद्मावती सहित तालाबमें उसे घुसता देख जलदेवीने झटसे पद्मावतीको हाथी परसे उतार कर तालाबके किनारे पर रख दिया । आफतकी मारी बेचारी पद्मावती किनारे पर बैठी-बैठी रोने लगी । वह क्या करे, कहाँ जाय, इस विषयमें उसका चित्त बिलकुल धीर न धरता था । सिवा रोनेके उसे कुछ न सूझता था । इसी समय एक माली इस ओर होकर अपने घर जा रहा था । उसने इसे रोते हुए देखा । इसके वेष-भूषा ओर चेहरेके रंग-ढंगसे इसे किसी उच्च घरानेकी समझ उसे इस पर बड़ी दया आई । उसने इसके पास आकर कहा—बहिन, जान पड़ता है तुम पर कोई भारी दुःख आकर पड़ा है । यदि तुम कोई हर्ज न समझो तो मेरे घर चलो । तुम्हें वहाँ कोई कष्ट न होगा । मेरा घर यहाँसे थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुरमें है और मैं जातिका माली हूँ । पद्मावती उसे दयावान् देख उसके साथ होली । इसके सिवा उसके लिये दूसरी गति भी न थी । उस मालीने पद्मावतीको अपने घर ले जाकर बड़े आदर-सत्कारके साथ रक्खा । वह उसे अपनी बहिनके बराबर समझता था । इसका स्वभाव बहुत अच्छा था । ठीक है, कोई-कोई साधारण पुरुष भी बड़े सज्जन होते हैं । इसे सरल और सज्जन होने पर भी इसकी स्त्री बड़ी कर्कशा थी । उसे दूसरे आदमीका अपने घर रहना अच्छा ही न लगता था । कोई अपने घरमें पाहुना आया कि उस पर सदा मुँह चढ़ाये रहना, उससे बोलना-चालना इसका यही बर्ताव रहा । एक दिन भाग्यसे वह माली किसी कामके लिये दूसरे गाँव चला

गया । पीछेसे इसकी स्त्रीकी बन बड़ी । उसने पद्मावतीको गाली-गलौज देकर और बुरा भला कह घरसे निकाल दिया । वह एक घोर मसानमे पहुँची । प्रसूतिके दिन आ लगे थे । उस पर चिन्ता और दु खके मारे इसे चैन नहीं था । इसने यहीं पर एक पुण्यवान पुत्र जना । उसके हाथ, पॉव, ललाट वगैरहमे ऐसे सब चिन्ह थे, जो बड़ेसे बड़े पुरुषके होने चाहिये । जो हो, इस समय तो उसकी दशा एक भिखारीसे भी बढकर थी । पर भाग्य कहीं छुपा नहीं रहता । पुण्यवान् महात्मा पुरुष कहीं हो, कैसी अवस्थामें हो, पुण्य वहीं पहुँच कर उसकी सेवा करता है । पर होना चाहिये पासमे पुण्य । पुण्य बिना संसारमे जन्म निस्सार है । जिस समय पद्मावतीने पुत्र जना उसी समय पुत्रके पुण्यका भेजा हुआ एक मनुष्य चाण्डालके वेषमे मसानमे पद्मावतीके पास आया और उसे विनयसे सिर झुकाकर बोला—मॉ, अब चिन्ता न करो । तुम्हारे लड़केका दास आ गया है । वह इसकी सब तरह जी-जानसे रक्षा करेगा । किसी तरहका कोई कष्ट इसे न होने देगा । जहॉ इस बच्चेका पसीना गिरेगा वहॉ यह अपना खून गिरावेगा । आप मेरी मालकिन हैं । सब भार मुझ पर छोड आप निश्चिन्त होइये । पद्मावतीने ऐसे कष्टके समय पुत्रकी रक्षा करनेवालेको पाकर अपने भाग्यको सराहा, पर फिर भी अपना सव सन्देह दूर हो, इसलिये उससे कहा—भाई, तुमने ऐसे निराधार समयमे आकर मेरा जो उपकार करना विचारा है, तुम्हारे इस ऋणसे मैं कभी मुक्त नहीं हो सकती । मुझे तुमसे दयावानोंका अत्यन्त उपकार मानना चाहिये । अस्तु, इस समय सिवा इसके मैं और क्या अधिक कह सकती हूँ कि जैसा तुमने मेरा भला किया, वैसा भगवान् तुम्हारा भी भला करे । भाई, मेरी इच्छा तुम्हारा विशेष परिचय पाने की है । इसलिये कि तुम्हारा पहरावा और तुम्हारे चेहरे परकी तेजस्विता देखकर मुझे बड़ा ही सन्देह हो रहा है । अतएव यदि तुम मुझसे अपना परिचय देनेमे कोई हानि न समझो तो कृपा कर कहो । वह आगत पुरुष पद्मावतीसे बोला—मॉ, मुझ आभागेकी कथा तुम सुनोगी । अच्छा तो सुना, मैं सुनाता हूँ । विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे विद्युत्प्रभ नामका एक शहर है । उसके राजाका नाम भी विद्युत्प्रभ है । विद्युत्प्रभकी रानीका नाम विद्युल्लेखा है । ये दोनो राजा-रानी ही मुझ अभागेके माता-पिता हैं । मेरा नाम वालदेव

है । एक दिन मैं अपनी प्रिया कनकमालाके साथ विमानमें बैठा हुआ दक्षिणकी ओर जा रहा था ।

रास्तेमें मुझे रामगिरी पर्वत पड़ा । उस पर मेरा विमान अटक गया । मैंने नीचे नजर डालकर देखा तो मुझे एक मुनि देख पड़े । उन पर मुझे बड़ा गुस्सा आया । मैंने तब कुछ आगा-पीछा न सोचकर उन मुनिको बहुत कष्ट दिया, उन पर घोर उपसर्ग किया । उनके तपके प्रभावसे जिनभक्त पद्मावती देवीका आसन हिला और वह उसी समय वहाँ आई । उसने मुनिका उपसर्ग दूर किया । सच है, साधुओं पर किये उपद्रवको सम्यग्दृष्टि कभी नहीं सह सकते । माँ, उस समय देवीने गुस्सा होकर मेरी सब विद्याएँ नष्ट कर दीं । मेरा सब अभिमान चूर हुआ । मैं एक मद रहित हाथीकी तरह निःसत्व,-तेज रहित हो गया । मैं अपनी इस दशा पर बहुत पछताया । मैं रोकर देवीसे बोला—प्यारी माँ, मैं आपका अज्ञानी बालक हूँ । मैंने जो कुछ यह बुरा काम किया वह सब मूर्खता और अज्ञानसे न समझ कर ही किया है । आप मुझे इसके लिए क्षमा करें और मेरी पीछी विद्याएँ मुझे लौटा दें । इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी यह दीनता भरी पुकार व्यर्थ न गई देवीने शान्त होकर मुझे क्षमा किया और वह बोली—"हस्तिनापुरके मसानमें एक विपत्तिकी मारी स्त्रीके गर्भसे एक पुण्यवान् और तेजस्वी पुत्ररत्न जन्म लेगा । उस समय पहुँचकर तू उसकी सावधानीसे रक्षा करना और अपने घर लाकर पालना-पोसना । उसके राज्य समय तुझे सब विद्याएँ सिद्ध होंगी । " माँ उसकी आज्ञासे मैं तभीसे यहाँ इस वेषमें रहता हूँ । इसलिए कि मुझे कोई पहिचान न सके । माँ, यही मुझ अभागेकी कथा है । आज मैं आपकी दयासे कृतार्थ हुआ । पद्मावती विद्याधरका हाल सुनकर दुःखी जरूर हुई, पर उसे अपने पुत्रका रक्षक मिल गया, इससे कुछ सन्तोष भी हुआ । उसने तब अपने प्रिय बच्चेको विद्याधरके हाथमें रखकर कहा—भाई, इसकी सावधानीसे रक्षा करना । अब इसके तुम ही सब प्रकार कर्त्ताधर्त्ता हो । मुझे विश्वास है कि तुम इसे अपना ही प्यारा बच्चा समझोगे । उसने फिर पुत्रके प्रकाशमान चेहरे पर प्रेमभरी दृष्टि डालकर पुत्र वियोगसे भर आये हृदयसे कहा—मेरे लाल, तुम पुण्यवान् होकर भी उस अभागिनी माँके पुत्र हुए हो, जो जन्मते ही तुम्हें छोड़कर बिछुड़ना

चाहती है । लाल, मैं तो अभागिनी थी ही, पर तुम भी ऐसे अभागे हुए जो अपनी मॉके प्रेममय हृदयका कुछ भी पता न पा सके और न पाओगे ही । मुझे इस बातका बड़ा खेद रहेगा कि जिस पुत्रने अपनी प्रेम-प्रतिमा मॉके पवित्र हृदय द्वारा प्रेमका पाठ न सीखा वह दूसरोके साथ किस तरह प्रेम करेगा ? कैसे दूसरोंके साथ प्रेमका बरताव कर उनका प्रेमपात्र बनेगा । जो हो, तब भी मुझे इस बातकी खुशी है कि तुम एक दूसरी मॉकेपास जाते हो, और वह भी आखिर है तो मॉ ही । जाओ लाल जाओ, सुखसे रहना, परमात्मा तुम्हारा मंगल करे । इस प्रकार प्रेममय पवित्र आशिष देकर पद्मावती कडा हृदय कर चल दी । बालदेवने उस सुन्दर और तेजपुंज बच्चेको अपने घर ले आकर अपनी प्रिया कनकमालाकी गोदमे रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे मिले इस निधिको लो । कनकमाला उस बाल-चन्द्रमासे अपनी गोदको भरी देखकर फूली न समाई । वह उसे जितना ही देखने लगी उसका प्रेम होना सभर न था, उतना इस नये बालक पर उसका प्रेम हो गया, सचमुच यह आश्चर्य है । अथवा नई वस्तु स्वभाव हीसे प्रिय होती है और फिर यदि वह अपनी हो जाय तब तो उस पर होनेवाले प्रेमके सम्बन्धमे कहना ही क्या । और वह प्रेम, कि जिसकी प्राप्तिके लिए आत्मा सदा तडफा ही करता है और वह पुत्र जैसी परम प्रिय वस्तु ! तब पढ़नेवाले कनकमालाके प्रेममय हृदयका एक बार अवगाहन करके देखें कि एक नई मॉ जिस बच्चे पर इतना प्रेम करती है तब जिसने उसे जन्म दिया उसके प्रेमका क्या कुछ अन्त है—सीमा है ! नहीं । मॉका अपने बच्चे पर जो प्रेम होता है उसकी तुलना किसी दृष्टात या उदाहरण द्वारा नहीं की जा सकती और जो करते हैं वे मॉके अनन्त प्रेमको कम करनेका यत्न करते हैं । कनकमाला उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुई । उसने उसका नाम करकण्डु रक्खा । इसलिए कि उस बच्चेके हाथमें उसे खुजली देख पड़ी थी । कनकमालाने उसका लालन-पालन करनेमें अपने खास बच्चेसे कोई कमी न की । सच है, पुण्यके उदयसे कष्ट समयमें भी जीवोंको सुख सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है । इसलिए भव्यजनोंको जिन पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, सयम आदि पुण्य-कर्मों द्वारा सदा शुभ कर्म करते रहना चाहिए ।

पद्मावती तब करकण्डुसे जुदा होकर गान्धारी नामकी क्षुल्लकिनीके

पास आई । उसे उसने भक्तिसे प्रणाम किया और आज्ञा पा उसीके पास वह बैठ गई । थोड़ी देर बाद पद्मावतीने उस क्षुल्लकिनीसे अपना सब हाल कहा और जिनदीक्षा लेनेकी इच्छा प्रगट की । क्षुल्लकिनी उसे तब समाधिगुप्त मुनिके पास लिवा गई । पद्मावतीने मुनिराजको नमस्कार कर उनसे भी अपनी इच्छा कह सुनाई । उत्तरमें मुनिने कहा—बहिन, तू साध्वी होना चाहती है, तेरा यह विचार बहुत अच्छा है पर यह समय तेरी दीक्षाके लिए उपयुक्त नहीं हैं । कारण तूने पहले जन्ममे नागदत्ताकी पर्यायमे जिनव्रतको तीन बार ग्रहण कर तीनो बार ही छोड़ दिया था और फिर चौथी बार ग्रहण कर तू उसके फलसे राजकुमारी हुई । तूने तीन बार व्रत छोड़ा उससे तुझे तीनो बार ही दु ख उठाना पड़ा । तीसरी बारका कर्म कुछ और बचा है । वह जब शान्त हो जाय और इस बीचमे तेरे पुत्रको भी राज्य मिल जाय तब कुछ दिनों तक राज्य सुख भोग कर फिर पुत्रके साथ-साथ ही तू भी साध्वी होना । मुनि द्वारा अपना भविष्य सुनकर पद्मावती उन्हे नमस्कार कर उस क्षुल्लकिनीके साथ-साथ चली गई । अबसे वह पद्मावती उसीके पास रहने लगी ।

इधर करकण्डु बालदेवके यहाँ दिनो-दिन बढ़ने लगा । जब उसकी पढ़नेकी उमर हुई तब बालदेवने अच्छे-अच्छे विद्वान् अध्यापकोको रखकर उसे पढ़ाया । करकण्डु पुण्यके उदयसे थोड़े ही वर्षोंमें पढ़-लिखकर अच्छा होशियार हो गया । कई विषयमें उसकी अरोक गति हो गई । एक दिन बालदेव और करकण्डु हवा-खोरी करते-करते शहर बाहर मसानमें आ निकले । ये दोनो एक अच्छी जगह बैठकर मसान भूमिकी लीला देखने लगे । इतनेमे जयभद्र मुनिराज अपने सघको लिये इसी मसानमे आकर ठहरे । यहाँ एक नर-कपाल पड़ा हुआ था । उसके मुँह और आँखोके तीन छेदोमें तीन बाँस उग रहे थे । उसे देखकर एक मुनिने विनोदसे अपने गुरुसे पूछा—भगवान्, यह क्या कौतुक है, जो इस नर-कपालमे तीन बाँस उगे हुए हैं ? तपस्वी मुनिने उसके उत्तरमे कहा—इस हस्तिनापुरका जो नया राजा होगा, इन बाँसोके उसके लिए अकुश, छत्र, दण्ड बगैरह बनेगे । जयभद्राचार्य द्वारा कहे गये इस भविष्यको किसी एक ब्राह्मणने सुन लिया । अत वह धनकी आशासे इन बाँसोको उखाड लाया । उसके हाथसे इन्हें करकण्डुने खरीद लिया । सच है,

मुनि लोग जिसके सम्बन्धमें जो बात कह देते हैं वह फिर होकर ही रहती है।

उस समय हस्तिनापुरका राजा बलवाहन था। इसके कोई सतान न थी। उसकी मृत्यु हो गई। अब राजा किसको बनाया जाय, इस विषयको चर्चा चली। आखिर यह निश्चय पाया कि महाराज का खास हाथी जलभरा सुवर्ण-कलश देकर छोडा जाय। वह जिसका अभिषेक कर राजसिहासन पर ला बैठा दे वही इस राज्यका मालिक हो। ऐसा ही किया गया। हाथी राजाको ढूँढने निकला। चलता-चलता वह करण्डुके पास पहुँचा। वही इसे अधिक पुण्यवान् देख पडा। उसी समय उसने करकण्डुका अभिषेक कर उसे अपने ऊपर चढ़ा लिया और राज्यसिहासन पर ला रख दिया। सारी प्रजाने उस तेजस्वी करकण्डुको अपना मालिक हुआ देख खूब जय-जयकार मनाया और खूब आनन्द उत्सव किया। करकण्डुके भाग्यका सितारा चमका। वह राजा हुआ। सच है, जिन भगवान्की पूजाके फलसे क्या-क्या प्राप्त नहीं होता। करकण्डुको राजा होते ही बालदेवको उसकी नष्ट हुई विद्याएँ फिर सिद्ध हो गई। उसे उसकी सेवाका मनचाहा फल मिल गया। इसके बाद ही बालदेव विद्याकी सहायतासे करकण्डुकी खास माँ पद्मावती जहाँ थी, वहाँ गया और उसे करकण्डुके पास लाकर उसने दोनो माता-पुत्रोंका मिलाप करवाया। पद्मावती आज कृतार्थ हुई। उसकी वर्षोकी तपस्या समाप्त हुई। पश्चात् बालदेव इन दोनोको बड़ी नम्रतासे प्रणाम कर अपनी राजधानीमे चला गया।

करकण्डुके राजा होने पर कुछ राजे लोग उससे विरुद्ध होकर लडनेको तैयार हुए। पर करकण्डुने अपनी बुद्धिमानी और राजनीतिकी चतुरतासे सबको अपना मित्र बनाकर देशभरमें शत्रुका नाम भी न रहने दिया। वह फिर सुखसे राज्य करने लगा। करकण्डुके दिनो-दिन बढ़ते हुए प्रतापकी खबर चारो ओर फैलती-फैलती दन्तिवाहनके पास पहुँची। दन्तिवाहन करकण्डुके पिता हैं। पर न तो दन्तिवाहनको यह ज्ञात था कि करकण्डु मेरा पुत्र है और न करकण्डुको इस बातका पता था कि दन्तिवाहन मेरे पिता होते हैं। यही कारण था कि दन्तिवाहनको इस नये राजाका प्रताप सहन नहीं हुआ। उन्होने अपने एक दूतको करकण्डुके पास भेजा। दूतने आकर करकण्डुसे प्रार्थना की—"राजाधिराज दन्तिवाहन मेरे द्वारा आपको आज्ञा करते हैं कि यदि राज्य

आप सुखसे करना चाहते हैं तो उनकी आप आधीनता स्वीकार करें । ऐसे किये बिना किसा ८४१. किसी हिस्से पर आपकी सत्ता नहीं रह सकती ।" करकण्डु एक तेजस्वी गजा और उस पर एक दूसरेकी सत्ता, सचमुच करकण्डुके लिए यह आश्चर्यकी बात थी । उसे दन्तिवाहनकी इस धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया । उसने तेज आँखें कर दूतकी ओर देखा और उससे कहा—यदि तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो तुम यहाँसे जल्दी भाग जाओ । तुम दूसरेके नौकर हो, इसलिए मैं तुम पर दया करता हूँ । नहीं तो तुम्हारी इस धृष्टताका फल तुम्हें मैं अभी ही बता देता । जाओ, और अ.ने मालिकसे कह दो कि वह रणभूमिमें आकर तैयार रहे । मुझे जो कुछ करना होगा मैं वहीं करूँगा । दूतने जैसे ही करकण्डुकी आँखें चढ़ी देखीं वह उसी समय डरकर राज्यदरबारसे रवाना हो गया ।

इधर करकण्डु अपनी सेनामे युद्धघोषणा दिलवा कर आप दन्तिवाहन पर जा चढ़ा और उनकी राजधानीको उसने सब ओरसे घेर लिया । दन्तिवाहन तो इसके लिए पहले ही से तैयार थे । वे भी सेना ले युद्धभूमिमें उतरे । दोनों ओरमें व्यूह रचना हुई । रणवाद्य बजनेवाला ही था कि पद्मावतीको यह ज्ञान हो कि यह युद्ध शत्रुओंका न होकर खास पिता-पुत्रका है । वह तब उसी समय अपने प्राणनाथके पास गई और सब हाल उसने उनसे कह सुनाया । दन्तिवाहनको इस समय अपनी प्रिया-पुत्रको प्राप्त कर जो आनन्द हुआ, उसका पता उन्हींके हृदयको है । दूसरा वह कुछ थोड़ा बहुत पा सकता है जिस पर ऐसा ही भयानक प्रसंग आकर कभी पड़ा हो । सर्व साधारण उनके उस आनन्दका, उस सुखका थाह नहीं ले सकते । दन्तिवाहन तब उसी समय हाथीसे उतर कर अपने प्रिय-पुत्रके पास आये । करकण्डुको ज्ञात होते ही वह उनके सामने दौड़ा गया और जाकर उनके पाँवोंमें गिर पड़ा । दन्तिवाहनने झटसे उसे उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया । पिता-पुत्रका पुण्य मिलाप हुआ । इसके बाद दन्तिवाहनने बड़े आनन्द और ठाठबाटसे पुत्रका शहरमें प्रवेश कराया । प्रजाने अपने युवराजका अपार आनन्दके साथ स्वागत किया । घर-घर आनन्दउत्सव मनाया गया । दान दिया गया । पूजा-प्रभावना की गई महा अभिषेक किया गया । गरीब लोग मनचाही सहायतासे खुश किये गये । इस प्रकार पुण्य-प्रसाद

करकण्डुने राज्यसम्पत्तिके सिवा कुटुम्ब-सुख भी प्राप्त किया । वह अब स्वर्गके देवोकी तरह सुखसे रहने लगा ।

कुछ दिनो बाद दन्तिवाहनने अपने पुत्रका विवाह समारभ किया । उसमे उन्होने खूब खर्च कर बड़े वैभवके साथ करकण्डुका कोई आठ हजार राजकुमारियोके साथ ब्याह किया । ब्याहके बाद ही दन्तिवाहन राज्यका भार सब करकण्डुके जिम्मे कर आप अपनी प्रिया पद्मावतीके साथ सुखसे रहने लगे । सुख-चैनसे समय बिताना उन्होने अब अपना प्रधान कार्य रक्खा ।

इधर करकण्डु राज्यशासन करने लगा । प्रजाको उसके शासनकी जैसी आशा थी, करकण्डुने उससे कहीं बढकर धर्मज्ञता, नीति और प्रजा प्रेम बतलाया । प्रजाको सुखी बनानेमे उसने कोई बात उठा न रक्खी । इस प्रकार वह अपने पुण्यका फल भोगने लगा । एक दिन समय देख मत्रियोने करकण्डुसे निवेदन किया—महाराज, चेरम, पाण्डय और चोल आदि राजे चिर समयसे अपने आधीन हैं । पर जान पडता है उन्हे इस समय कुछ अभिमानने आ घेरा है । वे मानपर्वतका आश्रय पा अब स्वतंत्रसे हो रहे हैं । राज-कर वगैरह भी अब वे नहीं देते । इसलिए उन पर चढ़ाई करना बहुत आवश्यक है । इस समय ढील कर देनेसे सम्भव है थोडे ही दिनोमे शत्रुओका जोर अधिक बढ जाये । इसलिए इसके लिए प्रयत्न कीजिए कि वे ज्यादा सिर न चढा पावे, उसके पहले ही ठीक ठिकाने आ जॉय । मत्रियोकी सलाह सुन और उस पर विचार कर पहले करकण्डुने उन लोगोके पास अपना दूत भेजा । दूत अपमानके साथ लौट आया । करकण्डुने जब सीधी तरह सफलता प्राप्त न होती देखी तब उसे युद्धके लिए तैयार होना पडा । वह सेना लिए युद्धभूमिमे जा डटा । शत्रु लोग भी चुपचाप न बैठकर उसके सामने हुए । दोनो ओरकी सेनाकी मुठभेड़ हो गई । घमासान युद्ध हुआ । दोनो ओरके हजारो वीर काम आये । अन्तमे करकण्डुकी सेनाके युद्धभूमिसे पॉव उखडे । यह देख करकण्डु स्वय युद्धभूमिमे उतरा । बड़ी वीरतासे वह शत्रुओको दॉतो तले उॅगली दबाना पडी । विजयश्रीने करकण्डुको ही बरा । जब शत्रुराजे आ-आकर इसके पॉव पडने लगे और इसकी नजर उनके मुकुटो पर पडी तो देखकर यह एक साथ हतप्रभ हो गया और बहुत-बहुत पश्चात्ताप करने लगा कि—हाय ।

मुझ पापीने यह अनर्थ क्यो किया ? न जाने इस पापसे मेरी क्या गति होगी ? बात यह थी कि उन राजोंके मुकुटोंमें जिन भगवान्की प्रतिमाएँ खुदी हुई थीं । और वे सब राजे जैनी थे । अपने धर्मबन्धुओंको जो उसने कष्ट दिया और भगवान्का अविनय किया उसका उसे बेहद दुःख हुआ । उसने उन लोगोंको बड़े आदरभावसे उठाकर पूछा—क्या सचमुच आप जैनधर्मी हैं ? उनकी ओरसे सन्तोषजनक उत्तर पाकर उसने बड़े कोमल शब्दोंमे उनसे कहा—महानुभावो, मैंने क्रोधसे अन्धे होकर जो आपको यह व्यर्थ कष्ट दिया, आप पर उपद्रव किया, इसका मुझे अत्यन्त दुःख है । मुझे इस अपराधके लिए आप लोग क्षमा करे । इस प्रकार उनसे क्षमा कराकर उनको साथ लिये वह अपने देशको रवाना हुआ । रास्तेमे तेरपुरके पास इनका पड़ाव पड़ा । इसी समय कुछ भीलोने आकर नम्र मस्तकसे इनसे प्रार्थना की—राजाधिराज, हमारे तेरपुरसे दो—कोस दूरी पर एक पर्वत है । उस पर एक छोटासा धारशिव नामका गॉव बसा हुआ है । इस गॉवमें एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है । उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं । वह बड़ा सुन्दर है । उसे आप देखनेको चलें । इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्यकी बात है कि वहॉ एक बॉवी है । एक हाथी रोज-रोज अपनी सूँडमें थोड़ासा पानी और एक कमलका फूल लिये वहाँ आता है और उस बॉवीकी परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है । इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है । उसका यह प्रतिदिनका नियम है । महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है । करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ । इस समाचारको लानेवाले भीलोंको उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थानको देखने गया । पहले उसने जिन मन्दिर जाकर भक्ति पूर्वक भगवान्की पूजा की, स्तुति की । सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्मके कामोंमें कभी प्रमाद—आलस नहीं करते । बाद वह उस बॉवीकी जगह गया । उसने वहॉ भीलोंके कहे माफिक हाथीको उस बॉवीको पूजा करते पाया । देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ । उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए । नहीं तो इस पशुमें ऐसा भक्तिभाव नहीं देखा जाता । यह विचार कर उसने

उस बॉवीको खुदवाया । उसमेसे एक सन्दूक निकली । उसने उसे खोलकर देखा । सन्दूकमें एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवानकी पवित्र प्रतिमा थी । उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डुको अतिशय प्रसन्नता हुई । उसने तब वहाँ 'अग्गलदेव' नामका एक विशाल जिन मन्दिर बनवाकर उसमे बडे उत्सवके साथ उस प्रतिमाको विराजमान किया । प्रतिमा पर एक गॉठ देखकर करकण्डुने शिल्पकारसे कहा—देखो, तो प्रतिमा पर यह गॉठ कैसी है ? प्रमिमाकी सव सुन्दरता इससे मारी गई । इसे सावधानीके साथ तोड़ दो । यह अच्छी नहीं देख पडती । शिल्पकारने कहा—महाराज, यह गॉठ ऐसी वैसी नहीं है जो तोड दी जाय । ऐसी रत्नमयी दिव्य प्रतिमा पर गॉठ होनेका कुछ न कुछ कारण जान पड़ता है । इसका बनानेवाला इतना कम बुद्धि न होगा कि प्रतिमा की सुन्दरता नष्ट होनेका ख्याल न कर इस गॉठको रहने देता । मुझे जहॉतक जान पड़ता है, इस गॉठका सम्बन्ध किसी भारी जल-प्रवाहसे होना चाहिए । और यह असभव भी नहीं । संभवत· इसकी रक्षाके लिए यह प्रयत्न किया गया हो । इसलिए मेरी समझमे इसका तुड़वाना उचित नहीं । करकण्डुने उसका कहा न माना । उसे उसकी बात पर विश्वास न हुआ । उसने तब शिल्पकारसे बहुत आग्रह कर आखिर उसे तुड़वाया ही । जैसे ही वहॉ गॉठ टूटी उसमेंसे एक वड़ा भारी जल-प्रवाह वह निकला । मन्दिरमे पानी इतना भर गया कि करकण्डु वगैरहको अपने जीवनके बचनेका भी सन्देह हो गया । तब वह जिनभक्त उस प्रवाहके रोकने के लिए सन्यास ले कुशासन पर बैठ कर परमात्माका स्मरण चिंतन करने लगा । उसके पुण्य-प्रभावसे नागकुमारने प्रत्यक्ष आकर उससे कहा—राजन्, काल अच्छा नहीं, इसलिए आप इस जलप्रवाहके रोकनेका आग्रह न करें । इस प्रकार करकण्डुको नागकुमारने समझा कर आसन परसे उठ जानेको कहा । करकण्डु नागकुमारके कहनेसे सन्यास छोड़ उठ गया । उठकर उसने नागकुमारसे पूछा—क्योंजी, ऐसा सुन्दर यह लक्षण यहॉ किसने वनाया और किसने इस बॉवीमे इस प्रतिमाको विराजमान किया ? नागकुमारने कहा—सुनिए, विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें खूब सम्पत्तिशाली नभस्तिलक नामका एक नगर था । उसमें अमितवेग ओर सुवेग नामके दो विद्याधर राजे हो चुके हैं । दोनों धर्मज्ञ और सच्चे जिनभक्त थे । एक दिन वे दोनो भाई आर्यखण्डके

जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए आये । यहाँ घूमते हुए उन्होंने पार्श्वनाथ भगवान्‌की इस रत्नमयी प्रतिमाको देखा । इसके दर्शन कर उन्होंने इसे एक सन्दूकमें वन्द कर दिया और सन्दूकको एक गुप्त स्थान पर रखकर वे उस समय चले गये । कुछ समय वाद वे पीछे आकर उस सन्दूकको कहीं अन्यत्र ले जानेके लिए उठाने लगे पर सन्दूक अवकी वार उनसे न उठी । तव तेरपुर जाकर उन्होंने अवधिज्ञानी मुनिराजसे सव हाल कहकर सन्दूकके न उठनेका कारण पूछा । मुनिने कहा—"सुनिए, यह सुखकारिणी सन्दूक तो पहले लयण ऊपर दूसरा लयण होगी । मतलव यह कि यह सुवेग आर्तध्यानसे मरकर हाथी होगा । वह इस सन्दूक की पूजा किया करेगा । कुछ समय वाद करकण्डु राजा यहाँ आकर इस सन्दूकको निकालेगा और सुवेगका जीव हाथी तव संन्यास ग्रहण कर स्वर्ग गमन करेगा । इस प्रकार मुनि द्वारा इस प्रतिमाकी चिरकाल तक अवस्थिति जाकर उन्होंने मुनिसे फिर पूछा—तो प्रभो, इस लयणको किसने वनाया ? मुनिराज वोले—इसी विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें वसे हुए रथनूपुरमें नील और महानील नामके दो राजे हो गये हैं । शत्रुओंके साथ युद्धमें उनकी विद्या, धन, राज्य वगैरह सव कुछ नष्ट हो गया । तव वे इस मलय पर्वत पर आकर वसे । यहाँ वे कई वर्षो तक आरामसे रहे । दोनों भाई वड़े धर्मात्मा थे । उन्होंने यह लयण वनवाया । पुण्यसे उन्हें उनकी विद्याएँ फिर प्राप्त हो गई । तव वे पीछे अपनी जन्मभूमि रथनूपुर चले गये । इसके वाद कुछ दिनों तक वे दोनों और गृह-संसारमें रहे । फिर जिनदीक्षा लेकर भाई साधु हो गये । अन्तमें तपस्याके प्रभावसे वे स्वर्ग गये ।" इस प्रकार सव हाल सुनकर वड़ा भाई अमितवेग तो उसी समय दीक्षा लेकर मुनि हो गया । और अन्तमें समाधिसे मरकर व्रह्मोत्तर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ । और सुवेग—अमितवेगका छोटा भाई आर्त्तध्यानसे मरकर यह हाथी हुआ । सो व्रह्मोत्तर स्वर्गके देखने पूर्व जन्मके भातृ-प्रेमके वश हो, आकर इसे धर्मोपदेश किया, समझाया । उससे इस हाथीको जातिस्मरण ज्ञान हो गया । इसने तव अणुव्रत ग्रहण किये । तव हीसे यह इस प्रकार शान्त रहता है और सदा इस वॉवीकी पूजन किया करता है । तुमने वॉवी तोड़ाकर उसमेंसे प्रतिमा निकाल ली तव हीसे हाथी संन्यास लिये यहीं रहता है । और राजन्, आप पूर्वजन्ममें

इसी तेरपुरमे ग्वाल थे । आपने तबएक कमलके फूल द्वारा जिनभगवानकी पूजा की थी । उसीके फलसे इस समय आप राजा हुए हैं । राजन्, यह जिनपूजा सब पुण्यकर्मोंमे उत्तम पुण्यकर्म है यही तो कारण है कि क्षणमात्रमे इसके द्वारा उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार करकण्डुको आदिसे इति पर्यन्त सब हाल कहकर और धर्म प्रेमसे उसे नमस्कार कर नागकुमार अपने स्थान चला गया । सच है यह पुण्य हीका प्रभाव है जो देव भी मित्र हो जाते हे ।

हाथीको सन्यास लिये आज तीसरा दिन था । करकण्डुने उसके पास जाकर उसे धर्मका पवित्र उपदेश किया । हाथी अन्तमे सम्यक्त्व सहित मरकर सहस्रार स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ । एक पशु धर्मका उपदेश सुन कर स्वर्गमे अनन्त सुखोका भोगनेवाला देव हुआ, तब जो मनुष्य जन्म पाकर पवित्र भावोसे धर्म पालन करे तो उन्हे क्या प्राप्त न हो ? बात यह है कि धर्मसे बढ़कर सुख देनेवाली संसारमें कोई वस्तु है ही नहीं । इसलिए धर्मप्राप्तिके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

करकण्डु इसके बाद इसी पर्वत पर अपने, अपनी माँके तथा बालदेवके नामसे विशाल और सुन्दर तीन जिनमन्दिर बनवाये, बड़े वैभवके साथ उनकी प्रतिष्ठा करवाई । जब करकण्डुने देखा कि मेरा सासारिक कर्त्तव्य सब पूरा हो चुका तब राज्यका सब भार अपने पुत्र वसुपालको सौंप कर और संसार, शरीर, विषय-भोगादि से विरक्त होकर आप अपने माता-पिता तथा और भी कई राजोके साथ जिनदीक्षा ले योगी हो गया । योगी होकर करकण्डु मुनिने खूब तप किया, जो कि निर्दोष और ससार-समुद्रसे पार करनेवाला है । अन्तमें परमात्म-स्मरणमे लीन हो उसने भौतिक शरीर छोड़ा । तपके प्रभावसे उसे सहस्रार स्वर्गमे दिव्य देह मिली । पद्मावती दन्तिवाहन तथा अनरू राजे तो अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गलोक गये ।

करकण्डुने ग्वालके जन्ममे केवल एक कमलके फूल द्वारा भगवानकी पूजा की थी । उसे उसका जो फल मिला उसे आप सुन चुके हैं । तब जो पवित्र भावपूर्वक आठ द्रव्योसे भगवानकी पूजा करेगे उनके सुखका तो फिर

पूछना ही क्या ? थोड़ेमें यो समझिए कि जो भव्यजन भक्तिसे भगवानव प्रतिदिन पूजा किया करते हैं वे सर्वोत्तत-सुख मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, त और सासारिक सुखोंकी तो उनके सामने गिनती ही क्या है ?

एक बे-समझ ग्वालने जिन भगवानके पवित्र चरणोंकी एक कमल फूलसे पूजा की थी, उसके फलसे वह करकण्डु राजा होकर देवों द्वारा पूज हुआ । इसलिए सुखकी चाह करनेवाले अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे जिन-पूजाकी ओर अपने ध्यानको आकर्षित करें । उससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा । क्योंकि भावोंका पवित्र करनेका जिन-पूजा भी एक प्रधान कारण है ।

- ☆ मनुष्य जितना ऊपर जा सकता है, उतना ही नीचे भी जा सकता है, जितना विकास कर सकता है, उतना ही विनाश भी कर सकता है, सिर्फ अच्छे बुरे परिणामों के माध्यम से ।
- ☆ संसार को बढ़ाने के तीन कारण है: ऋण, हत्या और बैर ।
- ☆ सही तो दृष्टि की ही दृढ़ता होती है और दृष्टि की दृढता से आचरण में दृढता आती है । सुननेवाला सुने हुए पदार्थ को तभी हृदयांगम कर पायेगा। जब वह जागृत हो ।

११४. जिनपूजन-प्रभाव-कथा

ससार द्वारा पूजे जानेवाले जिनभगवानको, सर्वश्रेष्ठ गिनी जानेवाली जिनवाणीको और राग, द्वेष, मोह, माया आदि दोषोसे रहित परम वीतरागी साधुओंको नमस्कार कर जिनपूजा द्वारा फल प्राप्त करनेवाले एक मेढककी कथा लिखी जाती है ।

शास्त्रोमे उल्लेख किये उदाहरणो द्वारा यह बात खुलासा देखनेमे आती है कि जिन भगवानकी पूजा पापोकी नाश करनेवाली और स्वर्ग मोक्षके सुखोंकी देनेवाली है । इसलिए जो भव्यजन पवित्र भावो द्वारा धर्मवृद्धिके अर्थ जिनपूजा करते हैं वे ही सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं और मोक्ष जानेके अधिकारी हैं । इसके विपरीत पूजा की जो निन्दा करते हैं वे पापी हैं और ससारमे निन्दाके पात्र हैं । ऐसे लोग सदा दुःख, दरिद्रता, रोग, शोक आदि कष्टोको भोगते हैं और अन्तमे दुर्गतिमे जाते हैं । अतएव भव्यजनोको उचित है कि वे जिन भगवानका अभिषेक, पूजन, स्तुति, ध्यान आदि सत्कर्मोको सदा किया करे । इसके सिवा तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिन मन्दिरोका जीर्णोद्धार आदि द्वारा जैनधर्मकी प्रभावना करना चाहिए । इन पूजा प्रभावना आदि कारणोसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है । जिन भगवानइद्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषो द्वारा पूज्य हैं । इसलिए उनकी पूजा तो करनी ही चाहिए । जिनपूजा द्वारा सभी उत्तम-उत्तम सुख मिलते हैं । जिनपूजा करना महापुण्यका कारण है, ऐसा शास्त्रोमे जगह-जगह लिखा मिलता है । इसलिए जिनपूजा समान दूसरा पुण्यका कारण ससारमे न तो हुआ और न होगा । प्राचीन कालमे भरत जैसे अनेक बड़े-बडे पुरुषोने जिनपूजा द्वारा जो फल प्राप्त किया , किसकी शक्ति है जो उसे लिख सके । गन्धपुष्पादि आठ द्रव्योसे पूजा करनेवाले जिनपूजा द्वारा जो फल लाभ करते हैं, उनके सम्बन्धमे हम क्या लिखे, जब कि केवल ना-कुछ चीज फूलसे पूजाकर एक मेढकने स्वर्ग सुख प्राप्त किया । समन्तभद्र स्वामीने भी इस विषयमे लिखा है—राजगृहमे हर्षसे उन्मत्त हुए एक मेढकने सत्पुरुषोको यह स्पष्ट बतला दिया कि केवल एक फूल द्वारा भी जिन भगवानकी पूजा करनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है, जैसा कि मैंने प्राप्त किया ।

अब मेंढककी कथा सुनिए—

यह भारतवर्ष जम्बुद्वीपके मेरुकी दक्षिण दिशामे है । इसमे अनेक तीर्थकरोका जन्म हुआ है । इसलिए यह महान् पवित्र है । मगध भारतवर्षमें एक प्रसिद्ध और धनशाली देश है । सारे ससारकी लक्ष्मी जैसे यहीं आकर इकट्ठी हो गई हो । यहॉके निवासी प्रायः धनी है, धर्मात्मा है, उदार हैं ओर परोपकारी है ।

जिस समयकी यह कथा है उस समय मगधकी राजधानी राजगृह एक बहुत सुन्दर शहर था । सब प्रकारकी उत्तमसे उत्तम भोगोपभोगकी वस्तुऍ वहॉ बड़ी सुलभतासे प्राप्त थीं । विद्वानोंका उसमे निवास था । वहॉके पुरुष देवोंसे और स्त्रियॉ देवबालाओसे कहीं बढ़कर सुन्दर थीं । स्त्री-पुरुष प्राय· सब ही सम्यक्त्वरूपी भूषणसे अपनेको सिंगारे हुए थे । और इसलिये राजगृह उस समय मध्यलोकका स्वर्ग कहा जाता था । वहॉ जैनधर्मका ही अधिक प्रचार था । उसे प्राप्त कर सब सुख-शान्ति लाभ करते थे ।

राजगृह के राजा तब श्रेणिक थे । श्रेणिक धर्मज्ञ थे । जैनधर्म और जैनतत्व पर उनका पूर्ण विश्वास था । भगवानकी भक्ति उन्हे उतनी ही प्रिय थी, जितनी कि भौरेको कमलिनी । उनका प्रताप शत्रुओके लिये मानो धधकती आग थीं । सत्पुरुषोके लिये वे शीतल चन्द्रमा थे । पिता अपनी सन्तानको जिस प्यारसे पालता है श्रेणिकका प्यार भी प्रजा पर वैसा ही था । श्रेणिककी कई रानियॉ थीं चेलिनी उन सबमे उन्हें अधिक प्रिय थी । सुन्दरतामें, गुणोंमें चतुरतामे चेलिनीका आसन सबसे ऊँचा था । उसे जैनधर्मसे, भगवानकी पूजा-प्रभावनासे बहुत ही प्रेम था । कृत्रिम भूषणो द्वारा सिंगार करनका महत्व न देकर उसने अपने आत्माको अनमोल सम्यग्दर्शन रूप भूषणसे भूषित किया था । जिनवाणी सब प्रकारके ज्ञानविज्ञानसे परिपूर्ण है और अतएव वह सुन्दर है, चेलिनीमें भी किसी प्रकारके ज्ञान-विज्ञानकी कमी न थी । इसलिये उसकी रूपसुन्दरताने और अधिक सौन्दर्य प्राप्त कर लिया था । 'सोनेमे सुगन्ध' की उक्ति उस पर चरितार्थ थी ।

राजगृह हीमें एक नागदत्त नामका सेठ रहता था । यह जैनी न था

राजगृह हीमे एक नागदत्त नामका सेठ रहता था । यह जैनी न था इसकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था । नागदत्त बड़ा मायाचारी था । सदा मायाके जालमे यह फँसा हुआ रहता था । इस मायाचारके पापसे मरकर यह अपने घर ऑगनकी बावडीमे मेढक हुआ । नागदत्त यदि चाहता तो कर्मोका नाश कर मोक्ष जाता, पर पाप कर वह मनुष्य पर्यायसे पशुजन्ममें आया, एक मेढक हुआ । इसलिये भव्य-जनोको उचित है कि वे सकट समय भी पाप न करे ।

एक दिन भवदत्ता इस बावड़ी पर जल भरनेको आई । उसे देखकर मेढकको जातिस्मरण ज्ञान हो गया । वह उछल कर भवदत्ताके वस्त्रो पर चढने लगा । भवदत्ताने डरकर उसे कपडो परसे झिड़क दिया । मेढक फिर भी उछल-उछलकर उसके वस्त्रो पर चढने लगा । उसे बार-बार अपने पास आता देखकर भवदत्ता बडी चकित हुई और डरी भी । पर इतना उसे भी विश्वास हो गया कि इस मेढकका और मेरा पूर्वजन्मका कुछ न कुछ सम्बन्ध होना ही चाहिये । अन्यथा बार-बार मेरे झिडक देने पर भी यह मेरे पास आनेका साहस न करता । जो हो, मौका पाकर कभी किसी साधु-सन्तसे इसका यथार्थ कारण पूछूँगी ।

भाग्यसे एक दिन अवधिज्ञानी सुव्रत मुनिराज राजगृहमे आकर ठहरे । भवदत्ताको मेंढकका हाल जाननेका बड़ी उत्कण्ठा थी । इसलिये वह तुरन्त उनके पास गई । उनसे प्रार्थना कर उसने मेंढकका हाल जाननेकी इच्छा प्रगट की । सुव्रत मुनिराजने तब उससे कहा—जिसका तू हाल पूछनेको आई है, वह दूसरा कोई न होकर तेरा पति नागदत्त है । वह बडा मायाचारी था, इसलिये मर कर मायाके पापसे यह मेढक हुआ है । उन मुनिके ससार-पार करनेवाले वचनोको सुनकर भवदत्ताको सन्तोष हुआ । वह मुनिको नमस्कार कर घर पर आ गई । उसने फिर मोहवश हो उस मेढकको भी अपने यहॉ ला रक्खा । मेढक वहॉ आकर बहुत प्रसन्न रहा ।

इसी अवसरमें वैभार पर्वत पर महावीर भगवानका समवसरण आया । वनमालीने आकर श्रेणिकको खबर दी कि राजराजेश्वर, जिनके चरणोको इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्त्ती, विद्याधर आदि प्राय सभी महापुरुष पूजा-स्तुति करते हैं, वे

महावीर भगवान वैभार पर्वत पर पधारे हैं । भगवान्के आनेके आनन्द-समाचार सुनकर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए । भक्तिवश हो सिंहासनसे उठकर उन्होने भगवानको परोक्ष नमस्कार किया । इसके बाद इन शुभ समाचारोकी सारे शहरमें सबको खबर हो जाय, इसके लिये उन्होंने आनन्द घोषणा दिलवा दी । बडे भारी लाव लश्कर और वैभवके साथ भव्यजनोका संग लिये वे भगवानके दर्शनोको गये । वे दूरसे उन ससारका हित करनेवाले भगवानके समवसरणको देखकर उतने ही खुश हुए जितने खुश मोर मेघोंको देखकर होते हैं और रासायनिक लोग अपना मन चाहा रस लाभ कर होते है । वैसे समवसरणमे पहुँचे । भगवानके उन्होने दर्शन किये और उत्तमसे उत्तम द्रव्योसे उनकी पूजा की । अन्तमे उन्होने भगवान्के गुणोका गान किया ।

हे भगवन्, हे दयाके सागर, ऋषि-महात्मा आपको 'अग्नि' कहते हैं, इसलिये कि आप कर्मरूपी ईंधनको जला कर खाक देनेवाले हैं । आप हीको वे 'मेघ' भी कहते हैं, इसलिये कि आप प्राणियोको जलानेवाली दु·ख, शोक, चिन्ता, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि दावाग्निको क्षणभरमें अपने उपदेश रूपी जलसे बुझा डालते हैं । आप 'सूरज' भी हैं, इसलिये कि अपने उपदेशरूपी किरणोसे भव्यजनरूपी कमलोको प्रफुल्लित कर लोक और अलोकके प्रकाशक है । नाथ, आप एक सर्वोत्तम वैद्य हैं, इसलिये कि ध न्वन्तरीसे वैद्योकी दवा दारूसे भी नष्ट न होनेवाली ऐसी जन्म, जरा, मरण रूपी महान् व्याधियोको जड़ मूलसे खो देते हैं । प्रभो, आप उत्तमोत्तम गुणरूपी जवाहरातके उत्पन्न करनेवाले पर्वत हो, ससारके पालक हो, तीनो लोकके अनमोल भूषण हो, प्राणी मात्रके नि·स्वार्थ बन्धु हो, दुःखोंके नाश करनेवाले हो और सब प्रकारके सुखोंके देनेवाले हो । जगदीश ! जो सुख आपके पवित्र चरणोकी सेवासे प्राप्त हो सकता है वह अनेक प्रकारके कठिनसे कठिन परिश्रम द्वारा भी प्राप्त नहीं होता । इसलिये हे दयासागर, मुझ गरीबको अपने चरणोको पवित्र और मुक्तिका सुख देनेवाली भक्ति प्रदान कीजिये । जबतक कि मैं ससारसे पार न हो जाऊँ । इस प्रकार बड़ी देर तक श्रेणिक भगवानका पवित्र भावोंसे गुणानुवाद किया । बाद वे गौतम गणधर आदि महर्षियोको भक्तिसे नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गये ।

भगवानके दर्शनोके लिये भवदत्ता सेठानी भी गई । आकाशमे देवोका जय-जयकार ओर दुन्दुभी बाजोकी मधुर-मनोहर आवाज सुनकर उस मेढकको जाति स्मरण हो गया । वह भी तब बावडीमे एक कमलकी कलीको अपने मुँहमे दबाये बडे आनन्द और उल्लासके साथ भगवान की पूजाके लिये चला । रास्तेमे आता हुआ वह हाथीके पैर नीचे कुचला जाकर मर गया । पर उसके परिणाम त्रिलोक्य पूज्य महावीर भगवानको पूजामें लगे हुए थे, इसलिये वह उस पूजाके प्रेमसे उत्पन्न होनवाले पुण्यसे सौधर्म स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ । देखिये, कहाँ तो वह मेढक और कहाँ अब स्वर्गका देव । पर इसमे आश्चर्यकी कोई बात नहीं । कारण जिनभगवान की पूजासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।

एक अन्तर्मुहुर्त्तमे वह मेढकका जीव आँखोसे चकाचौंध लानेवाला तेजस्वी और सुन्दर युवा देव बन गया । नाना तरहके दिव्य रत्नमयी अलकारोकी कान्तिसे उसका शरीर ढक रहा था, बड़ी सुन्दर शोभा थी । वह ऐसा जान पड़ता था, मानो रत्नोकी एक बहुत बडी राशि रक्खी हो या रत्नोंका पर्वत बनाया गया हो । उसके बहुमूल्य वस्त्रोकी शोभा देखते ही बनती थी । गलेमे उसके स्वर्गीय कल्पवृक्षोके फूलोकी सुन्दरता मालाएँ शोभा दे रही थीं । उनकी सुन्दर सुगन्धने सब दिशाओंको सुगन्धित बना दिया था । उसे अविधिज्ञानसे जान पड़ा कि मुझे जो यह सब सम्पत्ति मिली है और मैं देव हुआ हूँ, यह सब भगवानकी पूजाकी पवित्र भावनाका फल है । इसलिये सबसे पहले मुझे जाकर पतित-पावन भगवानकी पूजा करनी चाहिये । इस विचारके साथ ही वह अपने मुकुट पर मेढकका चिह्न बनाकर महावीर भगवानके समवसरणमें आया । भगवानकी पूजन करते हुए इस देवके मुकुट पर मेंढकके चिह्नको देखकर श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होने गौतम भगवानको हाथ जोड कर पूछा—हे सदेहरूपी अँधेरेको नाश करनेवाले सूरज, कृपाकर कहिए कि इस देवके मुकुट पर मेढकका चिह्न क्यो है ? मैंने तो आज तक देवके मुकुट पर ऐसा चिह्न नहीं देखा । ज्ञानकी प्रकाशमान ज्योतिरूप गौतम भगवानने तब श्रेणिकको नागदत्तके भवसे लेकर जब तककी सब कथा कह सुनाई । उसे सुनकर श्रेणिकको तथा अन्य भव्यजनोको बडा ही आनन्द हुआ । भगवानकी पूजा

करनेमे उनकी बड़ी श्रद्धा हो गई । जिनपूजनका इस प्रकार उत्कृष्ट फल जानकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे सुख देनेवाली इस जिन पूजनको सदा करते रहे । जिन पूजाके फलसे भव्यजन धन-दौलत, रूप-सौभाग्य, राज्य-वैभव, बाल-बच्चे और उत्तम कुछ जाति आदि सभी श्रेष्ठ सुख-चैन की मनचाही सामग्री लाभ करते हैं, वे चिरकाल तक जीते हैं, दुर्गतिमे नहीं जाते और उनके जन्म-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं । जिनपूजा सम्यग्दर्शन और मोक्षका बीज है, संसारका भ्रमण मिटानेवाली है और सदाचार, सद्विद्या तथा स्वर्ग-मोक्षके सुखकी कारण है । इसलिये आत्महितके चाहनेवाले सत्पुरुषोको चाहिये कि वे आलस छोड़कर निरन्तर जिनपूजा किया करें । इससे उन्हे मनचाहा सुख मिलेगा ।

यही जिन-पूजा सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षके सींचनेको वर्षा सरीखी है, भव्यजनोंको ज्ञान देनेवाली मानो सरस्वती है, स्वर्गकी सम्पदा प्राप्त करानेवाली दूती है, मोक्षरूपी अत्यन्त ऊँचे मन्दिर तक पहुँचानेको मानो सीढ़ियोकी श्रेणी है और समस्त सुखोकी देनेवाली है । यह आप भव्यजनोकी पाप कर्मोंसे सदा रक्षा करे ।

जिनके जन्मोत्सवके समय स्वर्गके इन्द्रोंने जिन्हे स्नान कराया, जिनके स्नानका स्थान सुमेरु पर्वत नियम किया गया, और समुद्र जिनके स्नानजलके लिये बावडी नियत की गई, देवता लोगोने बड़े आदरके साथ जिनकी सेवा बजाई, देवागनाएँ जिनके इस मगलमय समयमे नाचीं और गन्धर्व देवोने जिनके गुणोको गाया, जिनका यश बखान किया, ऐसे जिन भगवान आप भव्य-जनोको और मुझे शान्ति प्रदान करे ।

वह भगवानकी पवित्र वाणी जय लाभ करे, ससारमे चिर समय तक रहकर प्राणियोको ज्ञानके पवित्र मार्ग पर लगाये, जो अपने सुन्दर वाहन मोर पर बैठी हुई अपूर्व शोभाको धारण किये हैं, मिथ्यात्वरूपी गाढ़े अँधेरेको नष्ट करनेके लिये जो सूरजके समान तेजस्विनी है, भव्यजनरूपी कमलोके वनको विकसित कर आनन्दकी बढ़ानेवाली है, जो सच्चे मार्गकी दिखानेवाली है और स्वर्गके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुष जिसे बहुत मान देते हैं ।

मूलसघके सबसे प्रधान सारस्वत नामके गच्छमे कुन्दकुन्दाचार्यकी

परम्परामें प्रभाचन्द्र एक प्रसिद्ध आचार्य हुए है । वे जैनागमरूपी समुद्रके बढ़ानेके लिये चन्द्रमाकी शोभा को धारण किए थे । बडे-बडे विद्वान् उनका आदर सत्कार करते थे । वे गुणोके मानो जैसे खजाने थे, बडे गुणी थे ।

इसी गच्छमे कुछ समय बाद मल्लिभूषण भट्टारक हुए । वे मेरे गुरु थे । वे जिनभगवान्के चरण-कमलोके मानो जैसे भौंरे थे—सदा भगवान्की पवित्र भक्तिमे लगे रहते थे । मूलसघमे इनके समयमे यही प्रधान आचार्य गिने जाते थे । स्मयग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयके ये धारक थे । विद्यानन्दी गुरुके पट्टरूपी कमलको प्रफुल्लित करने को ये जैसे सूर्य थे । इनसे उनके पट्टकी बड़ी शोभा थी । ये आप सत्पुरुषोको सुखी करे ।

वे सिहनन्दी गुरु भी आपकी सुखी करे, जो जिन भगवान्की निर्दोष भक्तिमें सदा लगे रहते थे । अपने पवित्र उपदेशसे भव्यजनोको सदा हितमार्ग दिखाते रहते थे । जो कामरूपी निर्दयी हाथीका दुर्मद नष्ट करनको सिह सरीखे थे, कामको जिन्होने वश कर लिया था । वे बडे ज्ञानी ध्यानी थे, रत्नत्रयके धारक थे और उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी ।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजय लाभ करे, जो ज्ञानके समुद्र हैं । देखिये, समुद्रमे रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्नको धारण किये हैं । समुद्रमे तरंगें होती हैं, ये भी सप्तभगी रूपी तरगोसे युक्त हैं—स्याद्वादविद्याके बड़े ही विद्वान् हैं । समुद्रकी तरगे जैसे कूडे-करकटको निकाल बाहर फैंक देती हैं, उसी तरह ये अपनी सप्तभगी वाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकटको हटा दूर करते थे, अन्य मतके बडे-बडे विद्वानोको शास्त्रार्थमे पराजित कर विजय लाभ करते थे । समुद्रमे मगरमच्छ, घडियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्रमे उससे यह विशेषता थी, अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष रूपी भयानक मगरमच्छ न थे । समुद्रमे अमृत रहता है और इनमे जिन भगवानका वचनमयी अमृत समाया हुआ था । और समुद्रमें अनेक बिकने योग्य वस्तुऍ रहती है, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रेय वस्तुको धारण किये थे । अतएव वे समुद्रकी उपमा दिये गये ।

इन्हींके पवित्र चरणकमलोंकी कृपासे जैनशास्त्रोंके अनुसार मुझ नेमिदत्त ब्रह्मचारीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपके प्राप्त करनेवालोंको इन पवित्र पुण्यमय कथाओंको लिखा है। कल्याणकी करनेवाली ये कथाएँ भव्यजनोंकी धन-दौलत, सुख-चैन, शान्ति-सुयश और आमोद-प्रमोद आदि सभी सुख सामग्री प्राप्त करानेमें सहायक हों। यह मेरी पवित्र कामना है।

☆ देव के सामने सांसारिक कामनाओं को लेकर जाना मूढ़ता हैं और इस मूढ़ता में फँसा प्राणी आत्म तत्व से बहुत दूर रहता है।

☆ मन्दिर उपयोग को स्थिर करने के लिए है, किन्तु सबके उपयोग को स्थिर करने में निमित्त बने, ये जरूरी नहीं। बाहर का कोई भी निमित्त भगवान बनने के लिए सिर्फ दिशाबोध दे सकता है पर बनना हमें ही होगा।